कुण्डलिनी साधना प्रसंग
अरुण कुमार शर्मा

कुण्डलिनी साधना प्रसंग

कुण्डलिनी साधना में व्यक्तित्व की समस्त सम्भावनाओं
का सर्वांगीण विकास सम्भव है

◆

अरुण कुमार शर्मा

संकलन

मनोज सिद्धार्थ शर्मा

◆

आस्था प्रकाशन

वाराणसी

विषय सूची

प्रकाशकीय

कुण्डलिनी साधना प्रसंग में बहुत सारे प्रसंगों का वर्णन एवं अलौकिक चमत्कारपूर्ण घटनाओं का भी उल्लेख है। जिसे पारलौकिक जगत भी कह सकते हैं। विश्व जगत में तीन मुख्य जगत हैं। आत्ममय जगत, मनोमय जगत और पदार्थमय जगत। इन तीनों का अपना-अपना विज्ञान है। आत्ममय जगत का विज्ञान अध्यात्म है। वहीं मनोमय जगत का विज्ञान है मनोविज्ञान और परामनोविज्ञान। उसी प्रकार पदार्थमय जगत का विज्ञान है भौतिक विज्ञान।

आत्म जगत और वस्तु जगत के बीच में यानि सेतु के रूप में मनोमय जगत है। मन दोनों जगत को जोड़ने वाला सेतु है। इसलिए मन को योग में राजा कहा गया है। यह दोनों जगत में सन्तुलन रखता है। चेतन मन का राज्य वस्तुपरक जगत है और अवचेतन मन का राज्य आत्मपरक जगत है।

किसी भी साधना का उद्देश्य चाहे वह योग का हो या तंत्र का, सभी साधना के मूल में है मन और आत्मा की साधना। यह साधना वस्तुपरक जगत से आत्मपरक जगत की ओर जाती है। जब साधक वस्तुपरक सत्ता का अतिक्रमण कर आत्मपरक सत्ता में प्रवेश करता है तो तमाम अविश्वसनीय घटनायें घटने लगती हैं। जिसे हम चमत्कार कह कर टाल देते हैं।

वस्तुपरक सत्ता का और तमाम घटनाओं का तो प्रमाण दिया जा सकता है और सिद्ध भी किया जा सकता है। लेकिन आत्मपरक घटनाओं का प्रमाण नहीं दिया जा सकता है और न ही सिद्ध किया जा सकता है।

गुरुजी का कहना है आपके सामने दीपक जल रहा है और उसका प्रकाश फैल रहा है आप उसे प्रमाणित कर सकते हैं। लेकिन जो आपके अन्दर दीपक जल रहा उसके प्रकाश से आप संसार का अनुभव कर रहे

क्या उसका प्रमाण दे सकते हैं? बस यहीं आत्मपरक सत्ता शुरू होती है और वहीं से शुरू होती है चमत्कारिक घटनाएं। यहीं से सारे भौतिक नियम समाप्त हो जाते हैं और यही एकमात्र कारण है कि न विश्वास दिलाया जा सकता है और न ही कोई प्रमाण दिया जा सकता है।

गुरुजी आगे बोले- मैं जानता हूं कि इस सत्य को वैज्ञानिक मत से सिद्ध नहीं किया जा सकता है और यह सत्य है। वैज्ञानिक प्रयोगों से इसे परखा भी नहीं जा सकता है। भौतिक नियमों का अभाव होने पर भी मैं जहां उन्हे शब्द रूप देने का प्रयास किया एवं साथ ही अधिक से अधिक वैज्ञानिक दृष्टि प्रदान करने का भी प्रयास किया अपनी पुस्तकों में। इस प्रयास में मुझे कहां तक सफलता मिली यह तो मैं नहीं बतला सकता। लेकिन भारतीय अध्यात्म और विज्ञान को एक-दूसरे के सामने खड़ा करने का प्रयास अवश्य किया। शायद मेरी खोज और मेरा प्रयास भविष्य में अध्यात्म और विज्ञान दोनों ऐसी दिशा में एक हो जायें और एक नया आयाम खुल जाये, नया द्वार खुल जाये तो मानव से महामानव बनने का नया मार्ग बन जायेगा।

गुरुजी के ये शब्द आज भी मेरे मस्तिष्क में गूंजते हैं। उनके समय में आज जैसी सुविधा नहीं थी। फिर भी उनका प्रयास और उनका परिश्रम व्यर्थ नहीं गया। आज भी वह जिन्दा हैं अपने पुस्तकों के माध्यम से और हैं अमर अपने ज्ञान के द्वारा। शायद भविष्य का विज्ञान गुरुजी के खोज पर अवश्य ध्यान देगा। शायद गुरुजी अपने शब्दों के माध्यम से कुछ ऐसे सूत्र छोड़ गये हैं जिसे हम लोग समझ नहीं पा रहे। शायद भविष्य में विज्ञान की नजर पड़ेगी.....ऐसा मेरा विश्वास है।

मनोज सिद्धार्थ शर्मा

दो शब्द

भारत के आध्यात्मिक विचारों और चिन्तन-मनन की तीन मुख्य धारायें हैं। पहली है हिन्दू, दूसरी है बौद्ध और तीसरी है जैन। ऐतिहासिक दृष्टि से सबसे अधिक प्राचीन तथा अपने विकास-विस्तार और अपने अनुयायियों की संख्या की दृष्टि से भी सबसे अधिक विपुल जो धारा है है वह है निगम अर्थात वेद। हिन्दुओं के लिए वेद अन्तिम प्रमाण है। हिन्दु वेदानुयायी हैं। वेद ही उनका प्रमाण ग्रन्थ है। उनका आध्यात्मिक चिन्तन वेदाश्रित है।

दूसरी धारा वह है जिसका आविर्भाव और उद्‌भव भगवान बुद्ध के वचनों और उपदेशों से होता है। इस धारा के अनुयायी भारत के अतिरिक्त अन्य कई देशों में भी हैं।

तीसरी धारा वह है जिसके प्रवर्तक वर्धमान महावीर और उनके पूर्ववर्ती तीर्थंकर थे।

जब हमारे आन्तर एवं बाह्य सभी अनुभव नष्ट हो जाते हैं और जब हमारे पास किसी भी प्रकार का अनुभव नहीं रह जाता तो केवल मात्र रह जाता है साक्षी और उस साक्षी की खोज है अध्यात्म। अध्यात्म का आधार है योग। योग से अध्यात्म का सीधा साक्षात्कार है। कहने की आवश्यकता नहीं तीनों धारायें योगाश्रित होकर भारत भूमि में प्रवाहित हुई हैं। वैसे जैन धारा में योग से अधिक तपश्चर्या को महत्व दिया गया है। इसलिए जैन साहित्य में योग और योगियों की अपेक्षाकृत कम चर्चा की गई है।

वेदों में तो योग की चर्चा उपलब्ध है ही उसके अतिरिक्त वेदों पर आधारित रामायण, महाभारत, महापुराण, उपपुराण तथा स्मृतियों और धर्म शास्त्रों आदि में भी योग का विपुल वर्णन किया गया है। योग के सम्बन्ध में अनेक कथायें और अनेक प्रकार के उपदेश भी उनमें उपलब्ध

हैं। वैसे भी योग के अनेक स्वतंत्र ग्रन्थ भी हैं। बौद्ध ग्रंन्थ तो योग और योगियों के विषयों और उनकी चर्चाओं से से भरे पड़े हैं। भगवान बुद्ध का सम्पूर्ण जीवन ही योग का ज्वलन्त समर्थन है। लेकिन हमारे देश का साधक, विचारक, समाज इन्ही तीनों धाराओं को ही पकड़े नहीं रहा। कालान्तर में कई ऐसी प्रबल उपधारायें निकली जिनका प्रभाव और विस्तार किसी दूसरे देश या अभारतीय सम्प्रदाय की मुख्य धारा से किसी भी दृष्टि से कम न था। इनमें इतिहास एवं प्रभाव और विस्तार की दृष्टि से प्रथम स्थान तंत्र का समझा जाता है।

सहज दृष्टि सें यदि देखा जाये तो तंत्र के मुख्यतः दो भेद हैं आगम और बौद्ध। तंत्र का जो रूप वैदिक आधार को लेकर प्रस्फुटित और विकसित हुआ उसको आगम की संज्ञा दी गयी है। वेद को निगम और तंत्र को आगम कहा जाता है। वर्तमान अवस्था में तांत्रिक विचार पद्धति, साधना व उपासना पद्धति हिन्दु धर्म में इतनी मिश्रित हो गयी है कि जिसका विभाजन करना असम्भव ही है।

कभी किसी काल में तंत्र के कई भेद थे और उन भेदों के आधार पर कई सम्प्रदाय भी थे किन्तु वर्तमान में दो ही रूप हैं शैव और शाक्त। कभी वैष्णव तंत्र भी बहुत प्रबल था परन्तु अब वह भागवत धर्म के रूप में वैदिक सम्प्रदाय का अविच्छिन्न अंग बन गया है।

किन्तु वैदिक और तांत्रिक मार्गो में बहुत बड़ा मौलिक अन्तर यह है कि तंत्र का अनुयायी वेद को प्रमाण नहीं मानता। फिर भी तंत्र के कुछ महत्वपूर्ण ग्रन्थ ऐसे भी हैं। जो तंत्र और वैदिक व्यवस्था को एक-दूसरे के निकट लाने में सफल हुए हैं।

तांत्रिक साधना अत्यन्त गहरी है और तंत्र का साहित्य भी विशाल है। इस प्रसंग में यह कहना आवश्यक है कि तंत्र दो भाग में विभक्त है। पहला भाग बाहरी पूजा और बाहरी क्रिया पद्धति से सम्बन्ध रखता है। गंडा, भभूत, झाड़-फूंक और भूत-प्रेत बाधा निवारण व इसी प्रकार की अन्य तांत्रिक कार्य इसी भाग के अन्तर्गत आते हैं। पंचमकार आदि भी इसी भाग में सम्मिलित है।

जो दूसरा भाग है उसमें बाहरी पूजा, उपासना और क्रियाओं का कोई

भी महत्व नहीं है। इसीलिए तंत्र ग्रन्थों में प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से साधारण और समाधि भाषा में सीधे और प्रतीकों के माध्यम से योग की चर्चा बड़े गम्भीर और विस्तार के साथ है। तंत्र साधकों में कई प्रसिद्ध योगी हुए है। ऐसे लोगों की भी चर्चा मिलती है जो सिद्धान्ततः वैदिक होते हुए भी तंत्र सम्मत उपासना शैली के अनुयायी थे। श्री आदि शंकराचार्य इसके उदाहरण हैं और प्रमाण के रूप में उनकी पुस्तक "सौन्दर्य लहरी" है। वास्तव में "सौन्दर्य लहरी" अनुपम काव्य ग्रन्थ है। इसमें योग और तंत्र का अनूठा संगम है।

बौद्ध तंत्र और आगम में भी सैद्धान्तिक अन्तर है। आगम मानव जीवन के चरम पुरुषार्थ मोक्ष को मानता है। जबकि बौद्ध तंत्र के लिए मानव का चरम लक्ष्य निर्वाण है। इसके अतिरिक्त भी एक बहुत बड़ा भेद है। आगम ग्रन्थ वेद को प्रमाण के रूप में स्वीकार नहीं करते। परन्तु बौद्ध तंत्र ग्रन्थ बुद्ध के आदेशों को पूर्णतया प्रमाण के रूप में स्वीकार करते हैं। एक और भी प्रत्यक्ष कठिनाई है और वह यह कि तंत्र सम्मत उन बातों का उन ग्रन्थों में कहीं भी उल्लेख नहीं है जिनमें बुद्ध के उपदेशों को आबद्ध किया गया है। सम्भव है ऐसी गोपनीय बातें सर्वसाधारण के सामने रखी नहीं जा सकती थी और कुछ विशेष शिष्यों को ही गुप्त रूप से बतलायी जा सकती थी। कई देवताओं और मंत्रों में समानता है। इस प्रकार बौद्ध तंत्र कई बातों में आगम से मिलते-जुलते हैं।

बौद्ध तंत्रों की भाषा संस्कृत बहुधा विकृत और व्याकरण भ्रष्ट संस्कृत है। बौद्ध धर्म का महायान सम्प्रदाय जो भारत से होता हुआ तिब्बत, चीन, मंगोलिया, कोरिया और जापान पहुंचा मुख्य रूप से तंत्र पूरक है। लंका, वर्मा में फैला हुआ हीनयान सम्प्रदाय प्रायः तंत्र युक्त है।

आगम की भांति बौद्ध तंत्र भी योग के विषयों से भरा है। जो देश महायान के अनुयायी हैं उनमें योग साधना और योग दीक्षा का पर्याप्त चलन रहा है। जिसके फलस्वरूप अनेक लब्ध ख्याति योगी और सिद्ध पुरुष वहां हुए। तिब्बत में तो प्रत्येक लामा को योग की दीक्षा लेनी पड़ती है। संस्कृत के अलावा उन देशों की भाषाओं में भी योग सम्बन्धी और तंत्रावलम्बी साहित्य है। जैसे-जैसे भारतीय संस्कृति और साधना का

इतिहास आगे बढ़ता है। वैसे ही वैसे संस्कृत का प्रचलन कम होता गया और कम होती गई संस्कृत भाषा में लिखे गये ग्रन्थों के अध्ययन की प्रवृत्ति भी। संस्कृत आज भी आदरणीय है और आज भी उसमें न केवल धार्मिक और आध्यात्मिक वरन अन्य विषयों के भी लेखक और विद्वान् ज्ञान और प्रेरणा प्राप्त करते हैं। सम्पूर्ण विश्व में फैले हुए समाज को यदि एक सूत्र में बांधने की शक्ति किसी भाषा में है वह है एकमात्र संस्कृत।

अब तक संस्कृत के विशाल भण्डार से अपने विचारों और भावों की यथार्थ अभिव्यक्ति के लिए अनुकूल शब्द मिलते थे। जब स्थानीय भाषायें सामने आयी और उनके माध्यम से प्रचार करने की सुविधा मिली। इन उपदेशों में अन्य जाति के लोग भी थे जो संस्कृत भाषा का अल्प ज्ञान रखते थे। इसीलिए वे स्थानीय भाषा से काम लेते थे। उसमें अरबी, फारसी और उर्दू के भी शब्द जा मिले थे। क्योंकि उस समय तक मुस्लिम शासकों का भारत पर पूर्ण प्रभाव हो चुका था और मुस्लिम संस्कृति और हिन्दु संस्कृति आपस में टकराने भी लगी थी। इस टकराहट के फलस्वरूप सर्वथा एक नवीन संस्कृति और सभ्यता का सर्वाधिक प्रभाव तांत्रिक साधना और संस्कृति में पड़ा और नवीन सभ्यता शनै-शनै जन्म लेने लगी। उस नवीन साधना और संस्कृति का सर्वाधिक प्रभाव तांत्रिक साधना और संस्कृति पर पड़ने लगा। बाद में उसका परिणाम यह हुआ कि कुछ ऐसे तांत्रिक तंत्रों की रचना हुई जिनमें हिन्दु देवी-देवताओं के नामों के साथ-साथ इस्लाम धर्म और साधना से सम्बन्ध रखने वाले पीरो, फकीरों और पैगम्बरों के नाम भी जुड़े हुए थे और इसी प्रकार कुछ ऐसे तांत्रिक क्रियाओं और साधनाओं का भी आविर्भाव हुआ। जिनका आधार विशेषकर अरबी अथवा फारसी तंत्र की क्रियायें और साधनायें थी। आज भी हमारे तंत्र साहित्य में इस प्रकार के मंत्रों और इस प्रकार की मिली-जुली तांत्रिक साधनाओं की भरमार है।

भारत की आध्यात्मिक उर्वरता और उसके विकास में किसी भी प्रकार की रूकावट नहीं आयी। अध्यात्म प्राण आविर्भूत होते रहे और आध्यत्मिक अनुभूतियां होती रही और उनकी अभिव्यक्ति भी साहित्य के रूप में बराबर होती रही। जिनके फलस्वरूप योग-तंत्र मिश्रित कई नये सम्प्रदायों का जन्म हुआ। जिनमें नाथ और सिद्ध सम्प्रदाय भी एक था। इस सम्प्रदाय का

विचार भाव और आध्यात्मिक लक्ष्य योग और तंत्र के गंभीर सिद्धान्तों पर आधारित था। अतः कहने की आवश्यकता नहीं यही कारण था कि अन्य सम्प्रदाय तो एक-एक कर लुप्त होने लगे लेकिन नाथ और सिद्ध सम्प्रदाय आज भी जीवित है और जीवित है उसके साथ नौ नाथ और चौरासी सिद्ध भी।

नाथ और सिद्ध सम्प्रदाय के योगियों और साधकों के द्वारा योग-तंत्र की साधनाओं में एक विशेष क्रान्ति हुई। उस क्रान्ति का परिणाम यह हुआ कि योग-तंत्र में कुछ नवीन और मौलिक शब्दों का समावेश हुआ। उनमें से एक है मुनि शब्द। योग में इस शब्द का विशेष महत्व है। यह संस्कृत के शून्य शब्द का अपभ्रंश है और वाणी में आना बौद्ध प्रभाव का द्योतक है। कहने की आवश्यकता नहीं कि बौद्ध विचार शैली, आगम और वैदिक तथा जैन तीनों में से एक महत्वपूर्ण और भिन्न है। वैदिक आगम और जैन मार्ग के अनुयायी आत्मा की नित्यता को स्वीकार करते हैं। आत्मा के अन्य लक्षणों के विषय में भले ही उन तीनों में मतभेद हो मगर तीनों एकमत होकर यह स्वीकारं करते हैं कि साधना के उच्चतम् अवस्था में पहुंचने के पश्चात आत्मा अपने समस्त विकारों से मुक्त हो जाती है। यही मूल कारण है कि उस अवस्था को लोग मुक्ति अथवा मोक्ष के नाम से सम्बोधित करते हैं। नाथ और सिद्ध काल के पश्चात भारत की आध्यात्मिक धारा में दो स्वतंत्र स्वरूप आया। पहला वैष्णव सम्प्रदाय का और दूसरा सन्त सम्प्रदाय का। वैष्णव सम्प्रदाय ने जहां एक ओर श्री रामानुजाचार्य, श्री बल्लभाचार्य, रामानन्द, जैसे विद्वानों और दार्शनिकों को जन्म दिया। वहीं दूसरी ओर तुलसीदास, सूरदास, मीराबाई जैसे भक्तिवादी ख्याति प्राप्त कवियों को भी आविर्भूत किया। उस समय हमारा देश और समाज परतंत्रता की बेड़ी में जकड़ा जा चुका था। ऐसी स्थिति में लोग अपना आत्मविश्वास गवां बैठे थे। यह सम्प्रदाय एक प्रकार से महत्वपूर्ण और वरदान ही सिद्ध हुआ देश व समाज के लिए। किन्तु योग-तंत्र की जो धारा अबाध गति से अब तक प्रवाहित हो रही थी। उसमें अवरूद्धता उत्पन्न हो गयी।आत्म विश्वास के अभाव के कारण लोग अपने पुरुषार्थ का नहीं बल्कि भगवान की कृपा और अनुकम्पा पर भरोसा करने लगे थे। लोगों की यह धारणा बन गयी थी कि यदि कुछ हो सकता है तो परमेश्वर की कृपा

से ही हो सकता है अपने पुरुषार्थ से नहीं। योग पुरुषार्थ की अपेक्षा करता है और भगवान की कृपा, दया, अनुकम्पा आदि भक्ति की। इसका परिणाम यह हुआ कि योग के प्रति लोगों की रूचि कम होने लगी। उनमें भक्ति भावना दृढ़ होने लगी। भक्ति के नये-नये कई मार्ग बन गये। नई-नई पद्धतियां भी विकसित हो गयी। अन्त में यह स्थिति उत्पन्न हो गयी कि लोग यह कहने लगे कि योगाभ्यास कलियुग में सम्भव नहीं। इस पतित काल में तो केवल भगवान का नाम, कीर्तन, स्मरण और पूजन ही सम्भव है। इनके द्वारा ही कलियुग में मोक्ष प्राप्ति सम्भव है। यही सब कारण है कि भक्ति साहित्य में योग चर्चा का अभाव है।

दूसरा स्वरूप था सन्त-सम्प्रदाय का। जो सगुण पंथी था और सन्त सम्प्रदाय के ठीक विपरीत निर्गुण पंथी भी था। इसमें पूजा, मूर्ति अथवा देवी-देवता के लिए कोई स्थान नहीं था। वह सीधा और प्रत्यक्ष योगाचार था। अतः इस सम्प्रदाय ने भी कबीर, गुरुनानक, जगजीवन दास, पल्हूदास, दादूदयाल, रैदास, गरीबदास जैसे सिद्ध महापुरुषों और सन्तों को आविर्भूत किया।

एक बात यहां स्पष्ट करना है कि यदि हम योग की परिभाषा को सामने रखकर विचार करें तो हमें योग और भक्ति में किसी भी प्रकार का विरोध दिखलायी नहीं पड़ेगा। योग में भक्ति योग भी है।

गीता के अनुसार समत्व का नाम योग है। सभी सम्प्रदाय इस समत्व को स्वीकार करते हैं। इस दृष्टि से यदि देखा जाये तो सभी सम्प्रदाय और उनकी साधना के सभी मार्ग योगाश्रित है।

जिज्ञासा वृत्ति सभी देशों में है। पूरब में भी है और पश्चिम में भी है। लेकिन पश्चिम के जिज्ञासुओं के कदम हमेशा बाहरी जगत की ओर रहते हैं जबकि हिन्दु सत्य की खोज अपने भीतर करता है। अपने भीतर सत्य की खोज योग द्वारा ही सम्भव है और इस योग मार्ग पर पिछले पांच हजार वर्षों से हिन्दु मानव चलता जा रहा है। इतनी लम्बी यात्रा के तमाम अनुभवों ने उनको यह बतला दिया है कि बाहर और भीतर द्रष्टा और दृश्य का भेद एक विशेष बिन्दुओं से लुप्त हो जाता है। पश्चिम के विचारकों को अभी बड़ी कठिनाई से उसकी प्रारम्भिक अनुभूति हो पायी है और उस सत्य

का बड़ी कठिनाई से आभास मिलने लगा है। जिसका ज्ञान हिन्दु मानव को हजारों वर्ष पूर्व हो चुका था।

सत्य क्या है?

ज्ञानी के लिए जिसको वेदान्त में जीवन मुक्त कहते हैं और हमारे जीवन का, हमारी सत्ता का जो शाश्वत बिन्दु है वही सत्य है और वह सत्य योग द्वारा ही सम्भव है। इन्द्रियों के द्वारा जो कुछ प्रतीत होता है अथवा बुद्धि में जो विचार आते हैं वह सत्य नहीं है। उस स्तर पर सभी विशेषणों का अतिक्रमण हो जाता है। तर्क के द्वारा उस सत्य को नाम देना या इसका प्रयास करना व्यर्थ की चेष्टा है। उसका नाम हो ही नहीं सकता। वह अनाम है।

आज भारतीय दर्शन शनै-शनै हर जगह प्रवेश कर रहा है। अब उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। सम्भवतः एक ऐसा भी सत्य आने वाला है। जबकि दर्शन के इतिहास में हम प्लेटो और अरस्तु के नामों के साथ शंकर और नागार्जुन का और हिंगेल के साथ अरबिन्द का नाम लेने लगेंगे। यह जगत सब एकीकरण के लिए तैयार हो जायेगा। उस समय पूरब और पश्चिम की सारी संस्कृतियां मिलकर मनुष्य के वैचारिक प्रगति की सम्मिलित इतिहास बन जायेंगी और वह इतिहास मनुष्य का चरित्र बन जायेगा।

हम जितना भी प्राचीन संस्कृतियों, धर्मों का इतिहास और गुप्त विद्याओं का तुलनात्मक अध्ययन करते हैं उतना ही यह बात हमारे सामने स्पष्ट हो जाती है कि ज्ञान का एक ऐसा भण्डार है जो अमर है और स्वाभाविक है। जो मनुष्य का अज्ञात के साथ तादात्म्य स्थापित कर देता है और यही तादात्म्य साक्षात्कार भी है और मोक्ष भी है। इस योग का आधार योग है। योग सभी धर्मों का स्रोत है। वह मनुष्य का विज्ञान है। वह कसौटी यह है कि वह सार्वभौम है और सभी व्यक्ति उसका अनुभव कर सकते हैं। योग का एकमात्र उद्देश्य है व्यष्टिगत यानि व्यक्तिगत चेतना के ऊपर उठ जाना। योग भारत की सबसे प्राचीन विद्या है। इसी कारण सर्वत्र वह किसी न किसी रूप में मिलता है। ऐसा इसलिए कि संसार कि प्रत्येक धार्मिक परम्परा के व्यवहारिक पक्ष के लिए यही आधार है। परन्तु हम अपने ही देश में इस विद्या को पूर्णरूपेण समझ पाते हैं और यह समझ पाते

है कि जहां तक आगे बढ़ना सम्भव है वहां तक इस दिशा में और योग में खोज की गयी है। भारत ने इस धार्मिक व आध्यात्मिक शास्त्र की सृष्टि की है। उतना साहसिक और गरिमामय शास्त्र इस जगत में नहीं है। काल उसके साथ व्यर्थ का टकराता है। वास्तविकता तो यह है कि यह दर्शन किसी व्यक्ति के बौद्धिक छानबीन और विचार-विमर्श से निर्मित नहीं हुआ है। उसका आधार एकमात्र अनुभव है। परन्तु भारतीय दार्शनिकों का कहना है कि बाहरी इन्द्रिय प्रत्यक्ष, वास्तव में सच्चा ज्ञान नहीं है और किसी वस्तु को भीतर और बाहर से पूर्णतया जान लेने का एकमात्र उपाय यह है कि हम उसके साथ तादाम्य स्थापित कर लें। जब हम उसके साथ मिलकर एकाकार हो जायेंगे तभी हम उसके वास्तविक और सच्चे स्वरूप को जान समझ सकेंगे।

योग शब्द का यही अर्थ है अर्थात् तादात्म्य स्थापित करना। ईश्वर से तादात्म्य का नाम है साक्षात्कार। क्या हम इस बात की कल्पना कर सकते हैं कि कोई ऐसा प्राणी है जो स्थूल शरीर की सीमा में बंधा न हो और उसके बन्धन में न हो तो वह सभी वस्तुओं को देख सकता है। तो क्या ऐसा नहीं हो सकता हमारी चेतना एक दिन किसी उपाय से इस शारीरिक सीमा के बन्धन को तोड़ कर सीमा के पार हो जाये। असीमता की स्वतंत्रता का अनुभव करे और उन सम्पूर्ण वस्तुओं को पूर्णरूप से जान सके। जिनको इन्द्रियों के व्यवधान के कारण आज थोड़ा जान सकते हैं।

योग विज्ञान का कहना है कि यह सम्भव है और सम्भव ही नहीं बल्कि अनुभव का एकमात्र सही उपाय भी है। जिसे योग कहते हैं उसका एक सोपान अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष भी है। इस अभ्यास का उद्देश्य यह है कि हम सभी वस्तुओं के साथ तादात्म्य स्थापित करके उनका प्रत्यक्ष अनुभव कर लें। उसकी साधना एक प्रकार की शारीरिक और मानसिक साधना है। जिसके द्वारा आत्मा सूक्ष्म शरीर के माध्यम से स्थूल शरीर के बाहर निकल जाती है। परन्तु स्थूल शरीर को नष्ट नहीं करती और इन्द्रियों के बाहर की बातों को जानकर अपने ज्ञान के विशाल भण्डार के लिये फिर अपने स्थूल शरीर में वापस लौट आती है।

कहने की आवश्यकता नहीं प्रारम्भ से ही भारतीय संस्कृति ज्ञान के

इस साधन से ओतप्रोत रही है और हिन्दुओं के परम्परागत ज्ञान और प्राचीन हिन्दु विज्ञान को समझने के पहले इस बात को समझ लेना चाहिए। इसी प्रकार अथवा इसी मार्ग से वेदों और वैदिक मंत्रों की उत्पत्ति हुई है और इसी प्रकार और इसी मार्ग से तंत्र और तांत्रिक मंत्रों एवं साधनाओं का भी जन्म हुआ है। इसीलिए उनकी कुंजी योग में ही मिल सकती है। अतः योग की सनातन धर्म का संरक्षक है और समस्त ज्ञान का भी संरक्षक है।

प्रायः लोगों की यह धारणा है कि योग शास्त्र और दर्शन शास्त्र में आपसी भिन्नता है। हम इसी भिन्नता को स्वीकार करते हैं। लेकिन उतना नहीं जितना लोग समझते हैं।

योग आन्तरिक और बाह्य क्रियाओं का सूत्र है जबकि दर्शन तार्किक द्वन्द और शास्त्रार्थ की सामाग्री है। योग का कार्य है सत्य का साक्षात्कार कराना और दर्शन का उद्देश्य है इस विश्व को समझने में सहयोग देना। दर्शन वास्तव में दर्शन है तो योग की अनुभूतियों को भी उसके द्वारा समझा जाना चाहिये। यदि ऐसा सम्भव नहीं है तो सचमुच उसका आधार केवल मनुष्य के मस्तिष्क की कल्पना मात्र ही होगी और वह सचमुच केवल बौद्धिक स्तर में उतरने वालों के मनोरंजन की सामाग्री मात्र बनकर रह जायेगा। ऐसे ही दर्शन को लक्ष्य करके वेदान्त के एक सूत्र में कहा गया है- तर्क अप्रतिष्ठित है। दर्शन यदि सचमुच विश्व को समझाने का दावा करता है तो सत्य साक्षात्कार की उन अनुभूतियों से काम लेना चाहिए जो योग के द्वारा सामने प्रत्यक्ष होती है और योग को दर्शन की सार्वभौम सामाग्री का अंग बनना ही चाहिए।

उपर्युक्त समीक्षा से योग का जो लक्ष्य और सिद्धान्त सामने आता है। उससे यह स्पष्ट-हो जाता है कि अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष ज्ञान ही वास्तविक ज्ञान है और उसी ज्ञान को दिव्य ज्ञान अथवा परम ज्ञान कहा जाता है। जैसाकि बतलाया गया है कि वह ज्ञान हमें इन्द्रियों के स्तर पर नहीं बल्कि चेतना के सूक्ष्मतम् स्तर पर उपलब्ध होता है और उसी ज्ञान का आश्रय लेकर हमारा तादात्म्य ईश्वर से स्थापित होता है।

वास्तव में यही हिन्दु मानव का एकमात्र जीवन दर्शन है। हिन्दु मानव ने जहां एक ओर अपने इस जीवन दर्शन को विकसित किया वहीं दूसरी

ओर वह अपने सामाजिक पक्ष के साथ हिन्दुत्व के रूप में आविर्भूत हुआ। केवल मनुष्य ही विचारशील प्राणी है। केवल मनुष्य ही आदर्श नियमों का निर्माण करता है और केवल मानव ही वर्तमान के आधार पर भूत तथा भविष्य को एक श्रृंखला में जोड़ता है। आदर्श नियमों द्वारा सामूहिक जीवन का नियमन मानव की ही विशेषता है। हिन्दु मानव के जीवन दर्शन का आधार यही विशेषता है। कहने की आवश्यकता नहीं वेदों के प्रणेताओं, उपनिषद के मनीषियों, धर्मशास्त्र के रचयिताओं, स्मृतिकारों और समय-समय पर आविर्भूत होने वाले समाज सुधारकों ने इसी के आधार पर जिस वैयक्तिक तथा सामाजिक जीवन दर्शन को प्रतिपादित किया है वही हिन्दुत्व है। हिन्दुत्व वैयक्तिक तथा सामाजिक जीवन के प्रति एक दृष्टिकोण विशेष है।

हिन्दु जीवन दर्शन के बाद आता है हिन्दु जीवन यापन। हिन्दु ने अपने जीवन यापन का आधार अपने जीवन दर्शन को ही बनाया है। हिन्दु जीवन यापन में मानवी तथा मानवीय जीवन की आवश्यकताओं, अभिरूचियों, उद्देश्यों तथा आकांक्षाओं के समन्वय का प्रयास किया गया है। इस समन्वय के दो आधार हैं एक इहलौकिक जीवन की आवश्यकतायें और दूसरा इस जीवन का तथा जगत से परे जीवन की आवश्यकतायें और उद्देश्य।

हिन्दु मानव के लिए यह संसार एक रंगमंच है और मानव जीवन का साधन मात्र। वह साधन जिससे जीवन मुक्ति अथवा मोक्ष की प्राप्ति होती है। शरीर आवश्यताओं की पूर्ति जैविक गुण भी है और आवश्यकता भी। जिसे हम मानवीय कहते हैं वह नितान्त शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति से आगे उठा हुआ एक कदम है। क्योंकि शरीर नश्वर है। अमर है तो केवल आत्मा और आत्मा की उन्नति ज्ञान योग से होती है। वह ज्ञान जिसे दिव्य ज्ञान अथवा परम ज्ञान कहा गया है। अतः ज्ञान योग द्वारा आत्मा को निरन्तर प्रबुद्ध करते हुए जीवन स्वातंत्र्य की प्राप्ति का प्रयास ही मानवीयता है। मानव जीवन केवल शरीरी आवश्यकताओं की पूर्ति तक ही सीमित नहीं है। मानवीयता निहित है योगशास्त्र प्रणीत धर्म के अनुसार जीवन व्यतीत करने में। मानवीयता की मांग है समत्व, तादात्म्य, मुक्ति

अथवा मोक्ष। इन सबकी प्राप्ति योगशास्त्र प्रणीत धर्म से होती है। योग शास्त्र का कहना है मोक्ष आदि जीवन और जगत से विमुख होने पर नहीं मिलता है। वह मिलता है जीवन को उसकी स्वाभाविक अभिरूचियों के साथ अपनाने में।

धर्म के साथ-साथ जीवन अर्थ और काम से भी बंधा हुआ है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का समन्वय और साधना कर्म से होती है। कर्म प्रधान है। अतः ज्ञान योग के बाद कर्म योग का महत्व है। योग शास्त्र प्रणीत कर्म के माध्यम से चारो की साधना का नाम पुरुषार्थ है।

पुरुषार्थ आवश्यक है। क्योंकि मानव जीवन का उद्देश्य केवल पुरुष ही बने रहना नहीं है। मानव जीवन का उद्देश्य है मानवी स्तर से मानवीयता की ओर अग्रसर होना। जिसका तात्पर्य है पुरुष से पुरुषोत्तम और नर से नरोत्तम होना।

इस साधना में व्यक्ति और समाज दोनों आवश्यक है। क्योंकि पुरुष से पुरुषोत्तम बनने की प्रक्रिया में व्यक्ति और समाज दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं।

हिन्दुत्व का यह आधार भूत विचार सम्पूर्ण हिन्दू वाड.मय में व्याप्त है। वेदों, संहिताओं, ब्राम्हणों, आरण्यकों, उपनिषदों, सूत्रों, स्मृतियों, महाकाव्यों, नीतिशास्त्रों तथा पुराणों तथा नाटक, काव्य एवं जनसाहित्य में इसी आधारभूत विचार का समयानुसार विकास हुआ है। वास्तव में हिन्दू जीवन दर्शन योग से ओत-प्रोत है और पुरुषार्थ पूर्णतया योगाश्रित है। कहने की आवश्यकता नहीं योग की धारा हर काल में, हर अवस्था में और हर सम्प्रदाय में तथा हर सम्प्रदाय की हर साधना में किसी न किसी रूप में प्रवाहित हो रही है। इतना ही नहीं हिन्दू धर्म का आधार भी योग ही रहा है। योग के सिद्धान्तों पर ही हिन्दु धर्म का प्रणयन और सामाजिक संगठन भी हुआ है।

हम जब सूक्ष्म दृष्टि से विचार करते हैं तो यह स्पष्ट हो जाता है कि हमारे देश में साधना की तीन धारायें एक साथ प्रवाहित हो रही है और आज भी अबाध गति से प्रवाहित है। पहली धारा है विशुद्ध योग की। दूसरी धारा है तंत्रपरक योग की। तीसरी धारा है विशुद्ध तंत्र की।

पहली धारा यम नियम से प्रारम्भ होकर समाधि में समाप्त हो जाती है। यदि इस धारा को पांतञ्जल योग के अन्तर्गत कहें तो साधुतर होगा।

दूसरी धारा के अन्तर्गत ध्यान योग, लय योग, बिन्दु योग, नाद योग और कुण्डलिनी योग है। यह धारा ध्यान योग से प्रारम्भ होकर कुण्डलिनी योग की चरम सीमा पर पहुंचकर समाप्त हो जाती है। साधना की यही ऐसी धारा है जिसमें योग और तंत्र एक-दूसरे पर आधारित हैं और दोनों मिलकर साधना के उद्देश्य को साकार करते हैं। शंकराचार्य ने इसीलिए सांख्य को तंत्र के नाम से प्रवाहित किया है। महाभारत में भी न्याय, धर्म शास्त्र, योग शास्त्र आदि के लिए जिस तंत्र शब्द का प्रयोग किया गया है वह इसी धारा की ओर संकेत करता है। साधना की इस धारा का एकमात्र उद्देश्य है योग-तंत्र का आश्रय लेकर आन्तरिक साधना और उस साधना द्वारा आन्तरिक शक्ति को जागृत कर उसकी सहायता से समत्व, अद्वैत अथवा सामरस्य की भूमि को प्राप्त करना। जिसे हम परम मुक्ति सायुज्य लाभ निर्वाण अथवा परमगति कह सकते हैं और कह सकते हैं मोक्ष।

तीसरी धारा का विषय है देवता का स्वरूप, गुण, कर्म आदि का चिन्तन, ततसम्बन्धी मंत्रों का उद्धार, मंत्रों का यंत्रों के रूप में संयोजन, देवता के स्वरूप का निर्माण, देवता का ध्यान, पंचांग उपासना, देवतार्चन, सर्वसाधन, पुरश्चरण षट्कर्म साधन, ध्यान योग, भाव और आचार तथा पंचमकार।

साधना की इसी धारा को आगम के नाम से सम्बन्धित किया गया। आगम के विषयों को साधना की दूसरी धारा में आध्यात्मिक और यौगिक रूप में ग्रहण किया गया है। साधना की तीसरी धारा के अन्तर्गत तंत्र के कई सम्प्रदाय हैं और तांत्रिक साधना के कई मार्ग भी हैं मगर दूसरी धारा में प्रमुख दो ही सम्प्रदाय हैं कौल सम्प्रदाय और नाथ सम्प्रदाय। इन दोनों सम्प्रदायों की साधना का मुख्य विषय एकमात्र कुण्डलिनी है। नाथ सम्प्रदाय में तो साधना के और मुख्य विषय हैं। किन्तु कौल सम्प्रदाय में केवल कुण्डलिनी साधना ही एकमात्र है।

कौल शब्द कुल शब्द से बना है। इसलिए कुण्डलिनी साधक को

कौल कहा जाता है। कुल का अर्थ है कुण्डलिनी शक्ति तथा अकुल का अर्थ है शिव। कुल की साधना ही कुण्डलिनी साधना है। कुल और अकुल का योग ही कुण्डलिनी योग है।

मांस, मदिरा, मुद्रा, मीन और मैथुन ये पंचमकार है। कुण्डलिनी साधना का आधार पंचमकार है। इनमें से तंत्र के किसी सम्प्रदाय में एक मकार है तो किसी में दो तथा किसी में तीन या चार। मगर कुण्डलिनी साधना में पांचों मकारों को ग्रहण किया गया है। पंचमकारों के तीन रूप हैं भौतिक रूप, यौगिक रूप और आध्यात्मिक रूप। कुण्ड़लिनी साधना का आधार क्रमशः ये तीनों रूप हैं। पहले रूप से दूसरे रूप का और दूसरे रूप से तीसरे रूप का पुष्टिकरण होता है। कहने की आवश्यकता नहीं पंचमकार का रहस्य अत्यन्त गंभीर और गूढ़ है। इसे ठीक-ठीक न समझने के कारण ही लोगों में इसके प्रति नाना प्रकार की भ्रान्ति फैली हुई है। तांत्रिक साधना के नाम पर जो लोग केवल उसके भौतिक रूप का ही प्रयोग करते हैं। ऐसे ही तांत्रिकों द्वारा समाज में भ्रष्टाचार और व्यभिचार फैलता है। वर्तमान अवस्था में प्रायः ऐसे ही तांत्रिकों द्वारा तंत्र-मंत्र के नाम पर आडम्बर और पाखण्ड हो रहा है। तंत्र-मंत्र के प्रति लोगों में भ्रान्त धारणायें फैल रही हैं।

कुण्डलिनी साधना मार्ग पर साधक यह विचार करता है कि वह शरीर नहीं बल्कि आत्मा है। आत्मा के लिए यह संसार बहुत बड़ा बंधन है। यह इस सांसारिक बंधन में पड़कर अपने निज स्वरूप को भूल गई है। बन्धन से मुक्त होना आवश्यक है। तभी वह अपने आपको पहचान सकेगी। और अपने निज रूप में स्थित हो सकेगी। इसी को कहते हैं मुक्ति। निजस्वरूप में स्थित होते ही उसको परमात्म साक्षात्कार होता है। जिसका परिणाम है आत्मा का परमात्मा में विलीनीकरण। यह अद्वैत स्थिति है।

इसी स्थिति को मोक्ष के नाम से सम्बोधित किया गया है। मुक्ति और मोक्ष में यही बुनियादी भेद है। जब तक मुक्ति नहीं होती तब तक बार-बार आत्मा शरीर धारण करती रहती है और जन्म-मरण के चक्कर में भी पड़ी रहती है। आत्मा साधक है। साध्य है मुक्ति अथवा मोक्ष।

आत्मा और शरीर दोनों के बीच में है साधन और वह साधन है शरीर, प्राण और मन। यहां इस सम्बन्ध में यह स्पष्ट कर देना आवश्यक

है कि शरीर एक नहीं छः है। प्राण भी एक नहीं पांच है। उसी प्रकार मन के भी तीन रूप हैं। छः शरीर, पांच प्राण और मन के तीन रूप कुण्डलिनी साधना के साधन हैं।

स्थूल शरीर, भाव शरीर, सूक्ष्म शरीर, मनः शरीर, आत्म शरीर और ब्रम्ह शरीर। ये छः शरीर हैं। प्राण, अपान, व्यान, उदान, और धनञ्जय ये पांच प्राण हैं। व्यक्त, व्यक्ताव्यक्त और अव्यक्त ये मन के तीन रूप हैं। मन के इन तीनों रूपों का केन्द्र क्रमशः मस्तिष्क, अधो मस्तिष्क और अधो लघु मस्तिष्क है। छः शरीरों के भी अपने-अपने केन्द्र हैं जिन्हे चक्र के नाम से सम्बोधित किया जाता है। अतः चक्रों की भी संख्या शरीर के अनुसार छः है। जिनके नाम हैं मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहद, विशुद्ध और आज्ञा चक्र। ये चक्र भी साधन विशेष हैं।

इन साधनों द्वारा साधक अन्तिम रूप से जिस परम अवस्था को उपलब्ध होता है वह है निर्वाण। इस अवस्था का भी अपना एक विशेष शरीर है। जिसको निर्वाण शरीर कहते हैं। उस निर्वाण शरीर का भी अपना एक केन्द्र है जिसे सहस्त्रार चक्र कहते हैं।

निर्वाण शरीर की उपलब्धि और सहस्त्रार चक्र में स्थिति आत्मा की परमावस्था है। इसी अवस्था विशेष में आत्मा को परमात्म साक्षात्कार होता है और तदन्तर उपलब्ध होता है उसे अद्वैत भाव या जिसे हम मोक्ष कह सकते हैं।

निर्वाण शरीर और सहस्त्रार चक्र को लेकर शरीर की संख्या सात और चक्रों की भी संख्या सात हो जाती है। इन सात शरीरों और सात चक्रों का सम्बन्ध सात लोकों से है। जिन तत्वों से हमारे सातों शरीर की रचना हुई है। उनसे सम्बन्धित लोकों का निर्माण भी उन्ही तत्वों से हुआ है।

पहले हम शरीरों के सम्बन्ध में विचार करेंगे। सातों शरीर एक-दूसरे के पीछे हैं। सबसे आगे स्थूल शरीर है, उसके पीछे आकाशीय शरीर, उसके पीछे सूक्ष्म शरीर, उसके पीछे मनोमय शरीर, उसके पीछे आत्म शरीर, उसके पीछे ब्रम्ह शरीर और उसके पीछे निर्वाण शरीर। प्रथम तीन शरीर स्थूल शरीर, आकाशीय शरीर जिसे भाव शरीर भी कहते हैं और सूक्ष्म शरीर प्रमुख हैं। प्रमुख इस अर्थ में है कि आत्मा की काल यात्रा इन्ही

तीनों शरीरों के द्वारा होती है। आत्मा शाश्वत है और शरीर नाशवान है। आत्मा बिना शरीर के रह नहीं सकती। एक छूटता है तो दूसरे का आश्रय ले लेती है। इसी प्रकार दूसरा भी छूटता है तो तीसरे का आश्रय ले लेती है। जिस समय जो शरीर आश्रय बना लेता है उस समय वही शरीर प्रधान रहता है और शेष शरीर आत्मा में बीज रूप में विद्यमान रहते हैं। प्रत्येक शरीर का निर्माण काल सात वर्ष है यानि प्रत्येक शरीर के निर्माण और उसकी परिपक्वता में सात वर्ष का समय लगता है।

जीवन के प्रथम सात वर्षों में स्थूल शरीर का निर्माण होता है। मनुष्य के जीवन के यह सात वर्ष अनुकरण वर्ष हैं। इसमें बुद्धि, भावना, कामना आदि कुछ भी नहीं रहती। केवल मनुष्य अनुकरण करता है दूसरे का। यदि उसका दूसरा शरीर निर्मित और विकसित नहीं हुआ तो उसमें और पशु में कोई अन्तर नहीं है। पूरा जीवन वह भौतिक शरीर को ही महत्व देता रहेगा और अनुकरण ही करता रहेगा।

दूसरे सात वर्षों में भाव शरीर का विकास होता है। इस शरीर का सम्बन्ध भाव जगत से समझना चाहिए। भाव शरीर का नियम है यौन परिपक्वता। यदि मनुष्य इसी शरीर में रह जाता है और तीसरे शरीर का विकास नहीं हो पाया तो वह जीवन भर कामवासना को ही महत्व देता रहेगा। उसके सभी कार्यकलाप वासनामय ही होंगे।

तीसरे सात वर्षों में सूक्ष्म शरीर का विकास होता है। भाव शरीर का विषय है तर्क, विचार और बुद्धि।

पहला सात वर्ष भौतिक शरीर की प्रौढ़ता और परिपक्वता का समय है। दूसरा सात वर्ष यौन परिपक्वता का समय है। इन दोनों शरीरों तक प्रकृति की सहायता मनुष्य को मिलती है। उसी के सहयोग से दोनों शरीर परिपक्व और प्रौढ़ होते हैं। उसके बाद प्रकृति किसी भी प्रकार की सहायता नहीं करती। मगर इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि मनुष्य, मनुष्य नहीं बन पाता। तीसरे शरीर का विकास आवश्यक है। लेकिन मनुष्य तीसरे शरीर के विकास की सीमा पर ही रूक गया और शेष शरीर अविकसित ही रह गया तो जीवन भर विचार तर्क और बुद्धि के ही आश्रित रह जायेगा। विचार, तर्क और बुद्धि ये तीनों सभ्यता और संस्कृति के परिणाम

हैं। सभ्यता और संस्कृति का सम्बन्ध विचार, तर्क और बुद्धि से है और इन तीनों का सम्बन्ध सूक्ष्म शरीर से है। अतः तीनों शरीरों के विकास, निर्माण और उनकी परिपक्वता में २१ वर्षों का समय व्यतीत हो जाता है। साधारण मनुष्य इसी २१ वर्ष की सीमा पर आकर ठहर जाते हैं।

हमारे जगंत में दो प्रकार की सत्ता है। पहली है वस्तुपरक सत्ता और दूसरी है आत्मपरक सत्ता। भौतिक शरीर, भाव शरीर, सूक्ष्म शरीर और उनसे सम्बन्धित जगत भौतिक जगत, भाव जगत, सूक्ष्म जगत वस्तुपरक सत्ता के अन्तर्गत हैं। उसके पश्चात आत्मपरक सत्ता प्रारम्भ हो जाती है। मनोमय शरीर और मनोमय जगत से लेकर निर्वाण शरीर और उसके अन्तर्गत आत्मपरक सत्ता है। मनोमय शरीर के विषय हैं सम्मोहन, टेलीपैथी और अतीन्द्रिय ज्ञान। यदि हमने अपने इस चौथे मनोमय शरीर को विकसित और परिपक्व कर लिया तो हम अतीन्द्रिय ज्ञान को उपलब्ध कर सकते हैं। बिना किसी बाधा के हम किसी भी सुदूर स्थित व्यक्ति से सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं। बिना बतलाये और बिना बोले हम किसी भी व्यक्ति के विचारों और भावों को जान समझ सकते हैं। अपने विचारों और भावों को दूसरे में प्रवेश करा सकते हैं। शरीर से निकल कर संचरण-विचरण भी कर सकते हैं। अपने को अपने शरीर से अलग भी कर सकते हैं। किसी के शरीर में मृत हो या जीवित प्रवेश कर सकते हैं। तात्पर्य यह कि जितनी भी योगतांत्रिक सिद्धियां है और उनकी साधनायें हैं वे सब मनोमय शरीर के विषय हैं। जिन्हे हम साधनाओं द्वारा साकार कर सकते हैं। कुण्डलिनी साधना भी इसी मनोमय शरीर का विषय है। मनोमय शरीर को विकसित और परिपक्व करने का समय है २१ से २८ वर्ष। यदि हम पिछले तीनों शरीरों को ठीक से और उचित ढंग से विकसित और परिपक्व कर पायें हों।

कुण्डलिनी का सम्बन्ध चौथे शरीर से है। उसकी तीन मुख्य अवस्थाएं हैं। जागरण, उत्थान और विलीनीकरण। पहली अवस्था को प्राप्त होते ही हमारे स्वभाव में, हमारे विचार में और हमारे व्यक्तित्व में आमूल चूल परिवर्तन हो जायेगा। क्रोध, घृणा, द्वेष, ईर्ष्या आदि की भी सारी वृत्तियां अपने आप समाप्त हो जायेंगी। उनके स्थान पर करूणा, दया, स्नेह, प्रेम, अनुकम्पा, कृपा आदि के भाव स्वयं उत्पन्न हो जायेंगे।

त्रिकाल का ज्ञान भी अपने आप होने लगेगा। आत्मपरक सत्ता में प्रवेश का परिणाम है मानवीय सीमा को पार कर देवत्व की सीमा में प्रवेश करना। फिर हम मनुष्य नहीं रह पायेंगे। देवकोटि में आ जायेंगे। कोई भी कार्य हमारे लिये असम्भव नहीं रह जायेगा। इस अवस्था की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि आत्मा का जो जीवभाव है वह हमेशा के लिये समाप्त हो जाता है। आत्मा शुद्ध चैतन्य और निर्मल हो जाती है। वासना, कामना और भावना नहीं रह जाती है किसी भी प्रकार की।

पांचवां शरीर आत्म शरीर है। २८ वर्ष से ३५ वर्ष तक की आयु का समय इस शरीर के विकास और परिपक्वता की अवस्था है। कुण्डलिनी के जागरण होने पर ही इस आत्म शरीर का विकास होता है और दूसरे उत्थान की अवस्था की उपलब्धि होती है। इस अवस्था में क्रमशः छः चक्रों का भेदन होता है। प्रत्येक चक्र का सीधा सम्बन्ध एक-एक लोक से है। आत्मा चक्र से तादात्म्य स्थापित कर उससे सम्बन्धित लोक में प्रवेश कर जाती है और वाहक के रूप में रहता है उस लोक से सम्बन्ध रखने वाला शरीर।

आत्मा, चक्र और लोक से सम्बन्ध की स्थिति को समाधि कहते हैं। इस प्रकार छः प्रकार की समाधि भी है। समाधि का परिणाम है कर्मनाश।

जैसे-जैसे हमारी आत्मा चक्रों का भेदन करती है, लोकों से सम्पर्क स्थापित करती है और समाधि को उपलब्ध होती है वैसे ही वैसे हमारे सभी प्रकार के कर्मों का भी प्रणाश होता जाता है।

छठा शरीर ब्रम्ह शरीर है। इसे कास्मिक बॉडी कहते हैं। ३५ से ४२ वर्ष की आयु तक इस शरीर के विकास की अवस्था है। महत्वपूर्ण यह है कि उत्थान की अवस्था में आत्मा जिस शरीर और जिस लोक से एक बार सम्पर्क स्थापित कर उससे आगे बढ़ जाती है उसके पश्चात उस शरीर और उस लोक से वह सदैव के लिए मुक्त हो जाती है। फिर न वह शरीर धारण करती है और न तो वह फिर उस लोक में प्रवेश करती है। इस दृष्टि से यदि देखा जाये तो छः प्रकार की मुक्ति भी है।

छठे ब्रम्ह शरीर में प्रवेश करने के पूर्व आत्मा का सम्बन्ध पिछले पांचों शरीरों और पांचों लोकों से हमेशा-हमेशा के लिए टूट जाता है। दोबारा लौटकर उनको ग्रहण कर सकने में असमर्थ होती है। इस

असमर्थता का कारण है शरीर संस्कार और लोक संस्कार का पूर्ण अभाव।

पांचवां शरीर आत्मा का अपना निज शरीर है। उसको आध्यात्म शरीर भी कहा जाता है। आत्मा के शरीर का लोक आत्म लोक है। अपने आत्म लोक में आत्मा अपने निज शरीर को त्याग कर विशुद्ध एवं परम अवस्था प्राप्त करती है और उसी अवस्था को लेकर छठे ब्रम्ह लोक में प्रवेश करती है। ब्रम्ह लोक का भी अपना शरीर है। जिसे ब्रम्ह शरीर कहते हैं। आत्मा इस शरीर को ग्रहण कर ब्रम्ह लोक में प्रवेश करती है।

सातवां शरीर निर्वाण शरीर है। ४२ वर्ष से ४९ वर्ष की अवस्था तक इस शरीर का विकास होता है। निर्वाण शरीर कोई शरीर नहीं है। वह देह शून्यता की अवस्था है। वह परम अवस्था है। वहां शून्य के अलावा और कुछ भी नहीं है। इस सम्बन्ध में जब हमने अपने गुरुदेव से प्रश्न किया था तो उन्होने कहा था जैसे दीपक बुझ जाता है फिर क्या होता है खो जाती है ज्योति हमेशा-हमेशा के लिए। फिर कोई नहीं पूछता कि कहां गई ज्योति। फिर कोई नहीं पूछता कि अब कहां होगी वह। बस खो गयी।

निर्वाण का तात्पर्य है दीपक का बुझ जाना। आत्मा के अस्तित्व का हमेशा के लिए प्रणाश। यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि पांचवें शरीर तक मोक्ष की मात्र प्रतीति होती है। पिछले चार शरीरों के बन्धन से आत्मा मुक्त हो जाती है। इसे परममुक्त अवस्था कहते हैं। जो मोक्ष है वह पांचवें शरीर की अवस्था का अनुभव विशेष है। अगर हम चौथे शरीर पर ठहर जाते हैं तो हमें स्वर्ग या नरक का अनुभव होगा। वह चौथे शरीर की उपलब्धि है। अगर पहले, दूसरे और तीसरे शरीर पर हम ठहर जाते हैं, तो जीवन ही सब कुछ है। जन्म-मृत्यु के बीच का जीवन। इसके पश्चात कोई जीवन नहीं है। अगर चौथे शरीर में हम चले जाते हैं तो स्वर्ग या नरक का जीवन है। दुख-सुख की अनन्त सम्भावनाएं हैं वहां। अगर पांचवें शरीर को प्राप्त कर लेते हैं तो हमारे लिए वह मोक्ष का द्वार सिद्ध होगा। यदि छठे शरीर को प्राप्त कर लेते हैं तो हमारे लिए छठे शरीर के पार ब्रम्ह की सम्भावना है। वहां न मुक्त है न अमुक्त। वहां जो भी है उसके साथ हमारी आत्मा एकाकार हो जाती है। इसी अवस्था को तादात्म्य सामरस्य अथवा महानिर्वाण कहते हैं। वेदान्तियों का यही मोक्ष है। "अहम

ब्रम्हास्मि'' की घोषणा इसी छठे शरीर की सम्भावना है। लेकिन अभी एक और सोपान है जो अन्तिम है। जहां न अहम है, न ब्रम्ह है और न जहां मैं है, न तू है। जहां मात्र केवल परमशून्य है। परम शून्य के सिवाय और कुछ भी नहीं है। कुण्डलिनी साधना में शक्तिपात का अपना प्रमुख स्थान है। शक्तिपात एक विशेष प्रकार की दीक्षा है। इस दीक्षा को उपलब्ध होने पर ही कुण्डलिनी का जागरण सम्भव है। किन्तु यह दीक्षा चौथे शरीर के द्वारा प्राप्त होती है। चौथे शरीर में दीक्षा प्राप्त होने पर ही पांचवें शरीर में आत्मोपलब्धि अथवा आत्मज्ञान होता है।

चौथे शरीर में दीक्षा का विधान क्यों है इसका महत्वपूर्ण कारण यह है कि चार शरीर तक पुल्लिंग और स्त्रीलिंग का भेद रहता है। भौतिक शरीर, भाव शरीर, सूक्ष्म शरीर और मनोमय शरीर ये चारो शरीर एक ही लिंग के नहीं हैं। यदि पहला ऋणात्मक होगा तो दूसरा धनात्मक होगा। फिर तीसरा ऋणात्मक होगा तो चौथा धनात्मक होगा।

पुरुष का पहला शरीर धनात्मक होता है और स्त्री का पहला शरीर होता है ऋणात्मक। दोनों के भौतिक शरीर से दो प्रकार की विद्युत चुम्बकीय ऊर्जा विकीर्ण हुआ करती है। पहले से धनात्मक विद्युत चुम्बकीय ऊर्जा का विकीरण होता है और दूसरे से ऋणात्मक विद्युत चुम्बकीय ऊर्जा का विकीरण होता है। विद्युत की भाषा में हम इन दोनों को पॉजिटिव और निगेटिव कह सकते हैं। स्वभावतः पॉजिटिव, निगेटिव की ओर एवं निगेटिव, पॉजिटिव की ओर आकर्षित होता है। इस आकर्षण के फलस्वरूप जो वृत्त बनता है और उस वृत्त से शक्ति उत्पन्न होती है उसको विद्युत शक्ति कहते हैं। स्त्री-पुरुष के शरीर से जो विद्युत चुम्बकीय ऊर्जा निकलती है उसे हम काय ऊर्जा कहते हैं। इसी काय ऊर्जा के कारण ही स्त्री-पुरुष एक-दूसरे के प्रति आकर्षित होते हैं। उस आकर्षण के फलस्वरूप जो शारीरिक वृत्त बनाता है और उस वृत्त से जो शक्ति बनती है उसको काम शक्ति कहते हैं। विद्युत शक्ति हो अथवा काम शक्ति दोनों है मिथुनजन्य।

जिस प्रकार भौतिक शरीर के संयोग से काम शक्ति उत्पन्न होती है उसी प्रकार स्त्री-पुरुष के अन्य शरीरों के योगायोग से भी काम शक्ति

उत्पन्न होती है। इस दृष्टि से विचार करने पर काम शक्ति के भी चार प्रकार हैं। पहली है भौतिक काम शक्ति। जो स्त्री-पुरुष के भौतिक शरीर के योग से उत्पन्न होती है। दूसरी है भावात्मक काम शक्ति। जो स्त्री-पुरुष के भाव शरीर के योग से उत्पन्न होती है। तीसरी है प्राणात्मक काम शक्ति। जो स्त्री-पुरुष के प्राणों के योग से उत्पन्न होती है। चौथी है मानसिक काम शक्ति। जो स्त्री-पुरुष के मन के योग से उत्पन्न होती है।

कुण्डलिनी साधना योग-तंत्रपरक साधना का गम्भीर मार्ग है। पुरुष का पहला शरीर पुल्लिंग, दूसरा शरीर स्त्रीलिंग, तीसरा फिर पुल्लिंग और चौथा फिर स्त्रीलिंग होता है। इसी प्रकार स्त्री का पहला शरीर स्त्रीलिंग, दूसरा शरीर पुल्लिंग, तीसरा शरीर फिर स्त्रीलिंग और चौथा शरीर पुल्लिंग होता है। इन चार शरीरों तक स्त्री-पुरुष का भेद है। योग-तंत्र की विभिन्न विशेष क्रियाओं द्वारा साधक और साधिका चारो प्रकार के मिथुनजन्य भाव के आधार पर चारो प्रकार की काम शक्ति से क्रम से चार चक्रों का भेदन करते हैं। पांचवां शरीर मिथुनजन्य भाव अथव यौन भेद से परे और काम शक्ति रहित है। इसलिए आत्मोपलब्धि होने के पश्चात फिर न कोई स्त्री है और न कोई पुरुष है साधक-साधिका के लिए।

जैसाकि बतलाया जा चुका है सातों शरीर का सम्बन्ध सात चक्रों से है। वे चक्र अपने शरीर के बीज केन्द्र हैं। उन चक्रों अथवा केन्द्रों की दो सम्भावनायें हैं- पहली है प्रकृति प्रदत्त सम्भावनायें और दूसरी है साधना प्रदत्त सम्भावनायें। पहली सम्भावानायें हमें प्रकृति से प्राप्त होती हैं और दूसरी सम्भावनायें हमें प्राप्त होती हैं कुण्डलिनी साधना से। मूलाधार चक्र की प्रथम सम्भावना है काम वासना और दूसरी सम्भावना है ब्रम्हचर्य। ये दोनों सम्भावनायें भौतिक शरीर से सम्बन्धित हैं। स्वाधिष्ठान चक्र की प्रथम सम्भावनायें हैं भय, घृणा, क्रोध, हिंसा और दूसरी सम्भावनायें हैं अभय, प्रेम, क्षमा और अहिंसा। ये दोनों सम्भावनायें भाव शरीर से सम्बन्धित है।

मणिपूर चक्र की प्रथम सम्भावनायें है सन्देह और विचार और दूसरी सम्भावनायें है श्रद्धा और विवेक। ये दोनों सम्भावनायें सूक्ष्म शरीर से सम्बन्ध रखती हैं। अनाहद चक्र की प्रथम सम्भावना है कल्पना और स्वप्न और दूसरी सम्भावना है संकल्प और अतीन्द्रिय ज्ञान दर्शन। इन दोनों

सम्भावनाओं का सम्बन्ध मनोमय शरीर से है। इन चक्रों के भेदन से प्रकृति प्रदत्त सम्भावनायें हमेशा के लिए समाप्त हो जाती हैं और उनके स्थान पर साधना प्रदत्त सम्भावनायें उत्पन्न हो जाती हैं।

विशुद्ध चक्र की प्रथम सम्भावना है द्वैत भाव और दूसरी सम्भावना है आत्म मूर्च्छा की अवस्था। जिसे आत्म जागरण भी कह सकते हैं। द्वैत का अभाव होने पर साधना प्रदत्त सम्भावना आत्म मूर्च्छा की निवृत्ति होकर आत्म जागरण होता है। इन दोनों सम्भावनाओं का सम्बन्ध आत्म शरीर से है। इस चक्र का भेदन होने के पश्चात आध्यात्मिक रहस्य प्रारम्भ हो जाता है।

आज्ञा चक्र और सहस्त्रार चक्र की एक ही सम्भावनायें हैं जो साधना प्रदत्त हैं। पहले की है 'स्व' को खोजना और सर्व का हो जाना। दूसरे की है अनास्तित्व में प्रवेश कर जाना। इन दोनों चक्रों का सम्बन्ध ब्रम्ह शरीर और निर्वाण शरीर से है। छठे शरीर के भेदन से हमें दिव्य दृष्टि प्राप्त होती है और सातवें चक्र के भेदन से उपलब्ध होता है महा अथवा परम शून्य अवस्था जिसे निर्वाण अथवा परम निर्वाण कहा जाता है।

कहने की आवश्यकता नहीं कुण्डलिनी साधना का एकमात्र लक्ष्य है चक्रों का क्रमिक भेदन करते हुए प्रकृति प्रदत्त सम्भावनाओं से मुक्त होना। साधना प्रदत्त सम्भावनाओं को उपलब्ध करना तथा साथ ही साथ शरीर और जगत के बन्धनों से मुक्त होकर परम निर्वाण अथवा परम शून्य अवस्था को उपलब्ध कर लेना। परमात्मा व्यक्ति नहीं बल्कि शक्ति है और उस शक्ति का नाम है कुण्डलिनी शक्ति। इसलिए परमात्मा अथवा शक्ति के निमित्त न किसी प्रकार की प्रार्थना का अर्थ है न तो किसी प्रकार की पूजा का ही अर्थ है। शक्ति से किसी प्रकार की अपेक्षा करना व्यर्थ है। अपेक्षा का कोई अर्थ नहीं है। यदि हम चाहते हैं कि वह परम शक्ति हमारे लिये कृपा, करूणा और अनुकम्पा बन जाये तो हमको कुछ भी करना है। वह अपने साथ करना है। इसीलिए प्रार्थना और पूजा आदि का न कोई अर्थ है, न कोई महत्व है। महत्व है साधना का। अर्थ है साधना का। ध्यान अपना मूल्य और महत्त्व रखता है। लेकिन पूजा नहीं। साधना का अर्थ है अपने आपको ऐसा बना लेना कि धर्म के प्रतिकूल न जायें हम और बराबर

अनुकूल रहकर परम अवस्था को प्राप्त कर लें। कुण्डलिनी साधक को महान योगी कहते हैं वह योगी सत्य का साक्षी होता है। वह सत्य को तर्क के द्वारा नहीं बल्कि प्रत्यक्ष जानता है। सत्य में प्रवेश करता है और सत्य को अपनी आत्मा का तादात्म्य बनाता है। सभी धर्मों के प्रमाण ग्रन्थ वेद, कुरान, बाइबिल ईश्वर प्रेरित होने का दावा करते हैं परन्तु सभी एक ही बात नहीं कहते। फिर यह कैसे निर्णय हो कि इनमें से कौन वास्तव में ईश्वर प्रेरित है। सम्भव है सबका दावा झूठा है। तर्क यहां निर्णय नहीं कर सकता। जितने भी तर्क दिये जाते हैं सब थोथे हैं। वेद और शास्त्रों के साथ-साथ मंत्र भी हैं। यदि सबके अधिकांश मंत्र सत्य की कसौटी पर खरे उतरते तो मंत्र के फलस्वरूप वृष्टि होती, धन मिलता, पुत्र लाभ होता आदि...आदि। तो उन पर विश्वास होता। परन्तु ऐसा दिख नहीं पड़ता। ऐसी अवस्था में एकमात्र योगी ही प्रमाण है। यदि वह किसी बात का प्रमाण देता है तो वह बात मान्य है। ईश्वर, परमेश्वर, देवगण, पितृगण सभी योगी के साक्ष्य की अपेक्षा रखते हैं।

इस समय व्यापक अश्रद्धा का युग है। योग, सभी उपासना और साधना पद्धतियों का आधार है। भारत के लिए यह बात पूर्णतया ठीक बैठती है। आश्चर्य और दुख का विषय यह है कि भारत जैसे धर्मप्राण देश में भी यह अवस्था है जीवन पहले जैसा सरल नहीं रहा। विज्ञान ने और बदले हुए आर्थिक पर्यावरण ने नई-नई समस्यायें खड़ी कर दी हैं। समाज में जीवन का कोई ऐसा भाग नहीं बचा है जिसमें कई प्रश्न चिन्ह न खड़े हों। व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन का आधार हिल उठा है। यह नहीं कहा जा सकता स्थायी अथवा दृढ़ है कि नहीं। मनुष्य की मान्यताओं में कुछ भी विश्वसनीय निश्चित है या नहीं सब कुछ परिवर्तनशील है। जन्म से पहले अपना अस्तित्व था या नहीं। मृत्यु के बाद अस्तित्व रहेगा या नहीं। यदि हां तो कहां और कैसे? किसी प्रकार की उपासना केवल अपने मन को धोखा देना है या और कुछ? कोई ऐसी सत्ता है जो नित्य और उपास्य हो? व्यवहार का आधार क्या होना चाहिए? यह और ऐसे अनेक प्रश्न उठते हैं और उनके उत्तर नहीं मिलते हैं। प्रचलित सम्प्रदायों के आचार्य पुस्तकों के वाक्य दुहरा देते हैं। वह जो कुछ कहते हैं उसमें निश्चय का स्वर नहीं रहता है। उनकी बातों में वह दृढ़ता नहीं होती है। जो विश्वास

दिला सके कि उपदेश देने वालों को स्वयं अपनी बातों पर विश्वास है। ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है कि प्रवक्ता साक्षात्कृतधर्मा नहीं है।

अश्रद्धा अच्छी वस्तु नहीं है। चित्त को विश्वास योग्य तथ्यों से रिक्त करना सरल हो सकता है। परन्तु बहुत दिनों तक चित्त शून्य बनाकर रखा नहीं जा सकता। आपत्तियां आती हैं। संकटों का सामना करना होता है। उस समय वह मनुष्य जिसके जीवन का आधार स्थायी और दृढ़ नहीं है बेपतवार की नाव की तरह है। उसकी अवस्था उस पतंग जैसी हो जाती है जिसकी डोर नीचे से कट गई है। जो सुख और वैभव, धन, सम्पत्ति आदि रूचिकर लगती थी वह नीरस प्रतीत होने लगती है। स्थायी लक्ष्य के बिना चित्त में कुछ सूना-सूना सा लगता है। जो विषयों के भोग से दूर नहीं होता यह वह स्थल है जहां कुण्डलिनी योगी की आवश्यकता है। उसने धर्म के मूल स्रोतों का साक्षात्कार किया है। उसने जगत के क्षणभंगुर वस्तुओं के अपेक्षा दृष्ट या अधिक स्थायी और इनके भी पीछे अविनश्वर कल्प तत्वों को प्रत्यक्ष देखा है। वह पूर्ण योगेश्वर भले ही न हो फिर भी उसको सत्य के सागर में डुबकी लगाने का अवसर मिला है। उसकी कही हुई बात हृदय से निकलती है और अनुभव पर प्रतिष्ठित है। इसलिए उसमें से सत्य की टंकार निकलती है कि सुन कर विश्वास स्वतः उत्पन्न होता है हृदय से बोलता है। यह असंभव नहीं है कि लोग एक बार बात अनसुनी कर जायें, हंस कर टाल दें। कटु सत्य सुनाने वालों को कष्ट भी दें। परन्तु अन्त में उसको सुनना ही होगा। रही कष्ट की बात तो मनस्वी पुरुष कर्तव्य का वरण करते हैं। दुख या सुख को नहीं देखते। योगी किसी विशेष सम्प्रदाय, किसी पक्ष या मत की ओर से प्रचार नहीं करता है। वह "बहुजन हिताय बहुजन सुखाय" सत्य का सन्देश सुनाता है। उसका चरित्र ही उसका सबसे बड़ा धर्म है।

आज के युग में कहीं कोई नियंत्रण नहीं है, बहुराज है। इसलिए अराजकता है। सामाजिक स्व, आर्थिक स्व, राजनीतिक स्व सब अलग-अलग दिशाओं में खींचते हैं।

विभिन्न हितों का संघर्ष निरन्तर चल रहा है। प्रत्येक अवसर पर सोचना पड़ता है कि क्या किया जाये। कुछ स्थिर करना कठिन होता है।

यदि एक संयत 'स्व' हो, एक सुनिश्चित कर्तव्य शैली हो, एक सुनिश्चित धर्म अपनाया जाये तो यह संयत 'स्व' भी योग से ही मिल सकता है। पुस्तकों से नहीं मिल सकता। कोई पुस्तक 'स्व' का ज्ञान कदापि नहीं करा सकती। पदार्थ का ज्ञान एक बात है और पदार्थ के सम्बन्ध में ज्ञान दूसरी बात। कुण्डलिनी योग इन्द्रियों को विषयों से परामुख करता है। वासनाओं को दबाता है। विवेक ख्याति प्रदान करता है यानि इस बात को सोचने की क्षमता प्रदान करता है कि जो वस्तुएं आकर्षित कर रही हैं उनके पीछे दौड़ना कहां तक उचित है। बाहरी आकर्षण से छुटकारा दिलाकर अपने में स्थित होने का, अपने को पहचानने का, अपने बिखरे हुए व्यक्तित्व को बटोरने का अवसर देता है एक दिन में पूर्णता नहीं होती। परन्तु जब एक कदम भी उधर बढ़ता है तो वह जगत के उलझन कम कर देता है। सब योगी नहीं बन जाते। सब साधक नहीं बन जाते। परन्तु योगी या साधक इस प्रकार का केन्द्र बन जाता है जिसके चारो ओर शक्ति का पर्यावरण एकत्र एवं घनीभूत होता जाता है। वहां के प्रवचन से, लिखावट से, वार्तालाप से, तनाव से और खिंचाव से कम होता है। दूर होता है, आपस का सन्देह मिटता है। एक-दूसरे में अपनी मूर्ति दिख पड़ती है। इस प्रकार अपने को पुनः पूर्ण बनाने का अवसर मिलता है और यह अवसर कुण्डलिनी योग साधना ही प्रदान कर सकती है।

कुण्डलिनी साधना मानव जीवन की सतत साधना है। यह केवल ध्यान, धारणा व साधना ही नहीं है यह हमारे जीवन का एक भाग है। यह आत्म पथ पर सतत चलने का नाम है। साधना में तर्क नहीं है, अविश्वास नहीं है, उलझन नहीं है, कुछ पाना नहीं है बस अपने सामान्य जीवन में उसे स्थान देना है। जीवन तो चलता रहेगा। लेकिन वह जीवन सामान्य नहीं होगा वह ज्ञानमय जीवन होगा।

वर्ष २००८ अरूण कुमार शर्मा

प्रसंगवश

कुण्डलिनी साधना का संकलन और सम्पादन करते समय न जाने कितने विचार मानसपटल पर उभरते और मिटते रहे। बस यही चिन्तन करता रहा गुरुजी अपने जीवन में कितना श्रम किये। उन्होने ज्ञान के लिए अपना सब कुछ समर्पित कर दिया। अन्त में उनका क्लान्त शरीर और चेहरे पर ज्ञान और अध्यात्म का अपूर्व तेज और आंखों में परम शान्ति थी। ऐसा लगा उन्होने जो चाहा उन्हे मिल गया। ऐसी शान्ति कम ही लोगों के चेहरे पर दिखती है।

यही परम सत्य है। शरीर की एक सीमा होती है। आत्मा को एक न एक दिन शरीर त्याग करना ही पड़ता है। यही आत्मा की नियति है और है विवशता...। यह सभी के साथ होना है यह सत्य है। आज गुरुजी को प्रस्थान किये हुए सात वर्ष का समय कब व्यतीत हो गया पता ही नहीं चला। समय की अपनी गति है, पता ही नहीं चलती है। ऐसा लगता है कुछ घटा ही नहीं है। सब वैसा ही है पहले जैसा। सायंकाल जब भी गुरुजी के कमरे में जाता धूपबत्ती आदि जलाने और उनकी गद्दी को ठीक करने ऐसा लगता बस गुरुजी कहीं आस-पास होंगे। बस कुछ क्षण बाद आ जायेंगे और मुस्कुराते हुए अपने गद्दी पर बैठते हुए मुझसे पूछेंगे.... सब ठीक है न....।

ऐसा लगता है सब कुछ बदल सा गया। लेकिन फिर ऐसा लगता है कुछ बदला ही नहीं। एक दिन प्रसंगवश गुरुजी ने बतलाया- अक्षय केवल समय है उसके प्रवाह में सब कुछ बदल रहा है। हर वस्तु, हर पल बदल रही है एक नये रूप में, नये स्वरूप में। देखा जाये तो प्रत्येक वस्तु एक घटना है। घटना का अर्थ है, प्रक्रिया। हर जगह प्रक्रिया हो रही है। सब कुछ हो रहा है प्रवाह में। प्रवाह के बीच में अगर कोई है वह अक्षय है यानि समय। समय में सब बदलता रहता है। बदलने की प्रक्रिया समय में घटती

है। सब कुछ बदल रहा है हर पल, हर क्षण। ये सारे परिवर्तन समय के भीतर हो रहे हैं।

अस्तित्व मात्र परिवर्तन का प्रवाह है। कृष्ण कहते हैं- मैं अक्षय काल हूं, मैं समय हूं जो कभी नहीं बदलता। सूर्य-चन्द्र, ग्रह-नक्षत्र-तारे सब समाप्त हो जायेंगे। पृथ्वी से लेकर सारी सृष्टि भी बिखर जायेगी। तब भी समय होगा। अगर हम विराट अस्तित्व को खोजने चले तो उसमें सभी बन रहे हैं और बिखर रहे हैं। केवल समय ही ऐसा है जो निर्माण में भी है और विनाश में भी है। केवल समय मात्र अक्षय रूप में उपस्थित रहता है। उसकी उपस्थिति सदा है। मृत्यु को भी हम शाश्वत मानते हैं। अगर विचारपूर्वक देखा जाये तो मृत्यु केवल शब्द मात्र ही है।

समय के प्रवाह में हम हर पल मिट रहे हैं। जिस समय हम पूरी तरह मिट जायेंगे अथवा मिटने को तब खड़े होंगे उस पल जो घटना घटेगी उसे हम मृत्यु कहते हैं।

काल के प्रवाह में हम हर नित्य कण-कण करके बह रहे हैं। समय हमें अपने प्रवाह में प्रतिपल बहाये जा रहा है। हम प्रतिपल बह रहे हैं। शायद इसी को नियति कहते हैं। हमारे पास कुछ नहीं है। बस बहना ही नियति है। जो विरोध करेगा उसे टूटना है। नदी के विरूद्ध तैरने वाला जल्दी ही डूब जाता है।

अगर हम समय को साध लें, समय के साथ एकरूपता ही परमात्मा के साथ एकरूपता साध लेना जैसा है। समय के साथ एकरूपता साधने का अर्थ है परिवर्तन को स्वीकार करने की क्षमता। हो जो हो रहा है होने दें। कहीं कोई विरोध नहीं, न बाहर से, न भीतर से। गुरुजी ने आगे कहा- भारतीय प्रज्ञा के अनुसार वर्तमान जीवन की सीमा पूर्वजन्म के कर्मों से नियत होती है। हमने जो पूर्वजन्म में किया है वह हमारे इस जीवन के समय को निश्चित करता है। इसे स्वीकार करना होगा।

गुरुजी, मुझे समझाते हुए बोले- परिवर्तन तो होना है। चाहे कुछ भी हो। जितना मिला उसे तो जीना है। एक दिन शरीर भी बदल जायेगा काल के प्रवाह में बह जायेगा। लेकिन मैं फिर भी रहूंगा किसी और रूप में। उस समय उनकी बात को समझा नहीं। लेकिन एक ऐसी घटना घटी एवं एक

ऐसे सत्य को सामने खड़ा कर दिया जिसकी मैंने कल्पना भी नहीं की थी।

जीवन में बहुत से सारे सत्य का सामना हुआ। लेकिन दो सत्य ऐसा था जिसके कारण मैं चुप हो गया। बस अपने को काल के प्रवाह में बहने को छोड़ दिया शायद यही मेरी नियति है।

दिसम्बर २०१६ के पहले मैं काफी स्वस्थ था। नियमित योग साधना और जो भी नित्य कार्य करना होता था वो करता। कुछ कार्यवश मुझे गुड़गांव जाना पड़ा और २२ नवम्बर को वापस आया सब ठीक था यानि सब कुछ सामान्य। लेकिन कुछ ठण्ड बढ़ गयी थी। २ दिसम्बर के भोर यानि चार बजे एकाएक मेरी नींद खुल गयी। पूरे शरीर में एकाएक असीम पीड़ा का अनुभव करने लगा। ऐसा असीम कष्ट पहले कभी भी नहीं हुआ। एक पल को लगा जैसे सब कुछ समाप्त हो गया। ऐसा लगा सब कुछ छूट रहा है। उसी कष्ट के दौरान मेरी नजर मोबाईल पर पड़ी किसी तरह मोबाइल उठाया। मेरे एक परिचित तिवारी जी का मिसकाल था बस उस पर रिंग कर दिया। क्योंकि वह भोर में उठ जाते थे। परन्तु उस समय कॉल नहीं आया। लेकिन दूसरे क्षण मोबाईल की घण्टी बजी मैंने बस इतना कहा असीम कष्ट है जितना जल्दी हो आ जाईये। चूंकि रात्रि साधना करने के कारण मैं अपने कमरे में अकेले रहता था और इतनी हिम्मत नहीं थी कि क़िसी को आवाज दे सकूं। खैर, धीरे-धीरे मेरी चेतना शून्य होने लगी बस फिर कुछ याद नहीं। लेकिन अपने स्व की अनुभूति बराबर बनी रही ऐसा लगा जैसे मैं पहले से काफी स्वस्थ हूं और ऊर्जावान हूं। इतना हल्कापन पहले कभी नहीं था जैसे किसी बन्धन से बाहर निकल आया हूं, पूर्ण स्वतंत्र हूं, उस अनुभव का वर्णन मैं शब्दों में नहीं कर सकता। इतना आनन्द कभी भी नहीं मिला था।

कुछ क्षण बाद में अपने को ऐसे स्थान पर पाया हल्की सिन्दूरी आभा लिये नीला आकाश दिख रहा है। जैसे प्रातःकाल के पहले होता है अन्धेरे और उजाले की संधि जैसा लग रहा था। उस क्षितिज के पार से जैसे गुरुजी तेज कदमों से मेरे पास चले आ रहे हैं। उनके साथ दो-तीन लोग और भी थे। बड़े-बड़े बाल, हल्की दाढ़ी, गले में रूद्राक्ष की माला, सफेद वस्त्र पहने सभी युवा दिख रहे थे। सभी का चेहरा शान्त और निर्विकार सा था।

गुरुजी काफी स्वस्थ दिख रहे थे। उम्र का प्रभाव उनके चेहरे पर न के बराबर था। वे लुंगी और सफेद कुर्ता सा वस्त्र पहने थे और गले में रूद्राक्ष की माला भी थी। मुझे देखकर उन्हे थोड़ा आश्चर्य हुआ फिर एकाएक बोले- तुम्हे यहां आने की आवश्यकता क्या थी जाओ तुरन्त वापस जाओ। मैं उनकी बात पर ध्यान न देकर पूछ बैठा- क्या आप यहीं रहते हैं?

गुरुजी बोले- हां...उस प्रकाश के पार। ये सब मेरे शिष्य हैं। उनके चेहरे पर अजीब सी बेचैनी साफ दिख रही थी। बिना पल गंवाये जैसे उन्होने मुझे धक्का सा दिया। बस इतना सुनायी दिया जाओ यहां से अभी यहां आने की आवश्यकता नहीं। मैं तुमसे आकर मिलूंगा।

तभी किसी के हाथ का स्पर्श अपने सिर पर अनुभव किया। आंखे खोल कर देखा पत्नी खड़ी थी और पूछ रही थी अब कैसा लग रहा है। मैं बस उसे देख रहा था। लेकिन कहता क्या। कुछ भी बोलने की शक्ति नहीं थी। असीम दुर्बलता का अनुभव कर रहा था। दो सप्ताह बाद अस्पताल से घर वापस आया। फिर से जीवन वैसा ही चलने लगा जैसा पहले था। कुछ भी नहीं बदला। यदि कुछ बदला है तो वह मेरे अन्दर बदला है। अब पहले जैसा नहीं है। वह क्या है समझ नहीं पा रहा हूं।

दूसरा सत्य जिसके कारण मैं साधना पथ पर चला पड़ा। उसके पहले मुझे साधना में कोई रूचि नहीं थी। मैं जीवन में सफलता पाना चाहता था। एक सफल व्यक्ति बनना चाहता था।

१९९० कालिंगपांग बौद्ध योग और मार्शल आर्ट की शिक्षा प्राप्त कर वाराणसी वापस आ चुका था। गुरुजी की एक शिष्या थी भक्तकुमारी प्रधान उन्ही के सहयोग से यह शिक्षा पूर्ण हुई। अगर उनका सहयोग न मिलता तो मैं शिक्षा प्राप्त नहीं कर पाता। आगे क्या करना है समझ में नहीं आ रहा था। ग्रेजुएशन करने के बाद मैं आगे की शिक्षा के लिये बाहर जाना चाहता था। लेकिन समझ में नहीं आ रहा था। संयोगवश गुरुजी के दूर के रिश्ते में भाई लगते थे विजय पाठक। वे काफी समय से बम्बई में रह रहे थे। उनका आकस्मिक वाराणसी आना होता है। एक दिन गुरुजी से मिलने चले आये। संयोगवश मैं वहीं था यानि गुरुजी के पास। वे

अन्धेरी में स्टेट बैंक में मैनेजर थे। उनकी काफी पहचान भी थी बम्बई में। जब उन्हे मेरे बारे में पता चला कि मैं मार्शल आर्ट जानता हूं वे तत्काल गुरुजी से बोले- इसे मेरे साथ बम्बई भेज दो। भविष्य बन जायेगा। आगे की शिक्षा की भी व्यवस्था कर दूंगा और सबसे बड़ी बात है यह मार्शल आर्ट जानता है बम्बई में इस कला की काफी मांग है। गुरुजी कुछ बोलते उसके पहले विजय जी बोले- भाई साहब मैं कुछ भी सुनना नहीं चाहता बनारस में रह कर क्या करेगा। यहां कुछ भी नहीं कर पायेगा। मनोज की अगले सप्ताह चलने की व्यवस्था कर दें। टिकट आदि की व्यवस्था हो जायेगी।

गुरुजी कुछ बोल नहीं पाये बस चुपचाप अपनी सहमति दे डाली। जब सारी बात मुझे समझ में आ गयी तो मैं बहुत खुश हुआ। बम्बई तो मेरा सपना था। काफी नाम सुना था, देखने की इच्छा तो पहले से ही थी। लेकिन मेरी इच्छा इतनी जल्दी ही पूरी हो जायेगी सोचा भी नहीं था।

अगले सप्ताह मैं बम्बई में था। नया परिवेश, नये लोग जीवन चलने लगा। विजय चाचा जी ने दो-तीन जगह स्थानीय लोगों को मार्शल आर्ट सिखाने की व्यवस्था कर दी। जिसके कारण काफी नये लोगों से परिचय हुआ। ज्यादातर मेरी क्लासेस दादर में ही चलती। उसी दौरान एक परिचित ने अन्धेरी में क्लासेस की व्यवस्था कर दी। कुछ समय क्लास लेने में बीत गया। लेकिन जल्दी ही मेरी पहचान बन गयी। उसी दौरान गोविन्दा के मामा आनन्द जी से परिचय हो गया। उन्होने तो काफी सहयोग किया। मुझे छोटे भाई की तरह मानते थे। जब कभी उनके फिल्मों की शूटिंग होती मुझे भी साथ ले जाते। एक दिन आनन्द जी ने कहा तुम्हारे कला की असली जगह फिल्मों में है। तुम फाईटिंग डायरेक्शन की ट्रेनिंग ले लो। आगे फायदा मिलेगा। मुझे फिल्मों में ज्यादा रूचि नहीं थी। मैंने कहा ठीक है सोचते हैं। उसी दौरान मेरा छोटा भाई अनिल एम.ए. में मेरा एडमिशन बनारस में करवा दिया। उस समय इतना कम्पटीशन नहीं था जैसा आज है। खैर, उसी दौरान एक-दो बार बनारस आया और किताबें ले ली ताकि खाली समय में पढ़ाई कर सकूं। समय अपने प्रवाह में चल रहा था। सब कुछ ठीक था बम्बई में। अन्धेरी में अलग रहने की भी व्यवस्था हो गयी।

ज्यादा दिन तक विजय चाचाजी के पास रूकना नहीं चाहता था। क्योंकि बम्बई में रहने की समस्या सबसे बड़ी थी। रास्ते बनने लगे। धीरे-धीरे एक वर्ष का समय निकल गया। एक दिन गुरुजी का फोन आया वे कम ही फोन करते थे अति आवश्यक पड़ने पर ही उनका फोन आता था। मैंने फोन उठाया बस उन्होने कहा- बनारस आ जाओ। तुम्हारे दादाजी का स्वास्थ्य ठीक नहीं है तुम्हे याद कर रहे हैं। चूंकि मैं दादाजी को काफी मानता था वही कुल देवी भगवती तारा की उपासना करते थे। जीवन के अन्तिम पड़ाव में उन्होने संन्यास ले लिया था। बस उनका सारा समय मां की आराधना में व्यतीत होता था। मुझे लगा गुरुजी ऐसे ही फोन नहीं करते। जाना होगा। बस दूसरे दिन बम्बई से बनारस के लिए चल पड़ा।

१५ मई १९९२ को बेचनजी शर्मा यानि दादाजी ने समाधि ले ली। उन्हे गंगा की बीच धारा में जल समाधि दिया गया।

मन काफी दुखी था मुझे अम्बई से आये दो सप्ताह हो गये थे। एक दिन मैंने गुरुजी से बम्बई वापस जाने को कहा। गुरुजी बोले- अभी समय नहीं है। कुछ दिन और रूक जाओ चले जाना। चूंकि मैं उनकी बात काटता नहीं था उस समय वे मेरे पिता थे। लेकिन एक गुरु की तरह आदेश दिये। मैं समझा नहीं उनका आशय। वे क्या चाह रहे थे। देखते-देखते एक सप्ताह और निकल गया। घर का वातावरण भी दादाजी के जाने से उदास था। सामान्य सा होने लगा। ज्यादातर लोग मुझसे बम्बई के बारे में पूछते रहते थे। उन्हे क्या बतलाता कितना संघर्ष भरा जीवन है बम्बई का। खैर,

प्रातःकाल का समय गुरुजी अपने स्थान पर बैठे थे। मैं उनके लिये चाय लेकर पहुंचा कुछ उदास सा दिख रहे थे। चाय रखते हुए उनसे पूछा- क्या बात है, आप कुछ परेशान सा लग रहे हैं?

गुरुजी मेरी ओर ध्यान से देखते हुए बोले- क्या तुम बम्बई जाने का कार्यक्रम छोड़ नहीं सकते हो।

मैं आश्चर्य भरे भाव से पूछा- आप ऐसा क्यों बोल रहे हैं। वर्षो के बाद अब रास्ता मिल रहा है और आप कह रहे हैं बम्बई मत जाओ। मैं समझा नहीं..।

गुरुजी बोले- मां की आराधना करनी है कुल देवी भगवती तारा की

आराधना-साधना तुम ही कर सकते हो और कोई नहीं। यह मेरा आदेश नहीं तुम्हारे दादाजी का आदेश था।

मैं कुछ पल के लिये घबड़ा सा गया सारे सपने जैसे बिखरने लगे। कुछ समझ में नहीं आ रहा था। चूंकि गुरुजी की बात मैं कभी काट नहीं सकता था। सहन करके फिर पूछा- मेरे अन्दर ऐसी कौन सी योग्यता है मैं तो भगवती की आराधना करना भी नहीं जानता हूं। घर में और भी लोग हैं। कोई भी भगवती की पूजा-आराधना कर सकता है या फिर किसी पुजारी की व्यवस्था कर दें।

ऐसा सम्भव होता तो मैं तुमसे क्यों कहता। भगवती का स्थल है कोई मन्दिर नहीं है। तुम्हारे पांच पुरुखों की साधना स्थली है। यहां का सम्बन्ध दैवी राज्य से है। यह शक्ति है। यहां गल्ती का कोई स्थान नहीं है। जहां तक तुम्हारी बात है तुम्हारा सम्बन्ध साधना से इस जन्म का नहीं है पूर्वजन्म से है। तुम्हे अपनी अधूरी साधना को भी पूर्ण करनी है। जो तुम करने जा रहे हो भौतिक संसार में वह तो हर कोई कर सकता है। तुम कोई नये नहीं हो। क्या किसी की तृष्णा कभी कम हुई। भौतिक सुख की तृष्णा कभी न खत्म होने वाला रेगिस्तान है। मृग की तरह हर व्यक्ति दौड़ रहा है। लेकिन अन्त उसका प्यासे मृग की तरह होता है। भौतिक जगत में क्या किसी के सपने पूर्ण हुए हैं। सभी के सपने अधूरे ही रहते हैं। अधूरे सपनों को लेकर उसे फिर जन्म लेना पड़ता है। यही संसार है।

खैर, मैं तुम्हे रोकूंगा नहीं तुम बम्बई जा सकते हो। लेकिन तुम्हारे नियति में साधना ही लिखा है। एक दिन सब छोड़ कर संन्यास ले लोगे। उस समय शायद मैं नहीं रहूंगा। इतना कह कर वे चुप हो गये। मैं शान्त सुनता रहा मुझे कुछ समझ में नहीं आ रहा था। तभी गुरुजी के कुछ शिष्यगण आ गये। मैं कुछ बोला नहीं चुपचाप उठ कर चला गया।

दूसरे दिन मैंने सारी बातें अपनी मां को बतलायी। वह बोली- चलो मैं बात करती हूं। क्या करोगे यहां रूक कर मैं समझाती हूं। मेरा हाथ पकड़ कर मां गुरुजी के पास पहुंची और बोली- आप क्यों इसे बम्बई जाने से मना कर रहे। यहां रह कर क्या करेगा। भगवती की पूजा आदि की व्यवस्था मैं कर लूंगी इसे जाने दें।

गुरुजी शान्त भाव से समझाते हुए बोले- मैं कौन होता हूं रोकने वाला। जो इसके भाग्य में है वही बतला रहा हूं। मैं क्यों इसका भविष्य खराब करूंगा रोक कर। आगे चल कर इसे जो करना है वह मैं पहले ही देख चुका हूं। इसकी इच्छा थी तो बम्बई घूम लिया। इसके नियति में जो लिखा है वही न करेगा। तुम्हे सत्य जानना है- मेरी ओर गुरुजी देखते हुए बोले? परसों अमावस्या है, मैं तुम्हे एक यंत्र बना कर देता हूं उसे अपने तकिया के नीचे रख कर सोना सत्य स्वयं तुम्हारे सामने होगा।

मैं भी पूर्वजन्म के सत्य को जानना चाह रहा था। अमावस्या वाले दिन गुरुजी का दिया हुआ यंत्र तकिये के नीचे रख कर भगवती का ध्यान करके सो गया। नींद कब लग गयी पता ही नहीं चला। नींद किसी नशे की तरह लग रही थी। जैसे नींद की गोली खाकर सो रहा हूं। ऐसा लग रहा था कि मेरी आत्मा गहन अवस्था में प्रवेश करती जा रही है।

मैंने देखा घना पहाड़ी जंगल। उस जंगल के मध्य में बड़ा सा वीरान मठ दिख रहा है और मठ के खुले प्रांगण में किसी देवी की पाषाण प्रतिमा थी जो एकदम सजीव सी लग रही थी। ऐसा लग रहा था जैसे कोई अभी-अभी भगवती की पूजा करके गया है। उस मठ के चारो तरफ बड़ी-बड़ी दीवारें थी ताकि कोई बाहरी व्यक्ति अन्दर न आ सके। उस दीवार से सटे छोटे-छोटे कमरे बने थे। हर कमरे के अन्दर साधक ध्यानावस्था में दिखे। वृद्ध-युवा सभी प्रकार के लोग थे। जैसे उनका आपस में किसी से कोई मतलब नहीं। सब अपने में ही मग्न और ध्यानस्थ थे। तभी सामने से एक वृद्ध संन्यासी आता दिखता है। वह छोटे-छोटे कमरे के सामने से गुजरता हुआ सबसे अन्तिम कमरे के दरवाजे के पास पहुंचता है। दरवाजा खोलता है तो सामने एक युवा संन्यासी गैरिक वस्त्र पहने, गले में रूद्राक्ष की माला, लम्बे केश और हल्की-हल्की दाढ़ी। वह वृद्ध संन्यासी उससे कुछ बोलता तभी मेरी नजर उस ध्यानस्थ युवक पर पड़ी। ऐसा लगा जैसे मैं ही बैठा हूं। मुझे घोर आश्चर्य हो रहा था। यह कैसे सम्भव है। मैं तो यहां खड़ा हूं और सामने मैं हूं या मेरा हमशक्ल? उसी समय जैसे किसी की आवाज सुनायी दी मुझे। अपने को पहचान नहीं रहे हो।

एक झटका लगता है नींद खुल जाती है। सारा शरीर पसीने से भीगा

था जैसे काफी दूर से आ रहा हूं। श्वांस की गति भी सामान्य नहीं थी। रात के दो बज रहे थे। फिर नींद नहीं आयी रात्त भर जागता रहा बस स्वप्न के बारे में सोचता रहा। सुबह का इन्तजार कर रहा था। जैसे सुबह हुई मैं भागा-भागा गुरुजी के पास पहुंचा। उस समय गुरुजी अपने स्टडीरूम में बैठे थे दैनिक पेपर पढ़ रहे थे। एकदम सामान्य भाव से मुझे देख कर पेपर रखते हुए पूछे जैसे उन्हे पहले से सब पता था। बोले- सत्य का सामना हो गया। अपने पूर्वजन्म के रहस्य से परिचित हो गये। मैंने कहा- हां....। फिर स्वप्न वाली सारी घटना उन्हे बतला दिया।

वे ध्यानपूर्वक मेरी बातें सुनते रहे। फिर बोले- जो तुमने दृश्य देखा वह आज से पांच सौ साल पहले का है। हिमालय और तिब्बत के बार्डर पर वह मठ था। शायद आज भी होगा जीर्ण-शीर्ण अवस्था में। वह कापालिकों का रहस्यमय मठ था। जो प्रतिमा देखी वह उग्रतारा की थी। उस स्थान पर साधक लोग अपनी साधना पूर्ण करने दूर-दूर से आते थे।

मैं बीच में ही बोल पड़ा- मेरे साथ क्या हुआ? क्या मेरी साधना पूर्ण नहीं हुई? वह वृद्ध संन्यासी कौन था?

गुरुजी समझाते हुए बोले- वह वृद्ध संन्यासी उस मठ का प्रधान गुरु था और दूर दराज से आये साधकों का ध्यान रखता था। तुम जिस कमरे में ध्यानस्थ थे। तुम्हे ध्यान लगाये तीन दिन बीत गये थे। वह साधक उत्सुकतावश तुम्हे देखने पहुंचा। लेकिन...लेकिन क्या, मैं समझा नहीं पूछ बैठा।

ध्यान की गहन अवस्था में तुम्हारा शरीर छूट गया था। तुम निर्जीव थे इसलिये तुम आगे का दृश्य नहीं देख पाये। सत्य तो यह है कि तुम्हारी इष्ट भगवती तारा ही है। अब तुम्हे आगे की साधना पूर्ण करनी होगी।

क्या मेरा जन्म पांच सौ साल बाद हुआ? हा, पांच सौ साल बाद तुम्हारी आत्मा ने तीन बार जन्म लिया। यह तीसरा जन्म है। गुरुजी ने और भी बहुत सारी बातें बतलायी। जिसे यहां वर्णन करना उचित नहीं समझता। लेकिन सब कुछ बदल चुका था मेरे अन्दर।

मेरा मन शान्त हो गया था। अब कोई प्रश्न नहीं था। उसी समय गुरुजी का चरण स्पर्श कर बोला- आप मेरे पिता हैं और गुरु भी। आज

के बाद मैं कोई भी प्रश्न नहीं करूंगा। आपके मार्गदर्शन में अपनी अधूरी साधना को पूर्ण करने का प्रयास करूंगा। फिर न कोई उत्सुकता थी न कोई प्रश्न। गुरुजी जो बोलते, जो साधना करने को कहते करता चला गया। आज गुरुजी संसार में नहीं है। लेकिन उनके बतलाये साधना मार्ग पर आज भी चल रहा हूं। जीवन का एक लम्बा समय निकल गया। साधना का ऐसा रस मिला उसके आगे संसार का सारा रस नीरस सा हो गया।

काल के प्रवाह में सब कुछ बहता चला गया। तीन वर्ष साधना का ऐसा समय बीता पता ही नहीं चला। गुरुजी के आज्ञा से विवाह कर लिया। आकस्मिक छोटे भाई का बिछोह, मां की मृत्यु सब कुछ घटता चला गया। गुरुजी और मैं नितान्त अकेले हो गये। हम दोनों का सन्तुलन मेरी पत्नी ने सम्भाला। समय अपनी गति से बीतता गया। फिर एक दिन गुरुजी ने भी समाधि ले ली। बस मैं और छोटा सा परिवार बस रह गया। देखा जाये तो कुछ भी नहीं बदला सब उसी तरह चल रहा है। त्योहार भी आ रहे हैं, लोग भी मिलने आ रहे हैं। उसी तरह सुबह भी हो रही है प्रकृति के नियम के अनुसार। लेकिन उसके बीच शून्यता है वह आज भी है। खैर,

आज गुरुजी के आदेशानुसार उनकी गद्दी पर बैठ रहा हूं। लोग आते हैं पुस्तकें पढ़ कर प्रभावित होकर बस साधना चर्चा करते हैं। तत्काल उन्हे साधना का सूत्र बतला दें। लेकिन बन्धु! जगत में कुछ भी आसानी से नहीं मिलता तपस्या करनी पड़ती है। चाहे वह अध्यात्म हो या हो समाज सब जगह संघर्ष है और है तपस्या। साधना सीखने की जो लोग मुझसे बातें करते हैं मैं चुप हो जाता हूं। उनसे मैं क्या कहूं बस बहाना बना देता और क्या करता।

साधना का पथ कितना नीरस और रेगिस्तान की तरह कितना सूखा है और उस अन्धकार भरी पगडण्डी की तरह है कि आप बस पगडण्डी पर चल रहे हैं आगे मंजिल है कि नहीं, अनिश्चय की स्थिति होती है। उस अनिश्चय में अगर सफलता मिल गयी तो आपका भाग्य है। क्योंकि कहां त्रुटि हो रही है। पता ही नहीं चलता।

गुरु अपने अनुभव से शिष्य का मार्ग प्रशस्त करता है। लेकिन गुरु स्वयं नहीं चलता। चलना तो शिष्य को पड़ता है। गुरुजी द्वारा बतलाये

साधना के प्रारम्भिक संघर्ष के बारे में बतला रहा हूं। खुद आप ही चिन्तन करें। क्या सर्वसाधारण कर पायेगा। साधना के लिये हठयोगी बनना पड़ता है। दिन-रात सब उसके लिये समान हो जाते हैं। बस एकमात्र लक्ष्य होता है आगे बढ़ने की प्रक्रिया। उसके लिए दिन, रात, समय कुछ भी नहीं होता। मैं तो परम भाग्यशाली था कि गुरुजी का मार्गदर्शन मिला। साधना काल में कुछ ऐसी घटनाएं घटी जो कभी मानसपटल से विस्मृत नहीं हुई। गुरुजी के निर्देशन में शाक्त साधना के अन्तर्गत भगवती की आराधना-साधना का अभ्यास करने लगा। नित्य भगवती तारा की आराधना-पूजा भी करने लगा। धीरे-धीरे मन रमने लगा। विशेष शान्ति का आभास होता। एक दिन गुरुजी बोले- योग मार्ग का अभ्यास आवश्यक है। गुरुजी के परिचित अय्यरजी जो योगाचारी थे, विदेशी लोगों को योग का अभ्यास कराते थे, एक दिन उनका आना होता है। चर्चा के दौरान गुरुजी ने उनसे कहा- मनोज को योग का अभ्यास करा दें। साधना के लिए योग जानना आवश्यक है। तीन माह तक योग साधना और अन्य योग क्रिया का अभ्यास किया अय्यरजी के निर्देशन में। आगे की साधना में योग साधना का महत्व समझ में आया। चूंकि गुरुजी जो भी निर्देश देते या कहते बस मैं उसी में रम जाता प्रश्न नहीं करता।

उसके बाद गुरुजी ने प्राण साधना का अभ्यास कराया। नौ प्रकार के प्राणायाम का अभ्यास किया। गुरुजी का कहना था ये नौ प्राणायाम हमारे शरीर के नौ चक्र केन्द्रों से सम्बन्ध रखते हैं और यही नौ चक्र प्रतीक रूप में नवदुर्गा की शक्ति का कार्य करती है।

नवरात्र में नौ शक्ति केन्द्रों की साधना के रूप में तंत्र में मान्यता है। नौ चक्रों के विषय में जब मैंने गुरुजी से अपनी जिज्ञासा प्रगट की तो उन्होने बतलाया वह अपने आप में महत्वपूर्ण था। उनका कहना था योग तंत्र में चक्रों की संख्या के बारे में कोई हठधर्मिता नहीं है। प्रायः छः चक्रों को मुख्य माना जाता है। वैसे कहीं सात चक्र अथवा नौ चक्रों का भी वर्णन मिलता है। वैसे हमारे शरीर में नौ ऊर्जा केन्द्र हैं। जिनका सम्बन्ध चेतना को ऊर्ध्वमुख कर सहस्रार में विलय करना है। वैसे चक्रों में स्थित कमल को संसार में अधोमुख खिलने का प्रतीक माना है। जबकि

आध्यात्मिक जाग्रति के समय कमल ऊपर की ओर खिलते हैं। हठयोग की सिद्ध सिद्धान्त पद्धति जो गुरु गोरखनाथ जी की प्रमाणिक रचना है उसके अनुसार नौ शक्ति केन्द्र इस प्रकार हैं ब्रम्ह चक्र (मूलाधार), स्वाधिष्ठान, नाभिचक्र (मणिपूर), हृदय चक्र (अनाहद), कण्ठ चक्र (विशुद्ध चक्र), तालु चक्र, भ्रूचक्र (आज्ञा चक्र), निर्वाण चक्र (सहस्त्रार चक्र), आकाश चक्र ब्रम्हरन्ध्र के पास। इन्ही नौ केन्द्रों में भगवती चेतना के रूप में अवस्थित है। प्राण ऊर्जा में गहन ध्यान और मंत्रों के द्वारा इन सुप्त शक्तियों को जाग्रत किया जाता है। नवरात्र में इन चक्रों पर ध्यान केन्द्रित करने से चक्र सक्रिय होने लगते हैं। जिसके कारण साधक को साधना में सफलता मिलती है।

क्या मंत्रों का सम्बन्ध चक्र जागरण से समझना चाहिए- मैंने प्रश्न किया?

गुरुजी कुछ पल मौन रहे फिर बोले- योग में प्राण साधना और ध्यान के द्वारा ही चक्रों के जागरण करने की क्रिया है। उसी प्रकार तंत्र में मंत्रों के द्वारा चक्र जागरण करने की क्रिया है।

समझा नहीं- मैंने कहा।

गुरुजी समझाते हुए आगे कहना शुरू किये- शाक्त और शैव साधकों के मंत्र तत्व की जानकारी बहुत सहायक है। शाक्त साधकों का कहना है स्वयंभू लिंग, सर्पिणी कमल इत्यादि बाह्य पदार्थों की चर्चा है। उनके स्थूल अर्थो में नहीं जाना चाहिए। क्योंकि यह स्थूल अर्थ साधारण लोगों के समझाने के लिए है ताकि संसारी समझ सके। सत्य तो यह है कि यह बातें सूक्ष्म शक्ति की स्थूल अभिव्यक्ति है।

अब इस सूक्ष्म विधान को समझने के लिए उन स्थूल रूप में अभिव्यक्त तत्वों की चर्चा करना आवश्यक है। तभी तुम्हे मंत्र, नाम, शब्द, तत्व साधना का स्वरूप समझने में आसानी होगी। अगर विचारपूर्वक देखा जाये तो साधकों ने कितनी ही जटिल विद्या और विधान को सहज भाव से समझा और समझाने का प्रयास भी किया।

मंत्र को समझने के लिए हमें वाक के रहस्यों को समझना होगा। मध्यमा वाणी और उसका अर्थ दोनों सूक्ष्म हैं और सूक्ष्म अथवा लिंग शरीर

से सम्बद्ध माना गया है। देखा जाये तो मन दो प्रकार से काम करता है उसका एक भाग सूक्ष्म शब्द के साथ एकाकार होता है और दूसरा भाग बाह्य वस्तु के रूप में आकार ग्रहण करता है। यही सूक्ष्म अर्थ है यानि यही सूक्ष्म शब्द और सूक्ष्म आकार यानि अर्थ है। इसे और भी स्पष्ट शब्दों में समझा जाये तो मन के ही दो प्रतिरूप हैं- सूक्ष्म शब्द और सूक्ष्म अर्थ। जो ग्राहक और ग्राह्य रूप में मन की ही अभिव्यक्ति है।

सूक्ष्म शब्द ग्राहक और सूक्ष्म अर्थ ग्राह्य है। दोनों सूक्ष्म शरीर के अधीन हैं। सृष्टि के जन्म में मध्यमा ही प्रगट होती है। उस समय उसका बाह्य अर्थ नहीं होता। मध्यमा शब्द एक प्रकार का मानसिक गतिमात्र है। जो किसी वस्तु की धारणा बनाती है यानि बाह्य वस्तु की मानसिक चित्त अथवा छाप कह सकते हैं। इसका सूक्ष्म कारण पश्यन्तिं वाणी है। जो सामान्य स्पन्दन के रूप में उठ कर प्रगटीकरण के लिए प्रवृत्त होती है। यह स्पन्दरूपा पश्यन्ति वाणी निःशब्द परावाणी से उत्पन्न होती है। इसी प्रकार स्थूल वाणी के पूर्व सूक्ष्म रूपा मध्यमा वाणी और स्पन्द रूपा पश्यन्ति वाणी है जो बाहर दिखलायी देती है। मेरा कहने का अर्थ यह है कि निःस्पन्द यानि जहां गति न हो वह परावाणी है और जिसमें स्पन्द हो यानि हलचल हो वह पश्यन्ति है और जिसमें गति हो वह बैखरी वाणी है। मंत्र का स्थूल रूप अक्षरात्मक है। शब्द का जो स्थूल और मूर्त रूप है वह बैखरी वाणी द्वारा प्रगट होता है और उसका सूक्ष्म रूप मध्यमा है। सूक्ष्म शरीर में मध्यमा वाणी स्वप्न अवस्था के समान है और परावाणी सुषुप्ति के समान। इसलिए पश्यन्ति मध्यमा और बैखरी को क्रमशः सुषुप्ति, स्वप्न और जाग्रत अवस्था कहते हैं।

कमलदल रूपी चक्रों को भेद कर कुण्डलिनी सहस्रार तक पहुंचती है। उनमें जो अक्षर हैं वे स्थूल रूप नहीं हैं। क्योंकि जो बाह्य वाणी द्वारा उच्चारित होते हैं। वे कण्ठ के स्पर्श से उच्चारित होते हैं। इसलिए चक्रों के अक्षर स्थूल अक्षर नहीं हो सकते वे सूक्ष्म स्फुरण हैं। इन्ही को तंत्र में मातृका कहते हैं। परा, पश्यन्ति, मध्यमा, बैखरी कह कर बस यही कहा जा सकता है कि आरम्भ में चित्त स्वरूप निःस्पन्द शक्ति पहले सामान्य स्पन्द के रूप में, फिर विशेष स्पन्द के रूप में और अन्त में स्थूल स्पष्ट

शब्द के रूप में प्रगट होती है। इस प्रकार स्थूल अक्षर जो हम नित्य बोला करते हैं वह सूक्ष्म वर्ण या मातृका से उद्भुत होता है। इसलिये मातृका को बीज रूप कहा गया है।

गुरुजी का कहना था कि प्राचीन वेद, उपनिषद तथा तंत्र ग्रन्थों में कुण्डलिनी शक्ति तथा चक्रों का विवरण है उसे शल्य क्रिया द्वारा देखा नहीं जा सकता। लेकिन उसका महत्वपूर्ण ढंग से वर्णन मिलता है। अति सूक्ष्म और शक्तिपुंज होने के कारण ये चक्र स्थूल नेत्रों अथवा यंत्रों के द्वारा नहीं देखे जा सकते हैं। यह आवश्यक नहीं है जिसका ज्ञान शरीर रचना शास्त्र को प्राप्त नहीं है वे सब अस्तित्व हीन हैं। चक्रों और कुण्डलिमी की जिनके ऊपर योग क्रियायें आधारित हैं उन्हे अस्तित्वहीन अथवा काल्पनिक कहना महान मूर्खता होगी। अभी तक हमारा वैज्ञानिक ज्ञान अधूरा है। अभी तक वैज्ञानिकों को शरीर के अन्नमय कोश का पूर्ण ज्ञान ही नहीं हो पाया। अगर विचारपूर्वक देखा जाये तो भारतीय प्राचीन योग क्रिया के द्वारा योग शरीर के सूक्ष्मतम् अंगों का और उनकी क्रियाओं का ज्ञान अपने साधना के बल पर प्राप्त कर लेता था। जिसके मूल में गहन ध्यान की अवस्था है।

जिन शक्ति केन्द्रों पर योगियों ने उनके प्रभावों को विकसित करने के लिए इतनी खोज की यह खोज एक दिन में तो पूर्ण हुई नहीं होगी। ऋषियों की पीढ़ी दर पीढ़ी लगी होगी तब जाकर जाकर ज्ञान और सफलता मिली। योगियों अथवा ऋषियों के खोज का परिणाम यह है कि ये चक्र शक्ति केन्द्र रूप में मेरुदण्ड में स्थित है जिसमें सुषुम्ना, वज्रा, चित्रा और ब्रम्ह नाड़ी सम्मिलित है अथवा स्थित है। इन चक्रों में जिन्हे सूक्ष्म शक्ति केन्द्र कहते हैं। प्रत्येक चक्र की अपनी विशेष शक्तियां होती हैं। जो कि उस विशिष्ठ चक्र की क्रियाओं का नियंत्रण करती रहती है। देखा जाये तो प्रत्येक चक्र की ये शक्तियां मन को पूर्ण रूप से प्रभावित करती रहती है।

सुषुम्ना का मार्ग अतिसूक्ष्म है और उस सूक्ष्म मार्ग में यह सूक्ष्म शक्तियां तथा सूक्ष्म योग नाड़ियां जिन केन्द्रों पर मिलती हैं वे सब भी अति सूक्ष्म केन्द्र व मार्ग हैं। जो कि आज के अति विकसित किसी यंत्र से देखा नहीं जा सकता है। मेरुदण्ड में स्थित सुषुम्ना नाड़ी में स्थित इन

विशिष्ट स्थानों से ज्ञानवहा तथा गतिवहा सूक्ष्म तन्तुओं के गुच्छों में निकल कर समस्त शरीर में ज्ञानात्मक तथा क्रियात्मक जीवनी शक्ति प्रवाहित करते रहते हैं। इन नाड़ी गुच्छों में से होकर एक विशेष प्रकार की विद्युत धारा समस्त शरीर में प्रसारित होती है। जिसके द्वारा समस्त चक्र की ऊर्जा नियंत्रित होती है और शरीर के समस्त केन्द्र प्राण, गति और मन भी प्रभावित होता रहता है।

सभी चक्र अतीन्द्रिय शक्ति केन्द्र हैं। परिणामस्वरूप स्थूल शरीर के प्रभावित होने के कारण शरीर में ज्ञान सूत्रों के गुच्छों के रूप में या विशिष्ठ केन्द्रों के रूप में पाया जाता है। उन तन्तुओं के स्थूल गुच्छों के रूप में दिखलायी देते हैं। इन स्थूल स्नायु गुच्छों को पश्चिमी वैज्ञानिक ने भी शक्ति का विशेष केन्द्र माना है।

गुरुजी कुछ पल सोचने के बाद पुनः आगे की चर्चा करने लगे। मैं ध्यानपूर्वक सुनता और उसे नोट कर लेता था जो आज काम आ रहा है। क्योंकि ऐसे गूढ़ विषयों पर लिखना आज मेरे लिये सम्भव न होता। गुरुजी ने जो आगे बतलाया वह भी काफी महत्वपूर्ण था साधना के लिये। क्योंकि मैं साधना के साथ-साथ उन गूढ़ तथ्यों को भी जानना चाहता था ताकि साधना में कहीं कोई शंका न हो। चूंकि साधना की प्रारम्भिक अवस्था थी स्वाभाविक है उत्सुकता तो रहेगी ही।

गुरुजी बोले- अगर विचारपूर्वक देखा जाये तो मूलाधार से लेकर कण्ठ व मस्तक तक जो चक्रों की भावना की गयी है उसी में शब्द के स्फुट अक्षर निवास करते हैं। अगर वे वहां न होते तो वह स्वतः मन में नहीं आ सकते हैं। हम लोग जिस भाषा में सोचते हैं उसके मूल में इक्यावन ध्वनियां हैं और इन इक्यावन का स्थान मन में अवश्य है। विश्व की सभी भाषा की ध्वनियों में सबसे ज्यादा ध्वनि संस्कृत की मानी गयी है। चीन की ध्वनियां ज्यादा हैं। लेकिन वे चित्रलिपि पर आधारित है। अक्षरों पर नहीं।

भारतीय साधक इन इक्यावन ध्वनियों पर चिन्तन किए। इसलिये उनके छः कमल दलों पर इक्यावन अक्षर हैं। हमारी भाषा में जो अक्षर हैं वे सब मुख से ही नहीं प्रस्फुरित होते हैं बल्कि मन में भी रहते हैं। साथ

ही गहरायी में अव्यक्त होकर रहते हैं। इस जगत में कौन ऐसा है जो शब्द की पकड़ से बाहर निकल जाये। रूप, रंग, स्पर्श सब शब्द के धागों से बंधे हैं। यदि आप सोचते हैं और समझते हैं कि मन में सब अक्षर हैं, उनसे बने सब शब्द हैं, उन शब्दों से बंधे हुए सब अर्थ हैं तो हम कल्पना करें कि उन अक्षरों को बैठाना या अनुभूति करना कितना कठिन कार्य था। चक्रों में अक्षरों की कल्पना करना या उन्हे बैठाना कोई साधारण काम नहीं था क्योंकि एक अक्षर गलत बैठ जाते तो उन चक्रों से विपरीत ऊर्जा निकलने लगती या कार्य ही न करती।

क्योंकि उनमें पांचों तत्वों के बीज का अपना विशेष स्थान है। अगर सोचा जाये तो जो प्राचीन ऋषियों ने इनका विन्यास बहुत सोच समझ कर अपने आन्तर ज्ञान के द्वारा किया। षट्चक्र में केवल अक्षरों के विन्यास ही नहीं हैं अक्षरों की अपनी विशेष ऊर्जा है और अर्थ है। वे अव्यक्त शक्तियों के माध्यम हैं। इसलिए प्रत्येक चक्र के अपने-अपने तत्व और उनके बीज मंत्र हैं। यही मंत्र तत्वों के बीज रूप हैं। क्योंकि ऐसा कहा गया है कि तत्व बीजों से उत्पन्न होते हैं और उसी में विलीन हो जाते हैं।

गुरुजी बोले- यह बड़ा गम्भीर विषय है। फिर भी सरल शब्दों में तुम्हे समझाने का प्रयास कर रहा हूं।

बीज मातृका स्थूल रूप में उच्चारित होते हैं। उनमें जो सूक्ष्म रूप से शक्ति उत्पन्न होती है वही उन तत्वों का बीज है और बीज ही मूल है जैसे मणिपूर चक्र का तत्व अग्नि है और बीज मंत्र है 'र'। इसका अर्थ है यह हुआ कि अग्नि जिन शक्तियों का सम्मिलित बाहरी रूप है उन शक्तियों से जो सूक्ष्म शब्द बनता है उसी का स्थूल यानि बैखरी शब्द रूप 'र' अक्षर है यानि बीज है। जो साधक मानसिक या वाचिक रूप से जप करता है उसका बीज तत्व सक्रिय होने लगता है और उसका ताप साधक अपने अन्दर अनुभव करने लगता है। लेकिन उच्चारण के समय सम्पुट मंत्र होना चाहिये। जैसे अग्नि का कर्म है फैलना। उसे एक जगह बांधा न जाये तो वह चारो तरफ फैलने लगेगी। उसके सामने जो भी आयेगा उसे भस्म कर देगी। उसी प्रकार अग्नि बीज है 'र'। यह अग्नि की तरह है। केवल 'र' जपने से यह फैलने लगेगा। इसके ताप को साधक सहन नहीं

क़र सकता। इसलिए मंत्रों को सम्पुट किया जाता है यानि बांधा जाता है। ताकि उनमें प्रवाह रहे फैलाव नहीं। इसलिए पांचों तत्वों के जो बीज मंत्र हैं उसे 'ऊं नमः' से सम्पुट किया गया है। जैसे 'रं' बीज जिसे तुम 'ऊं रं नमः' कर जप कर सकते हो। उसी प्रकार अन्य तत्व के साथ भी ऐसा कर सकते हो। मंत्र शास्त्र के अनुसार इसे मंत्र चैतन्य कहते हैं।

मंत्र और देवता शब्द, अर्थ के मिश्रित रूप हैं। जप के द्वारा देवता को चैतन्य किया जाता है। जप को तंत्र में उस क्रिया के समान माना गया है जो सोते व्यक्ति को जगा दे। जप में जो मंत्र उच्चारित होता है या जिस देवता का नाम जप किया जाता है वह उस देवता का ही वाचक होता है। इस प्रकार नाम शब्द है और देवता अर्थ है। शाक्त मत कहता है अधरोष्ठ (नीचे का होंठ) शक्ति है और उत्तरोष्ठ (ऊपर क़ा होंठ) शिव है और साधक शिव-शक्ति का रूप है। दोनों होंठों के संघर्ष से ही मंत्र देवता की उत्पत्ति होती है। इसलिए सभी देवता शिव-शक्ति से उत्पन्न हुए हैं। मंत्र चैतन्य होने से ही साधक मंत्र को क्रियाशील बना सकता है। इस प्रकार 'र' बैखरी शब्द ध्वनि उस चित्त शक्ति का स्थूल रूप है जो साधक को अग्नि को वश में कर लेने की गति शक्ति देता है।

शाक्त साधकों के अनुसार समस्त सृष्टि के मूल में ईश्वर का शब्द है। जिस प्रकार समस्त ब्रम्हाण्ड में ध्वनि शब्द गूंज रहे हैं, उसी प्रकार हमारे शरीर में भी प्रगट हो रहे हैं। जो साधक शब्द साधना के सूक्ष्म रूप के साथ विश्व चेतना में प्रवेश करता है वह शक्ति मंत्र को क्रियाशील बना देती है। ईश्वर अर्थात् सदाशिव रचनात्मक शक्ति समस्त विचारों का मूल है। प्रत्येक साधक अथवा मनुष्य शिव रूप है। वह जितनी मात्रा में अनुभव करता है वह सदाशिव की शक्ति के निकट पहुंचता जाता है।

विभिन्न देवता शिव के ही विभिन्न शक्ति रूप हैं। साधक द्वारा मंत्रों के बल पर उत्पादित देवता अर्थात् परदेवता का नित्य शुद्ध रूप नहीं है। बल्कि साधक द्वारा उत्पादित और साधक के कल्याण और कार्य सम्पन्न करके पुनः तिरोभूत हो जाने वाले देवता मात्र है

साधक चैतन्य मंत्र देवता के रूप में कार्य करता है और निरन्तर साधना के द्वारा साधक इस चैतन्य को ब्रम्हाण्डीय चैतन्य के जितना

अधिक अभिन्न करता चला जाता है उतना अधिक वह सिद्धि और ज्ञान को उपलब्ध होता चला जाता है। ब्रम्हाण्डीय शक्ति मनुष्य के अन्दर ही चेतना के रूप में अवस्थित है। देवता मंत्रों के वश में और मंत्र साधक के। कहने का तात्पर्य यह है कि ब्रम्हाण्डीय शक्ति हमारे अन्दर है बस उसे मंत्र बल के द्वारा जाग्रत करना है। यह साधक के संयम पर निर्भर करता है। मूल में कुल कुण्डलिनी है और सभी मंत्र उसकी स्वरूप विभूति है और अक्षरमयी होने के कारण इसे मातृका भी कहते हैं। यह विराट ब्रम्हाण्ड में चैतन्य रूप है यह निरन्तर गतिशील चैतन्य रूपा है यह निरन्तर गतिशील चैतन्य होने के कारण समस्त काल में व्याप्त है। यह परमा कला की नाद शक्ति यही आदि शक्तिरूपा है।

समय काफी हो गया था। गुरुजी के साधना का समय था। गुरुजी बोले- ठीक है इस विषय पर कल चर्चा होगी। विषय इतना जटिल था कि बहुत सी बातें समझ में नहीं आ रही थी। लेकिन साधना तो करना था और इन विषय को भी जानना था ताकि साधना में किसी प्रकार का भ्रम न रहे।

दूसरे दिन सायंकाल के समय गुरुजी अपने आसन पर बैठे हुए थे कुछ भक्तगण भी उपस्थित थे। मुझे देखते हुए गुरुजी मुस्कुरा कर बोले- तुम्हारे प्रश्नों का समाधान करता हूं। आज तुम्हारी क्या जिज्ञासा है। मैंने कहा- आपने कल मंत्रों और शब्दों यानि अक्षरों की चर्चा की उसे थोड़ा विस्तार से समझा दें तो अच्छा होगा ताकि साधना के समय भ्रम न पैदा हो।

गुरुजी बोले- सारे रहस्य के मूल में कुण्डलिनी ही है। यही एक ऐसी साधना है जो योग से शुरू होती है और समाप्त तंत्र में होती है। मेरा कहने का मतलब है सारे योग और तंत्र साधना के मूल में कुण्डलिनी शक्ति की साधना है। इसे एक दिन में समझा नहीं जा सकता। इसके लिये चिन्तन-मनन और अभ्यास की आवश्यकता है। किसी भी साधना में तत्व का बड़ा महत्व है। तत्व के विषय को पहले समझो फिर उसे क्रिया रूप में लाओ। प्रकृति की सारी क्रिया पंचतत्व के अन्तर्गत है। लेकिन इस बात पर ध्यान देना आवश्यक है। पंचतत्व यानि पंच महाभूतों में दो तत्व अभूत हैं और बाकि तीन भूत हैं।

आकाश और वायु अभूत हैं और अग्नि, जल और पृथ्वी भूत तत्व हैं। अभूत तत्व में आकाश प्रधान है और भूत तत्व में अग्नि। शब्द आकाश का धर्म है रूप यानि तेज, अग्नि का धर्म है। हठयोग प्रदीपिका में कहा गया है कि जो कुछ भी हम सुनते हैं वह शब्द के रूप में शक्ति ही है। लेकिन परमेश्वर सब तत्वों से परे है! क्योंकि शब्द सूक्ष्म होने पर भी स्थूल अमूर्त तत्व का ही धर्म है। इस प्रकार शब्द ब्रम्ह सृष्टि क्रिया में प्रवृत्त होने के समय अपने को दो रूपों में अभिव्यक्त करता है। प्रथम शब्द रूप में जो पहले अनुभूति रूप में चित्त में स्पन्दित होता है फिर इन्द्रियों के माध्यम से स्थूल शब्द के रूप में प्रगट होता है।

यह दोनों ही चित्त शक्ति के कार्य हैं। चित्त शक्ति को ही वाक देवी कहते हैं। शाक्त साधना में भगवती काली के इक्यावन मुण्ड की माला यही इक्यावन वर्ण की संख्या मात्र है। काली वाक देवी अथवा चित्त का ही वह रूप है जो उनके कालगत प्रक्रिया को अभिव्यक्त करता है। महाप्रलय के समय ये वर्णात्मक अक्षर उसी के स्वरूप में लीन हो जाते हैं। यह चैतन्य के अलावा कुछ नहीं है

यही चैतन्य शब्द और अर्थ के रूप में अभिव्यक्त होकर जगत सृष्टि का कारण है। यही चित्त रूपा शक्ति प्रत्येक प्राणी में कुण्डलिनी के रूप में स्थित है और अपने को वर्णात्मक शब्द में अभिव्यक्त करती रहती है। गुरुजी कुछ रूकने के बाद पुनः बोले- शारदा तिलक में बड़ा ही अद्भुत श्लोक है- चैतन्य सर्वभूतानां शब्द ब्रम्हमेति में गति।

तत्प्राप्य कुण्डली रूपं प्राणिनां देह मध्यगम।
वर्णात्मनाऽविर्भवति गद्य पद्यादि भेदतः॥

कुछ पल बाद गुरुजी फिर कहना शुरू किये- जानते हो शाक्त साधना में सृष्टि को मिथुनात्मक कहा गया है। क्योंकि मूल में परब्रम्ह निचेष्ट है केवल शक्ति सक्रिय होकर शब्द ब्रम्ह को उत्पन्न करती है। इसी को विपरीत रति काली कहते हैं यानि महाकाल निचेष्ट है और महाकाली सक्रिय है यह बड़ा ही गम्भीर विषय है। लेकिन इसे इस प्रकार तुम समझ सकते हो।

बिन्दु शब्द का प्रयोग इस प्रक्रिया को समझने में सहायक होगा।

देखा जाये बिन्दु शुक्र का रूप है। यही बिन्दु कुण्डलिनी के रूप में प्रगट होता है। कुण्डलिनी महाशक्ति ही है। तंत्र में कुण्डलिनी को महामस्तिका सुन्दरी कहते हैं। वस्तुतः बिन्दु शक्ति ही क्रियाशील होकर अग्रसर होने की अवस्था है। जो इक्यावन वर्णों के रूप में कुण्डलीत है। मातृका स्थूल शब्द अक्षर का सूक्ष्म रूप है। तंत्र का कहना है जब कुण्डलिनी एक कुण्डल होती है तब वह बिन्दु रूप कहलाती है। जब वह दो कुण्डलीत यानि दो वलय की होती है तब वह प्रकृति-पुरुष रूप अवस्थित होती है। जब वह तीन वलय में अवस्थित होती है तब वह इच्छा, ज्ञान, क्रिया रूपणी शक्ति अथवा सत्व, तम और रजस गुणत्रयी शक्ति कहलाती है। सांख्य कथन द्वारा इस समय कुण्डलिनी न प्रकृति, न विकृति के रूप में रहती है। लेकिन जब साढ़े तीन वलय की होती है तब विकृति के साथ वास्तविक क्रियाशील होती है यही मानव पिण्ड में मूलाधार में अवस्थित है।

शक्ति संगम तंत्र के अनुसार चार वलय में यह शक्ति एकजटा देवी रूप है। इस तरह वह इक्यावन वलयों में अवस्थित हो जाती है तब वह मातृकोत्पत्ति सुन्दरी होती है। इस तरह जब मूलाधार चक्र से ऊपर उत्थान करती है तब वह सर्वप्रथम पश्यन्ति, मध्यमा और बैखरी वाक में अपने को जगत में अभिव्यक्त करती है।

यही शक्ति प्रारम्भ में परमा कला अम्बिका रूप परावाक है। उस समय वह शाक्त स्वरूपा है। प्रथम क्रियाशील होने पर वह रूप का साक्षात्कार करती है। जब वह पश्यन्ति रूप में होती है तब वह इच्छा शक्ति का प्रतीक रूप होती है। क्योंकि उस समय ब्रम्ह की उस इच्छा का प्रतिनिधित्व करती है जिसमें "मैं एक हूं अनेक हो जाऊं"। यही इच्छा शक्ति बिन्दु में अंकुश रूपा होकर विराजमान है। अंकुश रूपा इसलिए कहा गया है कि यह स्पन्द की प्रथम अवस्था है। स्पन्द यानि गति आने के पूर्व जो एक प्रकार से वक्रता होती है। जो प्राणि में परिलक्षित है इसी अवस्था को सूचित करने के लिए तंत्र में इस इच्छा शक्ति को अंकुश रूपा कहा गया है। अंकुश ही उत्थान है और निरंकुश ही पतन है।

शक्ति संगम तंत्र में अंकुश रूपा शक्ति को वामा शक्ति कहते हैं। मध्यमा के रूप में प्रगट होने पर इन्हे ऋजु रेखा कहते हैं। यही ज्ञान शक्ति

का स्वरूप है। इच्छा शक्ति अंकुश रूपा वामा और ज्ञान रूपी ऋजु रेखा जेष्ठा है। वामा शिव की वह शक्ति है जिसमें उद्वैक हुआ और जेष्ठा वह शक्ति है जो उद्वैक के बाद सहज हो गयी है। यही सृष्टि प्रक्रिया के दो अवस्थाओं का नाम है। यही सहज अवस्था मातृका रूप है। इसमें विशेष स्पन्द होता है और यही बैखरी वाणी में अभिव्यक्त होती है।

इस अवस्था को क्रिया रूप यानि रौद्री शक्ति कहते है। तंत्र भी यही त्रिकोणात्मक शक्ति है। यह तीनों दिशाओं की गतिशील स्थूल सृष्टि का आरम्भ होता है एक प्रकार से यह तीन आयाम (थ्री डायमेन्शन) है। इन तीन आयाम के अन्दर ही सृष्टि प्रक्रिया चल रही है।

मध्यमा में स्थित ज्ञान शक्ति रूपा जेष्ठा शक्ति ही मातृका अर्थात् स्थूल अक्षरों को सूक्ष्म रूप में अभिव्यक्त करती है अर्थात् अन्तिम रौद्री यानि क्रिया शक्ति स्थूल शब्दों का व्यक्त रूप है। इसलिये कुण्डलिनी पचास अथवा इक्यावन शब्द अथवा वाणी के रूप में कुण्डलीत है। षट्चक्रों में इन्ही वाणी अथवा अक्षर को दर्शाया जाता है।

उद्बुद्ध कुण्डलिनी इन्ही अक्षरों के कुण्डल यानि वलय को छोड़ कर सूक्ष्म परावाक के रूप में प्रकट होती है। इसलिए वह समस्त मंत्रों की सूक्ष्म और स्थूल आधार है।

कहने का तात्पर्य यह है कि समस्त देवी-देवताओं और उनकी शक्ति जो ध्यान, धारणाएं, क्रिया आदि बतलायी गई हैं वे क्रियाशील पराशक्ति के ही विभिन्न रूप हैं।

गुरुजी कुछ गम्भीर होते हुए बोले- सच्चा साधक वही है जो साक्षात्कृत तत्वों को उनके बीज रूप को मंत्र में परिणित कर सकता है। कुछ लोग सूक्ष्म तत्वों को न समझ कर बस मंत्रों को रटते रहते हैं यानि आध्यात्मिक तत्ववाद को न समझ कर स्थूल कल्पनाओं को अधिक महत्व देने लगते हैं। जिसके कारण सारी साधनाएं अर्थहीन जंजाल की तरह दिखने लगती है।

मूल तत्व यानि गुणातीत शक्ति जिसकी अभिव्यक्ति क्रमशः स्थूल से स्थूलतर तत्वों की ओर होती गयी। इसलिए आर्ष ऋषियों ने समस्त क्रियाओं और मंत्रों को केन्द्रित कर और सारी यौगिक तांत्रिक प्रक्रिया को

सहज बना कर कुण्डलिनी साधना में केन्द्रित कर दिया। ताकि साधक अन्य क्रियाओं के प्रपंच में न फंस कर एकमात्र कुण्डलिनी साधना कर आत्मा की उच्चावस्था को उपलब्ध हो सके।

कुछ पल बाद मैंने कहा- इतना गम्भीर विषय था कि बहुत कुछ तो समझ में भी नहीं आया। गुरुजी हंसते हुए बोले- साधना सम्बन्धित विषय अति गम्भीर होते हैं इसे समझना इतना सरल नहीं है। साधना चिन्तन-मनन, सतत साधना और सतत अभ्यास चाहता है। जैसे-जैसे तुम अनुभव करते जाओगे साधना सहज और सरल होती जायेगी। जैसाकि मैंने तुम्हे अय्यर जी के सान्निध्य में योग का अभ्यास करवाया। क्योंकि योग आवश्यक है प्रत्येक साधक के लिए। क्योंकि शरीर प्रकृति द्वारा हमें मिला है हमारा शरीर प्रकृति का विशेष उपहार है। मानव तन वह चौराहा है यानि मनुष्य उस चौराहे पर खड़ा है। चाहे वह देवतुल्य बन जाये या राक्षस या मानव या पशु। सामने देवत्व पथ है पीछे राक्षस यानि तामसिक पथ है। दांयें सामान्य मनुष्य पथ और बांयें पशुवत् जीवन का पथ। वह प्रकृति द्वारा मुक्त है किसी भी पथ पर जाने के लिए। यही कारण है मनुष्य को स्वयं अपना पथ चुनना पड़ता है। क्योंकि प्रकृति का साथ नहीं मिलता। प्रकृति पशु-पक्षियों का साथ देती है। जब आत्मा मनुष्य योनि को प्राप्त कर लेती है तब प्रकृति उससे दूर चली जाती है।

इसका कारण क्या है- मैंने प्रश्न किया? कारण यह है कि मनुष्य के पास सोचने-समझने और अच्छे-बुरे का निर्णय लेने की क्षमता है यानि ईश्वर द्वारा प्रदत्त विवेक, विचार और बुद्धि है उसके पास। जोकि पशु-पक्षियों के पास नहीं है। इसलिये प्रकृति उनका हर पल साथ देती रहती है। हर मनुष्य साधक रूप में ही जन्म लेता है। क्योंकि उसका प्रथम पथ देव पथ है नर से नरोत्तम बनने का है। जब वह सन्तुलन नहीं कर पाता तो किसी और पथ में भटक जाता है तब उसे पुनः जन्म लेना पड़ता है। क्योंकि उसका जो सद्मार्ग था जिस पर उसे चलना था वह चूक गया। जिसके कारण वह पुनः जन्म लेता है। जब-जब चूकता रहेगा तब-तब उसे जन्म लेना ही पड़ेगा। यही जन्म-मरण का कष्ट है। यह चक्र चलता रहता है जब तक उसे सद्मार्ग नहीं मिल जाता।

मैंने पुनः प्रश्न किया- हर मनुष्य साधक रूप में जन्म लेता है समझा

नहीं। गुरुजी बोले- हर मनुष्य साधक इसलिए है कि उसके अन्दर दैवीय शक्ति होती है। कुण्डलिनी शक्ति चेतना रूप में काम करती रहती है। साढ़े तीन वलय की कुण्डलिनी सुप्तावस्था में रहती है। लेकिन उसकी शक्ति क्रिया रूप में मानव तन में काम करती रहती है। जब मनुष्य जन्म लेता है और मृत्युपर्यन्त तक वह अजपा गायत्री का मंत्र जपता रहता है।

मैं प्रश्न भरी नजरों से गुरुजी को देखने लगा। मैं कुछ प्रश्न करता गुरुजी हंसते हुए बोले- मैं समझ रहा हूं तुम्हारे मन में क्या चल रहा है। तो सुनो- अजपा गायत्री का सम्बन्ध हमारे श्वांस-प्रश्वांस से है। श्वांस-प्रश्वांस के माध्यम से स्वतः यानि प्राकृतिक रूप से अजपा गायत्री मंत्र चलता रहता है। जब श्वांस-प्रश्वांस में विघ्न आ जाता है तब मनुष्य धीरे-धीरे मृत्यु की ओर अग्रसर होने लगता है। क्योंकि हमारी जीवनी शक्ति और आयु हमारे श्वांस-प्रश्वांस पर ही निर्भर करती है। इसलिए साधना में प्राण साधना का अपना विशेष महत्व है।

अजपा गायत्री का क्या रहस्य है पहले तुम इसे समझने का प्रयास करो। हम लोग जो श्वांस लेते हैं। वह स्थूल वायु है। वह प्राण वायु का बाह्य रूप है। स्थूल वायु से ही प्राण वायु का नियमन होता है। इसी प्रक्रिया को प्राणायाम कहते हैं। स्थूल प्राणायाम इड़ा और पिगला नाड़ियों में चलता है और सूक्ष्म प्राण वायु सुषुम्ना मार्ग से ही चालित होता है। यही सूक्ष्म प्राण शक्ति द्वारा ही कुण्डलिनी जाग्रत होती है। इसी प्राण शक्ति द्वारा षट्चक्र भेदन में साधक समर्थ होता है। विचारपूर्वक देखा जाये तो सभी प्राणी अजपा गायत्री का जप किया करते हैं।

यह अजपा गायत्री श्वांस-प्रश्वांस की क्रिया पर होती है। सः कार श्वांस भीतर जाता है और हं कार के साथ श्वांस बाहर निकलता है इसी को सोऽहं वृत्ति कहते हैं यही अजपा गायत्री है।

हमारे अन्दर श्वांस-प्रश्वांस की क्रिया इक्कीस हजार छः सौ बार चलती है और इतनी बार अजपा गायत्री का जप चलता रहता है अपरोक्ष रूप से। लेकिन इसका भान साधारण मनुष्य को नहीं हो पाता। लेकिन साधक साधना के बल पर इसे सिद्ध कर लेता है। क्योंकि यह महत्वपूर्ण है आन्तर तल में प्रवेश के लिये।

ज्योतिष शास्त्र के अनुसार मानव की आयु सीमा एक सौ बीस वर्ष मानी गयी है। लेकिन कम ही लोग होते हैं जो पूर्ण आयु का भोग कर पाते हैं। क्योंकि जो आयु निर्धारित है उसका सीधा सम्बन्ध हमारे श्वांस-प्रश्वांस पर निर्भर है। हमारे श्वांस-प्रश्वांस में जब विघ्न आता है तब हमारा जीवन ही बदल जाता है। आयुर्वेद शास्त्र में दो शब्द का बड़ा महत्व है पहला है आधि और दूसरा है व्याधि। इसका अर्थ बड़ा ही गहन है। आधि का तात्पर्य है आकाश। आकाश जहां है वहां विचार है। जब विचार अशुद्ध होते हैं तब हमारी मानसिक दशा बिगड़ने लगती है। जिसका सीधा सम्बन्ध मस्तिष्क से है और मस्तिष्क अशान्त होगा तब श्वांस-प्रश्वांस का लय बिगड़ेगा और इसका सीधा प्रवाह हमारे प्राकृतिक जनित वात-पित्त-कफ से है। जिसे व्याधि कहते हैं यानि आधि का सम्बन्ध मस्तिष्क और विचार से है और व्याधि का सम्बन्ध वात-पित्त-कफ यानि हमारे शरीर के सन्तुलन से है। इन दोनों का सम्बन्ध हमारे श्वांस व्यवस्था से है। जब श्वांस का लय असन्तुलित होगा तब हमारा शरीर, मन और मस्तिष्क तीनों असन्तुलित हो जायेंगे। जिनका परिणाम शारीरिक-मानसिक रोग है। किसी भी प्रकार का शारीरिक मानसिक असन्तुलन होगा तो हमारी शारीरिक व्यवस्था अवश्य बिगड़ने लगेगी और जब शरीर जर-जर होगा तब आयु का कोई महत्व ही नहीं है। इसलिये योगी-साधकों ने प्राण साधना को महत्व दिया। उनका कहना था- अगर हमारा श्वांस सन्तुलित है तब मन विचार और शरीर भी सन्तुलित होगा। सिद्ध साधक सैकड़ों वर्षो तक जीने का रहस्य प्राणायाम द्वारा ही प्राप्त करते थे। कृष्ण कहते हैं जब तुम एक क्षण जी लेते हो तब दूसरा क्षण मिलता है और इसके मूल में श्वांस-प्रश्वांस ही है।

समझ में कुछ आया- गुरुजी मेरी ओर देखते हुए पूछे? फिर आगे बोलना शुरू किये- पहले श्वांस पर नियंत्रण करना सीखो। तब साधना में आगे बढ़ सकते हो।

मैंने पूछा- वह कैसे? चूंकि मेरी साधना की प्रारम्भिक अवस्था थी उत्सुकता बनी रहती थी और आगे जानने की जिज्ञासा भी। जब समय मिलता गुरुजी के पास बैठ जाता और वे जब भी कुछ बोलते कुछ नया रहस्य ही खुलता।

गुरुजी समझाते हुए आगे कहना शुरू किये- अजपा सिद्धि...पर

ध्यान दो। आसन, प्राणायाम के बाद सुखासन यानि शिव जिस प्रकार सहज समाधि के अवस्था में बैठे वही श्रेष्ठ आसन है। उसी प्रकार बैठ कर 'सोऽहं' का जप करो यानि सहज अवस्था में श्वांस-प्रश्वांस के साथ 'सोऽहं' का जप करो। बस फिर क्या था साधना-पूजा करने बाद अजपा गायत्री यानि 'सोऽहं' का श्वांस-प्रश्वांस के साथ लयबद्ध करने लगा। शुरू में तो दिक्कत होती रही। लेकिन श्वांस धीरे-धीरे सधने लगी। उसके बाद एक गहन शान्ति का अनुभव होता। बस श्वांस-प्रश्वांस ही रहता कुछ समय बाद न शरीर का बोध रहता, न समय का। धीरे-धीरे मन, शरीर शान्त होने लगा। पहले एक़ान्त प्रिय नहीं था। लेकिन अब एकान्त ही ज्यादा अच्छा लगता। कम ही लोगों से बातें करता या मिलता। लेकिन गुरुजी मेरी हर क्रिया-प्रतिक्रिया पर ध्यान अवश्य रखते थे। लेकिन कुछ कहते नहीं थे। वर्ष ९३ से ९५ तक योग चिन्तन और साधना में रहा। विवाह के बाद गुरुजी की आज्ञा से शाक्त साधना में प्रवेश किया जो अनवरत चल रही है। साधना के प्रारम्भिक काल में बहुत सी यौगिक अनुभूतियां हुई और गुरुजी के माध्यम से सन्त-साधकों के दर्शन लाभ भी हुए। लेकिन एक ऐसी घटना घटित हुई जो आज तक विस्मृत नहीं कर पाया। आज भी मेरे मानसपटल पर घूमती है।

सन्त समाज में चतुर्मास का काफी महत्व है। जो विष्णु शयन से प्रारम्भ होता है और चार माह तक चलता है। यह समय वर्षाकाल का होता है। इसी वर्षाकाल में सावन का विशेष पर्व आता है। जिसमें एक माह तक शिव की आराधना होती है। जिसका पूरे भारतवर्ष में विशेष महत्व है। इसी चतुर्मास के समय काफी सिद्ध साधक काशी में चार माह के लिए साधना हेतु आते हैं और यहीं रहते भी हैं। उस समय काफी साधकों का आना होता था गुरुजी के पास।

सायंकाल का समय। घनघोर वर्षा हो रही थी। पूरा काशी उस समय शिवमय सा हो गया था। काशी में ऐसा कोई देवालय नहीं था जिसमें भीड़ न हो। साधु-सन्त, गृहस्थों व कांवरियों व गैरिक वस्त्रधारियों से काशी भरा पड़ा था और ऊपर से अनवरत वर्षा भी हो रही थी।

तभी एक लम्बे चौड़े कद के संन्यासी का प्रवेश होता है। उम्र कोई

सत्तर वर्ष के ऊपर, घनी बाल दाढ़ी। शरीर पर उम्र का कोई निशान नहीं। दोनों कानों में स्वर्ण कुण्डल, गले में माला, शरीर पर केवल गैरिक दुपट्टा और लुंगी और हाथ में दण्ड। गुरुजी अपने आसन पर बैठे थे उनके चेहरे पर कोई भाव नहीं था वह संन्यासी गुरुजी को प्रणाम कर सामने कुर्सी पर बैठ गया। कुछ पल कमरे में खामोशी रही मैं बार-बार उस विकट संन्यासी को देख रहा था।

तभी गुरुजी बोले- कहां से आगमन हुआ है भगवन।

वह संन्यासी बोला- राजस्थान से। एक सज्जन पुरुष द्वारा आपके बारे में पता चला था। बस आपके दर्शन करने चला आया। उन्ही ने आप के निवास का पता बतलाया था।

कुछ लेंगे- गुरुजी पूछते हैं?

नहीं...प्रभु...बस आपसे मिलने की इच्छा थी। कुछ प्रश्न हैं जिसका समाधान अभी तक नहीं हो पाया। बीस वर्ष का लम्बा समय बीत गया नाथ साधना करते-करते यानि मैं नाथ परम्परा से जुड़ा हुआ हूं।

गुरुजी बोले- मैं समझा नहीं कृपया विस्तार से बतलायें। हो सकेगा तो समाधान करने का प्रयास करूंगा।

प्रभु आपको तो पता है राजस्थान में विवाह आदि जल्दी हो जाता है। मेरा भी विवाह जल्दी हो गया। खेती आदि के साथ व्यापार भी था और कोई कमी नहीं थी। जीवन आराम से चल रहा था अपने माता-पिता, पत्नी और दो बालकों के साथ। गर्मी का समय था। दिन ढल रहा था। मैं आराम से अपनी गद्दी पर बैठा था। ऐसा लगा जैसे मेरे आंखों के सामने अंधेरा सा छा रहा है। ऐसा लगा मैं बेहोश सा हो गया था। लेकिन मुझे आभास हर चीज का हो रहा था। शायद कुछ देर बाद ही मुझे लोग पास के सरकारी अस्पताल में ले गये। लेकिन आज जैसी सुविधा उस समय नहीं थी।

यह किस वक्त की बात है- गुरुजी पूछते हैं।

यही सन् सत्तर के दशक की है। खैर, मुझे अस्पताल में भरती करा दिया गया। पत्नी सहित परिवार के अन्य सदस्य मुझे घेरे हुए थे। पत्नी मेरे पास थी उसका हाथ मैं जोर से पकड़ लिया। ऐसा लग रहा था कि जैसे जीवन खत्म होने वाला है। सब कुछ अब छूट जायेगा। पत्नी का धुंधला

चेहरा बस नजर आ रहा था। फिर धीरे-धीरे चारो तरफ छोटे-छोटे लाल-पीले प्रकाशपुंज बहुत ही तीव्र गति से घूमने लगे। उनकी गति एकाएक तीव्र हो गयी।

वे मेरे चारो तरफ तीव्र गति से घूमते रहे और उसकी गति अति तीव्र होती चली गयी। बस इतना याद है। मैं अपनी पत्नी का हाथ जोर से पकड़े रहा वह शिथिल पड़ने लगा। बस एकाएक चारो तरफ घोर अंधकार सा छा गया।

जब मुझे होश आया तो मैं अपने को अत्याधुनिक अस्पताल में पाया। कमरे में हल्का सफेद प्रकाश था जैसे दीवारों से आ रहा हो। कहीं कोई बल्व, पंखा या तार नजर नहीं आ रहा था। चारो तरफ घोर शान्ति थी। इस प्रकार का तापमान था कि न गर्मी का एहसास हो रहा था न सर्दी का। जब मैंने चारो तरफ नजर घुमाकर देखा मेरे आस-पास काफी लोग थे। लेकिन कोई कुछ बोल नहीं रहा है। तभी एक युवा नारी दौड़ कर आती है मेरे पास। परन्तु उसके आंखों में आंसू नहीं थे। फिर भी मुझे लगा जैसे वह अन्दर से रो रही है। वह कुछ बोल नहीं रही थी। बस मुझे कसकर पकड़ ली। वह क्या बोल रही थी मुझे सब समझ में आ रहा था। कितने वर्षों से आप इस तरह पड़े रहे। तीन वर्ष का लम्बा समय निकल गया। तीन वर्ष बाद आपको होश आया। आपका पुत्र पांच वर्ष का हो गया। तभी सुन्दर सा लड़का मेरे पास आता है। दोनों काफी सुन्दर थे। वहां सभी लोग सफेद वस्त्र में ही थे और कोई रंग दिखा ही नहीं। मुझे कुछ समझ में नहीं आ रहा था। जैसे मैं सब कुछ भूल सा गया हूं। खैर,

दो-तीन दिनों बाद मुझे हवेलीनुमा मकान में लाया गया। वहां नौकर-चाकर अन्य लोग भी थे। सभी के चेहरे पर खुशी की लहर थी। चारो तरफ हरियाली थी। स्वच्छ आकाश था। किसी प्रकार का शोर नहीं था। चारो तरफ अपूर्व शान्ति थी। ऐसा लगा जैसे वर्षो बाद अपने घर लौटा हूं।

कोई चीज की कमी नहीं थी जो सोचता वह तुरन्त प्रस्तुत हो जाता। विचारों में सन्तुलन था। व्यर्थ का विचार नहीं आते थे। वे सभी लोग मानसिक रूप से बातें करते। निःशब्द वातावरण, अपूर्व शान्ति का

एहसास हो रहा था। जहां कहीं भी जाने की इच्छा होती अपने को वहीं पाता। ऐसे ही एक दिन नदी के तट पर जाने की इच्छा हुई। देखा नदी के पास बैठा हूं। हल्का मध्यम प्रकाश दूर आकाश में फैला था। पक्षियों की आवाजें उस वातावरण में मधुर रस घोल रही थी। लेकिन पक्षियों की आवाजे कोलाहल पैदा नहीं कर रही थी। मेरे अन्तरमन में अनुभूति हो रही थी। तभी मेरी नजर दूर मन्दिर पर गयी। काफी नर-नारी पूजा कर वापस लौट रहे थे। कुछ मेरे पास से गुजरे मुझे देखकर बस मुस्कुरा देते। कोई वृद्ध नहीं दिख रहा था। बस वही वृद्ध सा दिखता जिसके केश सफेद थे। लेकिन शरीर से युवा लगते थे। तभी वही खूबसूरत नारी मेरे पास आयी और कुछ बोलती है परन्तु उसके होंठ नहीं हिल रहे थे। लेकिन वह क्या कह रही है तुरन्त समझ में आ जाता। वह बोली- अभी पूर्ण स्वस्थ नहीं हुए है। घर वापस चलिये आपको विश्राम करना है।

उसने घर लाकर मुझे बिस्तर पर लिटा दिया। प्रेम से चादर ओढ़ाते हुए बोली- बस चुपचाप पड़े रहें। कहीं जाना भी होगा तो मेरे साथ चलेंगे। वह नारी जो अपने को मेरी पत्नी कहती थी चली गयी। तभी उसी प्रकार रंग-बिरंगे ज्योतिपुंज मेरे आंखों के सामने घूमने लगे। जैसे मैं किसी भंवर में घूमता जा रहा हूं। उस नारी को याद किया। तभी उसके हाथों का एहसास हुआ जैसे मेरे शरीर को हिला रही थी। लेकिन मुझे कुछ समझ में नहीं आ रहा था। एक पल में सब कुछ अन्धेरे में डूब गया। जब आंखे खुली तो अस्पताल के बिस्तर पर अपने को पाया। मेरे पास खड़े डॉक्टर की आवाज मेरे कानों पर पड़ी ईश्वर का लाख-लाख शुक्र है कि इन्हे होश आ गया।

पता चला पिछले पन्द्रह दिनों से मैं बेहोश पड़ा था। मेरे जीने की कोई उम्मीद नहीं थी। सब लोग निराश हो गये थे। मुझे होश में देख कर परिवार के सभी लोगों ने राहत की श्वांस ली।

धीरे-धीरे जीवन सामान्य होने लगा। सबसे बड़ी बात यह है कि उस जगत का हर दृश्य, हर बात एकदम याद है। लेकिन जब मैं उस जगत में था यहां की बातें, परिवार अथवा मेरे साथ क्या हुआ कुछ भी याद नहीं था। लगता था वहां का संसार सत्य है। मैं एक पल भी उस क्षण को

विस्मृत नहीं कर पाता। धीरे-धीरे मन उचाट होने लगा। विरक्ति सी होने लगी। बस उस संसार और उन लोगों को याद करता जो मेरे साथ थे यानि मेरा परिवार, मेरे माता-पिता, पत्नी, बच्चे सब पराये से लगने लगे। समझ में नहीं आ रहा था।

गुरुजी को प्रभु कह कर वह संन्यासी सम्बोन्धित कर रहा था। वह बोला- प्रभु आपको तो पता है वैराग्य ऐसे तो उत्पन्न नहीं होता जब तक जीवन मे कोई बड़ी घटना न घट जाये।

गुरुजी बोले- वैराग्य तो असीम वेदना या असीम विरक्ति में ही मानव जीवन में उत्पन्न होता है।

वह बोला- बस यही कहना चाह रहा था कि असीम विरक्ति के कारण एक दिन घर-परिवार छोड़ कर निकल पड़ा। सत्य क्या है? यह जगत सत्य है या कोई और जगत? जहां हमारी आत्मा का मूलस्रोत है, जहां हम सहज जीवन जीते रहते हैं। जगत में हम यात्री की तरह आते और मोह-माया में फंस दुख-सुख का भोग करते रहते हैं फिर हो जाते हैं मृत्यु को उपलब्ध।

गुरुजी बोले- आपका प्रश्न तो मुझे सोचने के लिए विवश कर दिया। खैर, आगे क्या हुआ।

संन्यासी कहना शुरु किया- घर-परिवार छोड़ कर तीर्थ स्थलों एवं पहाड़ों पर भटकता रहा। कहीं भी सन्तुष्टि नहीं मिल पा रही थी। रूद्रप्रयाग के पहाड़ी जंगल में मुझे एक महात्मा का दर्शन हुआ। उनके चेहरे पर अपूर्व तेज था। वृद्ध शरीर होने पर भी उनके अन्दर असीम स्फूर्ति और ऊर्जा थी। पता नहीं क्यों मुझे अन्दर से लगा यही मेरा मार्गदर्शन करा सकते हैं। बस मैं उनकी सेवा में लग गया। दया कर मुझे अपना शिष्य बना लिया। बस फिर क्या गुरुदेव के सान्निध्य में योग साधना का अभ्यास करने लगा। भूख प्यास पर नियंत्रण हो गया। घण्टों ध्यान में बैठा रहता। लेकिन आन्तर मन कुछ और ही खोज रहा था।

सन् ८० तक गुरुदेव के सान्निध्य में था। उनका कहना था अभी तुम्हारी योग्यता पूर्ण नहीं हुई है शक्तिपात के लिए। सहज योग पूर्ण होने पर शक्तिपात द्वारा तुम्हारे सामने भौतिक-अभौतिक जगत के रहस्य खुल

जायेंगे। तुम्हारे सारे प्रश्नों का समाधान भी हो जायेगा। लेकिन ऐसा नहीं हो पाया। गुरुदेव के आकस्मिक निधन से मेरी तपस्या अधूरी रह गयी। परन्तु गुरुदेव का अपरोक्ष सहयोग मिलता रहा और आज भी मिल रहा है। गुरुदेव की समाधि के बाद मैं अपनी साधना करता रहा। त्रिबन्ध भेदन का प्रयास भी करता रहा। लेकिन अभी तक प्रयास सफल नहीं हो पाया। आपके बारे पता चला अपने को रोक नहीं पाया बस चला आया आपके पास।

गुरुजी संन्यासी की तरफ देखते हुए बोले- गुरु का सम्बन्ध भौतिक शरीर तक नहीं है। गुरु समाधि लेने के बाद भी अगोचर रूप से अपने शिष्य का सहयोग और मार्गदर्शन करते रहते हैं। समयानुसार सूक्ष्म देह के द्वारा प्रगट होकर शक्तिपात दीक्षा भी देते हैं। शक्तिपात का तात्पर्य यह है कि शिष्य की साधना की ऊर्जा अगर आगे नहीं बढ़ पा रही है यानि उत्थान में रूकावट है तब वह गुरु अपनी ऊर्जा के माध्यम से शक्तिपात देकर उस ऊर्जा को उत्थान की ओर अग्रसर कर देता है। शक्तिपात यानि गुरु के स्वयं की ऊर्जा। आपकी ऊर्जा जहां तक पहुंची है आगे नहीं बढ़ पा रही है वह गुरु ही कर सकता है। सहज योग यानि नाद योग, यह कुण्डलिनी की सर्वोच्च साधना है। गुरु प्रदत्त साधना के अन्तर्गत आता है।

नाद योग सामरस्य मिलन ब्रम्ह साक्षात्कार का मार्ग है। साधक मुक्तासन में बैठ कर सांभवी मुद्रा के द्वारा दाहिने कान में आने वाली ध्वनि सुनता है और षट्मुखी मुद्रा और प्राणायाम की सहायता से उस ध्वनि को धीरे-धीरे सुषुम्ना मार्ग के द्वारा सुनता है। नाद ध्वनि द्वारा ब्रम्ह ग्रन्थि को भेद कर शून्य में और फिर विष्णु ग्रन्थि को भेद कर अतिशून्य में, उसके बाद रूद्र ग्रन्थि को भेद करके महाशून्य में ध्वनि सुनता है। यह ध्वनि ही नाद है। इसी को नाद-नादननाद और परमनाद कहते हैं। परमनाद की अवस्था ही परम समाधि है। इस अवस्था में साधक के सामने जगत व ब्रम्हाण्ड के सारे रहस्य उजागार हो जाते हैं। मैं कौन हूं... का उत्तर मिल जाता है। इसी अवस्था को ब्रम्ह बोध कहा गया है। शायद आप मेरे विचार से सहमत होंगे। जहां तक मैं देख रहा हूं आपकी साधना आज्ञा चक्र को स्पर्श कर रही है। यहीं से सद्गुरु की आवश्यकता पड़ती है। जहां तक मेरा आध्यात्मिक अनुभव है आप धैर्य रखें मार्ग अवश्य मिलेगा।

अपने सद्गुरु पर विश्वास बनाये रखें। शायद गुरुजी की सलाह उन्हे अच्छी लगी। पुनः आने को कह कर वह संन्यासी चला गया। ऐसे बहुत लोग आते थे अपनी आध्यात्मिक समस्या को लेकर। गुरुजी इसी प्रकार सहज भाव से समाधान कर देते थे। लेकिन संन्यासी की कथा सुन कर काफी परेशान सा हो गया मैं। मेरे मन में हर समय वह घटना घूमती रही। एक दिन समय देख कर गुरुजी को अपनी जिज्ञासा सुना दी। गुरुजी हंसते हुए बोले- मुझे पता था तुम मानोगे नहीं अवश्य प्रश्न करोगे।

अगर विचारपूर्वक देखा जाये तो मानव तन की सबसे बड़ी जिज्ञासा है कि वह इस जगत का प्राणी है या किसी अन्य जगत से आया है और अपना कर्म पूर्ण कर फिर वापस चला जाता है। क्या मृत्यु का यही नाम है संसार छोड़ कर चले जाना? उस संन्यासी ने जो बतलाया कहीं न कहीं सत्य ही तो है। तभी तो वह भटक रहा है। उसने जो कुछ क्षण जीया उस जगत में उसी को जानने के लिए आध्यात्म की राह पकड़ी और पिछले बीस वर्षों से साधना कर रहा है सत्य को जानने के लिए। सत्य तो कहीं न कहीं है। मैंने भी सन्त-साधकों की कृपा से ऐसे मानवेत्तर लोक में भ्रमण किया। लेकिन मेरा अनुभव और संन्यासी के अनुभव में अन्तर है। मैं तो ज्ञान की दृष्टि से अनुभव किया। परन्तु संन्यासी का अनुभव अप्रत्याशित था। जिसके लिये वह तैयार नहीं था। इसलिए परम सत्य को जानने के लिए जो तैयारी होती है वह साधना ही तो है।

ऐसे तुम्हे समझ में नहीं आयेगा। तुम्हे वैज्ञानिक दृष्टिकोण से समझाने का प्रयास करता हूं। मान लो दो व्यक्ति शंतरज खेल रहे हैं। शतरंज में दो खाने होते हैं एक सफेद और दूसरा काला। ब्रम्हाण्ड के चरम विकास के मूल में भी यही खेल चला। सफेद खाने वाला व्यक्ति जीत गया वह मैटर है और काले खाने वाला व्यक्ति हार गया वह ऐन्टीमैटर यानि प्रतिपदार्थ है। मैटर यानि पदार्थ जो दृश्यगत है और ऐन्टीमैटर यानि प्रतिपदार्थ अदृश्यगत है। लेकिन अस्तित्व तो दोनों का है। हम प्रतिपदार्थ को नकार नहीं सकते। हो सकता है प्रतिपदार्थ का भी अस्तित्व हो। जिसे हम देख नहीं पाते। उनमें रहने वाले जीव हम लोगों से ज्यादा बुद्धिमान हों या यह भी हो सकता है हमारी आत्मा का मूलस्त्रोत प्रतिपदार्थ से हो। जहां के हम

मूल निवासी हैं। जगत में आते हैं मानव तन को प्राप्त कर कर्म करके या दुख-सुख भोग कर चले जाते हैं।

आध्यात्मिक दृष्टि से अगर हम विचार करें तो हम अपने मूल को खोजने के लिये जगत में बार-बार आते हैं।

जिस प्रकार प्रागकाल में परमात्मा अपने को दो खण्ड के रूप में अभिव्यक्त किया वह है प्रकृति और पुरुष यानि शिव-शक्ति। उसी प्रकार काल के प्रवाह में वह आत्मा भी दो खण्ड में विभक्त हुई अहम और ईदम। अहम पुरुष तत्व और इदम स्त्री तत्त्व है। दोनों काल के प्रवाह में बिछुड़ गये। एक-दूसरे को पाने के लिये और मुक्त होने के लिए। मुक्ति यानि अपने मूल तत्व को उपलब्ध होना। मानव की अशान्ति का तो मूल यही है पूर्णत्व को प्राप्त कर अखण्ड में लीन हो जाना। यह तो आध्यात्मिक बात है फिर भी कहीं न कहीं सत्य तो है।

देखा जाये तो सभी धर्मों ने स्वीकार किया सात आकाश, सात समुद्र, सात लोक, सात आयाम यानि सेवन डायमेंशन। सेवन डायमेंशन को आज का विज्ञान स्वीकार करता है। हम लोग थ्री डायमेन्शन में रहते हैं। हो सकता है चतुर्थ आयाम में हम लोगों से ज्यादा विकसित प्राणी रहते हों। प्रतिपदार्थ का अस्तित्व चतुर्थ आयाम में हो सकता है। ऐसा सम्भव हो सकता है चूंकि मैंने भी जो अनुभव किया उस संन्यासी की कथा से मिलता है। हमारी जो भी आध्यात्मिक चर्चा होती थी अपने साधना काल में वह सब मानसिक वार्तालाप थी। वहां शब्द यानि ध्वनि नहीं थी। प्रतिपदार्थ का रहस्य है उसे पहले तुम समझने का प्रयास करो। गुरुजी ने आगे कहना शुरू किया। वह इस प्रकार था। हमारी आकाशगंगा और नक्षत्र, ग्रह आदि सभी मैटर से बने हैं यानि पदार्थ से। प्रत्येक पदार्थ अणुओं का संघठित रूप है। जिस प्रकार सौर मण्डल में सूर्य को केन्द्र मान कर ग्रह भिन्न-भिन्न पथों पर सूर्य के चारो ओर चक्कर लगा रहे। उसी प्रकार परमाणु को केन्द्र मानकर कण (पार्टिकल्स) विभिन्न पथों के नाभिक के चारो ओर चक्कर लगाते हैं। नाभिक दो मूल कण प्रोटोन और न्यूट्रान के संयोग से बना है और इनके चारो ओर चक्कर लगाने वाले कणों को इलेक्ट्रान कहते हैं। प्रोटोन विद्युत का धन आवेश (पॉजिटिव चार्ज) और

इलेक्ट्रान ऋण आवेश (निगेटिव चार्ज) से युक्त होते हैं। जबकि न्यूट्रान पर कोई विद्युत आवेश नहीं होता। इन मूल कणों के अलावा पदार्थ के कई और कणों का भी पता चला है। जैसे मेसान कण, न्यूट्रिनों, फोटोन, सिगमा प्लस, सिगमा माईनस, सिगमा जीरो आदि।

देखा जाये तो सभी पदार्थों के परमाणुओं में एकरूपता होती है। विभिन्न पदार्थों के परमाणुओं में सिर्फ प्रोटोन, इलेक्ट्रान और न्यूट्रान की संख्याओं के अन्तर के कारण ही हम एक पदार्थ को दूसरे पदार्थ से भिन्न रंग-रूप और गुण पाते हैं। ठीक इसी प्रकार कणों के प्रतिकणों की सहायता से प्रतिपरमाणु और प्रतिपरमाणु से प्रतिपदार्थ की कल्पना की गयी है। प्रतिकणों के बारे में तीन लोगों के विचारधाराओं का अधिक सहयोग रहा। पहला आइन्सटीन द्वारा प्रतिपादित 'सापेक्षिता के सिद्धान्त' से सम्बन्धित है। दूसरा शक्ति को निगेटिव होने का प्रमाण प्रस्तुत किया।

दूसरी विचार धारा नोबेल पुरस्कार प्राप्त वैज्ञानिक पी.ए. डिराक ने 'क्वान्टम मैकेनिक्स' के समीकरण का हल खोजा। इन्ही की तीसरी विचारधारा भी 'सापेक्षित के बेव मेकेनिक्स' सिद्धान्त पर आधारित थी। जिसने इलेक्ट्रान के गुणों को भलीभांति वास्तविक रूप में सामने रखा।

वर्ष १९२८ वैज्ञानिक डिराक ने 'क्वान्टम मैकेनिज्म' के समीकरण को हल करते समय एनर्जी को दो रूपों में पाया नेगेटिव और पॉजिटिव। तब उनके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। शक्ति यानि एनर्जी का निगेटिव रूप यानि इलेक्ट्रान बन्धन में है। जो एक प्रकार से असम्भव था। क्योंकि उन्होने स्वतंत्र इलेक्ट्रान की कल्पना की थी। काफी शोध के बाद डिराक महोदय ने एनर्जी की इस निगेटिव को इलेक्ट्रान मिरर इमेज यानि प्राजिट्रान की कल्पना प्रस्तुत की। जिसका आकार-प्रकार और भार हमारे इलेक्ट्रान जैसा ही है। उसमें सबसे खास बात यह थी कि उसका विद्युत आवेश इलेक्ट्रान के ठीक विपरीत था। कुछ वैज्ञानिकों ने इस तथ्य पर विश्वास न करके पॉजिट्रान को झूठ सिद्ध करने का प्रयास भी किया। लेकिन इससे एक लाभ अवश्य हुआ प्रति इलेक्ट्रान के अस्तित्व गलत है या सही सिद्ध करने के दौरान परमाणु के कुछ नये कणों का पता लग गया।

ठीक चार वर्ष बाद १९३२ में एक ब्रिटिश वैज्ञानिक और इटालियन वैज्ञानिक ने प्रति इलेक्ट्रान की तस्वीर लेकर इसके अस्तित्व को सिद्ध कर दिया यानि प्रतिपदार्थ का भी अस्तित्व है। बाद में ट्रांजिस्टर के अविष्कार ने इसे और भी सिद्ध कर दिया यानि ट्रांजिस्टर होल और इलेक्ट्रान की गति के आधार पर काम करता है यानि होल प्रति इलेक्ट्रान का ही रूप है।

वैज्ञानिकों के मन में यह प्रश्न उठना स्वाभाविक था कि प्रति इलेक्ट्रान का अस्तित्व है तो बाकि कणों के प्रतिकणों का भी अस्तित्व होना चाहिये। सन् १९५५ में पहली बार प्रोटान और न्यूट्रान के प्रतिकणों का पता चला बेवाट्रान मशीन के द्वारा। ठीक एक वर्ष बाद न्यूट्रिनो के प्रतिबिम्ब प्रति न्यूट्रिनों का पता चला।

कण और प्रतिकण सिर्फ विद्युत आवेश और घूमने में एक-दूसरे से भिन्न हैं। वैज्ञानिक प्रतिकण के खोज में लगे हैं। कुछ वैज्ञानिक इसका विरोध कर रहे। इससे भयानक विनाश हो सकता है। ग्रह, नक्षत्र यहां तक कि हमारा जगत सब पदार्थ से बने हैं। प्रतिप्रदार्थ, पदार्थ के संयोग में आते हैं और नष्ट भी हो जाते हैं। लेकिन उन दोनों के अवशिष्ट पदार्थ के रूप में अत्यधिक रेडियोधर्मी गामा किरणों का उदय होता है।

वैज्ञानिक प्रतिपदार्थ के रहस्य को जान कर प्रयोग करते हैं यानि प्रतिपदार्थ को और पदार्थ को आपस में मिलने से किस प्रकार रोक सकेंगे। प्रतिपदार्थ का पदार्थ के साथ संयोग होने पर पूर्ण विनाश लीला शुरू हो जायेगी। न मालूम दोनों शक्ति मिल कर किस रूप में सामने आयेगी। प्रतिपदार्थ और पदार्थ के संयोग से चेन क्रिया आरम्भ हो सकती है। परमाणु बम की तरह जो हमारी दुनिया ही नहीं सम्पूर्ण आकाशगंगा के विनाश का खतरा हो सकता है। प्राकृतिक रूप से दोनों अलग-अलग हैं। इसके पीछे कोई बड़ा रहस्य है। कुछ ऐसे वैज्ञानिक हैं जिनका कहना है हमारे जगत से परे प्रतिपदार्थ की दुनिया अवश्य है और ठीक हमारे जगत का प्रतिबिम्ब है। जिस प्रकार प्रतिकण हमारे जगत में मेहमान के रूप में प्रगट होते हैं उसी प्रकार हमारे कण विशेष मेहमान के रूप में होंगे। यदि दोनों संसार एक सी परिस्थिति में हो तो वहां के नियम कायदे हमारे यहां

से भिन्न नहीं होने चाहिए। लेकिन सिद्धान्तः उन्हे कुछ भिन्न होना चाहिए। यही कारण है कि यदि ऐसा संसार ठीक हमारे आस-पास हो तो भी हम पहचान नहीं पायेंगे। एक ही कार्य हो सकता है और वह यह कि दोनों के बीच की रेखा का ज्ञान हो जाये। फिर आगे गुरुजी बोले- यह सम्भव तभी होगा जब विज्ञान, भारतीय धर्म दर्शन का सहयोग लेगा शायद भविष्य में ऐसा सम्भव हो जाये। लेकिन आगे चलकर दोनों को एक-दूसरे की आवश्यकता होगी। पदार्थ-प्रतिपदार्थ की लक्ष्मण रेखा हटाने के लिये।

शायद उस अदृश्य जगत में हमारा प्रवेश सम्भव हो जाये और नये आयाम नये, जगत अथवा उससे भी नये सत्य का सामना हो ज़ाये। ज़िस जगत को सत्य मानकर हम जी रहे हैं शायद वह सत्य कुछ और हो। भौतिक जगत और अभौतिक जगत के बीच की सीमा समाप्त हो जाये और शायद हम नये आयाम में प्रवेश का मार्ग खोज ले जहां मृत्यु का कोई महत्व ही न हो।

...

समय अपने गति से चल रहा था उसके प्रवाह में कोई गतिरोध नहीं था। लेकिन मेरे जीवन में हर समय विचारों का उतार-चढ़ाव चल रहा था। मन करता सब छोड़ दे। जो जीवन जी रहे थे वह अच्छा था। लेकिन फिर मन करता वह जीवन तो सभी जी रहे हैं अगर तुम थोड़ा अलग चल रहे तो क्या नुकसान है। सब कुछ नियति पर छोड़ दो। काल के प्रवाह में जीवन को बहने दो। कभी न कभी जन्म-जन्मान्तर के रहस्य खुल जायेंगे। सत्य का सामना तो होगा। शायद नये जीवन का प्रारम्भ होगा। जो आज तक तुमसे अछूता रहा।

यही सब सोचते-सोचते गुरुजी के पास पहुंचा वे चुपचाप चिन्तन में डूबे थे। मुझे देख कर बैठने का इशारा किया। मैं चुपचाप बैठ गया। कुछ देर बार गुरुजी मेरी ओर देखते हुए पूछते हैं- क्या बात है? मैंने उन्हे अपनी उलझन को बतलाया। गुरुजी बोले- यह सभी के साथ होता है। चाहे वह संसारी हो या संन्यासी। इसे निम्न अवसाद कहते हैं। यह आता है और चला जाता है। जो इसमें उलझ गया समझो वह अपने पथ से भटक गया।

हर मनुष्य को अपना संकल्प और अपना उद्देश्य हर समय सामने रखना चाहिए। क्योंकि मन कभी सीधा नहीं चलना चाहता। वह चारो तरफ घूमना चाहता है। यह सब मन का उद्वेग है। तुम्हारा कर्म है उसे करते चलो और बाकी सब भगवती की इच्छा पर छोड़ दो। इतना सुनते ही मेरा मन शान्त सा हो गया। शायद मैं अपने मार्ग से भटकते-भटकते बचा। आज समझ में आ रहा संसार में जीने और चलने के लिए गुरु की आवश्यकता पड़ती है यानि चाहे संसार हो या साधना गुरु का मार्गदर्शन सभी के लिए आवश्यक है। यदि मैं भटक गया होता तो आज जीवन कुछ और होता। बहुत सारे ज्ञान और रहस्य से वंचित होता। गुरुजी का कहना था तत्व चिन्तन और ज्ञान आवश्यक है।

मनुष्य जब भी जन्म लेता है किसी न किसी तत्व प्रधान में लेता है। चूंकि हमारा शरीर पंचतत्वों का मिश्रण है। लेकिन हर व्यक्ति किसी न किसी तत्व से जुड़ा रहता है। उसका आचार-विचार तत्व ही निश्चित करते हैं। जैसे जल तत्व प्रधान व्यक्ति चिन्तक कलाकार होता है। पृथ्वी तत्व प्रधान व्यक्ति संयमी और स्थिर तत्व होता है। आकाश तत्व प्रधान व्यक्ति कल्पनाशील होगा। अग्नि तत्व प्रधान व्यक्ति नेतृत्व क्षमता वाला होगा। तत्व में नकारात्मक-सकारात्मक दोनों गुण पाये जाते हैं। इन तत्वों को जानने के लिए ज्योतिष शास्त्र में राशियों को वर्गीकृत किया गया है। लेकिन साधना में इसका अपना महत्व है। तत्व साधना किये बिना साधना पथ पर अग्रसर होना थोड़ा मुश्किल होता है।

राशियों के द्वारा हम अपने तत्व को जान सकते हैं। जैसाकि ऊपर बतलाया गया है। तत्व सकारात्मक और नकारात्मक दोनों होते हैं। उसका कारण है तत्व दूषित है अथवा क्षीण है।

जैसे मेष राशि अग्नि तत्व प्रधान है। सकारात्मक स्वाभाव- परिवार की जिम्मेदारी, चुनौती को स्वीकार करने वाला, सदैव क्रियाशील रहने वाला। नकारात्मक स्वभाव- घमण्डी होना, धैर्य की कमी होना, हर समय चिन्ता करना आदि। शिव जी या हनुमान जी की आराधना करने से तत्व शुद्ध होने लगता है। सकारात्मक है तो तत्व शुद्ध है। अगर नकारात्मक है तो तत्व क्षीण है। ऐसे ही सभी राशि वालों को समझना चाहिए।

वृष राशि पृथ्वी तत्व प्रधान है। सकारात्मक स्वभाव- गुरुभक्त, कृतज्ञ और दयालु स्वभाव, वस्त्र आभूषण में रूचि। नकारात्मक स्वभाव- दुराग्राही, कानों का कच्चा, शक्की स्वभाव और आलसी। दुर्गा या लक्ष्मी की आराधना करनी चाहिए।

मिथुन राशि वायु तत्व प्रधान है। सकारात्मक तत्व- चतुर, निडर, बुद्धिमान, वाकपटु व्यवसायी आदि। नकारात्मक स्वभाव- दिल के कठोरं, आत्म केन्द्रित, स्वार्थी आदि। गणपति की आराधना करनी चाहिए।

कर्क राशि जल तत्व प्रधान है। सकारात्मक स्वभाव- अध्ययन प्रिय, जल प्रिय, भावुक कल्पना करने वाला, वफादार। नकारात्मक- हर समय बीमार जैसा होना, क्षमा न करने वाला। शिव की आराधना करनी चाहिए।

सिंह राशि अग्नि तत्व प्रधान है। सकारात्मक स्वभाव- खुले दिमाग का, उदार, गर्म जोशी। नकारात्मक स्वभाव- घमण्डी, अति आत्म विश्वास, अति प्रदर्शन। भगवान विष्णु का पूजन मंत्र आदि जपने से नकारात्मक गुण का नाश होता है।

कन्या राशि पृथ्वी तत्व प्रधान है। सकारात्मक स्वभाव- दोहरा व्यक्तित्व, लेखक, विद्वान, निरन्तर क्रियाशील। नकारात्मक स्वभाव- आलोचक, कलह प्रिय, अशुभ चिन्ता करने वाला, निराशा आदि। गणपति की आराधना करनी चाहिए।

तुला राशि वायु तत्व प्रधान है। सकारात्मक स्वभाव- आत्मविश्वासी, आकर्षक वाणी। नकारात्मक स्वभाव- ईर्ष्या करना, घमण्ड, धूर्तता आदि। दुर्गा या शक्ति की उपासना करनी चाहिए।

वृश्चिक राशि जल तत्व प्रधान है। सकारात्मक स्वभाव-कानून का ज्ञान, गणितज्ञ, समीक्षक बुद्धिमान, निडर प्रकृति प्रेमी। नकारात्मक स्वभाव- घमण्डी, अति वाचाल, कर्म न करना, आलस्य, स्वयं पर शक करना आदि। शिवजी, हनुमान या भैरव जी की आराधना करनी चाहिए।

धनु राशि अग्नि तत्व प्रधान है। सकारात्मक स्वभाव- बुद्धिमान, तार्किक, लक्ष्य प्राप्ति हेतु सचेत। नकारात्मक स्वभाव- क्रूर स्वभाव। नारायण की उपासना करनी चाहिए।

मकर राशि पृथ्वी तत्व प्रधान है। सकारात्मक स्वभाव- परोपकारी,

दयालु, व्यवहारिक, धरातल पर चलने वाला, परिश्रमी, सही सलाह देने वाला। नकारात्मक स्वभाव- सन्देह करना, आलस्य, कठिनता से मानने वाला। महादेव की आराधना करनी चाहिए।

कुम्भ राशि वायु तत्व प्रधान है। सकारात्मक स्वभाव- योगी साधक, सत्य खोजी, संवेन्दनशील, समाज में प्रिय, कुटुम्ब प्रेमी। नकारात्मक स्वभाव- आलस्य, निन्दक, विचार बदलने वाली प्रवृत्ति। महादेव की आराधना करनी चाहिए।

मीन राशि जल तत्व प्रधान है। सकारात्मक स्वभाव- अध्यात्म प्रेमी भावुक, अध्ययनशील, विनम्र, कल्पनाप्रिय। नकारात्मक स्वभाव- धैर्य की कमी, लापरवाही, हर समय अनिश्चय की स्थिति में रहना। कृष्ण या नारायण की आराधना करनी चाहिए।

जब-जब हमारे अन्दर तत्व विकृत होंगे या प्राण ऊर्जा के साथ तत्व गुण का असन्तुलन होगा। तब-तब हमारे नैसर्गिक गुण-अवगुण बदलने लगते हैं। अगर ऐसा हो रहा है तो अवश्य ध्यान देना चाहिये।

वर्षाकाल का समय था गुरुजी अपने अध्ययन कक्ष में कुछ लिख रहे थे। मैं चुपचाप बैठ गया सामने की कुर्सी पर। जब गुरुजी की तन्द्रा भंग हुई उनकी नजर मेरे ऊपर पड़ी बोले- क्या बात है साधना चल रही है न। मैंनें कहा- आपने जैसा बतलाया साधना करता जा रहा हूं। प्राण साधना के बाद तत्व साधना और बीज मंत्र का जप भी कर रहा हूं। गुरुजी अपने नेत्र बन्द कर कुछ सोचते रहे। शायद अपने आन्तर चक्षु से मेरे साधना की प्रगति को देख रहे थे। ऐसा लगा मुझे। कुछ देर बाद गुरुजी अपने नेत्र खोल कर मेरी ओर देख कर मुस्कुराते हुए बोले- प्राण साधना, योग साधना और तत्व साधना तो ठीक चल रही है। लेकिन कुछ देर तत्व चिन्तन तो करो। अभी तुम्हारे और तत्व में दूरी सी दिख रही है। यह जो हमारा शरीर है पांचों तत्वों का ही प्रगट रूप है। थोड़ा चिन्तन तो करो। मुझसे रहा नहीं गया पूछ बैठा- तत्व चिन्तन का तात्पर्य समझा नहीं। गुरुजी बोले- तत्वों को अनुभूति करो, आत्मसात करो। तभी वे तुम्हारे अपने होंगे। साधना में मंत्र, ध्यान, पूजा आदि हम करते हैं। परन्तु जुड़ते नहीं। हर पल दूरी बनी रहती है। यही दूरी साधना की प्रगति को रोकती

है। जो तुम्हारा है उसे अपना बनाओगे तभी तो चमत्कार होगा।

गुरुजी बोले- सायंकाल हो रहा है। भगवती का संध्या आरती करके ऊपर जाओ। जलतत्व चिन्तन करो। एकबारगी मैं घबड़ा सा गया और बोला- अरे घनघोर वर्षा हो रही है और आप ....। गुरुजी हंसते हुए बोले- साधना का तो यही आनन्द है। जाओ समय नष्ट मत करो। मैं वहां से तत्काल उठा मन्दिर में जाकर संध्या वन्दन कर छत पर चला गया। उसी वस्त्र में यानि लाल लुंगी और लाल दुपट्टा ओढ़े। जब छत पर पहुंचा देखा चारो तरफ घने काले बादल छाये हैं और घनघोर वर्षा हो रही थी। बीच-बीच में चांदी के तार की तरह बिजली भी चमक रही थी। बस मां का ध्यान किया और गुरुजी का स्मरण कर जमीन पर आसन लगा कर पूर्व दिशा मुख करके बैठ गया। इतनी घनघोर वर्षा हो रही थी कि उसकी बूंदों से शरीर में चोट लग रही थी। कुछ देर तक बैचेनी रही। लेकिन मेरा मन धीरे-धीरे गहन अवस्था में जाने लगा। ऐसा लगा जैसे पानी की धार मेरे शरीर के ऊपर नहीं अन्दर प्रवेश करती जा रही है। न ठण्ड का एहसास हो रहा था, न ही पानी का। जैसे वर्षा का तेज पानी मेरे शरीर में प्रवेश करता जा रहा हो। यह अवस्था कब तक थी पता ही नहीं चला। जब आंखें खुली तो देखा वर्षा रूक चुकी थी चारो तरफ घनघोर अन्धेरा था। मैं चुपचाप उठा अपने कमरें में गया भीगे वस्त्र बदल कर चुपचाप अपने बिस्तर पर लेट गया। इतना गहन अनुभव कभी भी नहीं हुआ। नेत्र खुल नहीं पा रहे थे। नींद जैसी लग रही थी परन्तु नींद नहीं आ रही थी। उसी सुप्तावस्था में देखा घना पहाड़ी इलाका है। छोटा सा मन्दिर और उसके आस-पास कच्चे मकान आदि आस-पास बहुत सारे लम्बे-लम्बे काले चोगे, बड़े-बड़े केश-दाढ़ी वाले बहुत सारे लोग घूम रहे थे। वृक्ष के नीचे बने चबूतरे पर एक संन्यासी बैठा था। उसी के पास एक नारी फटे हाल अपने बच्चे को लिये रो रही थी और साथ ही बोलती जा रही थी बाबा आपके शरण में आयी हूं अपने पुत्र के लिए। वह औरत अपने पांच वर्ष के पुत्र को सीने से लगाये हुए थी और रोती जा रही थी।

सारा स्वप्न चलचित्र की तरह दिख रहा था। यह कैसा स्वप्न था। कुछ समझ में नहीं आ रहा था। दूसरे दिन मैंने अपने स्वप्न की बात गुरुजी

को बतलायी। वे बोले- यह सारा दृश्य तुम्हारे पूर्व जन्म से जुड़ा है। जैसे-जैसे साधना प्रखर होगी वैसे-वैसे सारा रहस्य स्वयं तुम्हारे सामने अनावृत्त होने लगेगा।

अब तुम्हे कुछ बताने की आवश्यकता नहीं है अपने साधना बल पर खुद ही जान जाओगे। जब भी ध्यान करता वह स्त्री और वहां का दृश्य मेरे सामने उभर जाता। मन बेचैन होने लगता। बस उस दृश्य के रहस्य को जानना चाह रहा था। लेकिन कब उस सत्य का सामना होगा। यह मुझे खुद पता नहीं।

साधना में मन नहीं लग रहा था। पता नहीं क्यों उस औरत और बालक के बारे में जानना चाह रहा था। क्योंकि वह मेरे किसी जन्म की घटना से सम्बन्ध था।

रहा नहीं गया एक दिन अपनी जिज्ञासा गुरुजी के सामने प्रगट कर दिया और यह भी बतला दिया कि जब साधना करता हूं वह स्वप्न मेरी आंखों के सामने तैरने लगता है। इसका क्या रहस्य है। जब तक आप समाधान नहीं करेंगे तब तक मैं साधना नहीं करूंगा।

गुरुजी कुछ पल सोचते रहे फिर हंसते हुए बोले- ठीक है अवश्य बतलाऊंगा। मैं चाहता था कि तुम अपने साधना बल से देखो और अपने गुरु का दर्शन करो। उन्होने तुम्हारे लिये कितना श्रम किया था। आज तुम्हारे अन्दर जो कुछ भी है वह मन के ही दो प्रतिरूप हैं। वह पूर्वजन्म के साधना के कारण है। वह सब तुम्हारे पूर्वजन्म के गुरुदेव की देन है मैं तो बस तुम्हे मार्गदर्शन ही दे रहा हूं।

यह सब मैं नहीं जानता आप ही मेरे गुरु हैं और रहेंगे। आपने ही कहा था कि वर्तमान ही सत्य है और जो मेरे सामने है वही सत्य है।

अभी तुम समझोगे नहीं खैर, तो सुनो....। गुरुजी फिर कहना शुरू किये- कालिकानन्द अवधूत महान काली भक्त थे उनके मित्र ऊर्ध्वानन्द कापालिक जो भगवती तारा के दुर्धर्ष साधक थे। काल के प्रवाह में एक दिन दोनों साधकों की मुलाकात आसाम में हो जाती है। मार्ग अलग-अलग होते हुए भी दोनों परम मित्र थे। साधना चर्चा तो करते आपस में। लेकिन कभी एक-दूसरे के कार्यकलाप पर हस्तक्षेप नहीं करते थे।

१६वीं शताब्दी में भी नरबलि का बोलबाला था। गरीब असहाय बालकों की बलि हर दीपावली की रात व अमावस्या के किसी विशेष पर्व पर भी होती थी। दीपावली की रात में नरबलि को लेकर दोनों साधकों में भयानक घटना घटते-घटते बची। ऊर्ध्वानन्द कापालिक नितान्त अकेले ही रहते थे और अपने साधना में मस्त। लेकिन कालिकानन्द अवधूत के साथ उनके दस-बीस अनुयायी भी रहते थे। वही सब साधना सम्बन्धित सामान बलि आदि की व्यवस्था करते थे। उस जमाने में कापालिकों और तांत्रिक लोगों का इतना प्रभाव था कि बड़े-बड़े लोग भी बीच में नहीं पड़ते थे। खुशी इस बात की रही कि दोनों साधकों के बीच कुछ भयानक घटना घटती। लेकिन मित्रता आगे आ गयी।

मैं समझा नहीं- गुरुजी को देखते हुए प्रश्न किया?

गुरुजी मेरी ओर कुछ पल गहरी नजरों से देखते रहे और फिर बोले- मैं जो कुछ भी कहूंगा शायद तुम विश्वास नहीं करोगे तुम स्वयं ही देख लो। इतना कहकर उन्होने मेरे सिर पर अपना हाथ रख दिया। उनका पतला दुबला हाथ इतना भारी लगा जैसे किसी ने पहाड़ मेरे सिर पर रख दिया हो। नेत्र भारी होने लगे और कब बन्द हो गये पता ही नहीं चला। ऐसा लगा जैसे मैं किसी अन्धेरी सुरंग में विद्युत गति से उड़ता हुआ जा रहा हूं।

एक घनी पहाड़ी के पास अपने को पाया। चारो तरफ काले वस्त्र में और हाथों में मशाल लिये कुछ लोग घेरे खड़े हैं। तभी मेरी नजर वृक्ष के नीचे बैठे भयानक साधक पर पड़ी। बड़े बाल दाढ़ी, गले में रूद्राक्ष और मनकों की माला। काला वस्त्ररूपी चोगा। जमीन पर बैठी एक अधेड़ नारी अपने पांच वर्ष के बालक को पकड़े हुए। वह नारी बराबर रो रही थी और उस संन्यासी के पैर पर सिर रख कर कुछ मांग रही थी।

तभी उस संन्यासी की आवाज मेरे कानों पर टकराती है। वह बोला- माता तेरे बालक का जो मोल था तुम्हे दे दिया गया है अब क्या मोह कर रही हो। बाबा मेरे साथ धोखा हुआ है। मैं गरीब औरत मेरा कोई सहारा नहीं है मेरा पुत्र ही मेरा सहारा है सब कुछ खत्म हो चुका है सिवाय एक झोपड़ी के। मेरा पड़ोसी बोला कि मेरा पुत्र बड़े घर जा रहा है पढ़-लिख कर बड़ा आदमी बनेगा। तुम्हे कुछ वर्ष इन्तजार करना होगा और

जीवनयापन के लिए कुछ मुद्राएं दी। मैं प्रसन्न थी कि मेरा पुत्र बड़ा आदमी बन कर वापस आयेगा। मैंने अपने पुत्र को उसको दे दिया। लेकिन मेरा मन नहीं माना। मां का हृदय है न बस चुपचाप पीछा करते-करते यहां तक चली आयी। पता चला मेरे पुत्र की बलि दी जायेगी। मेरा हृदय फटने लगा। ये सारा धन आपको वापस कर रही हूं। मेरा पुत्र मुझे लौटा दीजिये बाबा।

वह कापालिक कुछ बोलता तभी गैरिक वस्त्र, लम्बी जटायें, घनी दाढ़ी, गले में रूद्राक्ष, एक हाथ में कपाल पात्र दूसरे हाथ में दण्ड लिए वह सामने से चला आ रहा था एक संन्यासी। उसके मुख पर भयंकर तनाव व क्रोध साफ झलक रहा था।

वह सीधे कालिकानन्द अवधूत के सामने खड़ा हो गया और बोला- मैंने समाधि की अवस्था में इस माता का आर्तनाद सुना। जब ध्यान दिया तो पता चला तुम्हारे पास से ही आ रही है। क्या बात है ऐसा करूण क्रन्दन क्यों? हम सभी अपनी-अपनी साधना के धर्म से बंधे हैं फिर ऐसा क्यों?

कालिकानन्द अवधूत बीच में बात काट कर बोला- अरे ऊर्ध्वानन्द अच्छा हुआ तुम सही समय पर पधारे हो। आप भी दीपावली की महानिशा पूजन में सम्मिलित हो आनन्द आयेगा। हां अवश्य। लेकिन इस माता के आर्तनाद ने मेरी समाधि को भंग कर दिया और जब मैंने अपने ज्ञान चक्षु से देखा। बस चला आया। रहस्य क्या है?

तभी वह नारी दौड़ कर ऊर्ध्वानन्द का पैर पकड़ लेती है और रोते-रोते सारी कथा बतला देती है। मेरे साथ छल हुआ है। मेरे पुत्र को ये लोग उठा लाये हैं। तभी कालिकानन्द का एक अनुचर बोलता है- अब इस माता का कोई अधिकार नहीं है अपने पुत्र पर। चाहे इसकी हम बलि दें या कुछ करें। इनका अब अधिकार नहीं है। नहीं...नहीं... यह सब झूठ है सब छल है। छल से मेरे पुत्र को मुझसे लिया गया। जगत में कौन ऐसी मां होगी जो अपने पुत्र को बलि के लिये व्यापार करेगी।

बस बहुत हो गया। कालिकानन्द क्रोध में दहाड़ता है अपने शिष्यों की तरफ देखते हुए बोला- मेरा मुख क्या देख रहे इस नारी को उठा कर

क्षेत्र से बाहर फेंको। साधना का समय निकला जा रहा है। जैसे ही काले वस्त्रधारी कालिकानन्द के अनुचर उस नारी के पास पहुंचते हैं तभी ऊर्ध्वानन्द कापालिक अपना दण्ड जोर से जमीन पर पटकता है बस...जिसकी धमक से हठात वे सब वहीं रूक जाते हैं।

आवेश में कालिकानन्द अवधूत खड़ा हो जाता है। दो महान साधक के क्रोध को देख कर चारो तरफ सन्नाटा छा जाता है। पता नहीं अगले क्षण क्या होगा। उधर पांच वर्ष का बालक जिसकी कुछ समय बाद बलि होनी है वह एक कोने में खड़ा थर-थर कांप रहा था। पूरे तन में हल्दी लगी थी जिसके कारण उसका सारा तन पीला दिख रहा था और कमर में बस एक लाल कौपीन, गले में माला, माथे पर बड़ा सा सिन्दूर का टीका। सब कुछ मिला कर बड़ी ही दयनीय अवस्था थी उसकी।

वह कुछ भी समझ नहीं पा रहा था। यह सब क्या हो रहा है। उधर पहाड़ी गांव के लोग दूर अन्धेरे में चुपचाप सब देख रहे थे। किसी की भी हिम्मत नहीं थी कि कुछ बोल सके। चारो तरफ अबूझ सी खिन्नता छाई थी। बस मशाल की पीली रोशनी भरसक अन्धेरा कम करने का प्रयास सी कर रही थी।

कालिकानन्द अपना त्रिशूल उठाकर सीधे ऊर्ध्वानन्द के समीप एक क्षण में पहुंच जाता है और बोला- ऊर्ध्वानन्द साधक के अलावा तुम मेरे मित्र भी हो। बस यही कहना चाह रहा हूं। हम दोनों का साधना पथ भिन्न है मैं महाकाली पथ का मार्गी हूं और तुम महातारा पथ के अनुयायी। भलाई इसी में है मेरे पथ का अतिक्रमण मत करो और चुपचाप चले जाओ। मेरा अनुरोध समझो या चेतावनी।

मित्र...ऊर्ध्वानन्द थोड़ा गम्भीर होते हुए बोला। मैं हाथ जोड़ कर बस एक प्रार्थना करना चाहता हूं मित्रता के कारण। जगत जननी आदि शक्ति महाकाली सर्वव्यापिनी है जितनी भी शक्तियां हैं उन्ही का अव्यक्त रूप है। भगवती तारा भी उन्ही का रूप है। ठीक है हम दोनों का मार्ग और साधना पथ भिन्न-भिन्न तो है। लेकिन मुक्ति का मार्ग एक ही है। थोड़ा विचार करो मेरे मित्र। समाधि की अवस्था में इस नारी का उसकी ओर देखते हुए बोला मुझे आर्तनाद क्यों सुनायी पड़ा। इसमें हो सकता है मां

का ही अपरोक्ष निर्देश हो तभी तो मैं अपने योग बल से यहां पर आया।

कालिकानन्द अवधूत कुछ पल सोचने लगा। धीरे-धीरे उसके मुख पर पड़ी तनाव की लकीरे कम होने लगी। हो सकता है इसमें महामाया की कोई लीला है जो मैं समझ नहीं पा रहा हूं। तुम क्या चाहते हो समय कम है कालिकानन्द अवधूत ध्यान से देखते हुए बोला।

मैं चाहता हूं मां को सच मैं नरबलि चाहिये। तो वह संकेत देगी। अगर नहीं स्वीकार है तो भी संकेत देगी। जो मेरे अन्दर यानि आन्तरमन में मां का संकेत मिला। उसी के आधर पर कह रहा हूं नरबलि से पहले पशुबलि तो होना ही है। हां, यह तो परम आवश्यक है। पशुबलि के रक्त से ही मां का अभिषेक होगा। ठीक है आप मन्दिर में चल कर अपना अनुष्ठान प्रारम्भ करें ऊर्ध्वानन्द बोला।

मैं समझा नहीं, पहले सब स्पष्ट करो- कालिकानन्द ने कहा।

ठीक है अनुष्ठान पूर्ण होने के बाद आप बकरे की बलि दें। जहां तक मुझे पता है यह कार्य आप स्वयं करते हैं।

हां मैं स्वयं ही पूर्ण करता हूं।

ठीक है अगर बकरे की बलि मां स्वीकार करेगी तब आप पूर्ण विश्वास रखें, भगवती नर बलि भी स्वीकार करेगी। तब आप सहर्ष इस बालक की बलि चढ़ा दीजियेगा।

कालिकानन्द अवधूत प्रसन्न होते हुए बोला- ठीक है मैं आपकी बात से सहमत हूं। आप भी मेरे साथ काली मन्दिर चले और अनुष्ठान का आनन्द भी लें। सभी चल पड़ते हैं। सामने ऊपर अन्धेरे में डूबा कोई महल दिख रहा था। उसी के पास बने भगवती काली मन्दिर के प्रांगण में सभी लोग प्रवेश करते हैं। पीछे-पीछे कालिकानन्द के अनुयायी पूजन का सामान आदि के साथ एक बकरे को भी घसीटते हुए ऊपर चढ़ रहे थे। दूसरा अनुयायी बालक को गोद में उठा लिया था।

उसकी मां ऊर्ध्वानन्द के पीछे-पीछे हतप्रभ बेजान तन से चल रही थी जैसे उसके शरीर में रक्त ही नहीं है। बस विवशता है। जो उसके चेहरे पर साफ झलक रही थी।

कालिकानन्द अवधूत महान तामसिक साधक था। उसे सिद्धि लाभ

चाहिए था। इसलिए दीपावली की मध्यरात्रि में बलि आदि देकर सिद्धि में पूर्णता चाहता था। लेकिन मां क्या चाहती है यह साधक को कहां पता चलता है। खैर, भयानक तांत्रिक अनुष्ठान चला। भगवती काली की षोडशोपचार पूजन और हवन आदि के बाद बकरे का और उस बालक का विधिवत पूजन हुआ। मंत्र के प्रभाव से वह बालक अर्धमूर्च्छा में होने लगा और बकरा स्वतः ही आगे बढ़ कर अपनी गर्दन बलियूथ पर रख दिया। शायद यह मंत्र का प्रभाव था।

कालिकानन्द अवधूत गर्व से ऊर्ध्वानन्द कापलिक की ओर देखा। ऊर्ध्वानन्द बस मां की ओर एकटक ताक रहा था। जैसे सब कुछ मां पर ही छोड़ दिया। कालिकानन्द अवधूत खड्ग पूजा करके मां को प्रणाम कर दोनों हाथों से पकड़े खड्ग को हवा में लहराया और वह खड्ग बकरे की गर्दन पर किसी विद्युत की तरह पड़ा। भरपूर वार था वह बकरे की गर्दन कट कर दूर जा गिरती है। परन्तु ऐसा चमत्कार हुआ सभी उपस्थित लोग हतप्रभ हो गये। खड्ग का भरपूर वार बकरे की गर्दन पड़ा। लेकिन बकरे की गर्दन कटना तो दूर खड्ग बकरे की गर्दन से टकरा कर कालिकानन्द की हाथों से छूट कर दूर जा गिरा।

कालिकानन्द पहले भगवती की ओर देखा फिर ऊर्ध्वानन्द कापालिक की ओर। ऊर्ध्वानन्द बस मां की ही तरफ एकटक देख रहा था और उसकी आंखों में झर-झर करके आंसू बह रहे थे। वह बकरा बलीयूथ के बाहर निकल कर मां की चरणों के पास गिर गया। शायद उसने स्वयं अपनी आहूति दे दी मां के चरणो पर।

कालिकानन्द अवधूत मां के सामने हाथ जोड़ कर प्रार्थना करने लगा। उसके भी आंखों में आंसू झर रहे थे। मां कोई त्रुटि तो नहीं रह गई मुझसे बोलो मां। तभी ऊर्ध्वानन्द के कंधों पर अपना हाथ रखते हुए बोला- मां का निर्णय सर्वोपरि है। ठीक है जो मां चाहती है वही होगा। आज से इस प्रांगण में नरबलि नहीं होगी।

कालिकानन्द उस बालक का हाथ पकड़ कर बोला- ऊर्ध्वानन्द यह बालक अब तुम्हारा है इसे अपना शिष्य बना कर साधना पथ की परम ऊंचाई पर ले जाओ। शायद मां यही चाहती हैं। बालक की मां की ओर

देखकर बोला- जाओ मां तेरी प्रार्थना मां ने सुन ली। तेरा बालक जीवित है और परम भाग्यशाली है। ऐसे गुरु का उसे सान्निध्य प्राप्त हुआ जो बहुत कम लोगों को मिलता है। बालक को अपने गले लगाकर ऊर्ध्वानन्द को सौंप देती है। जब वह स्त्री जाने को मुड़ती है तभी ऊर्ध्वानन्द बोला- माता तेरा पुत्र बड़ा भाग्यशाली है साधना की योग्यता है इसके अन्दर। मेरा विश्वास और भगवती की कृपा से यह बालक साधना की उच्चावस्था को प्राप्त करेगा। जा तू निश्चिंत रह तुझे कोई भी कमी नहीं होगी। बस अपने पुत्र का इन्तजार करना योग्यता लाभ होने के बाद उसे तेरे पास लेकर मैं एक बार अवश्य आऊंगा।

...

प्रातःकाल का समय सूर्य रक्तिम आभा लिये पूर्व से अपने निश्चित समय पर उदय हो रहे थे। झोपड़ी का दरवाजा खुलता है एक वृद्ध स्त्री दरवाजा खोल कर सामने देखती है जटाजूट धारी संन्यासी के साथ बीस बाईस वर्ष का संन्यासी युवक खड़ा था। वह स्त्री अपनी आंखो को मलती है शायद सामने खड़े दोनों संन्यासी को पहचानने के लिये।

जब वह स्त्री ध्यान से देखती है तो बोलती है- अरे! बाबा आप....वह स्त्री उस संन्यासी को पहचान जाती है और पैरों पर गिर जाती है और बोली- मेरा पुत्र... यही तेरे सामने तो है। वह महिला इधर-उधर देखने लगी। कृषकाय शरीर, पके केश लगता था उसके प्राण बस अपने पुत्र को देखने के लिए अटके थे।

वह संन्यासी कोई और नहीं ऊर्ध्वानन्द कापालिक था और उसके साथ एक युवा संन्यासी घने केश कन्धे तक लटके हुए, घनी दाढ़ी, गौण वर्ण, गले में रूद्राक्ष की माला, दुपट्टा और लुंगी पहने था। वह झुक कर अपनी मां को उठाया और गले लगा लेता है। चेहरा निर्विकार था। लेकिन उसके नेत्र गीले थे। अपनी कमजोर मां को चौकी (तख्त) पर बैठा देता है। उसे लगा मां बस उसी का इन्तजार कर रही है शायद कमजोर तन का बोझ उससे उठाया नहीं जा रहा है वह तन से मुक्त होना चाह रही थी। लेकिन पुत्र मोह उसे मुक्त होने नहीं दे रहा था।

मां कैसी हो- संन्यासी पूछता है? ठीक हूं पुत्र। बस दोबारा तुम्हे

देखने की आस में जिन्दा थी। तू आ गया अब मैं मुक्त हो जाऊंगी। यह तन कब का साथ छोड़ चुका है। लेकिन तेरी आस ने मुझे रोके रखा। ऊर्ध्वानन्द बीच में बोला- मैंने अपना वचन पूर्ण किया माता। तेरा पुत्र तेरे पास ले आया। वह बैठे-बैठे हाथ जोड़ती है। उसके नेत्र से कृतज्ञता के आंसू थे। एक कर्म और बाकी है। तेरा पुत्र तभी योग्यता लाभ कर पायेगा साधना में जब तेरी अनुमति होगी।

मैं समझी नहीं...वह बोली।

इसे संन्यास मार्ग में प्रवेश करना है यानि संन्यासी बनने की आज्ञा देनी होगी। बिना मां की आज्ञा से या सहमति से संन्यासी पूर्ण संन्यासी नहीं बन सकता। उसकी साधना भी कभी पूर्ण नहीं हो पायेगी। इसलिए आज्ञा लेने आया है तेरा पुत्र।

मां जितना भी कष्ट में रहे। लेकिन वह अपने पुत्र का भला चाहती है। एकाकी जीवन अपार कष्ट और अभाव में रहते हुए भी वह आज्ञा देने को तैयार हो गई। अपने पुत्र के खप्पर में चावल और सुपाड़ी डाल कर कहती है- आज्ञा है तू संन्यास धर्म और साधना मार्ग का पालन कर मैं तुझे मां के कर्ज से मुक्त करती हूं। अपना नाम तो नहीं बतलाया। तेरे गुरु ने तेरा नाम क्या रखा है। दिव्यानन्द ...मां, अपने गुरु की ओर देखते हुए वह युवक बोला। दिव्यानन्द असीम कष्ट में फंस गया था। एक तरफ गुरु जिसके कारण उसे जीवनदान मिला और साधना पथ पर इतना आगे बढ़ गया जहां से लौटना उसके लिये सम्भव नहीं था। दूसरी तरफ मां जिसकी दुर्दशा उसे देखी नहीं जा रही थी। कैसे वह उसे असहाय छोड़ कर चला जाये। क्या वह इतना स्वार्थी है। उसे कुछ समझ में नहीं आ रहा था। वह क्या करे।

तभी उसकी मां बोली- पुत्र मेरा एक काम कर दोगे।

क्या मां- दिव्यानन्द मां के पास बैठते हुए पूछा।

पुत्र मैंने माता के कर्ज से तुझे मुक्त कर दिया। क्या तू अपनी माता को पुत्र कर्ज से मुक्त कर देगा। तेरे बगैर मेरा अब एक पल भी जीना सम्भव नहीं। क्लान्त शरीर का बोझ और तेरा विछोह मुझे अकेले में किसी नर्क से कम नहीं लगेगा।

मैं क्या कर सकता हूं मां तेरे लिये। उसकी मां से बैठा नहीं जा रहा था। दिव्यानन्द बोला- मां तेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं है तू लेट जा। लेट कर ही बता मुझसे क्या चाहती है।

उसकी मां खाट पर लेटती है। श्वांस काफी तेज चल रही थी। दिव्यानन्द की ओर देखते हुए बोली- मुझे मुक्त कर दे। तेरी मां की अन्तिम इच्छा है और विनती भी।

दिव्यानन्द अपने गुरु ऊर्ध्वानन्द की ओर देखा। ऊर्ध्वानन्द ने अपनी सहमति दे डाली। दिव्यानन्द अपनी मां के सिर पर हाथ रखता है वह एक बार दिव्यानन्द की ओर देखी फिर धीरे-धीरे अपनी आंखे बन्द कर ली। जैसे उसे परम शान्ति मिल रही हो।

धीरे-धीरे उसका शरीर बर्फ की तरह ठण्डा हो गया। उसके शरीर में न कोई हलचल थी न पीड़ा वह एक गहन शान्ति में चली गई। ऐसा लग रहा था बस इस क्षण का उसे इन्तजार था। दिव्यानन्द देखा मां के शरीर में कोई हलचल नहीं हो रही। मां के प्रति पुत्र का एकाएक मोह जाग्रत सा हो गया। वह मां...मां... कहते हुए चिल्ला उठा और जोर-जोर से रोने लगा। दिव्यानन्द का क्रन्दन सुन कर आस-पास के लोगों की भीड़ लग गई।

उस भीड़ में पड़ोसी लोग भी थे जो दिव्यानन्द की मां का ख्याल रखते थे। एक व्यक्ति भीड़ से बाहर निकल कर बोला- मां जी हर पल अपने पुत्र का इन्तजार करती रहती झोपड़ी के बाहर बैठ कर। पहले तो हम लोग पागल समझे पर बाद में हम लोगों को दया आने लगी। हम लोग मां जी का ख्याल रखते थे बेचारी हर समय अपने पुत्र का इन्तजार करती रहती थी।

सारी घटना जब उन लोगों को पता चली वे लोग भी दुखी हो गये। वह व्यक्ति बोला- बाबा आप लोग जाये चिन्ता न करें। मां जी का दाह संस्कार हम लोग कर देंगे।

दिव्यानन्द आतुर होकर बोला- दाह संस्कार के बाद ही हम लोग यहां से जायेंगे।

चिता में आग उसी व्यक्ति ने लगाया। क्योंकि दिव्यानन्द संन्यासी

था। दिव्यानन्द चिता को जलता हुआ चुपचाप देखता रहा। रात के अन्धेरे में चिता की लाल-पीली लपटे आकाश को स्पर्श करने का नाकाम कोशिश कर रही थी।

धीरे-धीरे धधकती चिता राख में बदल चुकी थी और राख में एक नारी का दुख, विछोह और कष्ट सदा-सदा के लिए समाप्त कर दिया। वीरान श्मशान में केवल दिव्यानन्द और उसके गुरु खड़े थे।

गुरुदेव मैं कितना अभागा हूं अपनी मां को आग भी न दे सका। ऊर्ध्वानन्द उसके दोनों कंधों पर हाथ रखते हुए बोले- सब कुछ सभी के भाग्य में नहीं होता। तुम्हारा जो धर्म था और था कर्म तुमने उसे पूर्ण कर दिया। चलो एक बात अच्छी रही कि तुम्हारी मां मुक्त हो गई। अब तुम साधना पथ पर आगे बढ़ने का प्रयास करो। जब तक जीवन रहेगा। दुख-सुख, संयोग और वियोग लगा ही रहेगा। अपने मां का त्याग और आशीर्वाद निष्फल मत जाने दो। अभी बहुत से कार्य करने हैं। अच्छा एक बात बतलाओ अगर मैं भी चला गया संसार छोड़ कर तब...।

अरे! गुरुदेव ऐसा न कहें। मां का दर्द तो सहन कर लिया। लेकिन आपका वियोग तो मैं सहन ही नहीं कर पाऊंगा। दिव्यानन्द उसी समय गुरुदेव का पैर पकड़ कर रोने लगा।

अरे! मैं तो ऐसे ही कह रहा था। अच्छा चलो रात्रि काफी हो गई है यहां रूकना अब ठीक नहीं है। दिव्यानन्द उठकर मां के चिता के पास जाता है राख उठा कर अपने सिर पर लगाता है उसके मन में क्या चल रहा है उसके चेहरे के भाव से पता नहीं चला। बस एक झटके से मुड़ कर गुरुदेव ऊर्ध्वानन्द के साथ अंधेरे में विलीन हो गया।

...

जाड़े का समय, घना वन और वन के ऊपर पहाड़ी पर स्थित गुफा। चारो तरफ हल्का कुहरा सा छाया था। गुफा के अन्दर से दीपक का पीला प्रकाश छन-छन कर बाहर आ रहा था। पत्थर की शिला पर काला कम्बल और उस पर मृगचर्म पर कापालिक ऊर्ध्वानन्द गम्भीर अवस्था में बैठे हुए थे। नीचे जमीन पर लम्बी दाढ़ी और केश, गले में रूद्राक्ष की माला, शरीर में भभूत मला हुआ, गेरुए कपड़े में दिव्यानन्द भूमि पर बैठा था। उसके

चेहरे पर तनाव की लकीरें साफ झलक रही थी। गुरुदेव यह आप क्या कह रहे हैं। समाधि का समय हो गया है आपका। मेरा क्या होगा? मेरी साधना कैसे आगे बढ़ेगी? अभी तो बहुत कुछ सीखना है आपसे।

नहीं...गुरुदेव आपका निर्णय ठीक नहीं है- दिव्यानन्द हाथ जोड़ कर बोला।

पुत्र, काल का अपना प्रवाह है हम लोग बस कड़ी मात्र हैं। हम काल के नियम के विरूद्ध नहीं जा सकते। चाहे वह साधक हो या संसारी। इस शरीर की अपनी सीमा है। दो सौ वर्षों से इस शरीर से काम ले रहा हूं। पूर्व जन्म के आयु का भी अतिक्रमण कर चुका हूं अब नहीं। आगे की साधना अब मैं सूक्ष्म शरीर के द्वारा करूंगा। जब भगवती की अनुमति होगी फिर शरीर मिल जायेगा।

मेरे लिये भौतिक शरीर और सूक्ष्म शरीर दोनों समान है। तुम चिन्ता मत करो। तुम्हारा मैं मार्गदर्शन करता रहूंगा। तुम अपने को अकेला मत समझो। गुरु-शिष्य का सम्बन्ध केवल एक जन्म का नहीं है जन्म-जन्मान्तरों का होता है। शरीर तो कड़ी मात्र है इसका छूटना और मिलना लगा रहेगा। इसके लिए तुम्हे परेशान होने की आवश्यकता नहीं है। इतना कह कर ऊर्ध्वानन्द अपने दोनों नेत्र बन्द कर लिये। दोनों हाथों की अंगुलियों को आपस में फंसाए कब उन्होने अपना शरीर छोड़ दिया पता ही नहीं चला दिव्यानन्द को।

दिव्यानन्द जब ध्यान दिया गुरुदेव का शरीर एकदम शान्त था। श्वांस थम चुकी थी और तन में किसी भी प्रकार का स्पन्दन नहीं हो रहा था। दिव्यानन्द गुरुदेव को साष्टांग प्रणाम करता है उसके नेत्रों से अनवरत आंसू बह रहे थे।

अन्दर जल रहे दीपक में बहुत सारा तेल भर देता है और गुरुदेव के आदेश के अनुसार गुफा का द्वार बड़े-बड़े पत्थरों से बन्द करता है। यह काम करते हुए उसे असीम दर्द हो रहा था। सदा-सदा के लिये गुरुदेव का भी साथ छूट गया।

हल्का अन्धेरा होने लगा। तभी पीछे से किसी ने स्पर्श किया। वह घबड़ा कर पीछे देखा दो युवा संन्यासी खड़े थे। गुरुदेव के आदेश के

अनुसार चक्रेश्वरी मठ चलना है आपको आगे की साधना पूर्ण करने के लिये।

मैं समझा नहीं गुरुदेव ने....।

हां.... आपके गुरुदेव ने। मानसिक सन्देश भेज कर मेरे गुरुदेव से कहा था। दिव्यानन्द कुछ नहीं बोला बस एक बार बन्द गुफा को देखा और चल पड़ा अनजान पथ की ओर।

...

मन्दिर के प्रांगण के चारो तरफ पत्थरों को तराश कर बिना दरवाजे के छोटे-छोटे कमरे। क़मरे के अन्दर पत्थर का चबूतरा उस पर लाल कम्बल बिछा था। उस पर विशेष प्रकार का आसन। हल्का पीला प्रकाश कमरे में फैला था। बस अन्धेरा कम करने की व्यवस्था थी ऐसा लगा। लेकिन प्रकाश कहां से आ रहा था पता नहीं चल पा रहा था। सामने दिव्यानन्द ध्यानस्थ बैठा था उसका शरीर पाषाणवत् था। ऐसा लगा जैसे स्पन्दनहीन था उसका शरीर। तभी कोलाहल होता है वृद्ध पुजारी के साथ बहुत सारे साधक कुछ ही पल में दिव्यानन्द को घेर लेते हैं। उसे जगाने का असफल प्रयास करते हैं। तभी पुजारी का स्वर सुनाई दिया दिव्यानन्द शरीर त्याग चुका है बार-बार समझाने पर भी मेरी बात नहीं माना। अपने गुरु का विछोह उसे सहन नहीं हो पा रहा था। बार-बार यही कहता ऊर्ध्व प्राणाकर्षिणी विद्या द्वारा शरीर त्याग कर अपने गुरु के पास सदा-सदा के लिये चला जाऊंगा और चला भी गया।

...

तभी मैं अपने सिर पर किसी के स्पर्श का अनुभव करता हूं। नेत्र खुल जाते हैं। देखा सामने गुरुजी बैठे हैं। अरे! क्या मैं स्वप्न देख रहा था।

गुरुजी बोले- नहीं...तुम अपना पिछले जन्म का अनुभव कर रहे थे। अब समझ में आ गया। क्यों मैं कहता रहा अपनी साधना पूर्ण करो।

जब सारी बात समझ में आयी तो नेत्र अपने आप ही भीग गये पूर्वजन्म की मां का त्याग और कष्ट देखकर। फिर गुरुदेव का सान्निध्य और बिछोह मन काफी दुखी सा हो गया। गुरुजी मेरे मनोभाव को समझ गये। उन्होने कहा- जाओ मन को हल्का करो फिर बातें करेंगे।

एक सप्ताह कब बीत गया पता ही नहीं चला। मन काफी अशान्त रहा उन दिनों। कहीं भी मन नहीं लग रहा था। जब मन अशान्त होता गंगातट पर चला जाता। क्या करता साधना के कारण मेरा सामाजिक जीवन एक प्रकार से खत्म सा हो गया था। वैसे बाहरी कोलाहल में मन भी नहीं लगता। एकान्त में रहने की आदत सी पड़ गयी थी। बस यूं ही घाट पर बैठा चिन्तन कर रहा था अपने ही जीवन के बारे में। सच में ईश्वर केवल वर्तमान को दृश्यगत रखता है। उसका नियम एक प्रकार से ठीक है। वर्तमान में दुख और सुख है उसे तो भोगा जा सकता है। दुख-सुख आयेंगे और चले जायेंगे। लेकिन भविष्य या अतीत का जब सामना होता है उसकी अमिट छाप जल्दी मिटती ही नहीं।

यही मेरे साथ हुआ। अपने पूर्वजन्म का जो सत्य सामने आ गया। उसे एक पल भी विस्मृत नहीं कर पा रहा था। पूर्वजन्म के गुरुदेव का जब भी स्मरण आता मन अशान्त सा होने लगता। लेकिन मैं करता क्या। मेरे वश में कुछ भी नहीं है। शरीर तो बस आत्मा का विराम स्थल है। जीवन अनन्त काल से चलता चला जा रहा है और चलता भी रहेगा। यह किसी के बस में नहीं है। बस उसे काल के पथ पर चलना है। क्यों मनुष्य विवश है नियति के आगे। वह क्यों नहीं स्वतंत्र हो पाता। क्या सारी साधना-उपासना बस स्वतंत्रता के लिये है। खैर, जो भी कुछ है अब। सब कुछ समय पर छोड़ दिया।

मन नहीं माना मेरा एक दिन फिर गुरुजी से प्रश्न कर बैठा- आपको यह सब कैसे पता चला?

गुरुजी शान्त भाव से बोले- जो तुमने देखा ध्यान की गहन अवस्था में वह सब मैं तुम्हारे जन्म के पूर्व ही देख चुका था। इसमें तुम्हारे पूर्वजन्म के गुरु ऊर्ध्वानन्द की प्रेरणा थी। न मैं त्रिपुरा जाता न ही तुम्हारा रहस्य मेरे सामने खुलता।

कैसा रहस्य- मैंने जिज्ञासावश प्रश्न किया।

गुरुजी कुछ पल सोचते रहे फिर कहना प्रारम्भ किया- साठ का दशक था। मन अशान्त था। बस शान्ति की तलाश में त्रिपुरा निकल गया।

त्रिपुर में त्रिपुर सुन्दरी का भव्य मन्दिर है। जो इक्यावन शक्तिपीठों में

से एक है। मान्यता है कि यहां सती के पैर का अंगूठा गिरा था। स्थानीय भाषा में इस मन्दिर को माताबाड़ी कहते हैं। इसे कूर्म पीठ भी कहते हैं। मान्यता है त्रिपुर सुन्दरी का पिण्ड भगवान कूर्मावतार की पीठ पर स्थित है। इसलिये शाक्त साधकों का प्रमुख साधना स्थल भी माना जाता है। त्रिपुर राज्य और बांग्लादेश के सीमा पर स्थित अगरतला जो असीम प्राकृतिक सौन्दर्य से भरा है। इस स्थान को स्वर्ग माना जाता है। वहीं से लगभग चालीस किलोमीटर दूर स्थित उदयपुर कभी माणिक्य राजघराने की राजधानी थी। अब खण्डहर के अलावा कुछ भी नहीं बचा है। यहीं पास में गोमती नदी की प्रबल धारा बहती है। इसके घुमावदार के कारण कई झीले बन गई हैं। जिसे दीधि कहते हैं। इसी दीधि के किनारे पहाड़ी पर त्रिपुर सुन्दरी का मन्दिर है। मन्दिर के थोड़ी दूरी पर एक शान्त झील भी है जो मन्दिर को और भी मनमोहक बना देता है।

बस कुछ दिन वहीं निवास करने का विचार कर रहने की व्यवस्था कर ली। ऐसे ही एक दिन घूमते-घूमते प्राचीन भैरव मन्दिर पहुंच गया। असीम ऊर्जा का भान होने लगा। भैरव की जागृत पाषाण प्रतिमा जैसे कुछ बोल रही है। फिर आगे भुवनेश्वरी मन्दिर पहुंचा मां का दर्शन कर जब सामने देखा तो एक राजमहल जीर्णशीर्ण अवस्था में था। ऐसा लगा जैसे मुझे कोई प्रेरित कर रहा है महल की ओर जाने के लिये। पता नहीं किस प्रेरणा के वशीभूत होकर मैं महल की ओर चल पड़ा। ऊंची पहाड़ी पर राजमहल भग्नावशेष अवस्था में था। अपने अतीत और वर्तमान को जैसे देख रहा हो। सीढियां चढ़ते हुए महल के प्रांगण में पहुंच गया। प्रांगण काफी लम्बा-चौड़ा था। चारो तरफ सांय-सांय कर रहा था। तभी सामने पड़ी जीर्ण अवस्था में स्थित मन्दिर पर नजर पड़ी। उसकी नक्कासी देख कर ऐसा लगा जैसे वह मन्दिर कभी काफी सुन्दर रहा होगा। मन्दिर के पास चबुतरे पर एक बंगाली वृद्ध पर मेरी नजर पड़ी शायद अस्सी के पार उसकी उम्र रही होगी। सफेद मटमैली लुंगी, मटमैला सा चादर ओढ़े, पकी दाढ़ी-मूंछ, आंखे लाल-लाल जैसे वर्षो से सोया नहीं हो। खैर, मैं चुपचाप उसके समीप पहुंचा और बोला- बाबा आप कैसे हो? प्रणाम स्वीकार करें। वह सिर उठा कर मेरी ओर देखा फिर हो होकर हंसते हुए कहा- दादा कहां से आया है और इस वीराने में क्या कर रहा है?

मैं थोड़ा आश्वस्त होकर बोला- बाबा काशी से आया त्रिपुरा घूमने। यह मन्दिर किसका है।

मां काली का है। अब कुछ भी नहीं है मां चली गई।

समझा नहीं बाबा आप क्या कह रहे है।

दादा जिस महल में आप खड़े हो कभी यह सौन्दर्य और अपने शान के लिये प्रसिद्ध था। सोलहवीं शताब्दी के माणिक्य राजवंश के राजाओं का था। वे लोग काली के भक्त थे। हर दीपावली की रात्रि में यहां नरबलि होती थी। इन लोगों का कोई अवधूत गुरु था। लेकिन दीपावली की रात कोई ऐसी घटना घटी मां यहां से चली गई। तब से काली मन्दिर खाली पड़ा है। राजवंश के लोग मां की दूसरी प्रतिमा स्थापित करने की बार-बार कोशिश की परन्तु हर बार मां की प्रतिमा खण्डित हो जाती। तीन बार के बाद फिर किसी ने प्रयास नहीं किया। बस वैसे ही मां की पूजा होती रहती। जब तक मैं हूं करता रहूंगा मां की पूजा। मेरे बाद पता नहीं कौन करेगा।

महल और मन्दिर सब बिखर गया है। मेरी तरह बूढ़ा हो गया है। इतना कह कर हो होकर हंसने लगा। मैं उसकी हंसी के बीच ही बोल पड़ा- बाबा क्या मैं मन्दिर में जाकर मां के स्थान का दर्शन कर सकता हूं। हां...क्यों नहीं...तू जा दर्शन कर भगवती की मैं बाहर ही बैठा हूं।

मन्दिर का छोटा सा द्वार। सिर झुका कर अन्दर प्रवेश किया। मन्दिर के अन्दर बड़े से दीपदान में दीपक जल रहा था। जहां कभी भगवती की प्रतिमा थी वह थोड़ा ऊंचा था। उस पर माला, अक्षत और कुमकुम चढ़ा हुआ था। फर्स मटमैली थी। ऐसा लगा जैसे रक्त यहां से बहता था यानि बलि होती थी। धूप की सुगन्ध के अलावा एक अजीब सी गन्ध थी जैसे ताजे रक्त की हो।

मैं हाथ जोड़ कर ध्यान करने लगा। पता नहीं कैसे मैं ध्यान की गहरी अवस्था में चला गया और उस अवस्था में जो दृश्य देखा उसे कभी भूल नहीं सकता। जब आंखे खुली तो हड़बड़ा कर बाहर निकला मन्दिर से। हल्का अन्धेरा होने लगा था। न वृद्ध बंगाली पुजारी दिखा, न ही मन्दिर में जलता दीपक। मन्दिर में घुप्प अन्धेरा था और मन्दिर के बाहर प्रांगण में एकमात्र अकेला मैं। बस किसी तरह वहां से निकल कर बाहर आया।

तभी दो-चार लोग मिले जो बाहर खड़े थे। बोले- अरे बाबा आप ऊपर से आ रहा है।

मैंने कहा- हां...महल देखने गया था। अरे बाबा यहां कोई नहीं आता। बड़ा ही खतरनाक स्थान है। आपको अकेले इधर नहीं आना चाहिए। खैर, कुछ देर बाद अपने निवास पर पहुंच गया राहत की श्वांस ली।

मैं बहुत ही ध्यान से गुरुजी की बातें सुन रहा था। फिर पूछा- आगे क्या हुआ। गुरुजी बोले- रात्रि में तुम्हारे पूर्वजन्म के गुरु को देखा। उन्ही के अनुरोध पर तुम्हारी आत्मा का आवाहन किया और तुम आज मेरे सामने बैठे हो। खैर, तुम्हे ऐसे गल्ती नहीं करनी चाहिये थी।

कैसी गल्ती-मैंने पूछा। गुरु के मोह में आकर बिना संकल्प के अपना शरीर त्याग करने की गल्ती। जानते हो प्राणाकर्षिणी विद्या द्वारा साधक संकल्प कर अपनी आत्मा को सूक्ष्म शरीर द्वारा विचरण करता है फिर निश्चित काल में अपने शरीर में वापस आ जाता है। सूक्ष्म शरीर के विचरण के मूल में संकल्प होता है और आत्मा का सम्बन्ध प्राण शक्ति द्वारा शरीर से जुड़ा रहता है। उसी को रजत रज्जू कहते हैं। आत्मा और शरीर को जोड़ने वाले रजत रज्जू एक प्रकार की प्राण शक्ति ही है। लेकिन तुमने बिना संकल्प के शरीर का त्याग कर दिया। संकल्प न होने के कारण तुम्हारा सूक्ष्म शरीर अनन्त में भटकता रहा। न तुम अपने गुरु से मिल पाये न ही दोबारा अपने शरीर से। क्योंकि तुम्हारे गुरु साधना की ऐसी उच्चावस्था में थे जहां तुम्हारा पहुंचना नामुमकिन था। उन्हे तुम्हारे लिये योग्य गर्भ की तलाश थी। संयोगवश उनकी आत्मा ने मुझसे सम्पर्क कर तुम्हे आवाहन करने का अनुरोध किया और तुमने जो दृश्य देखा अपने पूर्वजन्म का वह सारा दृश्य यानि घटना उस काली मन्दिर में मैं पहले ही देख चुका था और उसी घटना को मैंने अपने मानसिक शक्ति द्वारा तुम्हे चलचित्र की तरह दिखला दिया।

अब तो सारा रहस्य तुम्हारे सामने उजागर हो गया। किसी भी साधक की साधना एक जन्म की नहीं होती। उसकी कड़ी जन्म-जन्मान्तरों की होती है।

सत्य सामने आ चुका है अब पूरी सतर्कता से और पूरी श्रद्धा व विश्वास से अपनी अधूरी साधना को पूर्ण करने में लग जाओ।

...

मन अशान्त था। लेकिन करता क्या। बस जीवन में एकमात्र साधना करनी थी बस वह करने लगा। लेकिन पूर्वजन्म के गुरुदेव से एक बार मिलने की प्रबल इच्छा थी। लेकिन साधना की उच्चावस्था जब उपलब्ध होगी तभी सम्भव होगा। ऐसा गुरु जी का कहना था।

आज भी गुरुजी के बतलाये साधना मार्ग पर चल रहा हूं नितान्त अकेला....।

मनोज सिद्धार्थ शर्मा

प्रसंग एक
जगत और हमारा अस्तित्व

इस जगत के अनन्त रुप हैं और हैं अनन्त परिभाषाएं। लेकिन जब भी हम जगत के मूल रुप में देखने का प्रयास करते हैं तब वह विराट नजर आता है और अन्तहीन नजर आता है। मन उद्विग्न होने लगता है। बस हजारों प्रश्न मस्तिष्क में तैरने लगते हैं। इस जगत का क्या रहस्य है? हम कौन हैं? केवल विकासवाद की कड़ी मात्र हैं या कुछ और भी है? मन बैचेन सा होने लगता है। एक तरफ आत्मा की शून्यता, बैचेनी है तो दूसरी तरफ कुछ कर पाने की लालसा। ऐसा क्यों है? क्या हम केवल शरीर मात्र हैं बस चल रहे हैं या कोई और भी नियन्ता है? वह नियन्ता है भी की नहीं? इतनी विवशता क्यों है जो हर पल साये की तरह लगी रहती है।

कभी-कभी गहन निराशा के अन्धेरे में जीवन खो सा जाता है। ऐसा लगता है जैसे सब कुछ खत्म सा हो गया। जीवन में विराम तो एक बार ही आता है। परन्तु निराशा के न जाने कितने अल्प विराम आते रहते हैं। इन्ही अल्प विरामों के बाद जीवन ठहर सा जाता है। हम समझ ही नहीं पाते, यह क्या हुआ और कैसे हुआ? सब कुछ तो ठीक ठाक चल रहा था बस एक पल में सब बिखर सा गया। अक्सर क्यों और कैसे का उत्तर नहीं मिलता। ऐसे में जीवनी शक्ति सूखने सी लगती है और लगता है कि कुछ बचा ही नहीं। बस एक इन्तजार सा होता है। कोई आये और कह दे मैं हूँ न.....।

जीवन की अनवरत् यात्रा में आगे बढने के लिए किसी न किसी उत्प्रेरक की आवश्यकता पड़ती है। जो हमें गहन अन्धकार से निकाल कर स्वच्छ निर्मल प्रकाश के सामने खड़ा कर दे और जीवन का मूल्य समझाये और नई ऊर्जा भर दे। जिससे तन-मन और आत्मा सराबोर हो जाये। कभी भी भटकना न पड़े। उस प्रकाश में जीवन चलता रहे और हर पल नया

बन कर उभरे। वह उत्प्रेरक कौन है? वह है परम चेतना। वह परम चेतना ही हमारे अन्दर यानि चेतना के रुप में, आत्मा के रुप में अवस्थित है उससे बड़ा उत्प्रेरक इस जगत में कोई नहीं है। वही मेरा सच्चा मित्र है, सखा है और है कृष्ण.....।

जो हर पल हमें समझाता रहता है। सत्य का मार्ग बतलाता है। जीवन जीने की कला बतलाता है। ऐसे सच्चे मित्र को हम लोग हर पल नजर अन्दाज करते रहते हैं और सारा सुख, खुशी, प्रसन्नता बाहर खोजते हैं जो केवल भ्रममात्र है। जब तक हम दूसरों के माध्यम से खुशी खोजेंगे, दूसरों से आशा करेंगे तब तक दुख, तनाव और अकेलेपन के अलावा कुछ नहीं मिलेगा। हमें स्वयं को पाना होगा।

एक हमारी चेतना ही हमारा सच्चा मार्गदर्शक और उत्प्रेरक है। हमारे हर प्रश्न का उत्तर उसी के पास है। बस एक कदम बढ़ाना है जो हम नहीं बढ़ा पाते। उस चेतना की अनुभूति चारो तरफ होती है। लेकिन हम चाहते हुए भी उस परम अनुभूति का आभास नहीं कर पाते। उस अनुभूति को समझने के लिए उस मूल पर विचार करना होगा।

हमारी आत्मा जो निरन्तर ज्ञान की ओर बढ़ रही है। यदि हम उसके मूक निर्देश को, मूक संकेत को समझने का प्रयत्न करें तो जीवन अपने आप सही दिशा में बढ़ता जायेगा। अपने आप सही मार्ग पर चलते जायेंगे। सच तो यह है कि आत्मा की सारी प्रक्रियाएं हमारे जीवन के निर्माण के लिए है। हमें मनुष्य बनाने के लिए है। जिसने आत्मा को समझा, उसके मूक संकेत को समझा और उसकी मूक पगध्वनि को सुना, वास्तव में उसी के जीवन का सच्चे अर्थों में निर्माण होता है। आत्मा 'सत्य' है और परमात्मा है 'परम सत्य'। हम दुखी इसीलिए हैं कि हम न सत्य से परिचित हैं और न तो हैं परिचित परम सत्य से।

सत्य, जीवन-जगत और आत्मा-परमात्मा का प्राण है। वह अस्तित्त्व का भी अस्तित्त्व है। सत्य की खोज नहीं की जाती। वास्तव में खोज सत्य की नहीं बल्कि असत्य की होती है। खोज तो उस वस्तु की होती है जो हमारे पास नहीं है और जिसकी हमें आवश्यकता है। खोज उसकी नहीं हो सकती जो हमारे पास है, हमारे करीब है। किसी वस्तु को खोजने के लिए

दो की आवश्यकता पड़ती है। पहला खोजने वाले की और दूसरा जिसकी खोज हो। मगर जहां तक सत्य की बात है दोनों एक ही है। जैसे नृत्य से नृत्यकार को, संगीत से संगीतकार को, मूर्ति से मूर्तिकार को अलग नहीं किया जा सकता है। उसी प्रकार सत्य को और सत्य खोजने वाले को भी अलग नहीं किया जा सकता है।

हमारे जीवन के दो छोर हैं। पहला छोर है बहिर्मुखी और दूसरा छोर है अन्तर्मुखी। बहिर्मुखी जीवन में प्रकाश है। लेकिन अन्तर्मुखी जीवन घोर अन्धकारयमय है। आंखे बन्द करते ही उसका हमें अनुभव होता है।

हमारी सारी इन्द्रियां बहिर्मुखी हैं। मन भी बाहर भटकता रहता है। बाहर प्रकाश है। इन्द्रियां और मन बाहर प्रकाश में सत्य को खोजने का प्रयास करते हैं। भीतर का जो अन्तर्मुखी जीवन है वहां न इन्द्रियां काम करती हैं और न मन ही झांकता है।

जहां तक हमारी इन्द्रियों की सीमाएं हैं और जहां तक हमारा मन भागदौड़ करता है वहीं तक हम खोज कर सकेंगे इन्द्रियों की और मन की सीमा, खोज की सीमा है और जहां वह सीमा समाप्त हो जाती है वहां से हमारी सारी इन्द्रियां वापस लौट जाती हैं और जहां वापस लौट आती हैं वह भीतर है और उस भीतर में घोर अन्धकार है और उस घोर अन्धकार से डूबा हुआ महाशून्य है। मगर शून्य जितना गहरा होगा वहां शक्ति भी उतनी गहरी होगी। शून्य यानि शक्ति का केन्द्र, शक्ति का पीठ।

हमारे भीतर जहां अन्धकार है और उस अन्धकार में डूबा हुआ जहां परम शून्य है वहां आत्मशक्ति का केन्द्र है। आत्मा की सत्ता है। आत्मा का है अस्तित्व। सत्य के रूप में प्रतिष्ठित है वह है आत्मा। मगर हमारी इन्द्रियां मन की सहायता से उस परम सत्य को और उस आत्मा को बाहर प्रकाश में खोजती है और प्राप्त करने का प्रयत्न करती है।

आत्मा परम सत्य है। आत्मा की शक्ति परम शक्ति है और जो प्रकृति के रूप में सम्पूर्ण विश्व में फैली हुई है।

वैज्ञानिकों की धारणा है कि वे सत्य की खोज करते हैं। लेकिन हम कहते हैं कि सत्य की खोज का अभिनय करते हैं, नाटक करते हैं। विज्ञान चलता तो है सत्य की खोज में मगर उसे उपलब्ध होती है शक्ति। आज

का विज्ञान सत्य की खोज की भावना और विचार लेकर शक्ति अर्जित करता जा रहा है। बराबर शक्तिशाली होता जा रहा है। सच तो यह है कि विज्ञान शक्तिशाली अवश्य है मगर सत्यशाली नहीं है। सत्य उसको कभी भी प्राप्त नहीं होगा। प्राप्त होती है उसे शक्ति। यदि ऐसे व्यक्ति के पास शक्ति आ जाये जिसने सत्य को प्राप्त नहीं किया है, सत्य की अनुभूति नहीं की है तो काफी खतरनाक सिद्ध होता है। क्योंकि वह अपनी तमाम शक्तियों का उपयोग असत्य के नियोजन में ही करता रहेगा। यही स्थिति आज विज्ञान की है। उसके पास असीम शक्ति है। लेकिन सत्य का सर्वथा अभाव है। यही कारण है कि आज विज्ञान से भयंकर खतरा पैदा हो गया है। अशान्ति पैदा हो गयी है। वह प्रकृति पर विजय प्राप्त करता जा रहा है। प्रकृति से बराबर संघर्ष करता जा रहा है। बराबर विभूता स्थापित करता जा रहा है।

देखा जाए तो विज्ञान ने बहुत उन्नति की है परन्तु मनुष्य की तृष्णा अब भी नहीं बुझी। वैज्ञानिकों के विचार डावांडोल हो रहे हैं। वे कहां जा रहे हैं उन्हे ज्ञात नहीं है। उनका कहना है कि हम अपने आविष्कारोन्मुख प्रतिभा एवं विज्ञान का गर्व करते हुए भी सत्यता के स्वभाव, रूप एवं उसकी प्रगतियों से मौलिक रूप से अनभिज्ञ हैं। हम कहां जा रहे नहीं जानते और न हमें यही ज्ञात है कि हम अनुकूल मार्ग पर हैं। यदि भविष्य में कोई वाञ्छनीय लक्ष्य है भी तो कदाचित् हम उससे बहुत दूर जा पड़े हैं।

यह भी सत्य है कि सत्य के नाम पर विज्ञान की शक्ति की खोज ने मानव समाज को भयंकर कठिनाइयों में डाल दिया है। उसकी अब तक की उपलब्धियों के कारण अपने भीतर के आयामों को खोजने की प्रवृत्ति मनुष्य में बिल्कुल मन्द पड़ गयी है। परिणाम यह हुआ कि पिछले हजार वर्षों में भगवान बुद्ध, महावीर, ईसा, क्राइस्ट, मुहम्मद आदि जैसे युगपुरूषों को संसार पैदा न कर सका। इसलिए कि युगपुरुष अथवा अवतारी पुरुष के भीतर के आयामों की ओर न अब तक किसी का ध्यान गया और न जा रहा है। हम यह स्वीकार करते हैं कि मनुष्य की प्रज्ञा ने तरह-तरह के आविष्कार किये, तरह-तरह के निर्माण किये। मगर सत्य का आविष्कार और निर्माण न कर सकी। इसलिए सत्य का निर्माण और

अविष्कार करने के लिए संसार में न कोई साधन है और न कोई उपाय ही है। सत्य स्वयं निर्मित है। सत्य स्वम्भू है। सत्य सनातन है। मनुष्य के द्वारा जो भी निर्माण होता है, जो भी आविष्कार होता है वह असत्य ही होता है इसलिए कि वह निर्मित है।

जहां सत्य होगा वहां शान्ति होगी, संघर्ष नहीं। कलह न होगी। जहां सत्य होगा वहां प्रेम होगा, घृणा न होगी। देखा जाये तो हम शास्त्रों, सिद्धान्तों, सम्प्रदायों के नियमों से बंधे हैं। गुरुओं के झमेले में फंसे हैं। यदि हमें सत्य को प्राप्त करना है तो इन बन्धनों से अपने आपको मुक्त करना होगा। सच तो यह है कि हम कल्पनाओं में जीते हैं। इसीलिए हमारा सम्बन्ध सत्य से स्थापित नहीं हो पाता। हम सत्य को देख नहीं पाते। हमारा सम्पूर्ण व्यक्तित्व असत्य पर टिका है और साथ ही हम सत्य को प्राप्त करने का प्रयास करते हैं। हमारा सारा जीवन असत्य पर आधारित है। सारा व्यत्तित्व असत्य पर खड़ा है। सत्य की खोज के लिए अथवा सत्य को पाने के लिए व्यक्तित्व से और जीवन से असत्य को निकाल बाहर कर देना आवश्यक है।

जीवन में, व्यक्तित्व में और व्यवहार में हम जैसा बाहर हैं वैसा भीतर नही हैं और जैसा भीतर हैं वैसा बाहर नहीं हैं। कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं दिखलायी पड़ना चाहता है और जो झूठ, मिथ्या, असत्य है उसकी चादर ओढ़ लेना चाहता है। फिर वही व्यक्ति सोचने लगता है कि मैं सत्य को प्राप्त करूं। वही आदमी, वही व्यक्ति भगवान की मूर्ति के सामने खड़ा होकर हाथ जोड़ता है। भजन गाता है। प्रार्थना करता है। व्रत-उपवास करता है कि उसे सत्य मिल जाये। सत्य के दर्शन हो जायें। वह व्यक्ति यह कभी भी सोचने-समझने की चेष्टा नहीं करता कि अगर वह असत्य पर निर्भर है, उसका जीवन असत्यमय है तो उसे सत्य का पता कैसे चल सकता है।

सत्य की प्राप्ति के लिए सबसे पहले हमें अपने सम्पूर्ण व्यक्तित्व को सत्य पर प्रतिष्ठित करना होगा। हमारा व्यक्तित्व जैसा है वैसा ही होना चाहिए। सीधा, सरल और पूर्ण स्वच्छ। हम जैसे हैं, हम जो भी हैं व्यक्तित्व की स्वीकृति भी वैसी ही होनी चाहिए। लेकिन वह स्वीकृति हमारे मन के भीतर कहीं नहीं है। सबसे आश्चर्य की बात तो यह है कि जिन्हे हम भला

आदमी कहते हैं। उनमें वह सरलता, सहजता और स्वच्छता और भी कम दिखलायी देती है। ठीक इसके विपरीत जिन्हे हम बुरा आदमी समझते हैं, अपराधी समझते हैं वे सरल हो सकते हैं। लेकिन जिन्हे हम साधु समझते हैं वे बिल्कुल भी सरल नहीं है। यही मूल कारण है कि सभ्यता और संस्कृति जैसे-जैसे विकसित होती चली गयी वैसे ही वैसे मनुष्य असत्य होता चला गया। उसके व्यक्तित्व का निर्माण और उसके जीवन का आधार असत्यमय होता चला गया।

मानव सभ्यता और संस्कृति का आधार धर्म है। मगर धर्म के नाम आज तक जितनी हत्याएं हुई हैं, धर्म के नाम पर जितने मकान, जितने गांव जलाये गये और जितनी स्त्रियों का अपमान किया गया उतने सारे पाप आज तक पापियों ने भी मिलकर न की होगी। बड़े आश्चर्य की बात है कि धर्म के नाम पर यह सब होगा तो अधर्म के लिए कुछ बाकी न रह जायेगा। फिर अधर्म का क्या होगा? अधर्म के लिए तो कुछ भी नहीं छोड़ा है इन धार्मिकों ने।

सत्य को समझने के लिए हमें सबसे पहले मृत्यु को जानना होगा और स्वीकार करना होगा। उसके फलस्वरूप मृत्यु के भय से सर्वथा के लिए रहित हो जायेंगे। भयरहित होते ही और यह ज्ञात होते ही मृत्यु नाम की कोई वस्तु नहीं है। उसी समय हम किसी दूसरे ही संसार में अपने आप प्रवेश कर जायेंगे। हमारा उस सत्य से साक्षात्कार हो जायेगा। जिसको जान समझ लिया जाता है। फिर कुछ शेष नहीं रहता और हम अमृतत्व को प्राप्त हो जाते हैं और जिसने अमृतत्व को प्राप्त कर लिया उसका जीवन क्रोध, घृणा, द्वेष, ईर्ष्या रहित हो जायेगा। न कोई उसका मित्र होगा और न कोई शत्रु। प्रेम और करूणा से भर उठेगा उसका सम्पूर्ण जीवन।

"कुण्डलिनी साधना प्रसंग" के द्वारा हम आपके भीतर सत्य को प्राप्त करने की प्यास पैदा कर देना चाहते हैं। वह मार्ग भी आपको हम बतला देना चाहते हैं जिसके द्वारा आपके भीतर अध्यात्म की ज्वाला धधक सकती है। अपने आपको समझने के लिए आत्मा में व्याकुलता पैदा हो सकती है और अपने आपको जानने के लिए मन उद्विग्न हो सकता है। हमें विश्वास है कि वह ज्वाला, वह आकुलता और उद्विग्नता आपको ऐसी दिशा की ओर ले जायेगी जहां अमृत है, परम शान्ति है, परम आनन्द

है और है परम सुख। आप दुख के लिए पैदा ही नहीं हुए हैं। जब तक आनन्द को आप उपलब्ध नहीं कर लेते तब तक दुख अनिवार्य है। स्मरण रखिये आनन्द को पाने का आपका विचार नहीं है। आनन्द के लिए आपने कभी विचार किया ही नहीं। आनन्द को पाने का कभी प्रयास नहीं किया है। आनन्द आपकी प्यास है, आपकी अभीप्सा है। आपको मालूम होना चाहिए कि आनन्द की प्यास ही धर्म को जन्म देती है। धर्म का जन्म किसी के चिन्तन-मनन से नहीं हुआ। किसी के सोच-विचार से नहीं हुआ। वह प्यास हमारे और आपके प्रत्येक व्यक्ति के भीतर है। सम्प्रदाय धर्म नहीं है। धर्म की अभिव्यक्ति है। सम्प्रदाय धर्म नहीं है बल्कि धर्म का शरीर है। जब तक सम्प्रदायों का बोझ ढोते रहेंगे तब तक धर्म को नहीं जान सकते। धर्म को जानने के लिए हमें सम्प्रदायों से ऊपर उठना होगा उसी प्रकार जैसे आप हमें जानना चाहेंगे तो हमारी देह के पार अतीत को देखना होगा। जो हमारी देह पर रूक जायेगा, हमारे आस-पास बिखरे भौतिक जीवन में उलझ जायेगा वह हम तक कभी नहीं पहुंच सकेगा। हम शरीर में हैं पर शरीर नहीं है। हम शरीर के भीतर हैं जो हमारे शरीर के तल पर रूक जायेगा वह हम तक नहीं पहुंच सकेगा। शरीर आवरण मात्र है।

इसी प्रकार सम्प्रदाय केवल धर्म का आवरण है। धर्म को जानने के लिए सम्प्रदाय से मुक्ति आवश्यक है। आपका मस्तिष्क सिद्वान्तों से भरा है। शास्त्र, पुराणों के शब्दों में खूब कोलाहल हो रहे हैं आपके मस्तिष्क में। तमाम आध्यात्मिक विचारों की भीड़ भी लगी हुई है वहां। लेकिन क्या उन सबसे धर्म का कोई सम्बन्ध है? नहीं, बिल्कुल नहीं। वे सब मात्र केवल स्मृतिभार हैं आपके मस्तिष्क में। उन स्मृतिभारों से आपमें कोई क्रान्ति नहीं हुई है। आपमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। आपको किसी प्रकार के आनन्द की उपलब्धि नहीं हुई है। आप जो थे वही हैं। अब भी, इस समय भी। आपको मालूम होना चाहिए कि जीवन के साथ जब धर्म का सम्बन्ध होता है तो उसके स्पर्श से सम्पूर्ण जीवन ही बदल जाता है। वह परम आनन्द, परम शान्ति और परम आलोक से भर जाता है। विचारों की गहरायी में एक क्रान्ति घटित हो जाती है। धर्म का मतलब है स्व। स्व यानि आत्मा। आत्मा की दिशा में यात्रा करना चाहिए। क्योंकि स्व ही जीवन का मूलस्रोत है। आपको हम उसी दिशा में ले चलने के लिए प्रयत्नशील हैं।

आपका सम्बन्ध धर्मशास्त्रों से है। धार्मिक ग्रन्थों से है। धार्मिक सम्प्रदायों से है। आपका सम्बन्ध धार्मिक कहे जाने वाले लोगों से है मगर धर्म से नहीं है। धर्म से आपका कोई नाता नहीं है। कोई सम्बन्ध नहीं है। क्या आपको अपने आप में, अपने भीतर कोई कृतार्थता, कोई सार्थकता दिखलायी पड़ती है? जिसके फलस्वरूप आपका जीवन शान्तिमय हो गया हो, आनन्दमय हो गया हो। जिसके कारण जीना एक अर्थ में बदल जाता है और हरेक सांस में कृतार्थता का बोध होने लगता है वह तो कहीं नहीं है आपके जीवन में। इन सबसे ठीक विपरीत आपके भीतर एक अन्धकार है अत्यन्त ऊबन पैदा करने वाला खालीपन है। एक उदासीनता है। आप उदासी के कारण अपने आपको कहीं न कहीं उलझाये रखना चाहते हैं। अपने आपको कहीं न कहीं व्यस्त रखना चाहते हैं। इसी के कारण कोई अकेला नहीं रहना चाहता। क्या यही जीवन है? क्या इसी को जीवन कहियेगा आप? नहीं बन्धु! यह जीवन नहीं है यह पलायन है।

जीवन में जो दुख है उसको आप कभी भी दूर नहीं कर सकते। उसको दूर करने का कोई न उपाय है और न है कोई साधन। दुख तभी दूर हो सकता है। जब तक हम अपने जीवन को आमूलचूल न बदल दें क्योंकि जीवन का दुख किसी बाहरी कारण से नहीं है। इसीलिए सब अभाव दूर भी हो जायें, मिट भी जायें, तब भी दुख का अस्तित्व जीवन में बना रहता है। वह और भी प्रगाढ़ हो जाता है क्योंकि तब अभाव दूर करने की व्यस्तता न रह जाने से उसका अधिक नग्न रूप सामने आ जाता है। एक दरिद्रता वह होती है। जो दरिद्रता में दिखलायी देता है। परन्तु दरिद्रता यही नहीं है। एक ऐसी भी गहरी दरिद्रता होती है जो समृद्धि में दिखलायी पड़ती है।

जीवन का दुख किसी बाहरी अभाव के कारण नहीं है। अभावों के कारण कष्ट है। परन्तु दुख किसी बाहरी अभाव के कारण नहीं है और इसलिए सारे कष्ट मिट भी जायें तब भी वह बना ही रहता है। क्योंकि कष्ट के तल और दुख के तल अलग-अलग हैं। वे अलग समस्यायें हैं। कष्ट परिधिगत असुविधा का नाम है और दुख केन्द्रगत सन्ताप का नाम है। कष्ट अनिगिनित हो सकते हैं मगर दुख एक ही होगा। सारे कष्ट यदि खत्म भी हो जाएं तो भी दुख का अस्तित्व बना ही रहेगा। दुख को दूर करने का मात्र

एक ही उपाय है और वह है धर्म। दुख किसी प्रकार की असुविधा नहीं है। इसलिए वह किसी भी सुविधा से दूर नहीं हो सकता।

दुख अज्ञात है केवल आत्मप्रकाश होने पर ही वह दूर हो सकता है और कोई दूसरा रास्ता नहीं है। आत्मप्रकाश का मतलब है स्व की उपलब्धि। स्व से बढ़कर जीवन में कोई दूसरी सम्पदा नहीं है। क्योंकि वह हमारी अन्तर्निहित सम्पदा है।

हम इतने परतंत्र हैं कि क्या कहें यह स्थिति है। अपना ही मन है पर हम उसके मालिक नहीं। हमारा उस पर कोई अधिकार नहीं। हम जब तक मन में अधिकार जमाये हुए हैं तब तक हम पूर्ण रूप से मनुष्य नहीं बन सकते। वासनाओं पर विवेक की जीत से ही मनुष्य का सच्चे अर्थों में जन्म होता है। विजय का पहला चरण अपनी वासनाओं और अपने मन पर होना चाहिए। वासनाओं के वेगों और वासनाओं की तमाम वृत्तियों को जीतकर ही हम यह कह सकते हैं कि मन हमारा है। वैसे तो कहने भर का हमारा है। परन्तु जरा भी हमारा है नहीं। उसके सचेतन वेग के प्रवाह में हम बराबर बढ़े चले जाते हैं। उसके प्रवाह के सामने हमारी कोई सत्ता और कोई प्रभुता नहीं है। अचेतन की आंधियों के सामने चेतन विवेक को बार-बार हार जाना पड़ता है और वह संघर्ष जीवन भर चलता रहता है।

जब आप यह जानना चाहेंगे कि मन पर, वृत्तियों पर और उनके तमाम वासनात्मक वेगों पर कैसे विजय प्राप्त की जा सकती है? इस विषय में सबसे पहले आप यह जान लें कि लड़ाई से शत्रु पर कभी भी विजय प्राप्त नहीं हो सकती। लड़ाई से शत्रु को हराया जा सकता है परन्तु जीता नहीं जा सकता और हराने और जीतने में काफी अन्तर है। शत्रु हारने से टूट जाता है, दमित हो जाता है परन्तु शत्रुता दमित नहीं होती। उस तल पर तो वह अपराजित ही बना रहता है। शत्रु के भीतर आपकी विजय की स्वीकृति कभी भी नहीं हो पाती। शत्रु आज तक कभी भी जीते नहीं गये। आज तक मित्र ही जीते गये हैं। विजय केवल मित्र पर ही होती है। मित्रता में ही शत्रुता पराजित होती है। यह सिद्धान्त साधना मार्ग में आन्तरिक विजय प्राप्त करने के लिए और अधिक निरापद है। बाहरी शत्रु तो अन्य है मगर भीतर के शत्रुओं को अन्य नहीं कहा जा सकता।

मन की शक्तियां, वृत्तियों की शक्तियां हमारी ही शक्तियां हैं। तमाम वासनायें भी हमारी ही शक्तियां हैं। मगर सब की सब दिग्भ्रमित हैं। उन सबको हमें हराना है, पराजित करना है, उन्हे जीतना है और सन्मार्ग की ओर प्रेरित कर देना है। उनका विनाश नहीं करना है। उनको संपरिवर्तन करना है। उनके विनाश से तो हम नष्ट हो जायेंगे। हम अज्ञानतावश उन तमाम शक्तियों को अपना शत्रु मान बैठे हैं मगर जब मित्रता के द्वारा उन पर विजय पर प्राप्त कर लेते हैं और उन्हे संपरिवर्तित कर देते हैं तो वे तमाम शक्तियां ही दिव्य ऊर्जा का रूप धारण कर परमेश्वर की प्राप्ति का आधार और परमेश्वर तक पहुंचने का मार्ग बन जाती हैं।

आन्तरिक वृत्तियों पर विजय पाने का एकमात्र साधन है मैत्री। हमारे भीतर शक्तियों के जितने भी केन्द्र हैं। वे सब अविजित हैं। यही कारण है कि हम उन शक्तियों के हाथ में यंत्र बने हुए रहते हैं। हम में वासनायें ही सब कुछ होती हैं। जिसके फलस्वरूप हम विवेकशून्य से बने रहते हैं या फिर हम अन्धे होकर उनसे लड़ने और संघर्ष करने लगते हैं। उनका विरोध करने लग जाते हैं। हमें समझना चाहिए कि अपनी ही इन तमाम शक्तियों से लड़ने का परिणाम क्या हो सकता है। उससे अपनी ही जीवनी शक्ति और जीवन ऊर्जा का ह्रास होगा। अपनी अन्तर्निहित शक्तियों से मैत्री करना होगा।

हम अपने से भी प्रेम नहीं करते हैं तो किसी दूसरे को क्या प्रेम करेंगे। हमें अपने शरीर और मन दोनों से प्रेम करना चाहिए। ये दोनों हमारे जीवन के उपकरण हैं। हमारी आत्मा के मंदिर हैं। सहानुभूति और प्रेम के प्रकाश में ही वे अपना-अपना रहस्य खोलते हैं और हमें उनमें प्रवेश मिलता है। प्रेम से प्रवेश मिलता है आपके भीतर। विरोध से नहीं। प्रेम से अपने भीतर एक ऐसा वातावरण तैयार होता है। जो आत्म निरीक्षण को जन्म देता है और आत्म निरीक्षण से ही जीवन में सामंजस्य पैदा होता है। जिसके फलस्वरूप चित्त पूर्ण चेतनामय हो उठता है और वासनायें समाप्त हो जाती हैं और अन्त में विवेक की अग्निशिखा रह जाती है।

जीवन में सांमजस्य नहीं है और यही कारण है जीवन के तमाम दुखों का। आसमंजस्य और असामान्यता ही हमारे जीवन में तमाम सन्तापों का

कारण है। वृत्तियों, वासनाओं और तमाम इच्छाओं की अन्धी विक्षिप्तता ही दुख है, सन्ताप है, क्लेश है, बन्धन है इनसे मुक्त होना ही एकमात्र मोक्ष है।

अगर आपको जीवन के तथ्यों को जानना है तो शास्त्रों में मत उलझिये वहां कुछ नहीं मिलेगा सिवाय सिद्धान्तों को छोड़कर। स्वयं को देखिए। अपने को देखिए। अपने भीतर झांकिए। अपने व्यवहार और अपनी चर्चा को देखिए। अपने तमाम अन्तर्वृत्तियों को टटोलिए। तो आप देखेंगे कि वहां एक व्यक्ति नहीं बल्कि अनेक मिलेंगे।

एकता का मतलब है 'मैं' और सिर्फ 'मैं'। सिर्फ एक नाम। अपने को जानने के लिए 'मैं' है। आप अपने को 'मैं' से जानते हैं। यही एकता है। मगर आपका यह बोध, आपकी यह आदत वास्तव में आपमें एकता का भ्रम पैदा करती है। आपको मालूम होना चाहिए कि एकता दुर्लभ है।

व्यक्ति होना कठिन है। आप इस बोध के साथ, आपकी एकता के साथ और आपके मैं के साथ परिवार के लोग नाम, रूप, व्यक्तित्व, समाज के लोगों के नाम, रूप, व्यक्तित्व और ऐसे ही संसार के लोगों के नाम, रूप, व्यक्तित्व के संस्कार जुड़े हैं। यही अनेकता है। एकता के भ्रामक बोध के साथ एकता का सामंजस्य। हम सोचते हैं कि हम एक व्यक्ति हैं। एक इकाई हैं। एक व्यक्तित्व हैं। मगर वह हमारा भ्रम है। हमारे व्यक्तित्व और हमारी इकाई के साथ न जाने कितने लोग जुड़े हैं। न जाने कितने व्यक्तियों की भीड़ भीतर जमा है यही अनेकता है। आप एकान्त में बैठें। अपने को, अपने परिवार, समाज और अपने संसार से इस समय अलग समझें। अपने को एकाकी समझ रहे हैं। मगर जरा सोचिए क्या यह आपका भ्रम नहीं है? क्या आप इस समय एकाकी हैं? जरा आंखे बन्द कर भीतर की ओर देखिए कितनी भीड़ लगी है। इसी को कहते हैं- एकता के भ्रम में अनेकता का भेद। वास्तविक एकता का और वास्तविक व्यक्ति का अपने भीतर तभी जन्म होता है जब भीतर वासनाओं की आंधियां चलनी बन्द हो जाती हैं। तमाम वृत्तियों की विक्षिप्तता खत्म हो जाती है और हम अप्रमत्त स्थिति में होते हैं और हमारे भीतर विवेक की शिखा अकम्पित बराबर जलने लग जाती है। स्वयं अपने को आप क्षण-क्षण बदलता हुआ पायेंगे। क्षण भर

पहले आप जो थे वह दूसरे क्षण नहीं होगें और इतना ही नहीं आप क्षण भर पहले जो थे क्षण भर बाद आप विरोध में भी अपने को ही पायेंगे।

हम स्वयं का प्रति क्षण विरोध करते हैं और स्वयं का प्रति क्षण खण्डन करते हैं। जिसे हम स्वयं बनाते हैं। उसे स्वयं मिटा भी देते हैं। जिसे हम प्रेम करते हैं। उसी से घृणा भी करने लग जाते हैं। शान्ति में जिस जीवन का निर्माण करते हैं अशान्ति में उसका शिखर गिरा देते हैं। यह हमारी पराजय है। यही हमारा आत्मघात है। जीवन की इस संगति से जो मुक्त नहीं होता है। वह जीवन भर वास्तविक आनन्द और वास्तविक सौन्दर्य से वंचित होता है। जीवन का आनन्द और सौन्दर्य असंगति में नहीं बल्कि संगति में है। असंगत जीवन व्यर्थ है। एक बोझ के सिवाय कुछ नहीं है। जीवन एक अमूल्य अवसर है। मगर उस अवसर को हम असंगति में गवां बैठते हैं।

जो भीतर में एक नहीं है। उसके भीतर फिर कुछ नहीं है। आप आज हैं कि नहीं, आंखे बन्द कर अपने आप से पूछिये। अपने भीतर झांक कर देखिए। आप देखेंगे आप पायेंगे कि वहां बहुत सारे चित्त हैं। एक चित्त का विचार सिर्फ आपका भ्रम है। यही भ्रम सबसे बड़ा असत्य है जीवन का।

कुण्डलिनी की साधना यही कहती है कि हम पहले एक बनें। अविभक्त बने।

मगर यह कैसे होगा- यह प्रश्न उठेगा आपके अन्दर?

उत्तर है- जो मैं हूं उसमें अनेकता नहीं है। हमारा चित्त एक दर्पण की तरह है जिसमें अनेक लोगों के चित्तों के प्रतिबिम्ब पड़े रहते हैं। इसी को अनेकता कहते हैं। एक ही चित्त में अनेकों चित्त के दर्शन। चित्त अनेक हो सकता है परन्तु चेतना जो चित्त का आश्रय लेकर जीवनी शक्ति के रूप में काम करती है वह अनेक नहीं है। वह एक ही है। वह प्रत्येक शक्ति में समान रूप से क्रियाशील है। हमारी चेतना, आपकी चेतना और किसी और की चेतना भिन्न-भिन्न नहीं है बल्कि एक ही है। जैसे पानी तो एक ही मगर अलग-अलग पात्रों में रहने के कारण अलग-अलग दिखता है। वैसे ही चेतना को समझना चाहिए। मगर चित्त अलग-अलग है। हमारा चित्त और आपका चित्त एक-दूसरे से भिन्न है। इस भिन्नता का कारण संस्कार है,

वृत्तियां हैं, वासनायें हैं और जब ये अनुकूल ऊर्जा का रूप धारण कर लेती है तो अपने चित्त के दर्पण में पड़ने वाले अनेकों चित्त के प्रतिबिम्ब अपने आप गायब हो जाते हैं और तब केवल अपना ही चित्त रह जाता है।

इसलिए अपने आपको काफी गहरायी से देखना जरूरी है। जब स्वयं की दृष्टि अत्यधिक गहरायी में प्रवेश करती है तो अनेकता के प्रवाह के नीचे एकता का धरातल दिखाई देता है।

सच बात तो यह है कि दर्शन का अन्तर्गमन हमें एकता पर पहुंचाता है और दर्शन का बहिर्गमन अनेकता पर। अनेकता संसार है और एकता है मोक्ष। मैं अपने भीतर बराबर निरीक्षण करता रहता हूं। मैं देखता हूं कि जो अनेक है वह संसार है और जो एक है वह स्वयं मैं हूं और स्वयं जानता हूं।

भीतर अनेक क्या है? अनेक वासनायें हैं। अनेक भावनायें हैं। अनेक विचार हैं। लेकिन विवेक एक है अनेक नहीं। चैतन्य एक है अनेक नहीं और वही एक मैं हूं। वासनाओं का, विचार का, भावनाओं का प्रवाह किसके साथ है? वे किसके लिए दृश्य है? वही एक मैं हूं। जिसके सामने वे सब हैं जिसके समक्ष हैं वे और जिसके लिए दृश्य हूं मैं। मैं स्वयं के लिए दृश्य नहीं हो सकता। मैं स्वयं के समक्ष नहीं हो सकता। इसलिए जो भी मेरे समक्ष है वह निश्चय ही मैं नहीं हूं। बस यही बोध जगाना है। इसी बोध का नाम आत्मबोध है। आत्मबोध के फलस्वरूप वासनाओं, भावनाओं और विचारों से बंधा हुआ मेरा तादात्म्य सम्बन्ध धीरे-धीरे क्षीण होता है और धीरे-धीरे टूटता है और उस आभास के विसर्जन पर ही चित्त से जो अतीत है उस चेतना की वह अनुभूति मुझे एक में ले जाती है और मुझे एक बनाती है।

जैसे हमारी चेतना है वैसा ही हमारा है 'मैं'। जैसा 'मैं' वैसा ही हमारा संसार। यदि 'मैं' का अर्थ साफ है तो हमारे संसार का भी अर्थ साफ है तब अज्ञानता के वृक्ष न होगें। जो वृक्ष होंगे और फल होंगे वह मीठे होंगे। क्योंकि उनका जन्म चेतना से हुआ होगा। दूसरी बात यह है कि जीवन में कुछ भी शाश्वत नहीं है। न यह शरीर, न मन और न ही परिस्थितियां। जब तक हम सुरक्षा की मांग करते रहेंगे, डरते रहेंगे तब तक मरते रहेंगे। जब

तक पाने की कोशिश करते रहेंगे बहुत कुछ खोते रहेंगे। हम अपनी असीमित ऊर्जा को देख नहीं पा रहे हैं। क्योंकि हम बाहर उलझे हुए हैं। हमें अपने बीज, अपने भीतर की मिट्टी में लगाना होगा वृक्ष और उगना भी होगा भीतर। उससे पहले देखना भी होगा खुद को।

दूसरी सबसे महत्वपूर्ण बात है हमारा अस्तित्व। जोकि हमारा अपना नहीं है। हमारा अस्तित्व हर पल एक-दूसरे से जुड़ा है। हम अपने को प्रकृति के किसी भी कण से अलग नहीं कर सकते और यह भी नहीं भूलना चाहिए कि उन्ही दूसरे कण से हमारा अस्तित्व है। सबकी समस्याएं करीब-करीब एक ही है और निदान भी एक है। हम दूसरों को हटा कर खुद को केन्द्र में नहीं रख सकते।

अस्तित्व एक है और उसके नियम सबके लिये वही हैं। हमारी नेत्र की ज्योति तक हमारी नहीं है। उसमें सूर्य की रोशनी की भागीदारी है। न ही हमारे विचार अपने हैं। विचार और चिन्तन का जो समुद्र है उसका कहना है विचार और चिन्तन करने वाले सभी प्राणी जो हमारे साथ उस समुद्र के भी भागीदार हैं। इसी प्रकार हमारा स्वप्न केवल हमारा स्वप्न नहीं है। हमारे स्वप्नों में सम्पूर्ण ब्रम्हाण्ड अपने सपने देख रहा है। एक बार यह जान लेने के बाद कि हमारा स्वप्न जीवन भी एक साझा स्वप्न है हम खुद ही समूचे अस्तित्व से जुड़ जाते हैं।

कहने की आवश्यकता नहीं हमें जागना होगा। सदियों से भरी नींद से उठना होगा। इस जगत के अपने भ्रमों, शंकाओं और दूसरे के दिए हुए प्रसादरूपी विचारों से नहीं अपने स्वयं के नेत्रों से देखना होगा। अपने अन्दर सही और गलत को पहचानने की चेतना उत्पन्न करनी होगी। जितनी बाहर की शिक्षा-दीक्षा की आवश्यकता है उतनी ही भीतर की भी शिक्षा-दीक्षा की आवश्यकता है।

हमारा खुद से सम्बन्ध नहीं है। हम स्वयं को नहीं पहचानते। हम स्वयं को इतना ही जानते हैं जितना हमें लोग बतलाते हैं और सुनते भी वही हैं जो हमारी सोच है। ईर्ष्या और महत्वाकांक्षा की दौड़ ने हमें खुद से दूर कर दिया।

अपनी दुर्दशा के लिए हर व्यक्ति अपनी बाहरी परिस्थितियों को दोष

देता है साथ ही भाग्य को और अपने आस-पास के लोगों को। हमारा मन रोज की व्यर्थ बातों को देखता है। जीवन के असली कारणों को नहीं। हमें अपनी भीतर की गहराई में उतरना होगा। हमें अपने अतीत को धोना होगा। अपने भीतर व्यर्थ के विचारों को उखाड़ फेंकना होगा। अच्छे विचारों की फसल लगानी होगी। विकास धीरे-धीरे होगा पर होगा अवश्य। अन्दर खुशी मिलेगी। वह खुशी सतही नहीं होगी वह भीतर से उदित होगी। यह सभी बातें साधक और संसारी के लिए समान है। हम विशेष नहीं है। विशेष बनने के लिए भीड़ से आगे बढ़ना होगा। तभी हम कुछ विशेष कर पायेंगे....। अब बाह्य जगत पर विचार कर लेते हैं।

◆◆◆

प्रसंग दो

बाह्य जगत

जड़ और चेतन कभी अलग नहीं हैं दोनों मूल तत्व में व्यक्त-अव्यक्त रूप हैं। प्रकृति पर्वतों पर नींद लेती है। वृक्षादि में स्वप्न देखती है और मानव तन में जाग्रत होती है यानि बाह्य जगत ही क्रम विकास है।

जगत के प्रारम्भ काल में सब कुछ बीजभूत था। इसे हम विकास क्रम का प्रथम सूत्र कह सकते हैं। फिर धीरे-धीरे विकास क्रम अपनी विशेष अवस्था पर पहुंचा। जहां हम हैं इसे हम चरम अवस्था नहीं कह सकते। जहां चरम होगा वहीं से पतन भी तो हो सकता है।

अगर हम चारो तरफ दृष्टि फैलाते हैं तो कहीं अनन्त पहाड़ों की श्रृंखला, तो कहीं अनन्त समुद्र, कहीं घनी हरियाली, पक्षी, प्राणी दिखते हैं। अगर हम एक तृण का भी विचार करते हैं तो हम मुग्ध हो जाते हैं।

अगर बन्धु तृण यानि तिनकों पर गम्भीर दृष्टि डाले तो हृदय में यही भाव उत्पन्न होगा कि यह तिनका किस तरह बना होगा। किन मिश्रणों से इसकी आकृति बनी होगी। किस कृति से इसका नाम रूप बना। क्या किसी की ज्ञान शक्ति इसको व्यक्त कर सकती है?

जहां लाखों पशु-पक्षियों की भरमार है उनमें सर्वोत्तम प्राणी मनुष्य है और उनमें ज्ञानी, विद्वान और वैज्ञानिक भी हैं। जो रोज नये-नये आविष्कार कर रहे हैं। लेकिन आज के आविष्कारक प्रकृति जैसे एक तिनके का आविष्कार कर सकता है क्या? उसको प्राकृतिक रंग-रूप दे सकता है? नहीं...दे सकता। यदि विचारपूर्वक देखा जाये तो उस परम नियन्ता के बनाये हुए एक तिनके की रचना भी हम नहीं कर सकते। वह कितना शक्तिशाली और बुद्धिमान है। उसके सामने हमारा ज्ञान कितना क्षुद्र है।

वैज्ञानिक डारविन का कहना है कि हम वानरों के विकास क्रम के परिणाम हैं यानि हमारे पूर्वज वानर थे। लेकिन विचारपूर्वक देखा जाये तो

पशु-पक्षी आदि सब चेतन प्राणी हैं। जड़, तृण सब तिनकों से ही बने हैं। इसके पहले सांख्य वेदान्तिकों को छोड़ मानव देह के क्रम विकास तत्व का कोई प्रत्यक्ष प्रमाण किसी के पास नहीं था। आगे चल कर शरीर विज्ञान, शरीर रचना शास्त्र, शल्य चिकित्सा शास्त्र द्वारा मानव के क्रम विकास का कारण ज्ञात हुआ विशेष कर गर्भतत्व का। प्रारम्भिक काल में मानव का गर्भ जानवरों के गर्भ से मिलता-जुलता था। उसी क्रम विकास में मानव बना। प्रख्यात वैज्ञानिक मि. टिण्डाल ने अपने शोध से यह पाया कि जड़ में प्रत्येक स्वरूप का जीवन, धर्म और विकास, शक्ति बीज रूप में हमें प्रतीत होता है। लेकिन आपको ज्ञात होना चाहिए आज से हजारों वर्ष पूर्व महर्षि वशिष्ठ मुनि का कथन है-

"यन्महाचिन्मयमपि वृहत्पाषाणवस्थितम्।
जड़ वा जड़मेवान्तस्तद्रपं परमात्मनः।।"

जो चेतनमय होकर भी बड़े पत्थर के समान स्थिर है जो जड़ का अन्तःस्वरूप है वही परमात्मा का रूप है अर्थात जड़-चेतन के अन्दर-बाहर जो चैतन्य से भरा हुआ है वहीं परमात्मा का रूप है। साठ के दशक की एक चर्चित पुस्तक थी-' स्पिरिट एण्ड मैटर ' जिसमें लिखा था विज्ञान नहीं जान सकता कि घास की पत्ती कैसे पैदा होती है और कैसे पैदा हो सकती है? भारत के प्रख्यात वैज्ञानिक डॉ. वसु ने सर्वप्रथम यही खोज की थी कि क्या जड़ और चेतन में चेतना एक समान होती है? उनका कहना था- शरीर का बर्हिस्पन्दन और तन्तुओं का अन्तः स्पन्दन ही चेतना शक्ति है। आगे चलकर डॉ. वसु ने धातु, वनस्पतियों पर भी शोध किया। उसका परिणाम जो निकला उसे उन्होने बतलाया कि धातुओं को बार-बार पीटने और काटने से उनमें स्पन्दन क्रिया शिथिल होने लगती। जो अति सूक्ष्म होता है। उन्होने धातुओं पर विष प्रयोग भी किया जिसका परिणाम था विष के प्रभाव से वह धातु स्पन्दहीन होने लगी। जब विष का प्रभाव हटाया तो फिर उसमें स्पन्दन होने लगा यानि चेतना का अनुभव हुआ।

इससे यह सिद्ध होता है कि इन्द्रिय युक्त जीवों के समान इन्द्रियहीन जड़ पदार्थ में भी चेतन शक्ति है और उनमें भी ज्ञान तन्तु विद्यमान होते हैं।

वेद में कहा गया है 'सर्व खल्विंद ब्रम्ह' अर्थात् विश्व की प्रत्येक वस्तुमात्र चैतन्यमय है। वैज्ञानिक जगदीश चन्द्र वसु ने अपने वैज्ञानिक अविष्कारों से वेदान्त मत की सत्यता को सिद्ध किया। वहीं पश्चिमी वैज्ञानिकों ने वसु के खोज को स्वीकार तो किया परन्तु यह कह कर टाल दिया कि खोज सत्य होने पर भी आध्यात्मिक है। व्यवहारिक दृष्टि से इसका मूल्य कुछ भी नहीं है।

वसु ने पुनः एक नई खोज कर उन वैज्ञानिकों के मत का खण्डन भी किया। जिस प्रकार मानव आदि सचेतन प्राणियों में दुख-सुख आदि भावनाओं का परिणाम उनकी क्रियाओं द्वारा स्पष्ट दिखता है उसी प्रकार वनस्पतियों में भी प्रगट होता है। इस मत को सिद्ध करने के लिए उन्होने एक विशेष यंत्र का आविष्कार किया उससे यह सिद्ध भी कर दिया कि जड़-वनस्पति एवं प्राणियों में चेतन शक्ति का प्रभाव समान होता है। बाद में पश्चिमी वैज्ञानिकों ने वसु के मत को स्वीकार किया कि चेतना शक्ति का प्रभाव पदार्थों से लेकर अन्य सभी में है।

मैं अपने चिन्तन के दौरान कभी-कभी यही सोच कर हतप्रभ होने लगता हूं कि एक तिनके का रहस्य हम नहीं जान पाते। उसके उत्पन्न और विनाश के पीछे ऐसी कौन सी चेतन शक्ति है? वह है हमारे चारो तरफ। लेकिन उसका आभांस हम नहीं कर पाते। जैसे ही हम एक कदम आगे बढ़ते वह थोड़ा पीछे हो जाता है और हमें देखकर मुस्कुराता रहता है। सारा ज्ञान-विज्ञान उस चेतन शक्ति की खोज है। उसने कैसे पूरे जगत, ब्रम्हाण्ड और उस तृण यानि तिनके से लेकर हम सभी को अपनी चेतना शक्ति से बांधे रखा है। सच में बड़ा ही अद्भुत है वह।

हमारे हर कदम, हमारी हर खोज यहां तक दुख-सुख, ज्ञान-अज्ञान में बस उसी का अव्यक्त प्रभाव दिखता है। क्या उस परम चेतना के बिना हम अधूरे हैं? जो सूनापन, खालीपन, कुछ पाने की लालसा है। क्या उसी परम चेतना की ओर इशारा करती है? खैर, एक क्षुद्र तृण को हम जान नहीं सकते, इस जगत को कैसे जान सकते हैं।

आपको ज्ञात होना चाहिए कि जड़, चेतन शक्ति की क्रीड़ाभूमि है। चेतन शक्ति जड़ का ही आश्रय लेकर अपना प्रभाव जगत में दिखलाती

है। वहीं जड़ का अभाव होने से वह सुप्त रहती है। जड़ पर किस प्रकार चेतन शक्ति कार्य करती है उसकी परिधि इतनी व्यापक और सूक्ष्म है जिसकी सीमा को जानना असम्भव है। लेकिन उसकी सीमा कैसे हो सकती है। किसी भी विषय की प्रबल व्यापकता होने पर उसका कार्य दिखलायी देता है। पदार्थ को चंचल करना ही शक्ति का प्रधान कार्य है।

जड़ के समान ही चेतन शक्ति का क्षय नहीं होता। यह वैज्ञानिक खोज से सिद्ध हो चुका है। गत शताब्दी में रम्फोर्ड ज्यूल, हेल्म होज वैज्ञानिकों ने यह प्रमाणित करने का प्रयास किया कि कोयला प्रज्जवलित होकर वह केवल राख नहीं होता बल्कि उसका रूपांतरण हो जाता है। प्रकृति का भण्डार जितना जड़ और चेतन से भरा हुआ है उसका एक कण भी हम क्षय नहीं कर पाते।

इस विशाल जगत का अस्तित्व एवं उसकी विचित्र लीला केवल जड़ और चेतन पर ही निर्भर है। इन्ही दोनों में विज्ञान का परम रहस्य छिपा है। इन दोनों का परस्पर सम्बन्ध इतना रहस्यमय है कि एक के अभाव में दूसरे का अस्तित्व नहीं है।

आन्तर जगत में जैसे शरीर और प्राण का सम्बन्ध अविच्छेद है वैसे ही बाह्य जगत में जड़ और चेतन का सम्बन्ध अविच्छेद है। जड़ चिरकाल से निश्चेष्ट है और चेतन सर्वदायी प्राणमय है। इन दोनों के योग से ही हम चेतना शक्ति को जानने में समर्थ होते हैं।

जगत के क्रम विकास में मनुष्य एकाएक प्रगट नहीं हुआ यानि मनुष्य का अस्तित्व अप्रत्यक्ष रीति से सर्वप्रथम क्षूद्र पौधों और फिर प्राणियों में उसका क्रम विकास हुआ। मनुष्य बनने के पहले जीवन तत्व विविध प्रकार के प्राणियों से प्रवाहित हुआ था। शरीर विज्ञान के विद्वान कहते हैं कि मनुष्य सभी सृष्टि की उत्पत्ति का सार है। प्राणीमात्र की प्रत्येक अवस्था में जो भी आन्तरिक रुपान्तरण की प्रवृत्ति रहती है। जब तक विज्ञान क्रम विकास के रहस्य का पता नहीं लगा लेता तब तक विज्ञान के लिए क्रम विकास एक पहेली सी होगी और मनुष्य भी रहस्यमय बना रहेगा। हिरण्यगर्भ चेतन सृष्टि सहजोत्पत्ति स्वयंभूत सृष्टि के प्रारम्भ में मानव तक बने। आत्मन आकाशः सम्भूतः। आकाशाद्वायु। वायोरग्नि।

आग्नेशयः। अद्वयपृथ्वी। पृथिव्या ओषधयः। ओषधीम्यो दन्नम् । अन्नात्पुरुषः यानि आत्मा से आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी, पृथ्वी से औषधि, औषधि से अन्न और अन्न से मनुष्य। ऐसे ही प्रकृति क्रम का विकास हुआ। इसी प्रकार उद्विज्ज, स्वेदज, अण्डज और जरायुज सृष्टि को मूर्त रूप बनने में अनन्त काल लगा। उपनिषद आदि ग्रन्थों में आत्मा, महातत्व, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी अनुक्रम में सृष्टि की कल्पना की गई।

भारतीय पौराणिक ग्रन्थों में सृष्टि का विकास क्रम नारायण के दशावतार के सूक्ष्म अध्ययन से पता चलता है कि दशावतार की कथा के साथ-साथ अगर सूक्ष्म विचार किया जाये तो यह बात स्पष्ट प्रतीत होती है कि ईश्वर का प्रथम अवतार मत्स्यावतार जलसृष्टि के विकास का प्रतीक है यानि जल की सृष्टि हो जाने पर जल जन्तु मत्स्यादि बने।

ईश्वर का दूसरा अवतार कच्छपावतार जल के अनन्तर भूमि के विकास का प्रतीक है यानि जल जन्तुओं की सृष्टि हो जाने पर जल और भूमि दोनों पर समान रूप से चलने वाले कच्छपादिक प्राणी बने।

ईश्वर का तीसरा अवतार वाराह अवतार भूमि के पूर्ण विकास का प्रतीक है यानि वन, पर्वत, नदी की सृष्टि हो जाने पर पशु-पक्षी बने।

ईश्वर का चौथा अवतार नृसिंह अवतार है जो जल, स्थल, जीव-जन्तु, पशु-पक्षी के सृष्टि के पूर्ण विकास का प्रतीक है अर्थात् पृथ्वी के सभी भागों की पूर्ण सृष्टि हो जाने पर अर्धपश्वादि कृति मनुष्य बना।

ईश्वर का पांचवां अवतार वामन अवतार अर्ध्य मानवाकृति के विकास का प्रतीक है अर्थात सर्वत्र पूर्ण विकास क्रम यानि पूर्ण सृष्टि हो जाने पर लघवाकृति वामन रूप मनुष्य बने और उन्होने जंगली राक्षस आदि को पृथ्वी के पाताल लोक में यानि निचले भाग में भेजा ताकि जगत के विकास क्रम में बाधा न पड़े।

ईश्वर का छठा अवतार परशुराम अवतार चारो वर्णों के विकास का प्रतीक है अर्थात चारो दिशाओं में यज्ञ, देवोपासना, राजा, प्रजा, कृषि, नीति आदि का विकास और मूर्ख प्रमादि क्षत्रियों को हटाकर एक अनुकूल वातावरण का विकास किया।

ईश्वर का सातवां अवतार राम अवतार विद्या, शास्त्र, कला, नीति, नियम धर्मादिकों के पूर्ण विकास का प्रतीक है यानि राजनीति, प्रजापालन, नियम, न्याय, धर्नाजन, ब्रम्हचर्य, योग, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास आदि आश्रम, धर्म आदि बने। पशु-पक्षी, राक्षसों, वानरादि जीव-जन्तु के साथ मित्रता और उनका संरक्षण दया आदि का प्रतीक है।

ईश्वर का आठवां अवतार कृष्णावतार जगत के ऐश्वर्य आदि के पूर्ण विकास का प्रतीक है। जन्मारम्भ से ही मनुष्य की अद्‌भुत शक्ति, अपूर्व चमत्कृति, योग, चरित्र प्रभाव आदि अनेक मनोधर्म बने और मनुष्यों ने सर्वत्र विजय सम्पादन करके सर्वोच्च भावना द्वारा आध्यात्मिक, सामाजिक और ऐश्वर्य की उच्चावस्था को प्राप्त किया। चारो तरफ धर्म की पताका फहराने लगी। दुष्टों का नाश हुआ। मानवता की प्रगति हुई।

ईश्वर का नवम अवतार बुद्धावतार हुआ। जब अहिंसा का प्रचार कर मनुष्यों में सद्‌भाव उत्पन्न किया।

ईश्वर का दशवां अवतार कलकी अवतार होगा। वर्ण संकरता, अधर्म, पाप, दुराचार, रोग, नरसंहार, अन्तिम अधोविकास का प्रतीक है अर्थात् मनुष्य मात्र की कालान्तर में जितनी उन्नति हुई उतनी ही अवनति होकर पृथ्वी प्रलय की अवस्था को प्राप्त करेगी। यही सृष्टि विकास की परिणति है। यह चक्र चलता रहेगा विकास-पतन का।

इस विषय पर विचार करने वाली बात यह है कि चेतना का विकास सर्वत्र व्याप्त है। जो एक तिनके में है वह मेरे अन्दर भी है। जिस प्रकार प्रकृति के विकास क्रम में मनुष्य का योगदान है। लेकिन उस तिनके का कम योगदान नहीं है और मनुष्य से कम महत्वपूर्ण भी नहीं है वह तिनका। वह भी पनपता है यौवन को प्राप्त करता है फिर उसी मिट्टी में मिल जाता है नये आयाम में सृजन करता है।

भगवती सीता के सामने जब महाज्ञानी, महा पराक्रमी रावण खड़ा होता है तो भगवती उसे चेतावनी देती है और एक तिनके को अपने हाथ में लेकर और कहती है- हे रावण! अगर इस तिनके को पार करने का दुस्साहस करोगे तो तुम्हारा समूल नष्ट हो जायेगा एक पल में। उस तिनके में ऐसी क्या शक्ति थी कि रावण को भी विवश कर दिया आगे बढ़ने के

लिए। क्योंकि जो सार्वभौमिक चेतना रावण के अन्दर थी वही उस तिनके में था। उस तिनके में वह सारी चेतना शक्ति थी रावण को समूल नष्ट कर देने की।

हमारी साधना-उपासना, ज्ञान-विज्ञान सब चेतना के अन्तर्गत ही हैं। जब तक हम उस सूक्ष्म चेतना को अपने आस-पास महसूस नहीं करेंगे तब तक हमारी साधना पूर्ण नहीं हो सकती। हर कण-कण, तिनके, पत्थर, नदी, पर्वत, वृक्ष एक-दूसरे को आत्मसात नहीं करेंगे तो हम अछूते रहेंगे। फिर चाहे जितना ध्यान करें, जितना जप करें सब अधूरा होगा। हमारा तन-मन सब खाली का खाली ही रहेगा।

◆◆◆

प्रसंग तीन
जीव और चेतन

आज का विज्ञान अपने प्रयोगों से चेतन तत्व को जानने का प्रयास कर रहा है। पश्चिम के वैज्ञानिक प्रायः इस बात पर सहमत दिखते हैं कि ब्रम्हाण्ड के मूल में ईथर है जो नित्य है। जो ब्रम्हाण्ड में एक समान रूप से व्याप्त है। जिसे आकाश तत्व कहा जाता है। परन्तु यह वैसा तत्व नहीं है जिसे शून्य कहा जा सकता है।

ईथर (चेतन तत्व) के दो चक्र (भंवर) हैं। जिन्हे ऋण विद्युत (इलेक्ट्रान) और धन विद्युत (प्रोटोन) कहा जाता है। इन्ही दोनों घूमने वाले इलेक्ट्रान और प्रोटोन तत्वों के समन्वय का नाम परमाणु है। वैज्ञानिकों ने पहले जिन ९२ तत्वों का पता लगाया उनके मूल में दोनों ही तत्व विद्यमान थे। ब्रम्हाण्ड के ग्रह-नक्षत्र आदि भी इन्ही दोनों तत्वों से बने हैं। प्रकाश उष्णादि विविध तत्व भी इनके ही रूपातंरण हैं। रसायन शास्त्र (केमिस्ट) में ८६ तत्व हैं जो उन्ही से बने। जगत के सभी जड़-चेतन इन्ही के उपादान हैं। समस्त विश्व और शक्तियों का मूल कारण चेतन तत्व ही है जो सत्ता रूप है।

कहने की आवश्यकता नहीं इस ब्रम्हाण्ड अथवा जगत में जितना भी कार्य हो रहा है परोक्ष रूप से अथवा अपरोक्ष रूप से किसी प्रयोजन को लेकर हो रहा है और उसी प्रयोजन को लेकर सृष्टि का विस्तार हो रहा है। यह उद्देश्य किसी परम चेतना के कारण ही सम्भव है। इससे चित्त, मन अथवा उसके अन्तर्गत इच्छा का अस्तित्व सिद्ध होता है। यह नित्य है अचित्य है।

मैं चेतन हूं ऐसा प्रवाह कभी भी नहीं टूटता। जाग्रत अवस्था में चेतन के द्वारा सब अनुभव होता है। स्वप्नावस्था में भी स्वप्न का अनुभव मैं अथवा हम को होता है और सुषुप्ति (निद्रा) में भी अनुभव चेतन को ही

होता है। क्योंकि जागने पर भी यही कहता है कि मैं सुख से सोया। बहुत अच्छी नींद आयी। क्लोरोफार्म की बेहोशी में भी चेतन है। क्योंकि इस अवस्था में भी हलचल (रिफलेक्स एक्शन) रहती है यानि चेतना (प्राण ऊर्जा) हर जगह मौजूद है यानि चेतन शक्ति जड़, मनुष्य, पशु-पक्षी आदि सब जगह मौजूद है।

जगदीश चन्द्र बसु ने अपनी 'आर्टिफिशियल रेटिना' नामक ग्रन्थ में प्रमाणित किया है कि नेत्रशक्ति (ज्ञानेन्द्रिय शक्ति) जड़ पदार्थों में भी है। यानि वृक्ष, पौधों आदि में भी चैतन्यता है यानि चेतना शक्ति प्रवाहित होती रहती है। कहने का तात्पर्य यह है कि जब तक जड़ में चैतन्यता नहीं तब तक चित्त को जड़ का ज्ञान नहीं होता। क्योंकि भिन्न-भिन्न सत्ताओं में किसी प्रकार का परस्पर सम्बन्ध नहीं हो सकता। परस्पर सम्बन्ध के लिए उनमें समानता होना आवश्यक है। हम अपने ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा बाह्य पदार्थों को अपने चित्त शक्ति में अनुभव करते हैं। इससे हमें ज्ञात होता है कि बाह्य पदार्थ अथवा जड़ मात्र में हमारी चित्त शक्ति से मेल कराने वाली चेतना अवश्य है।

बुद्धि, अहंकार, पंच तन्मात्राओं से सूक्ष्म देह बनती है। इसे संस्कारों और इन्द्रियों का एकमात्र स्थान यानि प्लेटफार्म कह सकते हैं। भौतिक शरीर के मृत्यु के बाद सूक्ष्म शरीर के साथ चेतन शक्ति अन्य स्थूल शरीर में चली जाती है यानि स्थूल देह के नष्ट होने के बाद भी चेतन शक्ति का विनाश नहीं होता। कभी-कभी सुनने को मिलता है कि अमुक बालक अपने पूर्व जन्म का अक्षरसः वर्णन करता है। जिससे चेतना शक्ति की नित्यता सिद्ध होती है कि चेतना का प्रवाह निरन्तर चलता रहता है। उसका क्षरण नहीं होता है।

वर्तमान में पश्चिमी वैज्ञानिकों ने एक अद्भुत खोज की। उनका कहना है मृतक शरीर में भी चैतन्यता है और इन्द्रिय शक्ति भी है परन्तु उसमें जीवन तत्त्व (चेतना) यानि प्रोटोप्लाज्मा नहीं है। विद्युत का सर्वव्यापक होने पर अगर बल्व खराब है तो उससे प्रकाश नहीं होता। वैसे ही मृतक शरीर में चित्त और इन्द्रिय शक्ति रहने पर भी जीवन चेतना न होने पर उसमें हलचल नहीं होती। कभी-कभी मृतक व्यक्ति किसी कारणवश

जीवित हो जाता है तो वह कहता है मैं असहाय पड़ा था मेरे शरीर में हलचल नहीं हो रही थी। फिर भी मैं सब क्रिया-कलाप देख रहा था। लेकिन विवश था चाहकर भी अपने हाथ-पांव नहीं चला पा रहा था।

यह बात विशेष ध्यान देने वाली है सर्वव्यापक चेतन में अहं भाव के कारण ही वैयक्तिता आ जाती है और इसी के कारण सूक्ष्म शरीर असक्त स्थूल शरीर को त्याग कर अन्य स्थूल शरीर की ओर अग्रसर हो जाता है। यह अनवरत यात्रा चल रही है। केवल अहं भाव के कारण ही प्रत्येक शरीर में रहने वाली चेतना अपने को परिमित व्यक्ति समझता है। उसके लिए शरीर ही सब कुछ होता है। उसे इतना महत्व देता है जितना किसी और को नहीं। सुख-दुख, मान-अपमान आदि का अनुभव शरीर तल पर करता रहता है। इसी को बन्धन कहते हैं।

सारा संसार उसका शरीर ही होता है। एक प्रकार से इसी को माया कहते हैं। अभी विज्ञान इसी पर शोध कर रहा है। मृतक शरीर में चेतन शक्ति काफी समय तक विद्यमान रहती है। तब किसी प्रकार जीवन तत्व को वापस आकर्षित कर मृतक व्यक्ति को जीवित किया जा सकता है यानि सूक्ष्म शरीर को पुनः आकर्षित कर पूर्ववत् संस्कार वाला मनुष्य पुनः उठ बैठेगा। भारतीय संस्कार में मृतक शरीर को कम से कम पांच घण्टे तक रखा जाता है ताकि वह व्यक्ति जिन्दा हो जाये अथवा जो शरीर में चेतना शक्ति है वह धीरे-धीरे शरीर से अलग हो जाये।

विज्ञान की खोज कब पूर्ण होगी अभी कहना तो मुश्किल है। परन्तु योगशास्त्र में यह आदिकाल से विद्यमान है। ऋषियों ने इस पर गहन खोज की। परकाया प्रवेश इसका प्रबल प्रमाण है। चेतन शक्ति एक शरीर को छोड़ कर अन्य शरीर में प्रवेश कर सकती है और पुनः अपने शरीर में वापस आ सकती है। कहने का तात्पर्य है कि चेतन शक्ति सर्वव्यापक है और है नित्य। चाहे उसे प्राण ऊर्जा कहें या आत्म ऊर्जा।

वह चेतना शक्ति का ही रूप है जो सर्वव्यापक है। जहां रहता है उसी के अनुरूप कार्य करता है। शरीर में रहेगा तो आत्म ऊर्जा बन कर, जड़ में रहेगा तो प्राण ऊर्जा बनकर। उसका अनन्त प्रवाह हमेशा चलता रहता है। यह नित्य, अचित्य, अविनाशी है। चाहे इसे आप चेतना कहें या परम

चेतना। यह रहस्यमय है और रहेगा। सारी साधना-उपासना का रहस्य चेतना को जानना है। कुण्डलिनी शक्ति की मूल साधना ही चेतना शक्ति को जानना है। वह शक्ति सुप्त नहीं है। वह अपना कार्य कर रही है लेकिन उससे हम अनजान हैं। चेतना के अपार शक्ति को जानना ही है कुण्डलिनी साधना।

मैंने अपने भ्रमण काल में अनेक सिद्ध साधकों का दर्शन लाभ किया और ज्ञान को भी उपलब्ध हुआ और उन साधकों से कुण्डलिनी साधना में मार्ग निर्देशन भी मिला और उस ज्ञान को उपलब्ध भी हुआ। लेकिन उन साधना में जिन चीजों का अनुभव किया वह सर्वव्यापक से जुड़ना है। मैं इस पुस्तक में उन सूक्ष्म तथ्यों को सरलता पूर्वक उजागर करने का प्रयास कर रहा हूं। हम जब तक कण-कण से नहीं जुड़ेंगे हमारी साधना कभी पूर्णता को उपलब्ध नहीं होगी।

विज्ञान की खोज

आज का विज्ञान यह पता लगाने में सफल रहा है और उसका कहना है कि प्रोटोप्लाज्मा यानि जीवन तत्व, कार्बन, ऑक्सीजन, हाईड्रोजन, नाइट्रोजन, सल्फर, फास्फोरस आदि का रहस्यमय और विचित्र सम्मिश्रण है। लेकिन वैज्ञानिक इतना ज्ञान प्राप्त कर और प्रयोग करके भी जीव सृष्टि नहीं कर पा रहे हैं। चेतना लाने की उनकी क्षमता फिलहाल दूर-दूर तक नहीं दिख रही है। देखा जाये तो बिना दृष्टा के दृश्य का ज्ञान नहीं हो सकता। इसीलिए जिस समय पंच तत्व और जीवन तत्व की चेतना के साथ उत्पत्ति हुई होगी उस समय भी एक परम चेतन शक्ति अवश्य रही होगी। अन्यथा पंच तत्व का ज्ञान ही नहीं होता और न ही उसका अनुमान ही किया जा सकता था। क्योंकि एक बार किसी पदार्थ चेतन द्वारा प्रत्यक्ष होने पर ही उसका अनुमान लगाया जा सकता है। इसके फलस्वरूप विज्ञान भी चेतन को नित्य मानता है।

आज के विज्ञान की खोज भविष्य की है जैसे विद्युत द्वारा किसी भी यंत्र को चलाया जा सकता है ठीक उसी प्रकार सर्वव्यापक चेतना शक्ति द्वारा मृत शरीर को पुनः जीवित किया जा सकता है यानि जीवन तत्व का निर्माण किया जा सकता है। इस शोध में विश्व के बड़े-बड़े वैज्ञानिक लगे

हैं। कुछ भारतीय योग और वेद के सूत्र पर भी शोध कर रहे हैं। उनका कहना है कि सृष्टि रचना करने वाला चेतन ही जो नित्य है। शायद विज्ञान चेतना के उस रहस्य को समझ सके जो आज भी पहेली है।

आनन्द के विषय में विज्ञान का कहना है कि संसार में केवल दुख ही रहे आनन्द का नाम ही नहीं हो तो जीवन भार हो जाता है और प्राणी आत्महत्या कर बैठते हैं। इसलिए दुख में भी आनन्द मिलता ही रहता है। वह चेतन ही आनन्दमय है और सब कुछ है और तत्व ज्ञान के बाद भी आनन्द ही रह जाता है अर्थात 'आनन्द ब्रम्ह'। मनुष्य की स्वाभाविक इच्छा भी आनन्दमय बनने की है। मनुष्य का कर्म, दुख निवृत्ति और आनन्द प्राप्ति के लिए ही होता है।

वेदान्त मत

वेदान्त का कहना है चैतन्य से आकाश उत्पन्न होता है और आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी। इन पांचों तत्वों से जगत की उत्पत्ति होती है। जगत के मूल कारण में माया में तमोगुण की प्रबलता थी, रजोगुण अल्पमात्रा में था और सत्व गुण भी अल्पमात्रा में था।

प्रथम उत्पन्न आकाशादि पांच पदार्थों को सूक्ष्मभूत तन्मात्रा और अपंचीकृत महाभूत कहा जाता है। इन्ही से जीवों के सूक्ष्म शरीर और स्थूल शरीर उत्पन्न होते हैं। सूक्ष्म शरीर को ही लिंग शरीर कहा जाता है। इस तरह से १६ अवयवों से युक्त लिंग शरीर होता है। पांच ज्ञानेन्द्रियां (श्रोत, त्वचा, नेत्र, जिव्हा, प्राण) बुद्धि, मन। पांच कर्मेन्द्रियां (वाक, पाणि, पाद, वायु, उपस्थ) और प्राण इत्यादि, पांच वायु (प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान) आकाशादि सूक्ष्म भूतों के तात्विक अंशों से पांचों ज्ञानेन्द्रियां उत्पन्न होती है।

अन्तःकरण की शक्ति वाली वृत्ति का नाम बुद्धि है। संकल्प और विकल्प वाली वृत्ति का नाम मन है। चित्त, बुद्धि और अहंकार, मन के अन्तर्गत हैं। अनुसंधान करने वाली वृत्ति का नाम है मन और अभिमान करने वाली वृत्ति का नाम है अहंकार।

बुद्धि और ज्ञानेन्द्रिय के समूह को विज्ञानमय कोश कहा जाता है। इस कोश को ईह लोक और परलोक में संचरण करने वाला जीव कहा

जाता है। इसमें 'मैं' का बोध होता है। मैं करता हूं, मैं सुखी हूं, मैं भोग करता हूं इत्यादि का अभिमान होता है। मन और पांच कर्मेन्द्रियों को मनोमय कोश कहते हैं। आकाशादि के तत्व अंश से विज्ञानमय कोश और रज अंश से मनोमय कोश की उत्पत्ति हुई है। पांच कर्मेन्द्रिय और पांच वायु के समूह को प्राणमय कोश कहते हैं।

विज्ञानमय कोश ज्ञान शक्ति वाला और कर्ता है। मनोमय कोश इच्छाशक्ति वाला और कारण है। प्राणमय कोश क्रिया शक्ति वाला और कार्य है। इन्ही तीनों कोशों को सूक्ष्म शरीर कहते हैं। सूक्ष्म शरीर में भी समष्टि और व्यष्टि नामक दो भेद हैं। समष्टि सूक्ष्म शरीर वाला चैतन्य सूत्रात्मा हिरण्यगर्भ और प्राण कहा जाता है। जोकि सूत्र के समान प्रत्येक में मिला हुआ है जैसे दूध और पानी। इसलिए सूत्रात्मा है तथा इच्छा, क्रिया, शक्ति युक्त सूक्ष्म भूतों का मूल होने के कारण यही हिरण्यगर्भ और प्राण है। इसकी उपाधि उक्त तीनों कोशों (सूक्ष्म शरीर की समष्टि) से है। स्थूल जगत के अपेक्षा सूक्ष्म से भी सूक्ष्म प्रत्येक जीव की अपनी-अपनी बुद्धि विषय होने से वह सूक्ष्म शरीर व्यष्टि भी है। इस व्यष्टि उपाधि वाले चैतन्य का नाम है तेजस।

समष्टि और व्यष्टि में वस्तुतः भेद नहीं है और न ही चैतन्य में भेद है। क्योंकि पांचों प्रकार के सूक्ष्म भूतों के मिश्रण से वे व्यवहार के योग्य स्थूल पंचभूत हो जाते हैं।

जगत की सृष्टि करने की इच्छा से ईश्वर ने प्रत्येक महाभूतों को दो-दो भागों में विभक्त किया। फिर प्रत्येक के प्राथमिक भागों को चार समान भाग में फिर पुनः विभक्त किया। अनन्तर प्रत्येक के ये चारो भाग अपने-अपने दो भागों को छोड़कर कर अन्य चार भूतों के दो भागों में मिलाये गये। इस प्रकार प्रत्येक भूत अपना-अपना आधा दो भाग और अन्य चार भूतों में प्रत्येक का आठवां भाग रहता है। इस सम्मिकरण का नाम ही पंचीकरण है। पंचीकरण हो जाने पर भी जिसमें जिस भूत यानि तत्व की विशेषता रहती है उसका वही नाम पड़ता है। जैसे आकाश का गुण शब्द है वायु का स्पर्श, अग्नि का रूप और जल का रस और पृथ्वी तत्व का गन्ध है। वायु का कारण आकाश है। इसलिए उसमें शब्द और स्पर्श दोनों विद्यमान रहते हैं। अग्नि का कारण वायु है। इसलिए उसमें शब्द, स्पर्श

और रूप तीनों गुण विद्यमान रहते हैं। जल का कारण अग्नि है इसलिये उसमें शब्द, स्पर्श, रूप और रस चार गुण विद्यमान रहते हैं और इसी का तरह पृथ्वी का कारण जल है। इसलिए उसमें शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध पांचों गुण विद्यमान रहते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं है कि पंचीकृत महाभूतों से ही पृथ्वी, अन्तरिक्ष, स्वर्ग, आदि लोकों तथा तल, वितल, सुतल, महातल, रसातल, पाताल चौदह भुवन का निर्माण हुआ है। इन सब लोकों का ही एक संयुक्त नाम ब्रम्हाण्ड है।

जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज। जरायुज यानि गर्भ से उत्पन्न होने वाले मनुष्य आदि। अण्डज यानि अण्डे से उत्पन्न होने वाले पक्षी, सर्प आदि। स्वेदज मच्छर कीट आदि और पृथ्वी के अन्दर से पैदा होने वाले तृण, वृक्ष, लता आदि उद्विज्ज कहलाते हैं।

कर्म

आदि शंकराचार्य का चर्चित ग्रन्थ विवेक चूड़ामणि में वर्णन है- "तमसा ग्रस्तवद्धानादग्रस्तोऽपि रविर्जनैः ग्रस्त इत्युच्यते भ्रान्त्या ह्यज्ञात्वा वस्तुलक्षणम्"।

अर्थात सूर्य के नजदीक अन्धकार जा ही नहीं सकता तो भी हमारे और सूर्य के बीच अन्धकार छा जाने पर अथवा सूर्य से विमुख होकर हम यह कहते हैं अन्धकार से सूर्य ग्रस्त है। वस्तु के लक्षण को न जानते हुए भ्रम द्वारा हम अन्धकार रहित सूर्य को अन्धकार ग्रस्त कहते हैं। मूलतः सूर्य से दूर उसकी किरण को भी अन्धकर स्पर्श नहीं कर सकता तो वह सूर्य को कैसे कर सकता है। लेकिन हमारी अज्ञानता यही कहती है कि सूर्य अन्धकार से ग्रस्त है।

कहने की आवश्यकता नहीं है कि जो आनन्द हम बाहर खोजते हैं वह हमारे अन्दर ही है और भ्रमवश बाहर खोजते रहते हैं। अंग्रेज कवि बोमान्ट का कहना है- मनुष्य स्वयं अपना मार्गदर्शी तारा है। हमारे कर्म ही हमारे भले और बुरे फरिस्ते हैं वे हमारी दैवीय छाया स्वरूप हैं वे सदा हमारे साथ रहते हैं हम जैसा कर्म करेंगे हम वैसा ही होते जायेंगे।

सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और लय क्रम विकास ही तो है। चराचर जड़-चेतन का जन्म-मृत्यु, वृद्धि-क्षय आदि कर्म है। ग्रह-नक्षत्रों का उदय-

अस्त भ्रमण कर्म है। स्थूल-सूक्ष्म परमाणुओं का आकर्षण-विकर्षण कर्म ही है। स्थूल-सूक्ष्म पदार्थ का व्यवहार भी कर्म है। अज्ञात विचार परम्परा से हम अपना भला या बुरा भविष्य बना लेते हैं। उसी प्रकार कर्म में लिप्त होते रहते हैं। चेतना की कोई कृति निरूपयोगी या व्यर्थ नहीं है। हमारी बुद्धि की मर्यादा से, हमारे ज्ञान की सीमा से, हमारी दृष्टि से बाहर उस चेतना को जानना सहज नहीं है। तिनके से लेकर मनुष्य जाति के क्रम विकास में सारे पदार्थ परस्पर सहायक हैं।

इस जगत में कोई किसी से अलग नहीं है। ईश्वरीय नियम के अनुसार जगत के सारे जड़-चेतन पदार्थ एक-दूसरे में मिश्रित हैं अर्थात एक-दूसरे के सहायक हैं और चेतना का प्रवाह निरन्तर प्रवाहित हो रहा है। ईश्वर ने हमें कर्म करने के लिए जगत में भेजा है। हमें कर्म करना है। साधना भी कर्म है। इसे भी ईमानदारी पूर्वक करना है। उस चेतना के प्रवाह में बहना है।

जब बुद्ध को चेतना का परम ज्ञान मिला तो उन्होने देखा कि जो उनके अन्दर है वही चेतना वृक्ष-पौधों, तिनके, नदी, पहाड़, जल, आकाश सबमें प्रवाहित हो रही है। सब एक है कोई भी अलग नहीं है। बुद्ध हर जगह अपने को ही पाये। वे हतप्रभ सा हो गये और हो गये मौन। ध्यान की गहन अवस्था में जाकर उस चेतना के प्रवाह में अपने को छोड़ दिया। बुद्ध की जितनी भी मूर्ति या चित्र हैं उनकी एक ही अवस्था को दर्शाता है वह है ध्यान की गहन अवस्था। उनके सामने एक पल भी आप मन को स्थिर कर बैठेंगे तो आप शान्त हो जायेंगे। क्योंकि हजारो वर्ष से बुद्ध के परम ज्ञान की ऊर्जा अनवरत प्रवाहित हो रही है और होती रहेगी। क्योंकि वे जड़-चेतन सबमें व्याप्त हैं। जैसे ही आप उनके सामने बैठेंगे उस प्रवाह से आप अपने को अलग नहीं कर पायेंगे। स्वतः ही बहने लगेंगे। इसलिए बुद्ध की मूर्ति या चित्र भी शान्तमय लगती है। उनके तेजस्वी मुख पर अपार शान्ति दिखेगी। क्योंकि वह चेतना को जानने के लिए पूर्ण एकाग्र थे और थे पूर्ण समर्पित। जब तक हम पूर्ण एकाग्र नहीं होंगे, पूर्ण समर्पित नहीं होंगे तब तक हम कभी भी उस चेतना का भान नहीं कर सकते।

मीरा कृष्णरूपी चेतना में ऐसा साराबोर हुई कि उसे पशु-पक्षी, वृक्ष लता, फूल, नदी, पहाड़, आकाश आदि सभी जगह कृष्ण ही नजर आते

प्रसंग चार
आन्तर जगत

अखिल जड़ जगत किस चैतन्य शक्ति पर विराजमान है, प्रकाशमान है और है दृश्यमान? शून्यवादी, निरीश्वरवादी और विकासवादी कहते हैं कि बाह्य जगत में कोई भी ईश्वरी शक्ति नहीं है तो फिर अनन्त आकाश में सब कुछ निराधार कैसे ठहरा हुआ है। सब प्राकृतिक है तो देखने वाला उसे अनुभव करने वाला भी तो कोई होना चाहिए।

शक्तिहीन पदार्थ (मैटर) का विचलित गतिमान (फोर्सबल) हो सकता है। हमारा शरीर जड़ होने पर भी हम सभी के अन्दर एक आन्तरिक शक्ति प्रत्यक्ष अनुभव होती है।

हम उसी जगत के अंशभूत व्यष्टि रूप हैं तो व्यष्टि का समष्टि होना ही चाहिए। जब हम शक्तिरूप व्यष्टि भूत हैं तो जगत शक्तिरूप समष्टि भूत है।

अगर विचारपूर्वक देखा जाये तो महातत्व की समष्टि रूप शक्ति है। वही जगत का केन्द्र है और उसी को आन्तर जगत कहते हैं। जैसे बाह्य जगत स्थूल दृष्टि में प्रत्यक्ष है वैसे ही आन्तर जगत दिव्य दृष्टि में प्रत्यक्ष है। इस तत्व को सर्वप्रथम वेदों में पाया गया। ऋग्वेद के १० मण्डल के १२५वें सूक्त में कहा गया है- आदि शक्ति भगवती कहती हैं- मैं ही परब्रम्ह परमेश्वर की ब्रम्हमयी परम चेतना शक्ति हूं और चेतना के रूप में सम्पूर्ण ब्रम्हाण्ड और चराचर जगत में जड़-चेतना में प्रवाह रूप में व्याप्त हूं। जगत कारण ब्रम्ह चैतन्य रूप होकर रूद्रों के और वासुओं के साथ विचरती हूं। स्वर्ग में रहने वाले देवात्मक सोम को धारण करती हूं। मैं ही जगत की ईश्वरी रूप हूं। मैं ही देव और मनुष्यों की सेव्यमान होकर स्वयं आत्म विधा का उपदेश देती हूं। असुरों को नष्ट करने के लिए मैं महादेव की धनुष हूं। मैं ही सभी भुवनों का कारण रूप होकर कार्य का प्रारम्भ करती हूं। मैं

उससे जुड़ना बस है। यही साधना है, यही कर्म है, यही सत्कर्म है।

सर्वप्रथम अहिंसा, प्रेम, सेवा भाव को जैन धर्म ने अपनाया और विपुल प्रचार भी किया। जैन धर्म का कहना था जो चेतना हमारे अन्दर है वह सभी में है। हमें सभी को अपने समान ही समझना चाहिए। उसके बाद भगवान बुद्ध ने अहिंसा को अपना मुख्य आधार बनाया और सभी को समभाव से देखने लगे। बौद्ध धर्म में कोई जात-पात नहीं सभी समभाव है। सभी एक हैं, सब में चेतना है बस उसे परम ज्ञान को उपलब्ध होना है। बुद्ध ने पाखण्ड, आडम्बर और बलि प्रथा का घोर विरोध भी किया। उनका कहना था जो चेतना हमारे अन्दर है वह पशु-पक्षी, वृक्ष, तृण, नदी, पहाड़ों में भी है। उसे जानना ही बुद्धत्व लाभ है।

कहने की आवश्यकता नहीं हमारे प्राचीन ऋषि वैदिक काल में इस रहस्य को ज्ञात कर चुके थे। अहिंसा, ज्ञान, समभाव, सेवा भाव के द्वारा पशु-पक्षियों, वृक्षों, नदी, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्र की पूजन द्वारा सिद्ध करने का प्रयास किया। वे सभी में अव्यक्त चेतना को देखते थे। इसलिए पूजा, प्रार्थना के द्वारा लोगों में यह ज्ञान भरने का प्रयास किया कि हर जगह ईश्वर का वास है। हर जड़-चेतन में ईश्वर को देखो तभी पूर्णता मिलेगी। जड़-चेतन में जितना चेतना का प्रभाव है उससे ज्यादा आन्तर जगत में भी है। जब तक हम आन्तर जगत को नहीं जानते चेतना को नहीं समझा जा सकता है। चेतना का सबसे ज्यादा प्रवाह और सम्बन्ध आन्तर जगत से समझना चाहिए।

◆◆◆

प्रसंग चार
आन्तर जगत

अखिल जड़ जगत किस चैतन्य शक्ति पर विराजमान है, प्रकाशमान है और है दृश्यमान? शून्यवादी, निरीश्वरवादी और विकासवादी कहते हैं कि बाह्य जगत में कोई भी ईश्वरी शक्ति नहीं है तो फिर अनन्त आकाश में सब कुछ निराधार कैसे ठहरा हुआ है। सब प्राकृतिक है तो देखने वाला उसे अनुभव करने वाला भी तो कोई होना चाहिए।

शक्तिहीन पदार्थ (मैटर) का विचलित गतिमान (फोर्सबल) हो सकता है। हमारा शरीर जड़ होने पर भी हम सभी के अन्दर एक आन्तरिक शक्ति प्रत्यक्ष अनुभव होती है।

हम उसी जगत के अंशभूत व्यष्टि रूप हैं तो व्यष्टि का समष्टि होना ही चाहिए। जब हम शक्तिरूप व्यष्टि भूत हैं तो जगत शक्तिरूप समष्टि भूत है।

अगर विचारपूर्वक देखा जाये तो महातत्व की समष्टि रूप शक्ति है। वही जगत का केन्द्र है और उसी को आन्तर जगत कहते हैं। जैसे बाह्य जगत स्थूल दृष्टि में प्रत्यक्ष है वैसे ही आन्तर जगत दिव्य दृष्टि में प्रत्यक्ष है। इस तत्व को सर्वप्रथम वेदों में पाया गया। ऋग्वेद के १० मण्डल के १२५वें सूक्त में कहा गया है- आदि शक्ति भगवती कहती हैं- मैं ही परब्रम्ह परमेश्वर की ब्रम्हमयी परम चेतना शक्ति हूं और चेतना के रूप में सम्पूर्ण ब्रम्हाण्ड और चराचर जगत में जड़-चेतना में प्रवाह रूप में व्याप्त हूं। जगत कारण ब्रम्ह चैतन्य रूप होकर रूद्रों के और वासुओं के साथ विचरती हूं। स्वर्ग में रहने वाले देवात्मक सोम को धारण करती हूं। मैं ही जगत की ईश्वरी रूप हूं। मैं ही देव और मनुष्यों की सेव्यमान होकर स्वयं आत्म विधा का उपदेश देती हूं। असुरों को नष्ट करने के लिए मैं महादेव की धनुष हूं। मैं ही सभी भुवनों का कारण रूप होकर कार्य का प्रारम्भ करती हूं। मैं

अन्तरिक्ष और पृथ्वी से परे अर्थात विकारभूत जगत से परे रहती हूं। जो परावाक से उदय पाकर पश्यन्ति में परमात्मा को देखती हुई मध्यमा स्वरूप बन के बैखरी में स्फुट होकर सूक्त रूप बनी हूं। वही मूलाधार बाह्य जगत का केन्द्र है। जगत का प्रलय हो जाने पर भी बीजभूत आन्तर जगत में से ही बाह्य जगत की अभिव्यक्ति मैं ही हूं।

भगवती आगे उदघोष करती हैं- मैं एकादश रूद्र, अष्ट वसु, द्वादश, आदित्य, देव, मित्र, वरूण, अग्नि और आर्थव इत्यादि महाशक्तियों को अपने-अपने चारो हस्त में धारण किये हुए हूं। देवात्मक, सोम, देवशिल्पी, त्वष्टा, भरण-पोषण करने वाले देवता, पूषा, ऐश्वर्यदायिनी शक्तियां, भग आदि को धारण किये हुए हूं। अकर्मण्यता, उदासीनता, निरूत्साहता छोड़ कर साहसी, वीर, प्रयत्नशील, उद्यम करने वालों के लिए ऐश्वर्य और ज्ञान प्रदान करने वाली मैं ही हूं। मैं सर्वज्ञ व्याप्त होकर अपने मायात्मक देह से अन्तरिक्ष के गहन समुद्र (नेबुलस मैटर) में विचरती हूं। मैं कारण रूप होकर जगत का कार्य-कारण मैं ही हूं। मैं विकार भूत जगत के परे स्थान मैं हूं अर्थात मैं ब्रम्ह चैतन्य रूप महाशक्ति हूं।

आदि शक्ति की उद्घोष वाणी ही शक्ति है और वह वाणी परा से निकलती हुई बैखरी रूप में ध्वनि मात्र है। उसका पूर्ण रूप है ऊँ। यदि ऊँ त्रिधारा है, अ, ऊ, म है तो उसका मूल रूप, बिन्दु रूप, अर्धमात्रा चितिकला में संकलित होता है। भगवती का उद्घोष यानि वाणी ही विश्व जगत की प्रथम ध्वनि है और यही ध्वनि प्रकाश बन कर जगत का निर्माण करती है।

ओम का रहस्य

सर्वथा व्यक्त जगत पूर्णरूप से हर जगह दृश्यमान नहीं है। कुछ ऐसे भी जगत हैं जहां दृश्यमान होते हुए भी अगोचर प्रतीत होते हैं। हम जिस जगत में रहते हैं यह तीन आयाम का है। बाकी छः आयाम अगोचर है जिस पर विज्ञान ही खोज आज भी चल रही है।

इस तीन आयाम के फलस्वरूप मनुष्य की आत्मा की भी तीन अवस्थाएं होती हैं- जाग्रत अवस्था, स्वप्नावस्था और सुषुप्तावस्था। मनुष्य अपने मृत्युपर्यन्त अवस्था तक इन्ही तीनों में विचरण करता रहता है।

भारतीय प्रज्ञा के अनुसार सम्पूर्ण विश्व ब्रम्हाण्ड और गोचर-अगोचर अथवा व्यक्त-अव्यक्त जगत के अतिरिक्त सृष्टि के समस्त चेतन-अचेतन जीवन का एकमात्र आधार केवल ध्वनि है और वह ध्वनि भी तीन प्रकार की है। ये तीनों प्रकार की ध्वनियां समान रूप से सम्पूर्ण विश्व ब्रम्हाण्ड में व्याप्त हैं। इन तीनों प्रकार की ध्वनि का मूल शब्द है वह है एकमात्र ओम।

ओम एक शब्द है। लेकिन इसकी ध्वनि तीन है। पहला है 'अ' दूसरा है 'उ' और तीसरा है 'म'। इन तीनों ध्वनियों का संयुक्त रूप है ओम। ध्वनि शास्त्र के अनुसार यही तीनों मौलिक ध्वनि है। शेष सभी ध्वनियां इन्ही का विस्तार हैं। इसलिए ओम महाबीज है।

इसी महाबीज यानि ओम का दूसरा नाम प्रणव है। प्रणव का मतलब महाबीज और महाबीज का मतलब ओम। समस्त विश्व ब्रम्हाण्ड ओम प्रणवस्वरूप है। ओम ही अव्यक्त ब्रम्ह है और उसकी ध्वनि है शक्ति यानि परम चेतना। जो प्रकाश है और विश्व ब्रम्हाण्ड का कारक है।

आधुनिक भौतिक विज्ञान कहता है कि समस्त जीवन का मौलिक आधार विद्युत कण (इलेक्ट्रान) है। वहीं भारतीय वैदिक धर्म कहता है तथा उसकी खोज है कि जगत के समस्त जड़-चेतन यानि समस्त अस्तित्व का आधार ध्वनि है विद्युत नहीं है। ध्वनि ही जगत का मौलिक आधार है। लेकिन आश्चर्य की बात यह भी है कि पश्चिमी भौतिक शास्त्र यह भी कहता है कि ध्वनि भी विद्युत का एक प्रकार है। घनीभूत विद्युत भी ध्वनि में रूपान्तरित हो जाती है यानि ध्वनि जब अपनी चरम सीमा पर पहुंच कर विद्युत कणों यानि इलेक्ट्रान में परिवर्तित हो जाती है तो विद्युत कण भी अपने चरम सीमा पर पहुंच कर ध्वनि में बदल जाता है। तात्पर्य यह है कि विद्युत भी ध्वनि का एक प्रकार है। विशेष प्रयोग द्वारा ध्वनि विद्युत में परिवर्तित हो जाती है। भौतिक विज्ञान की नवीन खोज से यह पता चला है और जिसके कारण वैदिक धर्म को विशेष बल मिला है वह है ध्वनि का प्रकार विद्युत हो या विद्युत का प्रकार ध्वनि हो दोनों एक ही है। एक बात तो निश्चित है ध्वनि और विद्युत दो गहन अवस्था में एक ही हैं।

जिस प्रकार आईन्स्टीन का एक बहुत गहन और गम्भीर सूत्र है जो विज्ञान को समाहित कर लेता है। "एनर्जी इक्वल टू एम सी स्क्वेयर" यह

ऐसा सूत्र है जो समस्त भौतिक शास्त्र को अपने आपमें समाहित कर लेता है। उसी प्रकार भारतीय प्रज्ञा तथा पूरब के समस्त ध्वनि शास्त्र को ओम में समाहित कर लेता है। यही हमारे ऋषियों की खोज का प्रबल आधार है। ओम किसी मनुष्य या किसी देवता के द्वारा निर्मित ध्वनि नहीं है। यह एक विशेष ध्वनि है। जगत के अस्तित्व की ध्वनि है। कृष्ण का कथन है मैं समस्त अक्षरों में एकाक्षर ओमकार हूं।

ओम की तीन ध्वनि अ, ऊ, म यानि ओम की ध्वनि है। जहां प्रकाश है वहीं ध्वनि है और जहां ध्वनि है वहां प्रकाश है। वेद का कथन है कि सूर्य का तीन प्रकाश वलय जिसमें से ध्वनि प्रस्फुरण होता रहता है। यही तीन मण्डल हैं। ऋक मण्डल प्रकाश से 'अ' की ध्वनि विसर्जित होती है। यजु मण्डल से 'उ' की ध्वनि विसर्ज़ित होती है और साम मण्डल से 'म' की ध्वनि विसर्जित होती रहती है। इन तीनों ध्वनियों से कम्पन्नों की तरंगों की गति कल्पनातीत है। उसी से हमारे विचार और मन में एक विशेष शक्ति और गति उत्पन्न होती है। यह ध्वनि सर्वत्र व्याप्त है। उन्ही से पदार्थों में स्थिरता और गतिशीलता भी उत्पन्न होती है।

यदि हम अपनी चेतना को भ्रूमध्य में यानि दोनों नेत्रों के बीच में एकाग्र करें तो ये तीनों ध्वनि का कम्पन्न आपस में मिलने लग जायेगा और मन को एकाग्र कर भ्रूमध्य में धीरे-धीरे लयपूर्वक ओम ध्यान करें और धीरे-धीरे जपें और इसका निरन्तर अभ्यास करें तो कुछ समय बाद एक विशेष प्रकार का कम्पन्न (वायब्रेशन) का अनुभव होने लगेगा।

ऐसा अनुभव होगा कि शरीर में चेतना कम्पन्न के माध्यम से सभी स्थानों पर प्रवाहित हो रही है और आप की आत्मा एक नया अनुभव करने लगेगी। जिसका वर्णन करना सम्भव नहीं है। आपको ज्ञात होना चाहिए कि आपके मस्तिष्क में जितनी भी कोशिकाएं हैं वे सभी ध्वनिमय हैं। उनमें बराबर कम्पन्न हो रहा है। इन्ही कम्पन्नों से हमारे मस्तिष्क में विचार, बुद्धि, विवेक, ज्ञान, इच्छाएं उत्पन्न होती हैं और होते है भाव उत्पन्न। अगर यह कम्पन्न न हो तो हमारे और पाषाण मूर्ति में कोई भी अन्तर नहीं होगा। ओम के अनवरत ध्वनि और कम्पन्न के माध्यम से हम उस चेतना को आत्मसात कर सकते हैं। जहां सब कुछ विराट है, निस्तब्ध है, गहन समाधि है यानि

परम शान्ति है और है परम शून्य। चारो तरफ स्वयं की अनुभूति होने लगेगी।

यह स्पन्दन, स्फुरण विज्ञान के घनतत्व की सिद्धावस्था है। यह स्वाभाविक सहज शक्ति है और शरीर के हर जीवनी तत्व (लाईफ सेल) में भरी है और अनवरत प्रवाहित होती रहती है। इस प्रकाशरूपी शक्ति से जगत घनतत्व अखण्ड, उन्मुख, स्पन्दनशील, स्फूर्तिमान है।

यह स्पन्दन विचार आन्दोलन (थॉट वायब्रेशन) का कारण होकर जिन-जिन कार्यों में अर्थात् महत अस्मिता, पंचतन्मात्रा आदि में प्रवेश करता है तो उन्हे विशेष प्रवाहित करता है। यही चेतना की, जड़-चैतन्य की लीला है और आन्तर जगत का सूक्ष्म केन्द्र है। यही कम्पन्न भूत, भविष्य और वर्तमान में उदय होने वाली वर्णात्मक वाणी का मूल बीज है। इसलिए इसे परावाणी कहते हैं। यहीं ऊँ (ओम) की प्रथम मात्रा 'ऊ' का प्रकाश है। यहीं परावाणी विशेष उन्मुख होकर हृदस्थ प्राण को देखती है। तब उसे पश्यन्ति वाणी कहते हैं। यहीं से ऊँ की द्वितीय मात्रा 'उ' का प्रकाश उत्पन्न होता है। उसके बाद यह वाणी, बुद्धि, वृत्ति में सम्मिलित होकर मर्मव्यूह (नर्वस सिस्टम) के ज्ञान तन्तुओं (सेन्सरी नर्वस सिस्टम) को आन्दोलित कर कंठ प्रदेश में विचार का रूप धारण करती है। इसलिए इसे मध्यमा वाणी कहते हैं।

विचार के रूप में परिवर्तित स्पन्दन, स्फुरण, प्राणवृत्ति में सम्मिलित होकर वाणी स्थान में स्थित मर्मव्यूह के क्रिया तन्तु (मोटर नर्वस) को संचालित कर वर्णात्मक रूप धारण करती है। उसे बैखरी वाणी कहते हैं। यहीं ऊँ (ओम) की अर्धमात्रा 'म' समाप्त हो जाती है और होंठ बन्द हो जाते हैं और वाणी तिरोहित हो जाती है यानि परम समाधि की अवस्था है।

'ऊँ' के चिन्तन अर्थात जप में पूर्ण लक्ष्य देने से बैखरी के वाचक शब्द और उसके अर्थ का संयोग कर मध्यमा में विचार और विचारणीय अर्थ का एकत्व सिद्ध करके साधक उर्ध्वगति प्राप्त कर लेता है। इन दोनों का अतिक्रमण करने से मन और प्राण पर नियंत्रण हो जाता है। क्योंकि ऊपर किये गये वर्णन के अनुसार मध्यमा में स्पन्दन के साथ बुद्धि वृत्ति

का संयोग होता है और बैखरी में उसके साथ प्राण तत्व का संयोग होता है। जब मध्यमा और बैखरी तिरोहित हो जाता है तब मन, बुद्धि एवं प्राण तत्व का भी तिरोहित (शमन) होना स्वतः सम्भव हो जाता है।

मन, प्राण के शमन से इड़ा और पिगला नाड़ी निरूद्ध होती है यानि उनका अवरोध समाप्त हो जाता है और उर्ध्व मार्ग कराने वाली सुषुम्ना अर्थात मध्य नाड़ी खुल जाती है। पश्यन्ति वाणी में ध्यान, जप से उर्ध्व गति में जाने वाला साधक अन्त में महाव्योम (परम शून्य) में प्रवेश करता है। जहां नाद शक्ति का और ज्ञान शक्ति का परम एकीभाव प्रगट होता है। इस अवस्था को प्राप्त साधक को आन्तर जगत के द्वार खुल जाते हैं अर्थात् आन्तर जगत प्रत्यक्ष हो जाता है। विचार शक्ति का अपना विशेष महत्व है। अब इस पर विचार कर लेते हैं।

विचार शक्ति

विचारों का एकीकरण, केन्द्रीकरण ही विचार शक्ति है यानि चेतना का एक रूप विचार शक्ति भी है। इसका प्रभाव और सन्तुलन-असन्तुलन हमारे जीवन पर बराबर पड़ता रहता है।

जैसे जगत में जड़-चेतन अपनी-अपनी उन्नति के लिए पदार्थ, पोषक तत्व का आकर्षण करके अपना मूर्त रूप बनाते हैं उसी प्रकार मनुष्य भी अपनी इच्छा शक्ति (विल पावर) की आकर्षण शक्ति यानि विचार शक्ति के प्रवाह द्वारा सब कुछ कर सकता है। जो वह चाहता है।

प्रोफेसर एलिशा ग्रे ने अपनी चर्चित पुस्तक 'मिराकल्स ऑफ नेचर' में लिखा है कि विचार शक्ति का प्रवाह काफी रहस्यों से भरा है। देखा जाये तो विचार शक्ति चालीस हजार से चार लाख अथवा उससे ज्यादा प्रति सेकेण्ड में कहीं भी पहुंच सकती है। इसे कोई भी ठोस पदार्थ नहीं रोक सकता। इसकी गति (वायब्रेशन) को केवल सूर्य का प्रकाश ही अवरूद्ध कर सकता है। भारतीय अध्यात्म इस बात को पहले से जानता था इसलिए कहा गया है कि रात्रि के उत्तर भाग, उषाकाल में तथा सूर्यास्त के समय जब प्रदोष काल होता है और रात्रि में ध्यान, धारणा, मंत्र, जप आदि करने से और ग्रहण काल में मंत्रों का अनवरत जप करने से बहुत ही जल्दी सफलता मिलती है।

विचार शक्ति का प्रेरक मूल बीज सूक्ष्म है। केश के एक बाल का एक लाख भाग जितना सूक्ष्म है फिर भी उसमें शक्ति अपार है। परा, पश्यन्ति, मध्यमा एवं बैखरी का नियमन न करने पर भी अज्ञात शक्ति द्वारा मनुष्य अपने शब्दों की जिस प्रकार न्यूनाधिक स्वर से उच्चारण करता है उसी प्रकार उसके अक्षर में स्फुरण शक्ति उत्पन्न होती है। उस स्फुरण शक्ति को जैसे-जैसे केन्द्रीभूत करता जाता है वैसे-वैसे वह शक्ति तीव्र हो कर इच्छा शक्ति के अनुसार सबको आकर्षित करके कार्य का सम्पादन करती है। भारतीय धर्म, वेद, पुराण, मंत्र शास्त्र आदि बौद्ध धर्म के सूक्त महायान, धम्मपद आदि जैन धर्म के सूक्त। कथा, पुराण स्त्रोत मंत्र आदि पारसियों में अवस्था, माधुवानी आदि। ईसाई धर्म में बाइबल, न्यू टेस्टामेन्ट। इस्लाम में कुरान की आयातें, हदीश आदि के अक्षर, शब्द और उच्चारण आदि अपनी-अपनी विधि के अनुसार धार्मिक विचार, गार्भित शब्द, वाक्य और मंत्र, उदात्त-अनुदात्त (ऊंचे-नीचे स्वर) उच्चारणों में ग्रंथित किये हुए हैं जिनका पूर्ण भक्ति, विश्वास एवं भावना से उच्चारण करने से उसका स्पन्दन-स्फुरण होने लगता है।

इस आकर्षण का स्पन्दन (वायब्रेशन) वायु में प्रवाहित होने लगता है। जैसे जल में एक कंकड़ फेंकने से गोल-गोल तरंगे उठती है। एक प्रकार से आकर्षण शक्ति उत्पन्न होकर एक के पीछे गोलाकार स्पन्द बना कर सीमा तक पहुंचने की क्रिया करते हैं और उसे आकर्षित करके प्रचलित कर देते हैं। पदार्थ का प्रचलित होना ही कार्य सिद्धि की प्रथम अवस्था है और प्रचलित पदार्थ अर्थात् गतिमान पदार्थ से उत्पन्न गति उसके मूर्त स्वरूप बनने में किसी भी प्रकार की शंका नहीं रहती है। उसी प्रकार मंत्रों के अक्षर, शब्द वाक्य में दृढ़ भक्ति, विश्वास और पूर्ण समर्पण के साथ इष्ट के ध्यान के साथ अर्थ सहित उच्चारण, जप आदि करते जाते हैं। वैसे-वैसे स्पन्दन का आकर्षण बढ़ता जाता है। यही कारण है उनके प्रभाव बहुत ही जल्द ही दिखने लगते हैं। अनियमित ध्यानरहित और अर्थ शून्य से मंत्र सिद्धि नहीं होती। इस प्रकार के एक लाख जप करने के अपेक्षा स्वर युक्त पद्धति और अर्थपूर्ण मंत्र एक बार ही जपने से अपना प्रभाव दिखला देता है।

प्राचीन काल में ऐसे कई उदाहरण हैं ऋषियों के श्राप की कथा और वर देने की कथा प्रचलित है। विचार शक्ति, इच्छा शक्ति और मनः शक्ति

के घनीभूत दृढ़ संकल्प द्वारा श्राप या आशीर्वाद दिया जाता था। बड़े-बड़े राजा-महाराजा इन ऋषियों की आज्ञा मानते थे। उन्हे पूर्ण सम्मान भी देते थे। घने वन पर्वतों पर रह कर भी इनका प्रकृति पर पूर्ण नियंत्रण होता था। चेतना ही विचार शक्ति है, मनः शक्ति है और है प्राण शक्ति। सभी के मूल में चेतना ही है। चाहे उसे आत्मा कहें, प्राण कहें या विचार शक्ति कहें। सभी उसी चेतना की अव्यक्त शक्ति का परिणाम है।

जिस प्रकार फूल, इत्र, कपूर अन्य पदार्थों के गन्ध होते हैं। उसी प्रकार मनुष्य के दिमाग से प्रतिक्षण निकलने वाले विचार के भी रूप और रंग होते हैं। जैसे-जैसे विचारों का परिवर्तन होता है वैसे-वैसे विचारों के रूप-रंग बदलते रहते हैं। साधक अथवा अभ्यासी सूक्ष्म दृष्टि द्वारा इनको देख सकता है और उसी के द्वारा सामने वाले की मनोदशा और चरित्र को जान जाता है। प्राचीन काल से भारतीय योगियों को यह सब जानना कोई श्रमसाध्य कार्य नहीं था। जब विचार के प्रबल शक्ति के बारे में वैज्ञानिकों को पता चला तब इस पर गहन शोध हुआ। विशेष कैमरे और यंत्र द्वारा जब उन्हे पता चला तो वैज्ञानिकों को हैरत में डाल दिया। मनुष्य के विचार, उसके औरा यानि आभा मण्डल ही हैं और अपना विशेष रंग भी बदलते रहते हैं। शान्त, ज्ञानी, सात्विक मनुष्य की आभा सिन्दूरी रंग की पायी गई। उसी प्रकार तामसिक, क्रूर, मनुष्य की आभा धुएं की रंग जैसे चारो तरफ फैली मिली। इसी प्रकार अन्य मनुष्यों को उनके कर्मों के अनुसार रंग वलय मिला।

अमेरिका के प्रसिद्ध रसायन वैज्ञानिक एलमर गेट्स ने अपने गहन शोध से पाया विचार शक्ति का प्रभाव मनुष्य के जीवन पर गहरा छाप छोड़ता है। विचारों के गहन प्रभाव से उसके चरित्र का भी निर्माण होता है। तामसिक विचार वाला मनुष्य कभी भी चरित्रवान नहीं हो सकता। सात्विक विचार वाला चाह कर भी गलत चरित्र वाला नहीं हो सकता। हल्का पीला रंग शुद्ध बुद्धि का सूचक है। हल्का नीला रंग धार्मिक वृत्ति का सूचक है। नीला रंग प्रेम भक्ति का, गुलाबी रंग मैत्री, करूणा का और वात्सल्य का, नारंगी रंग अभिमान और महत्वाकांक्षा का, हरा रंग सर्वत्र अनुकूलता का, शान्ति का। काला रंग द्वेष और ईर्ष्या और भय का। लाल रंग नाना प्रकार के विषय वासना का। बादामी रंग लोभ, तृष्णा का। भूरा

रंग स्वार्थ, वृत्ति का और शुभ्र प्रकाशमय रंग परमात्मा, साधक और जीवन वृत्ति का सूचक है।

कहने की आवश्यकता नहीं ऐसी विचार शक्ति की आकृति हमारे सहज नेत्रों से नहीं दिखलायी पड़ती। इसका कारण यह है कि जैसे हमें आकाश शून्य सा दिखता है। लेकिन वैसा है नहीं वह। एक छोटे से कण भर की भी शून्यता नहीं है वहां। सर्वत्र चैतन्य भरा है। वह परिपूर्ण है। वह रिक्त नहीं है, खाली नहीं है, शून्य नहीं है।

प्रकृति का अटल नियम है क्रिया-प्रतिक्रिया। परमाणुओं का सूक्ष्म खेल चल रहा है। क्रिया के साथ प्रतिक्रिया होती रहती है। जैसे खेत में बीज पड़ता है जल का संयोग होते ही उसमें अंकुर पैदा होता है। हम प्रत्यक्ष देखते हैं अंकुर को पैदा होते। किन्तु वह क्रिया क्या है जिससे अंकुर बनता है। उस आन्तरिक क्रिया को हम जान नहीं सकते। क्योंकि वह अज्ञेय है। उसी प्रकार हम विचारों के अंकुर को जान सकते हैं किन्तु उसकी उत्पत्ति को नहीं जान सकते। क्योंकि उनकी उत्पत्ति और परावर्तन अज्ञेय है। जिसे जाना नहीं जा सकता। लेकिन विंचार के शक्ति और उसके रहस्यों को जब तक हम जान नहीं सकते तब तक हम विचारों की आकृति, गुण, धर्म, रूप कैसे जान सकते हैं।

विचार शक्ति की अनन्त लीलाओं को जानने-देखने के लिए हमें दिव्य ज्ञान एवं दिव्य दृष्टि चाहिए। यह बात तो सत्य है कि पंचतत्वों के भिन्न-भिन्न आकृति, रंग, रूप हैं उसी प्रकार विचारों के भी हैं। उसे गहन योग साधना द्वारा जानना सम्भव है।

गीता में श्रीकृष्ण कहते हैं- "यो यच्छ्द्ध स एव सः" जो जिस श्रद्धा भावना में तन्मय है वह वही है अर्थात् वह श्रद्धा-भावना का स्वयं स्वरूप बन जाता है। कहने की आवश्यकता नहीं जैसा मनुष्य विचार करता है वह वैसा ही बन जाता है यानि जिस प्रकार मनुष्य विचार करता है वैसा ही वह धीरे-धीरे होने लगता है। सकारात्मक विचार करने वाले मनुष्य के अन्दर दया, धर्म, परोपकार, तेज और स्वस्थ होता जाता है। उसी प्रकार नकारात्मक विचार वाले बलहीन, तेजहीन, ईर्ष्या, जलन विभिन्न रोगों से ग्रसित हो जाता है।

विचार शक्ति पदार्थ की भी आकर्षण शक्ति है। यह हम जाने या न जाने बाह्य और आन्तर जगत के समान विचार अपने आप ही आकर विचारों में सम्मिलित हो जाते हैं। उन्हे सबल या निर्बल करके कार्य को तत्पर या कर्मरहित बना देते हैं। यह एक सार्दभौमिक नियम की तरह है। इसका प्रवाह कभी भी रूक नहीं सकता। इसका प्रमाण ध्वनि-प्रतिध्वनि के समान है। हम किसी का भला या बुरा चाहते हैं तो वही समान विचार अवरूद्ध होकर प्रतिध्वनि की तरह हमारी तरफ वापस आता है यानि भविष्य में भला-बुरा विचार का प्रभाव हम पर भी पड़ता है। उससे हम अछूते नहीं रह सकते अर्थात् भले-बुरे विचारों का समान विचारों के साथ हम में परावर्तन होता है। हम स्वयं उस भलाई-बुराई के चक्र में फंस जाते हैं यानि अगर हम किसी का बुरा चाहते हैं तो विचार करते रहते हैं उस व्यक्ति का बुरा हो जाये। जब आपका विचार उस व्यक्ति तक जाता है तो वही विचार परावर्तन होकर आपके पास भी आयेगा। अगर आप किसी का भला विचार करेंगे तो उसका भी परावर्तन होकर आप के पास आयेगा। इसीलिए कहा गया है किसी का बुरा मत सोचो, उसके कर्म पर उसे छोड़ दो ईश्वर देखेगा। इसीलिए विचार को कुविचार न बनने दें। क्योंकि अखण्ड चैतन्य स्वरूप परमेश्वर के अखण्ड चैतन्य रूप हम में प्रतिबिम्बित है।

महर्षि वशिष्ठ का कथन है कि मैं ही सर्व जगत हूं, मैं ही अव्यक्त परमात्मा हूं। भूत-भविष्य मुझ से सिवा अन्य कुछ नहीं है। ऐसी भावना करो। इसका अर्थ यह है कि अनन्त परमात्मा रूप में हमारा शान्त रूप है। हमें दैवी विचार शक्ति द्वारा सभी बन्धनों को तोड़ कर बन्धन रहित होना चाहिए। दैवी विचारों को यानि सद्विचारों का निरन्तर प्रवेश होने के लिए हृदय के द्वार पूर्ण रूप से खोल कर अनन्त होना चाहिए। दैवी विचारों का संचय कर के दैवी सम्पत्ति का लाभ लेना चाहिए यानि हमारे आचरण-विचरण और अनुकरण में कदम-कदम पर उसका अनुभव प्राप्त करना चाहिए। जैसे-जैसे दैवी सम्पत्ति हमारे विचारों में उदय होगी वैसे-वैसे हम सरल शान्त होते जायेंगे। निरोग बलवान ऐश्वर्यवान होंगे।

कोई भी नकारात्मक या सकारात्मक विचार मनुष्य या सचेतन पदार्थो में ही उत्पन्न नहीं होते। ऐसा नहीं है। प्रत्येक जड़-चेतन, दृश्य-अदृश्य पदार्थ में भी उत्पन्न होते हैं। उनका हमें आभास नहीं होता। क्योंकि उत्क्रान्ति

परिणाम का यह नियम है कि सूक्ष्म में जो ज्ञानावस्था होती है वह स्थूल में नहीं होती। इसलिए जब तक हम विचार शक्ति को सूक्ष्म नहीं करेंगे तब तक हम दैवी सम्पत्ति के अधिकरी नहीं हो सकते। हमारी दृष्टि संकुचित है। जो एक निर्धारित सीमा के बाहर के पदार्थों को नहीं देख सकती। उसे देखने के लिए दूरबीन की सहायता लेनी पड़ती है। वैसा विचार शक्ति के लिए नहीं है। विचार शक्ति को प्रबल करने के लिए किसी भी यंत्र की आवश्यकता नहीं होती। केवल अपने विचार को एकाग्रता से जोड़ना है क्योंकि यह प्रवाह चलता रहता है। एकाग्रता के द्वारा उसे केन्द्रीभूत करना है।

आज जितने ज्ञान-विज्ञान की खोज हुई और अविष्कार हुए उसके पीछे विचार शक्ति ही है। जब एकाग्रता के द्वारा विचार शक्ति घनीभूत हुई तब एक झटके में अविष्कार के सूत्र मिल गये।

विचार शक्ति का सबसे गहरा सम्बन्ध श्वांस-प्रश्वांस से है। विचार शक्ति बिना प्राण ऊर्जा के घनीभूत नहीं हो सकती। विचार में जब उत्तेजना आती है तो हमारे श्वांस-प्रश्वांस की गति बढ़ जाती है। जब विचार सामान्य होता तब हमारा श्वांस-प्रश्वांस लयबद्ध सा हो जाता है।

विचार शक्ति हमारे जन्म-जरा मृत्यु हैं। विचार ही हमारे माता-पिता हैं। विचार ही हमारे भाई-बन्धु हैं। विचार ही हमारे स्त्री-पुत्र हैं। विचार ही हमारे इष्ट-मित्र हैं। विचार ही हमारे तत्वदर्शी उपदेशक गुरु, ज्ञान-विज्ञान विद्या कला हैं। बिना विचार के हम कुछ भी नहीं। हमारा अस्तित्व नगण्य है। जगत में विचार का अटल साम्राज्य है। जगत में विचार शक्ति का अनुशासन है। पूरे जगत में अपरोक्ष रूप से विचार शक्ति का ही आधिपत्य है। अगर विचार शक्ति आपके अन्दर से निकाल दें तो आप जड़वत् हो जायेंगे। सब कुछ होते हुए भी आप शून्य हो जायेंगे। विचार शक्ति, मनःशक्ति, प्राणशक्ति सब चेतना के ही विविध रूप हैं।

◆◆◆

प्रसंग पांच

अन्तरंग ऊर्जा और उसका महत्व

हमारे शरीर में एक विशेष प्रकार की विद्युत सदैव प्रवाहित होती रहती है। उसे एक प्रकार से जीवनी ऊर्जा भी कह सकते हैं। जिस प्रकार धन, भूमि और अंगदान कर हम लोगों को नवजीवन दे सकते हैं। ठीक उसी प्रकार प्राण ऊर्जा का भी दान सम्भव है। अपनी जीवनी शक्ति का कुछ अंश दूसरों को देकर उसके जीवन को ऊर्जामय बना सकते हैं। ऐसा कार्य प्राचीन काल से भारत में था और आज भी है। सिद्ध साधक अपनी जीवनी शक्ति यानि प्राण ऊर्जा द्वारा लोगों का कल्याण करते थे और आज भी कर रहे हैं। शक्तिपात दीक्षा में गुरु अपने शिष्य को अपनी जीवनी शक्ति प्रवाहित कर उसकी प्राण ऊर्जा को गति दे देता है ताकि शिष्य अपनी साधना अनवरत् कर सके। प्राण ऊर्जा बढ़ाने में गुरु की जीवनी शक्ति उसका सहयोग कर सके। यही शक्तिपात का सूक्ष्म रहस्य है। आज का विज्ञान इसे मैस्मेरेज्य विद्या कहता है। इस चिकित्सा द्वारा शारीरिक और मानसिक उपचार किया जाता है। पश्चिमी देशों में यह चिकित्सा काफी लोकप्रिय है। देखा जाये तो यह भारतीय योग साधना का ही अंग है जिसे स्पर्श दीक्षा कहते हैं।

विज्ञान विद्युत क्षेत्र यानि इलेक्ट्रानिक आदि क्षेत्रों में काफी प्रगति करता जा रहा है और रोज नये-नये अविष्कार हो रहे। नैनो प्रणाली का युग आ रहा। हम वस्तुओं को कितना छोटा कर सकते हैं ताकि ऊर्जा की खपत कम हो और शक्ति ज्यादा हो। जैसे रेडियो, मोबाईल, टेलीविजन एक विशेष वेब द्वारा सम्पर्क कर लेते हैं। उसी प्रकार विचार चेतना की शक्ति तरंगे दूरवर्ती या निकटवर्ती व्यक्तियों तथा पदार्थों को प्रभावित कर सकता है। मनुष्यों अथवा प्राणियों की तरह ही विचार शक्ति यानि अन्तरंग ऊर्जा द्वारा पदार्थों को प्रभावित किया जा सकता है। उन्हे हटाया, उठाया, हिलाया या गिराया जा सकता है। उनमें अन्य प्रकार की हलचलें या

विशेषताएं पैदा की जा सकती हैं। उनका स्वरूप तक बदला जा सकता है और गुण भी। जिस प्रकार अग्नि और विद्युत द्वारा पदार्थों का आकार-प्रकार में परिवर्तन हो सकता है। ऐसा आन्तरिक ऊर्जा यानि विचार शक्ति से भी सम्भव है।

ऐसी चमत्कार पूर्वक कई घटनाएं हुई हैं। काशी के प्रसिद्ध अघोर सन्त बाबा कीनाराम गिरनार में एक साथ आटा पीसने वाली हजारों चक्कियां चला कर वहां के नवाब को नतमस्तक होने को विवश कर दिये थे। वे जिस चौकी पर समाधि लगाते थे वह धीरे-धीरे हवा में उठ जाती थी जिसके कारण उन्हे समाधि में विघ्न उत्पन्न होता था। तब उनके शिष्य उस चौकी को लोहे की जंजीर से बांध दिया करते थे। आज भी बाबा कीनाराम की वह चौकी है और जंजीरों से बंधी है। तैलंग स्वामी गंगा नदी से एक बारह फुट का शिवलिंग उठा कर आराम से सीढ़ियों पर से चढ़ कर अपने निवास स्थान पर रख दिये जैसे कोई सामान्य बात हो। उन्होने शिवलिंग को जहां रखा आज भी उसी स्थान पर है। उसी तरह स्थिर है। काफी प्रयास किया गया उसे अन्य स्थान पर रख दिया जाये लेकिन वह शिवलिंग टस से मस नहीं हुआ। फिर उसे वहीं स्थापित कर दिया गया। इसे आप क्या कहेंगे। यह कार्य उन लोगों के लिए सामान्य था। क्योंकि उनकी आन्तरिक ऊर्जा इतनी प्रबल थी कि विचार करते ही वह उनके विचार के अनुकूल हो गया।

विचार शक्ति हमारे जीवन में कभी-कभी चमत्कार दिखला देता है। लेकिन हम उसे समझ नहीं पाते। अगर विचार शक्ति यानि अन्तरंग ऊर्जा को एक धारा माना जाये तो उसके द्वारा चमत्कारिक कार्य करना कोई असम्भव कार्य नहीं है बस केवल एक सतत अभ्यास की आवश्यकता है।

अग्नि और ताप का अन्तर स्पष्ट है। अग्नि प्रत्यक्ष है उसे नेत्रों द्वारा देखा जा सकता है और उसे जलाया-बुझाया जा सकता है। ताप सूक्ष्म और व्यापक है उसे अनुभव तो किया जा सकता है परन्तु देखा नहीं जा सकता है। देखा जाये तो विचार शक्ति का प्रयोग हम अक्सर करते हैं यदि उसे विकसित एवं व्यवस्थित स्थिति में विशेष लक्ष्य के लिए प्रयुक्त किया जा सके तो प्रतीत होगा कि हमारी आन्तरिक ऊर्जा कितनी शक्तिशाली है। उसकी शक्ति से व्यक्ति क्या, पदार्थों और परिस्थितियों को भी प्रभावित

किया जा सकता है। अलेक्जेण्डर राल्फ ने 'द पावर ऑफ माइण्ड' में विभिन्न प्रकार के प्रमाण देते हुए लिखा है कि गहन ध्यान की अवस्था के द्वारा एकाग्र मानव मन शरीर के बाहर स्थित सजीव और निर्जीव पदार्थों पर भी इच्छानुसार प्रभाव डाल सकता है। राल्फ का कहना है कि यह एक निर्विवाद सत्य है कि विचार शक्ति द्वारा स्थूल जगत पर नियंत्रण सम्भव है।

इलेक्ट्रानिक ब्रेन यानि कम्प्यूटर के निर्माण प्रक्रिया से ज्ञात तथ्यों द्वारा वैज्ञानिक इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि अवचेतन मन एक परिस्कृत और सशक्त कम्प्यूटर की तरह कार्य करता है और जिस प्रकार एक कम्प्यूटर की गई फीडिंग के अनुसार ही क्रियाशील होता है। उसी तरह अवचेतन मन भी अपना आहार हमारे विचारों तथा संकल्पों से प्राप्त करता है। इस तरह अवचेतन मन की दिशा मनुष्य की इच्छाओं से ही प्रभावित होती है। यह बात एकदम स्पष्ट है कि इस अवचेतन पर व्यक्ति प्रयास द्वारा नियंत्रण स्थापित कर सकता है यानि नियंत्रण प्राप्त कर सकता है। तब आलौकिक लगने वाले कार्य उसके लिए सहज हो सकते हैं। व्यक्ति स्वयं अपना विद्युत चुम्बकीय बल क्षेत्र या गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र विकसित कर सकता है। ऐसा वैज्ञानिक भी मानने लगे। हवा में तैरना अथवा आकाश गमन इसी अभ्यास पर निर्भर करता है। तिब्बत प्रवास काल के दौरान मैंने ऐसे-ऐसे सिद्ध साधकों को देखा साधना के समय भूमि से ऊपर उठ जाते थे एक क्षण में कहीं भी प्रगट हो सकते। काशी के गन्धबाबा, विशुद्धानन्द सरस्वती इसके प्रबल उदाहरण हैं।

इस रहस्य पर विज्ञान की खोज जारी है। मनुष्य चलता-फिरता विद्युत (ऊर्जा) है। उसका भीतरी समस्त क्रियाकलाप स्नायु जाल में निरन्तर बहते रहने वाले विद्युत प्रवाह हैं। जिसे योग कहता है प्राण ऊर्जा। जिसके द्वारा बाह्य जीवन में ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों द्वारा विभिन्न प्रकार की हलचले होती हैं।

उनमें खर्च होने वाली ऊर्जा वस्तुतः मानव विद्युत शक्ति है यानि प्राण ऊर्जा या चेतना ऊर्जा कह सकते हैं। विज्ञान का कहना है कि मनुष्य के जीवन में जो हलचले होती हैं उसमें विद्युत शक्ति यानि मानवी विद्युत शक्ति का हाथ है। रक्त और रासायनिक क्रिया-प्रतिक्रिया के मूल में विद्युत शक्ति

ही है। विज्ञान उसे विद्युत शक्ति कहता है और योग तंत्र कहता है प्राण शक्ति यानि चेतना का ही एक विशेष रूप जो हमारे शरीर के प्रवाह को गति देता है और करता है नियंत्रित। ध्यान, जप, त्राटक, प्राणायाम अथवा योग साधना द्वारा इसके असीम शक्ति को नियंत्रित भी किया जा सकता है और बढ़ाया भी जा सकता है। क्योंकि शरीर एक बायोलॉजिकल यंत्र मात्र है। चेतना के द्वारा इस पर नियंत्रण सम्भव है और दीर्घकाल तक जीवन जिया जा सकता है। ऐसा सम्भव है।

जीवन तभी शिथिल पड़ने लगता है जब चेतना शक्ति का प्रवाह शरीर में मन्द होने लगता है तथा शरीर का क्षरण तेजी से होने लगता है जब शरीर असक्त हो जाता है तब चेतना विवश होकर शरीर का त्याग कर देती है।

रूसी सेना की सार्जेन्ट नेल्या मिखाइलोवा अपनी इच्छाशक्ति द्वारा स्थिर रखे जड़ पात्रों को गतिशील कर देती थी सत्तर के दशक में काफी चर्चित थी। चलती घड़ी को रोक देती फिर चला देती। उनके द्वारा प्रस्तुत किये अनेक अविश्वसनीय चमत्कारों को वैज्ञानिकों ने गहन अध्ययन किया और पाया की उनकी यह चमत्कारिक क्रिया न सम्मोहन से जुड़ी है न ही किसी जादूगरी का कमाल है। उनके विचार शक्ति का गहन परिणाम है। भारतीय अध्यात्म में तों प्रारम्भ से ही विचारों को ऐसा समर्थ तत्व माना है विचार प्रवाह में असीम नैसर्गिक शक्ति है।

विचार शक्ति को पश्चिमी देशों ने टैलीपैथी नाम दिया। टैलीपैथी के एक प्रयोग कर्ता ए.एन. कीरो (इग्लैण्ड) बहुत समय तक टैलीपैथी का गहन अध्ययन किया और प्रयोग किया। बन्द कमरे में क्या चल रहा है उसकी जानकारी प्राप्त की जाये। उसमें सफलता मिली। कीरो ने अपने प्रयोगों से प्रभावित करने के लिए अनेक प्रसिद्ध वैज्ञानिकों से अनुरोध कर सच्चाई जानने का अनुरोध किया। जांचकर्ता में प्रमुख थे डबलिन विश्वविद्यालय के प्रो. सर विलियम वैरट और सोसाइटी फॉर साइकिक रिसर्च के प्रधान प्रो. सिजविग। उन्होने कीरों के प्रयोगों को देखा और उसके पीछे निहित सच्चाई को स्वीकार भी किया। इस प्रयोगों की जांच का विवरण विचार सम्प्रेषण समिति द्वारा बड़े जोर-शोर से प्रकाशित भी किया

गया।वर्तमान में अमेरिका और रूसी शोधकर्ता, विचार के अपरिमित शक्ति पर विशेष शोध कर रहे हैं और भारतीय योग साधकों के पद चिन्हों पर चलने का प्रयास भी कर रहे। कुछ तो हिमालय आदि स्थानों पर वर्षो से निवास कर इस विद्या पर अध्ययन और शोध कर रहे हैं। उनके देश की सरकार पूर्ण सहयोग भी कर रही है ताकि भारत की रहस्य विद्या को जान सके। संसार में बहुत सारे ऐसे साधक और मांत्रिक हुए जिन्होने विचार शक्ति और मंत्र शक्ति का समायोजन कर प्रकृति में हलचल पैदा कर दी। अफ्रीकी जनजाति के लोग मंत्रों और टोने-टोटकों पर काफी विश्वास करते हैं। उनके द्वारा की गई अप्राकृतिक क्रिया को तो समझ पाना सम्भव नहीं है। लेकिन उसके मूल में प्रबल इच्छा शक्ति यानि विचार शक्ति काम करती है। इन्हे इसका पता नहीं होता था वे टोने-टोटके को महत्व देते हैं।

अफ्रीका की तरह मलाया में भी मंत्रों और विभिन्न अनुष्ठानों के माध्यम से आलौकिक चमत्कार पैदा कर देते हैं। ऋतु परिवर्तन करना भी उनके लिए कोई आश्चर्य की बात नहीं है। कहा जाता है कि मलाया के राजा परमेसुरी अगोंग की पुत्री सालवा के विवाह की तैयारी बहुत ही भव्य तरीके से हो रही थी। उस विवाह में काफी गणमान्य लोगों की उपस्थिति भी होनी थी। विवाह के दिन ही अचानक घनघोर वर्षा होने लगी और चारो तरफ पानी-पानी ही नजर आने लगा।

राजा आगोंग काफी चिन्तित होने लगे। सारे विवाह उत्सव पर पानी फिर गया। तभी उनके प्रमुख सलाहकार ने उन्हे राय दी कि पास के गांव में एक प्रसिद्ध मांत्रिक रहता है अगर उसे बुलाया जाये तो शायद कुछ काम बन सके। रहमान नामक उस मांत्रिक को बुलाया गया सम्मान के साथ। समारोह स्थल का वह मांत्रिक तीन बार चक्कर लगाया और दोनों हाथ ऊपर उठाकर कुछ मंत्र पढ़ा देखते ही देखते उक्त स्थान पर पानी बरसना बन्द हो गया लेकिन उस स्थान के बाहर वर्षा उसी तरह अनवरत होती रही। डेनियल डलगस होम्स नामक व्यक्ति की अन्तरंग शक्ति ऐसी विलक्षण थी कि सहसा विश्वास नहीं होता। विश्व प्रसिद्ध रसायन शास्त्री सर विलियम क्रूक्स डगलस का भलीभांति निरीक्षण किया। उन्हे ऐसा कुछ भी नहीं लगा आखिर उन्हे कहना पड़ा यह प्रकृति का अद्भुत चमत्कार है। एक साधारण मनुष्य ऐसा नहीं कर सकता। नेत्र बन्द करते वह हवा में

धीरे-धीरे उठने लगता। ऐसा लगता जैसे पृथ्वी का गुरुत्वाकर्षण उसके लिए व्यर्थ है। आसन लगा कर घण्टों हवा में स्थिर रहता। हाथ में दहकता अंगारा लिए रहता। जांच करने पर हथेली में जलने के निशान भी नहीं होते। नेत्र स्थिर कर वह जड़ वस्तु यहां तक कि टेबिल को भी हवा में उठा देता। जब उससे पूछा गया तुम ऐसा कैसे कर लेते हो तो बस उसका कहना था कुछ पल श्वांस रोक कर बस विचार करता हूं कि ऐसा होना चाहिए। वैसा ही होता है।

कई बार देखा गया है कि किन्ही व्यक्तियों में वस्तुओं को विचार शक्ति से प्रभावित करने की क्षमता अनायास ही पायी जाती है। वह कोई साधना अंथवा यौगिक अभ्यास नहीं किया फिर भी वह अदृश्य को देख सकता है। अविज्ञात को जान सकने में समर्थ होता है। देखा जाये तो ऐसी विलक्षण शक्ति हर मनुष्य के अन्दर अवचेतन मन में उपस्थित रहती है। लेकिन उसका भान नहीं रहता। हम अपनी चेतना शक्ति को मन के माध्यम से रोज व्यर्थ गंवाते रहते हैं। खैर, यूरी गेलर को अंग्रेजी की प्रसिद्ध पत्रिका नेचर और न्यू साईन्टिस्ट में विशेष स्थान दिया और प्रकृति का बहुत बड़ा चमत्कार माना गय। जहां विज्ञान को भी सोचने में विवश कर दिया।

यूरी गेलर का जन्म २० सितम्बर १९४६ में तेल अबीब में हुआ। उसकी माता जर्मन की थी जब वह युवक साइप्रस में पढ़ता था तब उसे अपने अन्दर विचित्र सी अनुभूति का आभास होने लगा। वह अनुभूति लोगों को बतलाया तो लोग आश्चर्यचकित होने लगे। जब वह घड़ी पहनता घड़ी की सुईयां अकारण अपना स्थान छोड़कर इधर उधर भागने लगती। आगे चलकर यूरी गेलर की शक्ति इतनी बढ़ गयी कि किसी भी धातु, चम्मच आदि पर नेत्र स्थिर कर उसे मोड़ देता था। आज भी यूरी गेलर के चमत्कारिक रहस्यों पर विज्ञान मौन है।

बाबा बण्डल शाह

पुस्तक लिखते समय एक ऐसी घटना का स्मरण हो आया जो अपने आप में अद्भुत था। चेतना निपेक्ष है कब और कैसे कहां प्रगट हो जाये कहना असम्भव है। जिस घटना का वर्णन करने जा रहा हूं वह प्रबल इच्छा शक्ति का ही प्रमाण है। किसी कार्यवश उन दिनों मुम्बई में मेरे एक

पत्रकार मित्र थे विवेक तामणेकर। वे फिल्मी पत्र-पत्रिकाओं के विशेष प्रतिनिधि थे। पराविद्या पर उन्हे काफी रूचि थी। प्रायः इन्ही विषयों पर मुझसे चर्चा भी करते रहते थे और इस विषय पर मुझसे कहते भी थे कि मैंने मराठी पत्र पर लिखा भी है। उसे उन्होने मराठी भाषा में अनुवाद कर प्रकाशित भी किया। चूंकि पराविद्या पर हमारी खोज प्रारम्भिक काल से ही थी। मुम्बई में एक सप्ताह प्रवास कर गिरनार जाना था। एक दिन प्रातः मेरे पास तामणेकर जी आये और बोले- चलिए एक विशेष साक्षात्कार लेना है एक प्रसिद्ध व्यक्ति का। आप रहेंगे तो आनन्द आयेगा। मैंने आपके विषय में उन्हे बतलाया था। एक फिल्म आने वाली है। उसी के विषय में पत्रिका में प्रकाशित करना है।

मैंने पूछा वह व्यक्ति कौन है? अरे! चलिये तो स्वयं देख लीजियेगा। खैर, तामणेकर के साथ चल पड़ा चेम्बूर स्थित आर. के. स्टूडियो। सामने राज कपूर जी को देखकर हतप्रभ सा हो गया। जिस व्यक्ति की चर्चा पूरे विश्व में हो रही है वह मेरे सामने था। गौर वर्ण, मिलनसार व्यक्तित्व, मृदु स्वभाव। जब मेरा परिचय राजकपूर से हुआ और पता चला मैं काशी में निवास करता हूं और आध्यात्मिक भी हूं उन्हे काफी अच्छा लगा। बोले- काशी आने की प्रबल इच्छा है। अगर काशी आया तो आपसे अवश्य मुलाकात होगी। खैर, फोल्डिंग वाली चार-पांच कुर्सियां लग गयी। तभी स्पाट बॉय छोटे-छोटे गिलास में चाय लेकर उपस्थित हो गया। राजकपूर जी का मिलन स्वभाव काफी अच्छा लगा। तामणेकर उनका इन्टरव्यू लेने लगा। मैं चुपचाप चारो तरफ का नजारा लेने लगा। तभी मेरी नजर एक व्यक्ति पर पड़ी। वह हम लोगों की ओर ही चला आ रहा था और आकर सामने की कुर्सी पर बैठ गया। सफेद कुर्ता पैजामा, आकर्षक व्यक्तित्व, हंसमुख चेहरा पता चला वह प्रसिद्ध संगीतकार नौशाद जी हैं। खैर, परिचय होना स्वाभाविक ही था। मुझसे मिल कर उन्हे भी प्रसन्नता हुई। तभी राज कपूर जी को पत्रकार वार्ता बीच में ही बन्द कर सामने हो रही शूटिंग पर जाना पड़ा। वार्ता बीच में ही रूक गयी थी। विवशतावश हम सभी को रूकना ही था। खैर, संगीत पर चर्चा चली नौशाद साहब को काशी के संगीत घरानों में काफी रूचि थी। मैंने उन्हे काशी के संगीत परम्परा के बारे बतलाया बातों ही बातों में कुछ आध्यात्मिक चर्चा भी चल

पड़ी। ऐसा लगा नौशाद साहब कुछ सोच में डूब गये हों। जैसे अतीत की गहरायी में खो से गये हों। कुछ पल मैं शान्त रहा। फिर मुझसे रहा नहीं गया पूछ ही बैठा- भाई साहब क्या बात है? कहां खो गये? मुस्कुराते हुए बोले- बस आपसे चर्चा करते-करते बाबा की याद सी आ गई। मैंने पूछा- कौन बाबा? बाबा शब्द सुनकर मुझे और उत्सुकता आ गयी। नौशाद साहब बोले- आज मैं जो कुछ भी हूं बस बाबा की ही कृपा से हूं। खैर, अभी तक इस विषय पर मैंने कभी चर्चा नहीं की थी किसी से। लेकिन आप पराविद्या से सम्बन्ध रखते हैं अवश्य आप विश्वास करेंगे। मैंने कहा- क्यों नहीं। आप अपना स्मरण अवश्य सुनाईये। यह तो मेरे लिए प्रमुख विषय है। मैं जानना चाहता हूं बाबा के विषय में। तब नौशाद साहब ने जो घटना सुनायी सच में अपने आप में काफी चमत्कारिक था।

साई बण्डल शाह बाबा इसी नाम से प्रसिद्ध थे पूरे मुम्बई में। वे मद्रास सेशन्स कोर्ट में जज थे। उनकी मुलाकात किसी फकीर से हुई उनके सर पर वह फकीर हाथ फेरा और बोला- तेरा कर्म खतम हो गया। ऊपर वाले की बन्दगी कर। उस स्पर्श में क्या था पता नहीं परन्तु सब कुछ छूट गया। बाबा भ्रमण करते-करते मुम्बई चले आये। नौशाद साहब ने बतलाया एक दिन टैक्सी से जा रहा था। बाबा सामने खड़े हो गये। बोले- मुझे भी ले चल मैं सम्मोहित सा हो गया। टैक्सी खड़ी की। चुपचाप टैक्सी का दरवाजा खोल दिया बाबा मेरे बगल में बैठ गये। बस उसी दिन से बाबा की विशेष कृपा मुझ पर बरसने लगी। मेरे एक परम मित्र ए.के कारदार थे उन्होने फिल्मों में काफी संघर्ष किया और सफलता भी मिली। लेकिन जो चाहिए था उन्हे मिल नहीं पा रहा था। उन दिनों कारदार फिल्म 'दिल्लगी' की एडीटिंग में व्यस्त थे। मैं उन्ही के पास जा रहा था। तभी पता नहीं कहां से बाबा प्रगट हो गये यानि देखा नीचे खड़े थे। मैंने प्रश्न भरी नजरों से बाबा से पूछा- बाबा आप इस समय?

बाबा मुस्कुराते हुए बोले- मैं भी चलूंगा तुम्हारे साथ। काफी प्रसन्नता हुई मुझे। मैं काफी दिनों से चाह रहा था कि बाबा की मुलाकात कारदार साहब से करवा दूं। संयोग बन गया। हो सकता है कि बाबा का रहस्य हो।

जब मैं बाबा को लेकर एडीटिंग रूप में पहुंचा कारदार जी खड़े हो गये। मैंने बाबा के बारे में उन्हे बतलाया।

कारदार जी ने बाबा का अभिवादन किया। बाबा ध्यान न देकर पूछ बैठे यहां क्या होता है। मैंने कहा- बाबा यहां फिल्म यानि फोटो को साफ किया जाता है और एडीटिंग होती है। अरे मेरा फोटो भी लो बाबा जिद करने लगे। विवशतावश उनका फोटो लिया गया। बाहर से फोटोग्राफर को बुला कर फोटो खिंचवाई। बाबा जिद करने लगे फोटो अभी दिखलाओ। उस समय ऐसा सम्भव नहीं था। इतनी तकनीकि उन्नत नहीं थी। जितनी आज है। प्रोसेसिंग में एक दो दिन तो लगता है। फिर बाबा बोले- जिसमें रील धुलता है वो पात्र लाओ मैं फोटो बनाता हूं। कल मैंने नहीं देखा आज जानता हूं। कारदार सोच में पड़ गये। खैर, फोटोग्राफर विवश हो कर फिल्म धोने का सारा सामान लेकर आया। बाबा उसी एडीटिंग रूम में खुद ही रील प्रोसेसिंग कर फोटो तैयार कर दिए और कुछ पल में वह फोटो सूख भी गयी। सभी लोग हतप्रभ हो गये। बस वही फोटो आज भी है। कारदार को पहले बाबा पर विश्वास नहीं था। लेकिन बाबा का चमत्कार देख कर वह उनके पैरों पर गिर गये। बाबा मुस्कुराते हुए बोले- बेटा मैं तेरे लिए आया था यहां पर। ला एक कागज पेन। कारदार ज़ी ने तुरन्त व्यवस्था की। बाबा ने कुछ देर नेत्र बन्द रखा, फिर उस कागज पर पच्चीस लाख लिख दिये। बोले- ऊपर वाला व्यवस्था कर देगा। उस पर भरोसा रख तेरी सभी मनोकामना पूर्ण होगी। कारदार जी उसे अपने पास रख लिये। लेकिन उन्हे आश्चर्य हो रहा था यह सम्भव कैसे होगा। उस समय पच्चीस लाख काफी बड़ी रकम मानी जाती थी। कुछ समय बाद दिल्लगी फिल्म रिलीज हुई। जो बहुत कम ही लागत में बनी थी। लेकिन वह सफलता के सारे आयाम तोड़ डाली। कारदार जी पर दौलत की जैसे बारिश सी होने लगी। उसके बाद उन्होने दुलारी फिल्म बनायी। वह भी सुप्रर हिट हुई। दुलारी फिल्म के बाद दर्द फिल्म बनायी उस समय तीनों फिल्में सिल्वर जुबली मनायी। मैंने यह सब अपनी आंखों से देखा। यह चमत्कार था बाबा का नौशाद साहब बोले। लेकिन बाबा फिर कभी नहीं मिले कारदार जी से।

एक दिन कारदार जी मुझसे बोले- वाकई नौशाद साहब बाबा ने जो लिख कर दिया ऊपर वाले ने कैश कर दिया। लेकिन चाह कर भी कारदार जी बाबा से मिल नहीं पाये। जब भी चाहते कोई न कोई रूकावट आ

जाती। खैर, बाबा की एक आदत थी। वे अपने पास रेशम से बना रस्सी का बण्डल रखते थे। जब भी किसी का कल्याण करना होता बस उस रेशम के बण्डल को खोलते और लपेटते थे। इसलिए लोग उन्हे बण्डल शाह बाबा कहने लगे।

नौशाद साहब एक लम्बी सांस लेकर कुछ सोचने लगे ऐसा लगा जैसे कुछ याद सा कर रहे हैं। फिर कहना शुरू किये। एक दिन बाबा के आदेश के मुताबिक उनके साथ टैक्सी में चौपाटी जा रहा था। कुछ देर चौपाटी पर रूकने के बाद बाबा फिर चलने को बोले। इस तरह दोपहर से रात होने लगी। अन्त में हम लोग नागपाड़ा पहुंचे तब तक टैक्सी का पेट्रोल खत्म हो गया। मेरी हिम्मत नहीं हो रही थी कुछ कहने की। आपके शार्गिद का घर आ गया है। यहीं रूकते हैं, फिर पेट्रोल मगवां कर टैक्सी में डाल लेते हैं और फिर जहां कहेंगे चलते है- मैंने बाबा से अनुरोध किया। बाबा बोले- नहीं मुझे यहां नहीं रूकना है। मुझे अंधेरी चलना है मेरा भक्त काफी बीमार है मुझे याद कर रहा। ड्राईवर मेरा मुंह देख रहा है हम दोनों असमंजस में पड़ गये। ड्राईवर काफ़ी झल्ला गया था। दोपहर से रात हो गई। बस इधर से उधर घूम रहा है पता नहीं क्यों साहब भी चुप है। मैं उस ड्राईवर की मनोदशा को समझ रहा था। लेकिन बाबा से क्या कहता हम लोगों को चुप देख कर बाबा बोले- अरे! चलो देर हो रही है। ड्राईवर बोला- बाबा पेट्रोल नहीं है। टैक्सी एक कदम भी नहीं चल पायेगी। बाबा कुछ पल बाद बोले- देख पेट्रोल वाली मीटर। तेरी गाड़ी में तो पूरी टंकी भरी है पेट्रोल से। मुझसे बहाना कर रहा है। ड्राईवर देखा तो सच में टंकी फुल बतला रही थी। वह ड्राईवर घबड़ा गया। कुछ नहीं बोला। बस चुपचाप गाड़ी चलाता रहा। बाबा अपने उस व्यक्ति से जाकर मिले। हम लोग बाहर थे। बाबा वापस आये और नागापाड़ा पहुंचे। रात काफी हो गई थी। नागपाड़ा पहुंच कर ड्राईवर अपनी गल्ती के लिए माफी मांगा। बाबा ने हंसते हुए बोला- तू सट्टा खेलता है न दस हजार जुटाने के लिए ताकि तेरी चॉल सलामत रहे। जा कल सट्टा लगा दस हजार मिल जायेगा। अब आना मत मेरे पास। वह बेचारा कुछ नहीं बोला। मुझे लेकर वापस घर की ओर चल पड़ा।

शर्मा जी आप विश्वास नहीं करेंगे दूसरे दिन पता चला ड्राईवर को सट्टा में दस हजार की रकम मिल गयी और उसकी चॉल बच गयी। बाबा की कृपा सब पर बनी रहती थी। लेकिन बाबा मुझसे कभी भी कुछ नहीं पूछते मैं भी चुप रहता। खाली समय में बाबा के पास चला जाता। कुछ दिनों से बाबा खोये-खोये से रहने लगे। लोगों से मिलना कम कर दिये। नागपाड़ा के पास मजार था उसी में उनका समय बीतता। एक दिन उनके पास पहुंचा तो मुझे देखते ही बोल पड़े- नौशाद सन्तरा खिला। अरे बाबा पहली बार मुझसे कुछ मांगे। मैं तुरन्त सन्तरा खरीद कर ले आया और उनके सामने रख दिया। बाबा बड़े चाव से खाने लगे और मुझे भी दिया। ले खा ले तेरी मुराद पूरी होगी। इतना कह कर अन्य भक्तों को बांट दिया। एक भक्त पूछ बैठा- बाबा मैं अक्सर देखता हूं जो भी आपके पास आता उसे आप सन्तरा खाने को कहते हैं। इसका कारण क्या है। बोले- मेरा ईशारा है नागपुर में बाबा ताजुद्दीन औलिया के दरबार में हाजिरी लगा। वही सबकी मुराद पूरी करते हैं।

नौशाद जी बोले- इसका रहस्य आज तक समझ में नहीं आया। बाबा के सब लोग मुरीद थे लेकिन बाबा, ताजुद्दीन औलिया के मुरीद थे। मैं कुछ बोल नहीं पाया। इसका क्या रहस्य है। क्या बाबा के इस ज्ञान की अवस्था में पहुंचने का कारण ताजुद्दीन औलिया हैं। यह रहस्य है। उस्ताद (गुरु) के बिना इतनी ऊंची पहुंच सम्भव नहीं है। खैर, नौशाद साहब बोले- बाबा ने फिर एक कागज का टुकड़ा लिया और लिख दिया पच्चीस लाख की रकम मिले। जब मैंने पढ़ा तब बाबा से हाथ जोड़कर कहा क्योंकि उनके चमत्कार से मैं वाकिफ था। मैंने बाबा से अनुरोध किया कि बाबा आप मुझे दुआ दीजिये की मैं एक नेक इंसान बनूं और सदा नेक रहूं। घमण्ड न आये। मैं अपने में खुश रहूं। मुझे यहां ५००रू माहवार मिलती है। उससे सभी जरूरतें पूरी हो जाती हैं। मुझे आपका आशीर्वाद चाहिए, प्रेम चाहिए। बाबा ने मेरी बात काफी गौर से सुनी। मेरी पीठ थपथपाते हुए अपने गले से लगा लिया। बोले- तू पहला शख्स है जो मुझसे कुछ नहीं मांग रहा है सिर्फ दुआ मांग रहा है। ठीक है मेरी दुआ तेरे साथ सदा रहेगी। सच में शर्मा जी उनकी दुआ सदैव मेरे साथ रही और आज भी है। खैर, उसके बाद मुझे जिन फिल्मों की पेशकश हुई उनमें व्ही

शांताराम, मनमोहन देसाई के पिता नानूभाई देसाई, जे.बी.एच. वाडिया, वी.एम. व्यास और मोहन स्टूडियो के मालिक की फिल्में थी। फिर तो फिल्मों की कतार सी लग गयी। मैं भी अपने काम में व्यस्त सा हो गया। बाबा से मिलने का भी वक्त नहीं मिलता। एक दिन स्वप्न देखा बाबा खड़े हैं बोल रहे नौशाद मियां कल आ जाना। काफी दिनों से तुम्हारा इन्तजार कर रहा था। अब जाना है। समय कम है। ऊपर वाले का दिया हुआ वक्त समाप्त हो गया खुदा आफिज। मैं हड़बड़ा कर उठ बैठा। सुबह का पांच बज रहा था। मैं तुरन्त तैयार होकर खुद गाड़ी निकाली और बाबा से मिलने चल पड़ा। उनके स्थान पर जैसे ही पहुंचा उनके शगिर्दो और भक्तों की भीड़ लगी थी। पता चला बाबा कुछ दिनों से एकदम अकेले रहते थे। दो दिनों से पानी के अलावा कुछ भी नहीं लिया। आज भोर के चार बजे बाबा का इन्तकाल हो गया। खैर, मन काफी दुखी होने लगा काश कुछ समय निकाल कर बाबा की सेवा कर लेता तो कितना अच्छा होता। बाबा का मजार आज भी सोनपुर नागपाड़ा के पास है। मुझे जब भी वक्त मिलता उनके दीदार करने अवश्य जाता हूं। दूसरे दिन मैंने तामणेकर से कहा- चलो बाबा के मजार का दर्शन तो कर लें इतने बड़े सिद्ध पुरुष थे। हां क्यों नहीं। हम लोग बाबा के मजार पर पहुंचे। निस्तब्ध शांति व्याप्त थी चारो तरफ। लेकिन एक विशेष ऊर्जा का कर रहा था अनुभव। वहां के लोगों ने बतलाया यहां जो आता है उसकी मुराद पूरी होती है।

इस घटना को बीते एक लम्बा समय हो गया। जब मैं चेतन-अवचेतन ऊर्जा पर शोध करने लगा तब ज्ञात हुआ ऊर्जा का प्रवाह निरन्तर रहता है। ऐसे विशेष सन्त फकीर के समाधि पर उनकी ऊर्जा सदैव निकलती रहती है। मेरी खोज में सभी धर्मो के लोग थे। मैं धर्म से परे होकर उस अनन्त चेतना को जानना चाहता था। जिसके प्रवाह में केवल चेतना होती है। कोई धर्म, जाति का बन्धन नहीं। वह निरपेक्ष है। सारे बन्धन तो मनुष्य स्वयं बनाया है और उसी में उलझा रहता है।

ताजुद्दीन औलिया

अपने भ्रमण काल के दौरान कुछ दिन मैं नागपुर में प्रवास किया। मन में कौतुहल थी महान सूफी सन्त बाबा ताजुद्दीन औलिया के विषय

में जानने की। जो पता चला वह इस प्रकार था। वैसे देखा जाये तो ताजुद्दीन औलिया का नाम जग प्रसिद्ध था उन्हे किसी पहचान की आवश्यकता नहीं है।

ताजुद्दीन औलिया का जन्म २२जनवरी१८६१ के लगभग माना जाता है। जब वे मात्र एक वर्ष के थे तब उनके पिता का देहान्त हो गया था और मात्र नौ वर्ष की उम्र में उनकी माता का भी साथ छूट गया। वे एकदम अनाथ हो गये। संसार से विरक्त तो वे बचपन से ही होने लगे थे। लेकिन उनकी नानी उनका भरण-पोषण करती। उन्हे बचपन से पढ़ने का शौक था। तब उनकी नानी ने पास के एक पाठशाला में उनका दाखिला करा दिया। कामठी के एक प्रसिद्ध फकीर हजरत अब्दुल्ला रहते थे। उनका जीवन खुदा की इबादत में ही बीतता और समय मिलता तो लोगों को इन्सानियत का पाठ भी पढ़ाते। एक दिन पाठशाला में जाना हुआ तो उनकी नजर बालक ताजुद्दीन पर पड़ी। वे हतप्रभ से उसे कुछ देर देखते रहे। उनके चेहरे पर एक विशेष तेज उन्हे नजर आया। तत्काल बोल पड़े- अरे! यह बालक तो खुदा के पास से पढ़ कर आया है। सभी लोग अवाक रह गये। इतना कहते-कहते बाबा, ताजुद्दीन के पास पहुंचे। वह बालक बाबा को देख कर खड़ा हो गया। बाबा ने उसके सर पर हाथ फेरते हुए अपने झोले से एक मिठाई का टुकड़ा निकाला आधा खुद खाया और आधा ताजुद्दीन को दिया खाने को और बोले- तुम पर खुदा की रहमत है। उनके रास्ते पर चलो। कम खाओ, कम बोलो, कम सोओ। मीठा खाते ही ताजुद्दीन में एक महान परिवर्तन आ गया। कहा जाता है तीन दिनों तक उनकी आंखों से आंसू निकलते रहे। (मेरे विचार से बाबा ने बालक ताजुद्दीन की चेतना को जाग्रत कर दिया और उसके प्रवाह में बालक ताजुद्दीन बहने लगे।) उनका जीवन एकदम से बदल गया। एकान्त में रहना, कम बोलना जो मिलता वो खा लेते। दिन भर आंख बन्द कर एकान्त में पड़े रहते। कुछ भी सुध-बुध नहीं रही न ही किसी की परवाह।

धीरे-धीरे काल का प्रवाह चलता रहा। बालक ताजुद्दीन बीस वर्ष के हो गये। एक दिन बिना कुछ कहे घर से निकल पड़े। खोज शुरू हुई तो पता चला ताजुद्दीन सागर के गली कूंचों में बावलों की तरह भटक रहे हैं।

न वस्त्र का ख्याल, न ही शरीर का। बाल दाढ़ी बढ़े हुए। कुछ भी होश नहीं। लोग उन्हे पागल समझने लगे। जब उनके घर वालों को पता चला तो उन्हे लेने सागर पहंच गये। उनकी नानी का भी मन नहीं माना वे भी साथ में चल पड़ी। जब ताजुद्दीन से सामना हुआ सबका मन अपार दुख से भर गया। तन की खबर नहीं कड़ाके की ठण्ड में खुला बदन बस कमर में लुंगी लपेटे एक पेड़ के पास पड़े मिले। परिवार वालों को लगा की ताजुद्दीन पागल हो गया है। लेकिन उन लोगों को क्या पता कि ताजुद्दीन चेतना के अनन्त प्रवाह में बहते जा रहे हैं। उनके शरीर की तो रक्षा स्वयं प्रकृति कर रही है। चेतना का दूसरा रूप तो प्रकृति है।

वापस कामठी लाया गया। नीम हकीम, झाड़ फूंक सब चला। लेकिन किसी भी चीज का उन पर असर नहीं पड़ा। वे उसी तरह मस्त थे। उन पर तो खुदा और उनका रंग चढ़ा था। सभी जगह उन्हे खुदा ही नजर आ रहे थे। हर कण, हर पत्थर, हर पहाड़, हर वृक्ष, नदी, इंसान में बस सबको देखते मुस्कुरा देते और उनके नेत्र गीले हो जाते। हर समय गली कूंचों में घूमते। पास में चादां जंगल था वहीं चले जाते। नेत्र बन्द किये हुए पड़े रहते। इसी गम में उनकी नानी की मृत्यु हो गई। जब उन्हे पता चला नानी चल बसी तो वे हंसने लगे। बोले- अल्लाह मैं तेरा शुक्रगुजार हूं एक बंधन था उससे भी तूने मुक्त कर दिया अब बस तू ही है।

अब बाबा ताजुद्दीन की सुधि लेने वाला कोई भी न था कामठी में। इस लिहाज से वह पूरी तरह से बन्धन मुक्त हो गये। सड़कों पर, वृक्षों के नीचे खण्डहरों पर पड़े रहते। जो मिलता खा लेते, जो मिलता पहन लेते। एक तरह से कामठी के लोग उन्हे पागल ही समझने लगे। लेकिन उनका कोई अपमान नहीं करता। यथायोग्य सेवा भी कर देते थे।

एक दिन की घटना है एक सुनार उन्हे फकीर मानता था। अक्सर उनकी सुध लेता खाना आदि की भी अक्सर वही व्यवस्था करता। कभी भूख लगता बाबा उसके दरवाजे पर जाकर बस खड़े हो जाते। उस दिन भी बाबा अचानक उसके दरवाजे पर खड़े हो गये। शाम का समय था घने बादल आकाश में मंडरा रहे थे। लगता था कभी भी बारिश हो सकती है। बाबा को देखकर सुनार बाहर आ गया। बाबा क्या बात है, आप इस

समय? बाबा कम ही बोलते थे। बस इतना कहा तुरन्त घर खाली कर दो बहुत बड़ी आफत आने वाली है। इतना कह कर बाबा तुरन्त चले गये। जैसे ही सारा परिवार बाहर निकला वैसे ही बिजली कड़की और उसी सुनार के मकान के पास वृक्ष पर गिरी और उस वृक्ष से सुनार का मकान जल कर खाक हो गया। सुनार का पूरा परिवार बाबा का आविर्भूत हो गया। बाबा की कृपा से पूरा परिवार बच गया।

दूसरे दिन यह घटना चारो तरफ फैल गयी। बाबा की ख्याति चारो तरफ फैलने लगी। फिर तो लोगों की भीड़ लग जाती जहां बाबा जाते।

एक दिन भीड़ से घबड़ा कर यूरोपियन लेडीज क्लब में जा घुसे। वहां भगदड़ मच गयी। सारी अंगेज औरतें इधर-उधर भागने लगी। कहने लगी कोई पागल क्लब में घुस आया है। उन्हे गिरफ्तार कर लिया गया। २६ अगस्त १८९२ को उन्हे पागल करार कर पागल खाने में भेज दिया गया। उसी पागल खाने का एक अफसर किसी विशेष कार्य से कामठी बाजार के पास गुजर रहा था। उसकी कार खुली थी वह चारो तरफ देखता जा रहा था। उसकी कार को देख कर लोग हट जाते। तभी उसकी नजर एक पेड़ के नीचे पड़ी, देखा कोई बैठा है, जब उसने ध्यान से देखा तो घबड़ा कर तत्काल गाड़ी रूकवाई। जाकर देखा पेड़ के नीचे बाबा ताजुद्दीन आंख बन्द कर चुपचाप बैठे हैं। उनके पास जाने की उस अफसर की हिम्मत नहीं हुई। वे तत्काल अपने उच्च अधिकारी को खबर दी सच्चाई जानने के लिए। वह अफसर खुद घोड़े पर सवार होकर उस स्थान पर आया। उसे भी आश्चर्य हुआ, साथ में क्रोध भी अपने कर्मचारियों पर आ रहा था। उसने सोचा पागल कहां जायेगा। पहले पागलखाने जाकर कर्मचारियों की खबर लेते हैं। जिनकी लापरवाही से यह पागल वहां से भाग आया है।

वह तुरन्त पागलखाने पहुंचा। उच्च अफसर को देख कर वहां के कर्मचारी घबड़ा गये। उसने क्रोध में पूछा- पागल कहां है? जिसे बन्द किया था मैंने आज ही अपने हाथों से। एक कर्मचारी आगे बढ़कर बोला- हुजूर वह उसी दिन से कमरे बन्द है न कुछ खाता है, न कुछ पीता। बस चुपचाप बैठा रहता। सोता भी नहीं। सुबह-शाम हम लोग उसकी हाजिरी लेते हैं। वह अफसर वहां पहुंचा तो सलाखों के पीछे देखने पर आश्चर्यचकित

रह गया। थोड़ी देर पहले जिस मुद्रा में बाबा को पेड़ के पास देखा था ठीक उसी मुद्रा में बाबा ताजुद्दीन पागलखाने के कमरे में पड़े थे। बाबा बोले- फौजी तू अपना काम कर मैं तेरा कानून नहीं तोडूंगा। मुझे जो करना है वो करने दे। मुझे कोई बांध नहीं सकता। यहां अपनी मर्जी से आया हूं शान्ति के लिए। खुदा की बन्दगी करने के लिए। मुझे पड़ा रहने दे। वह अफसर इतना भक्त हो गया कि पागलखाने में बाबा की सारी सुख-सुविधा की व्यवस्था करा दी और अक्सर उनका दर्शन करने पूरे परिवार के साथ आता था।

वहां पर भी बहुत सारे अंग्रेज अफसर बाबा के भक्त हो गये। लेकिन उन्हे कोई तंग नहीं करता। जब बाबा की प्रसिद्धि महाराज राघोजी राव भोंसले तक पहुंची तो उन्होने अपनी जमानत पर बाबा को पागलखाने से मुक्त कराया और शक्करदारा (नागपुर के पास) पर उनके रहने की व्यवस्था करा दिया और सेवादार भी लगा दिये। बाबा को किसी बात की कमी न हो। लेकिन एक महीने बाद ही बाबा वहां से चुपचाप निकल गये और जंगल चले गये। उसके बाद नागपुर से चौबीस किलोमीटर उत्तर की तरफ वाकि नामक कस्बा है। यह कस्बा जंगल और चारो तरफ पहाड़ियों से घिरा है। जंगली जानवरों की भरमार है। वाकी के सामन्त काशीनाथ राव धर्म परायण व्यक्ति थे। उन्ही के पास बाबा रहने लगे।

कहा जाता है अफगानिस्तान के अमीर परिवार में जन्मे सैयद शाह जिनका मन संसार से ऊब गया था। बस अफगानिस्तान के पहाड़ों को पार कर भारत की ओर चल पड़े किसी सिद्ध फकीर की तलाश में। रास्ते में उन्हे स्वच्छ धवल वस्त्र में तेजोमय चेहरे का एक पतला-दुबला फकीर दिखा। घने लम्बे बाल, घनी लम्बी दाढ़ी, हाथ में मनका, सफेद चोंगा पहने खड़ा था। उन्हे काफी आश्चर्य हुआ इस वीरान पहाड़ी में यह दिव्य पुरुष कौन है जैसे कोई फरिश्ता आकाश से उतर आया हो। शाह उससे पूछते हैं- आप कौन हैं इस वीरान पहाड़ी पर अकेले? वह बोले- जब मन घबड़ाता है चोला (शरीर) छोड़ कर यहां चला आता हूं खुदा की इबादत के लिए। अगर आप मेरी बात माने तो आप औलिया ताजुद्दीन के पास चले जाये। इस समय नागपुर के वाकी कस्बे में उनका दीदार हो जायेगा। वह कुछ

समझ पाता उसके पहले ही वह दिव्य फकीर पहाड़ी के पास अदृश्य हो गया। जब शाह साहब वाकी कस्बा में बाबा के पास पहुंचे देख कर शाह के पांवों की जमीन ही जैसे सरक गई हो। वे हैरत में पड़ गये। उनसे बोला नहीं गया। वे निरूत्तर हो बस उनके सामने बैठ गये। उनके आंखों से बरबस आंसू निकलने लगे। क्योंकि जिस फरिस्ते से शाह जी अफगानिस्तान की पहाड़ी पर मिले थे वह कोई और नहीं बाबा ताजुद्दीन औलिया ही थे। बाबा ने उन्हे अपने दिव्य रूप के दर्शन दिये थे। शाह को मंजिल मिल गई। काफी समय तक वह बाबा के सान्निध्य में रह कर इबादत करते रहे।

काशीनाथ राव की मृत्यु के बाद नागपुर के महाराजा राघोराव जी बाबा को मना कर शक्करदारा ले आये।

ऐसी बहुत सारी चमत्कारी घटनायें हैं बाबा ताजुद्दीन औलिया के बारे में स्थानाभाव के कारण पूर्ण विवरण देना सम्भव नहीं है। बाबा का पूरा जीवन चमत्कारों से भरा था। १६ अगस्त १९२५ को बाबा इस दुनिया को छोड़कर सदा-सदा के लिए चले गये।

जब उनके मजार पर पहुंचा। असीम चेतना का अनुभव किया। जैसे सब कुछ थम सा गया हो। समय रूक गया हो। मन को एक परम शान्ति का अनुभव हुआ।

जड़ और चेतन में चेतना प्रवाह में रहती है। इसका प्रभाव सदैव बना रहता है। जो साधक-संन्यासी या फकीर अपना शरीर त्याग करता है उसकी ऊर्जा सदैव समाधि अथवा मजार पर बनी रहती है। जिसके कारण सामान्य लोगों की मनोकामना पूर्ण होती रहती है। उसकी ऊर्जा सदैव विद्यमान रहती है।

◆◆◆

प्रसंग छः

क्या उच्च आत्माएं सहयोग करती हैं?

मृत्यु के बाद क्या होता है यह रहस्य की बात है। लेकिन विभिन्न धर्म में अपनी-अपनी मान्यताएं हैं। लेकिन यह सत्य है। मृत्यु के बाद भी जीवात्मा का अस्तित्व समाप्त नहीं होता। वह किसी न किसी रूप में बना रहता है। मृत्यु के बाद कितने बालक-बालिका अपने पूर्वजन्म के बारे में बतलाते हैं ज्यादातर सत्य ही रहता है। लेकिन जन्म-पुनर्जन्म के बीच आत्मा कहां रहती है। उसका रहस्य आज भी बना हुआ है। लेकिन कुछ ऐसी आत्माएं भी होती हैं जो मृत्यु के बाद भी अपने उच्च संस्कार और स्वभाव के कारण दूसरों की यथायोग्य सहायता करती हैं। चाहे वह आध्यात्मिक हो या सांसारिक।

सूक्ष्म जगत से सम्बन्ध होने के कारण उनका ज्ञान भी अधिक होता है। उनका जिनसे सम्बन्ध हो जाता है उनकी कई प्रकार की सहायता भी करती रहती हैं। चाहे उस व्यक्ति का जो भी क्षेत्र हो।

वे भूत-भविष्य दोनों देखने में समर्थ होती हैं और उस व्यक्ति को सतर्क भी करती रहती हैं। मुझे साधना के क्षेत्र में बहुत सारी दिव्य आत्माओं का सहयोग मिला। जिसके कारण अध्यात्म मार्ग में काफी सफलता मिली। मैंने अपनी पुस्तकों में जो लिखा उसमें भी दिव्य आत्माओं का सहयोग न मिला होता तो शायद मेरे अनुभव और ज्ञान पुस्तक के रूप में न होते। मेरा ज्ञान और अध्यात्म अनुभव मेरे साथ ही चला जाता।

दिव्य आत्माओं से देव स्तर तक का सहयोग प्राप्त किया जा सकता है। सूक्ष्म जगत से सम्बन्धित होने के कारण उनका सहयोग आशाजनक होता है।

वैज्ञानिक सर विलियम क्रूक्स और सर आलिजर की मृतात्माओं से सम्पर्क स्थापित करने की खोज को तो संसार भर में प्रमाण के तौर पर

देखा। सर अलीजर लाज ने स्वर्गीय आत्माओं के अस्तित्व एवं उनके क्रियाकलाप सम्बन्धी जानकारी के लिए एक सुव्यवस्थित शोध संस्थान तक स्थापित किया था। उसमें आक्सफोर्ट विश्वविद्यालय के सर अर्नेष्ट बेनेट से ख्याति प्राप्त विद्वान भी शामिल थे। इनके शोध का प्रसारण उस समय बी.बी.सी. लन्दन से भी होता था। आत्माओं से सम्पर्क कर उनके अनुभव को पुस्तक रूप में प्रकाशित किया गया था।

अठारहवीं सदी के जाने माने विद्वान ऐमेनुअल स्वेडन बर्ग ने परलोक पर गहरी खोज की थी और आत्माओं से सम्बन्ध स्थापित करने में काफी सफलता भी प्राप्त की थी। थियोसोफिकल सोसायटी की जन्मदात्री मैडम व्लैब टास्की को चार वर्ष की अल्प आयु में देव आत्माओं का सान्निध्य और सहयोग प्राप्त होने लगा था।

अमेरिका का एक गरीब व्यक्ति चालीस डालर महीने की कुलीगिरी की नौकरी करता था। एक दिन उसे चार अनजान लोग मिले और उससे बोले- तुम्हारी मेहनत देख कर तुम पर दया आ गई है हम लोगों को। तुम्हारी सहायता करना चाहते हैं। वह कुछ समझा नहीं। बस उन लोगों से बात करते-करते और साथ चलते-चलते अपने घर पर चला आया। बस वह यही बोला- ठीक है अगर मेरी सहायता करेंगे तो मेहरबानी होगी। उसमें से एक ने कहा- कल रात हम लोग तुम्हारे घर आयेंगे इन्तजार करना। उसने इस बात को सामान्य समझा। लेकिन जब दूसरे दिन अपने घर का दरवाजा खोलता है तो देखता है वे चारो आराम से खाने वाले टेबिल पर बैठे हैं। बहुत सारा खाना पीना रखा है जैसे काफी देर से खा पी रहे थे और गप्पे मार रहे थे। आओ आर्थर एडवर्ड। अरे! आप मेरा नाम भी जानते हैं। आप लोग कमरे में कैसे आये। बाहर तो ताला बन्द था। चारो व्यक्ति एक-दूसरे की ओर देख कर मुस्कुरा दिये कुछ बोले नहीं। उसमें से एक व्यक्ति कहता है एडवर्ड बैठो तो सही। लो तुम्हारे लिए सबसे मंहगी मदिरा की बोतल लाया हूं और बहुत सारा खाना। चलो एक साथ खाते हैं। बाद में हम लोग अपना परिचय देंगे। बस बैठने की जगह की तलाश थी वह तुम्हारा घर मिल गया। हम लोगों की जब इच्छा करेगी चले आया करेंगे मौजमस्ती करने। एडवर्ड को कुछ समझ में नहीं आया। थका था

बरसों बाद अच्छा खाना और पीना मिल रहा था बिना संकोच के उनके साथ शामिल हो गया। धीरे-धीरे उन लोगों का अक्सर आना होता। एडवर्ड भी उन लोगों से काफी घुलमिल सा गया था। उन लोगों के साथ उसे आनन्द आने लगा। एक दिन उसने देखा उन लोगों के साथ दो और लोग भी थे। उसे कोई आपत्ति नहीं हुई। वे लोग उसकी आर्थिक सहायता भी करने लगे।

एक दिन उन लोगों में से एक ने कहा- एडवर्ड तुमने कभी जानने की कोशिश नहीं की, कि हम लोग कौन हैं। एडवर्ड बोला- आप लोग भले लोग है। हम लोग अशरीरी हैं यानि मृत व्यक्ति हैं। हम लोग जानबूझ कर तुम्हे डराना नहीं चाहते थे। लेकिन हम लोग दिव्य आत्मा हैं सच में तुम्हारी सहायता करना चाहते हैं। अगर तुम्हे हम लोगों से भय लगता है तो हम लोग फिर नहीं आयेंगे यहां।

एडवर्ड बोला- नहीं...नहीं... ऐसी बात नहीं है। आप लोगों के विषय में मैं पहले से ही जान गया था। मैं एकदम डरा नहीं। मुझे तो लग ही नहीं रहा है जीवित लोगों और मृत लोगों के बीच में क्या अन्तर है। हां एक अन्तर है। जीवित व्यक्ति दरवाजा खोलकर अन्दर आते हैं और मृत व्यक्ति को ऐसा नहीं करना पड़ता। परन्तु हां आप लोग नहीं आयेंगे तो दुख होगा। सच में मेरा घर वीराना सा हो जायेगा। यह सुनकर सभी एक साथ हंसने लगे।

उन दिव्यात्माओं के सहयोग से एडवर्ड अपने समय में काफी ऊंचाईयों पर पहुंचा। उन छः आत्माओं में तीन इंजीनियर थे, एक लेखक और दूसरा कवि था, छठा अर्थ विशेषज्ञ था। एक दिन उन आत्माओं ने एडवर्ड की लगी लगायी नौकरी छुड़वा दी और कहा चलो तुम्हे एक बड़ा आदमी बनाते हैं। जैसा मैं कहूं करते जाना। उस समय रेल लाईन बिछाने का टेण्डर निकला था। आत्माओं के कहने पर उसने वह टेण्डर भर दिया। लेकिन चिन्तित था करोड़ो रूपये कहां से आयेंगे। बस उसके साथ चमत्कार होता रहा और चमत्कारिक ढंग से सफलता मिलती चली गयी।

२६ सितम्बर १९२८ में उसकी मृत्यु हो गयी। लेकिन उसकी अरबों की सम्पत्ति थी। अकेला होने के कारण सारी सम्पत्ति सरकार ने हस्तगत कर

ली। पांच लम्बी रेल्वे लाईन, जहाजों के आने जाने वाला विशालकाय नहर पोर्ट आदि। उसी के नाम पर आज एबिना आर्थर बन्दरगाह है।

परन्तु उससे भी बढ़कर उसके द्वारा साहित्य और कविता पर तीस से ज्यादा पुस्तकें भी लिखी गई। जो साहित्य क्षेत्र में सम्मानित हुई। एक बार आर्थर एडवर्ड से उनकी सफलता का रहस्य पूछा गया कि आप इतने बड़े बिजनेसमैन हैं और दूसरी ओर इतने बड़े सफल साहित्यकार भी। उन्होने कहा- यह सब दिव्य आत्माओं के कारण है। कागज और पेन तो मेरा होता है। लेकिन भाव और विचार उन सब दिव्य आत्माओं का जिनके कारण मैं सफल हूं। मेरे पास इतना ज्ञान नहीं है कि इतने गम्भीर साहित्य और कविता लिखता। न ही इतना दिमाग है कि एक सफल व्यापारी बन पाता। लेकिन उस समय वहां उपस्थित लोगों को आर्थर एडवर्ड पर विश्वास हुआ की नहीं पता नहीं। बाद में शोध के दौरान यह सारा रहस्य खुला कि आर्थर एडवर्ड को दिव्य आत्माओं का अपरोक्ष रूप से सदा सहयोग प्राप्त होता रहा। चार्ल्स डिकेन्स अपनी उपन्यास 'मिस्ट्री ऑफ एडविन हुड' के बीस अध्याय लिख कर स्वर्गवासी हो गये। अपने मृत्यु के दो वर्ष बाद उन्होने अपने मित्र थामस जेम्स को लिखने के लिए प्रेरित किया और माध्यम बनने को कहा। थामस की कलम के माध्यम से अपने शेष अध्याय पूरा किये। इस बात की चर्चा थामस उसी पुस्तक में किये थे।

श्रीमती जान कूपर बहुत अच्छी उपन्यासकार थी। लेकिन उनकी सबसे चर्चित उपन्यास 'टेल्का' काफी प्रसिद्ध हुई। श्रीमती कूपर के अनुसार उपन्यास टेल्का के लेखन में एक दिव्य आत्मा का मार्गदर्शन मिला था। उसी प्रकार अमेरिका की श्रीमती रूथमान्ट गुमरी का कथन था कि उनका 'ए वल्ड वियॉण्ड' स्वर्गीय आर्थर फोर्ड ने स्वयं सामने बैठ कर लिखवाया था।इग्लैण्ड के प्रसिद्ध लेखक टोएल कोवर्ड ने अपनी प्रख्यात रचना 'दि ब्लिथे स्प्रिट' के सम्बन्ध लिखा है कि यह लेखन उसके एक अदृश्य साथी के सहयोग से लिखा है।

'जान ऑफ आर्क' ने अपने आत्म परिचय में बड़े ही आत्म विश्वास से कहा- किसी भी विशिष्ट काम की प्रेरणा और शक्ति किसी अदृश्य दिव्य आत्मा से मिलती है। महान सन्त सुकरात के बारे बतलाया जाता है कि

प्रारम्भिक जीवन में उन्हे अध्यात्म और धर्म, कर्म, पारलौकिक जीवन पर उन्हे थोड़ा भी विश्वास नहीं था। एक दिन उन्हे एक दिव्य आत्मा का साक्षात्कार हुआ और जो उसके द्वारा अतीन्द्रिय ज्ञान मिला उनका पूरा जीवन ही बदल गया। कहा जाता है कि कोई भी विशिष्ट सलाह लेना होता तो उस दिव्य आत्मा का सहयोग अवश्य लेते हैं। जिसके कारण उन्होने हजारों व्यक्तियों का कल्याण भी किया। जिसके कारण उनके अनुयायी बनते चले गये।

उस दिव्य आत्मा के विषय में सुकरात ने अपने विशेष शिष्यों को बतलाया। लेकिन वे उस आत्मा का दर्शन उन्हे नहीं करा सकते थे। यह उनकी विवशता थी। लेकिन अनुयायी उन्ही को जानते थे। इस कारण उन्हे चमत्कारिक व्यक्ति मानते थे। परन्तु उस दिव्य आत्मा के सहयोग से उन्हे अतीन्द्रिय शक्ति प्राप्त हो गयी थी जिसके कारण भूत-भविष्य या भविष्यवाणी करना, लोगों का कल्याण करना, सब उनके लिए सहज सा हो गया था। "दि जेनियो सोक्रेटीज" के अनुसार एक बार किसी मार्ग पर चलते-चलते सहसा रूक गये। अपने साथ के लोगों को मना किया कि अन्य रास्ते से चलते हैं। इस मार्ग पर आगे खतरा है। लेकिन उनके साथ चल रहे लोगों को विश्वास नहीं हुआ यह प्रारम्भिक काल की घटना थी।

जो लोग नहीं माने उसी मार्ग पर चले गये जिस मार्ग पर सुकरात ने मना किया था। थोड़ी दूरी जंगली सुअरों के आक्रमण से वे लोग घायल हो गये। बड़ी ही मुश्किल से लोगों ने अपनी जान बचाई। प्लेटो ने अपने पुस्तक में एक ऐसी घटना लिखी है जब सुकरात की लोकप्रियता से डर कर राजा ने उन्हे ने प्राण दण्ड दिया। लेकिन सुकरात के पास ऐसे प्रमाण थे कि वे प्राण दण्ड से बच सकते थे।

ऐथेन्स के कारागार से उनके अनुयायी उन्हे भगा ले जाने हेतु पूरी तैयारी कर चुके थे। लेकिन सुकरात ने मना कर दिया। उन्होने कहा हमारे देवता डेमन का कथन है कि प्राण दण्ड तुम्हारी नियति है अमर होने के लिए। ऐसी मृत्यु मनुष्य के लिए श्रेयष्कर है। आओ मैं तुम्हारा स्वर्ग में इन्तजार कर रहा हूं। वे सहज भाव से विष को स्वीकार कर अजर-अमर हो गये।

क्या एकाग्रता के बल पर आत्माओं से सहयोग लिया जा सकता यानि स्थूल सहायता प्राप्त हो सकती है? हां है एक ऐसी घटना। जो अपने आप में कम रहस्यमय नहीं है। द्वितीय विश्व युद्ध अपने चरम पर था 'मोन्स' की लड़ाई में ब्रिटिश सेना जर्मनों द्वारा बुरी तरह घिर चुकी थी। उस बटालियन में केवल पांच सौ ब्रिटिश सैनिक ही बचे थे। उनका मरना निश्चित था और जर्मन सैनिक दस हजार से भी ज्यादा थे। तभी एक ब्रिटिश सैनिक को इग्लैण्ड के वीरगति प्राप्त महान सेनानायक सेन्ट जार्ज की सैनिक कार्यालय में उनकी टंगी तस्वीर याद आ गई। उसने सभी सैनिकों की ओर मुख करके बड़े ही जोश से कहा- आप लोग हमारे महान सेनानायक को श्रद्धापूर्वक याद करें और उनसे सहायता मांगे।

भावना और आत्म शक्ति से सभी ब्रिटिश सैनिकों ने महान सेन्ट जार्ज को नेत्र बन्द कर स्मरण करने लगे और सहायता के लिए प्रार्थना करने लगे सहसा एक बिजली सी कौंधी चारो तरफ और उसी के साथ शुभ्र प्रकाश सा फैल गया और अगले क्षण पांच सौ सैनिकों के पीछे हजारों की तादात में श्वेत वस्त्रधारी सैनिक की आभा दृष्टिगोचर हुई और अगले ही क्षण दस हजार सैनिक रणभूमि में मृत पाये गये जो कुछ बचे भाग कर अपने प्राण बचायें। बिना किसी अस्त्र-शस्त्र के। न ही प्रहार के निशान थे। इस घटना ने पूरे इग्लैण्ड व विश्व में तहलका मचा दिया था।

विज्ञान और मानव विकास तथा मैं आत्मा के अमरत्व में क्यों विश्वास करता हूं नामक पुस्तकों में मृत्यु के बाद का जीवन पर प्रकाश डाला गया है। सर विलियम क्रुक्स, सर एडवर्ड मार्शल, सर आर्थर, कानन डायल, डॉ. मेयर्स, एलफ्रेड आदि अनेक वैज्ञानिक विद्वानों ने इस दिशा में विभिन्न खोज की है और उनके खोज और शोध विश्व भर में प्रकाशित हुए जो आत्मा और जन्म-पुनर्जन्म के प्रचुर प्रमाण थे। साथ ही दो जन्मों के बीच अन्तराल में सूक्ष्म शरीर में रहने वाले आत्माओं से प्रत्यक्ष सम्पर्क कर प्रमाण सहित विवरण भी छपे। वे कहां रहते, वहां का वातावरण कैसा है आदि ऐसी बहुत सारी घटनाएं है।

थियोसोफिकल सोसाईटी के विख्यात लेखक सन्त लेट विक्टर की पुस्तक "स्प्रिरिचुयल हीलिंग" में कहा गया है मृत्यु के बाद आत्मा सूक्ष्म

लोक में रहती है। यह पदार्थ जगत उस सूक्ष्म लोक की छाया मात्र है असली जीवन वहीं से प्रारम्भ होता है।

एक साधक की रहस्यमयी कथा

मुझे सन् तो याद नहीं है लेकिन अपने अनुमान से यह कह सकता हूं कि कम से कम चार दशक पूर्व की है यह घटना। एक प्रकार से भूल ही गया था सब कुछ। यदि एक सप्ताह पूर्व समरेन्द्र सान्याल का पत्र न आया होता तो मुझे याद भी न आती वह रहस्यमयी घटना। समरेन्द्र कुमार सान्याल मेरे मित्र थे। दो-तीन साल हम दोनों एक साथ रहे थे कलकत्ता में। फिर सेटलमेन्ट अफसर पद पर उनकी नियुक्ति हो गयी वर्मा और आसाम की सीमा पर। उनका विवाह हो चुका था। लेकिन जीवन कट रहा था तंबुओं में। ग्रामीण अंचलों में उनके तम्बू लगते। ढोल नगाड़ा पीट कर मुनादी करायी जाती। मातहत कर्मचारियों के साथ जाकर वह खेती की जमीनों का निरीक्षण करते। नक्शे की पड़ताल करते। जरूरत पड़ती तो अपने सामने पैमाइश भी कराते। फिर बन्दोबस्त के कागज तैयार होते। तीन-चार साल तक मेरा पत्र व्यवहार होता रहा सान्याल महाशय से और फिर बन्द हो गया। जिसका कारण शायद हम दोनों की व्यस्तता थी। लेकिन एक-दूसरे को भूले नहीं थे हम लोग।

एक बार चेरापूंजी के निकट एक पहाड़ी इलाके में काम कर रहे थे सान्याल महाशय। अचानक बीमार पड़ गये। पत्नी साथ ही थी। भावुक होकर मित्र ने मुझे पत्र लिखा कि मैं उनकी सहायता के लिए तुरन्त पहुंचू। नीचे दो पंक्तियां उनकी पत्नी ने लिखी थी। "भाई साहब हमें आपका ही सहारा है इस वीरान, सूनसान जगह में अपना भला कौन है?"

उस समय मैं बनारस में था और था अति व्यस्त। मित्रता का तगाजा और फिर मित्र पत्नी का आग्रह अस्वीकार करते न बना। जैसे-तैसे इन्तजाम किया। अटैची जमाई। एक बैग में ओढ़ने-बिछाने के कुछ कपड़े रखे। पत्नी को समझाया और चल पड़ा। पूरे पांच दिनों की कठिन यात्रा के बाद किसी प्रकार चेरापूंजी पहुंचा मैं। वहां पता चला कि जिस इलाके में उस समय सांन्याल महाशय थे पांच-छः मील और आगे जाना था। घने जंगलों के बीच दुर्गम पहाड़ी इलाका। अति कष्टप्रद थी वह यात्रा। जीवन

भर नहीं भूल सकता मैं। पूरे चार मील पदयात्रा करने के बाद एक पहाड़ी नदी मिली। नाव से नदी पार करनी थी। नावें भी ऐसी जो पुराने सूखे पेड़ों की तने खोखले करके बनायी जाती थी। नाव पर चढ़ते समय ही मल्लाहों ने सतर्क कर दिया। साहब खतरनाक इलाका है। यहां अजगर मिलते हैं। शेर, बाघ भी नदी में पानी पीने आते हैं किनारे पर। इसलिए दम साधकर बैठना होगा। एक प्रकार की मछली भी होती है बड़ी जहरीली। उसकी दुम आदमी के शरीर से यदि छू भी जाये तो शरीर जलने लगता है। बड़े-बड़े हकीम-वैद्य भी उसका इलाज नहीं कर पाते। यह सब सुनकर बहुत डर लगा मुझे। परन्तु इतनी दूर आकर लौटा तो नहीं जा सकता था। इसलिए चल पड़ा राम का नाम लेकर। सिकुड़ा सिमटा बैठा रहा नाव के बीचों बीच मल्लाहों ने कुछ गलत नहीं कहा था। लगभग बीस फीट का लम्बा और मोटा ताजा एक अजगर मिला। उसका पिछला आधा भाग नदी के पानी में था और शेष बाहर। उसके जबड़े में कोई जानवर फंसा छटपटा रहा था। समझ में नहीं आया कि कौन जानवर था वह। थोड़ा आगे बढ़ने पर शेरों का झुण्ड भी दिखलायी दिया जो पानी पीने के लिए नदी की ओर बढ़ रहा था धीरे-धीरे।

कुछ पहाड़ी गांव भी दिखे छोटे-छोटे। जंगलों के बीच से झांकते हुए घास-फूस के छप्पर। कहीं-कहीं इक्के-दुक्के खपरैल के मकान भी। पहाड़ों के ढाल पर बने छोटे-छोटे खेत और खेतों में काम करते स्त्री-पुरुष। जमीन ऊंची-नीची थी। इसलिए हल नहीं चल सकते थे। बैलों से खेती नहीं होती थी। मिट्टी गोड़ने से लेकर बोवाई, कटाई तक सब काम लोगों को अपने हाथों से करने पड़ते थे। तब जाकर थोड़ी बहुत फसल उपजती थी। जिसमें मुश्किल से गुजारा हो पाता था।

घाट पर जब पहुंचा तो उस समय सांझ की स्याह चादर फैल चुकी थी पूरे अरण्य प्रान्त में। न जाने किधर से आकर एक पहाड़ी युवती खड़ी हो गयी मेरे सामने। एकबारगी सकपका सा गया मैं। उम्र रही होगी अट्ठारह-बीस वर्ष के आसपास। तांबिया रंग था। अपने आपमें आकर्षक और सुन्दर। मैली साड़ी लिपटी हुई थी देह पर। बाल उलझे हुए थे। आंखे छोटी-छोटी थी। लेकिन उनमें विशेष आकर्षण था। किसी को भी एक बार में सम्मोहित कर सकती थी वे आंखे। कहां जाना है बाबू? आवाज थोड़ी

भारी थी, युवती ने थोड़ा आंख झपकाकर पूछा मुझसे। मैंने कहा- बंदोबस्त अधिकारी के घर। उस छोटे से इलाके में भला कौन नहीं जानता था बन्दोबस्त अधिकारी को। सब जानते थे। वह युवती भी जानती थी उसने लपक कर मेरा सामान उठा लिया और कहा- चलो बाबू मेरे साथ। आगे-आगे मैं चलती हूं पीछे-पीछे आप आओ। कुछ बोला न गया मुझसे। सिर झुकाये चलने लगा उस अपरिचित के साथ। रास्ता काफी खराब था जिसका वर्णन कर सकने में असमर्थ है मेरी लेखनी। लगभग एक घंटा उस नर्क पथ पर चलने के बाद दर्शन हुआ मित्र महोदय के तम्बू का। अब तक रात हो चुकी थी। इस बीच स्वस्थ हो चुके महाशय। मंदद करने जैसी स्थिति नहीं थी अब। पति-पत्नी गद्-गद् हो गये मुझे देखकर। इतनी दूर से और नाना प्रकार के अविस्मरणीय कष्टों को सहते हुए मैं आ गया था। यही बड़ी बात थी उनके लिए।

भोजन करते समय मैंने उनको टॉनिक लेने की सलाह दी तो वह हंस कर बोले- तुम आ गये हो यही सबसे बड़ी टॉनिक है मेरे लिए।

अगले दिन सुबह से दोपहर तक गपशप का टॉनिक पिलाता रहा मैं सान्याल महाशय को। काफी दिनों बाद मिले थे हम दोनों। बातचीत के सिलसिले में अपने विषय में भी थोड़ी बहुत बतलाना ही पड़ा मुझे सान्याल के आग्रह पर। जानते ही हो कि घुमक्कड़ प्रवृत्ति का हूं मैं। पढ़ाई-लिखाई के साथ-साथ पूरे उत्तराखण्ड की यात्रा की मैंने। कहां नहीं गया मैं सान्याल। गंगोत्री, यमुनोत्री, गोमुख, कैलाश मानसरोवर और अन्त में तिब्बत भी। एकमात्र उद्देश्य था साधु, सन्त-महात्माओं के अलावा गुप्त रूप से निवास करने वाले सिद्ध योगी और साधकों की खोज। अभी भी इस प्रवृत्ति से मुक्ति नहीं मिली है मुझे। बस बन्धु अवसर मिलना चाहिए और अवसर प्राप्त होते ही निकल पड़ता हूं कहीं न कहीं। आराम कुर्सी पर लेटे हुए गुमशुम सुनते रहे सान्याल महाशय मेरी कथा। फिर एक धीमे स्वर में बोले- बड़ा ही अच्छा किया आकर आपने। थोड़ी दूर पर इस बीहड़ जंगली इलाके में एक महात्मा निवास करते हैं। वे कब आये, कहां से आये और कब से निवास कर रहे हैं। इन सबकी जानकारी यहां के लोगों को नहीं है। यह सुनने में अवश्य आया है कि महात्मा काली के परम साधक हैं।

हर समय लीन रहते हैं मां महामाया के चरणो में। कई दुर्लभ सिद्धियां भी प्राप्त हैं उन्हे। दो-एक बार मैंने कोशिश की उनके यहां जाने की। लेकिन असफल ही रहा मैं।

उन महात्मा का नाम तो आप जानते ही होंगे- मैंने जिज्ञासु भाव से पूछा।

हां नाम जानता हूं- सान्याल महाशय बोले।

उनका नाम है साधक कालीचरण। सुना यह भी है कि उनकी आयु तो बहुत है लेकिन देखने में अस्सी से अधिक के नहीं लगते महाशय।

यह सब सुनकर उत्सुक हो उठा मैं। सोई हुई जिज्ञासा वृत्ति जागृत हो उठी मेरी एकबारगी। अपनी यात्रा सफल समझने लगा मैं अब।

दोपहर का भोजन करने के बाद मैं चल पड़ा। सांन्याल के साथ साधक कालीचरण का दर्शन लाभ के लिए। जीप का रास्ता नहीं था इसलिए पैदल ही चलना पड़ा। वहां के अधिकारी होने के कारण रास्ते से परिचित थे सांन्याल महाशय। कहने लगे- शर्माजी आप अब तक बहुत से साधु-सन्त और सिद्ध साधकों से मिले होंगे और उनसे कुछ न कुछ प्राप्त भी किये होंगे। अब साधक कालीचरण को देख समझ लें। जिज्ञासु प्रवृत्ति के व्यक्ति हैं आप। मुझे विश्वास है कि आपकी जिज्ञासाओं का समाधान तो होगा ही इसके अलावा होगा आपको आध्यात्मिक लाभ भी इसमें सन्देह नहीं।

हूं, हां करता रहा मैं बीच-बीच में। लगभग एक मील चलने के बाद एक ढलान मिली और ढलान को पार करने पर दिखलायी दिया एक काफी लम्बा-चौड़ा तालाब जिसे झील कहना ही उचित होगा और उस झील जैसे तालाब के आगे कुछ दूर पर एक काफी ऊंचा टीला था और उस टीले के ऊपर एक विशाल वृक्ष था बरगद का। जिसके नीचे मिट्टी की दीवारों से बनी एक झोपड़ी थी। सांन्याल ने बतलाया कि उसी झोपड़ी में निवास करते हैं साधक कालीचरण। लेकिन उनकी झोपड़ी तक काफी घूमकर जाना होगा। पहाड़ी रास्ता है न। लगभग आधा घण्टा तो लगेगा ही। चारो ओर बिखरी हुई थी प्रकृति की अदभुत छटा। घोर निस्तब्धता बिखरी हुई थी वातावरण में। वहां से पर्वत शृंखला स्पष्ट दिखलायी दे रही थी जिनके पीछे छिपने ही

वाला था सूरज। बड़ा ही मनोहारी दृश्य था वह। अचानक काले बादल का एक टुकड़ा डूबते हुए सूरज के सामने आ गया न जाने किधर से और देखते ही देखते चारो ओर फैल गया आकाश में। पहले तो टप् टप् कर बूंदे गिरी और फिर जोरशोर से बरसने लगा आकाश। बारिश का हाहाकार, चारो ओर फैला हुआ अन्धकार और उद्दाम हवा का तूफानी विलाप।

कातर स्वर में मैंने कहा- अब क्या होगा सान्याल। हम लोग तो बुरी तरह फंसे। मेरे कन्धे पर हाथ फेरते हुए धीरे से बोले सान्याल- इस विकट परिस्थिति में वापस लौटना भी तो सम्भव नहीं है शर्माजी। बस एक ही उपाय है किसी प्रकार महात्मा की झोपड़ी तक पहुंचना। वहीं त्राण मिलेगा हम दोनों को।

ठीक है चलो देखा जायेगा। संयोग ही कहिए इसे चलते समय अपने झोले में चार सेल वाली टार्च रख लिया था सांन्याल ने। उसी की रोशनी से आगे बढ़ने लगे हम दोनों। बारिश होती रही पूर्ववत् जोर-शोर से। कड़कड़ा कर बिजली चमकी और उसका भयानक रव गूंज उठा उस अरण्य प्रान्त में। सिहर उठा मैं एकबारगी। जंगल और पहाड़ों पर वर्षा कैसी होती है इसका पहली बार अनुभव हुआ मुझे। आकाश और जमीन मिल कर जैसे एकाकार हो गये थे उस समय। शीतल अन्धकार का अन्तहीन समुद्र और उस समुद्र के भीतर आगे बढ़ते जा रहे थे हम दोनों। केवल एक टार्च के सीमित प्रकाश के सहारे।

याद नहीं उस अराजकता भरी रात में जोश-होश खोकर कब पहुंचे हम दोनों महात्मा की झोपड़ी पर। अब तक काफी भीग चुके थे। लगा जैसे वस्त्रों को गीला कर वर्षा का पानी शरीर के भीतर प्रवेश कर गया हो।

झोपड़ी काफी बड़ी थी। काठ का जरजर किवाड़ भीतर से बन्द था। झोपड़ी के सामने थोड़ी सी जमीन थी। जिसमें विभिन्न प्रकार के सुगन्धित फूलों की क्यारियां थी। दरवाजा खटखटाना नहीं पड़ा। कुछ क्षण बाद स्वयं अपने आप ही चीं चीं की आवाज करते हुए खुल गया वह। म्लान उजियारा फैला हुआ था भीतर। सामने दीवार पर लालटेन टंगी हुई थी। जिसकी मद्धिम और पीली रोशनी में झोपड़ी का भीतरी भाग देखने लगा

और फिर धीरे-धीरे स्पष्ट हुआ सब कुछ। बायीं ओर की दीवार से लगकर एक पुराना काठ का तख्त बिछा हुआ था और उसी पुराने तख्त पर एक अति वृद्ध महाशय नेत्र बन्द किये हुए बैठे थे। कमर के नीचे बस एक लंगोटी थी। इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं। गले में रूद्राक्ष और स्फटिक की मालाएं लटकी हुई थी। चौड़े ललाट पर लाल सिन्दूर का गोल टीका था। जटाजूट से बाल और लम्बी दाढ़ी सन की तरह सफेद। आयु निश्चय ही सौ से अधिक रही होगी इसमें सन्देह नहीं।

सान्याल मेरे कान में धीरे से कहा- यही हैं साधक कालीचरण महाशय। उसी समय वातावरण को मथती हुई विद्युत वाणी गरज कर शान्त हो गयी। वर्षा का वेग थोड़ा कम हो गया। मैंने देखा साधक कालीचरण सिर झुकाये पूर्ववत् बैठे हुए थे झोपड़ी के भीतर और कोई व्यक्ति नहीं था। फिर कीवाड़ किसने खोला? समझ में नहीं आया यह रहस्य। हम दोनों की उपस्थिति का आभास शायद लग गया साधक कालीचरण को। उन्होने धीरे से अपना सिर ऊपर उठाया और फिर हम दोनों की ओर स्थिर दृष्टि से देखा। विचित्र दृष्टि थी वह। लगा जैसे आग धधक रही हो वहां। आश्चर्य! घोर आश्चर्य! साधक कालीचरण की दृष्टि पड़ते मेरे और सान्याल के शरीर के सारे गीले कपड़े सूख गये न जाने कैसे। हम दोनों एक दूसरे का मुंह देखने लगे। अद्भुत और अविश्वसनीय बात थी मेरे लिए और सान्याल के लिए भी और तभी श्यामल आकाश का वक्ष जलाती बिजली चमकी। जलते पारे जैसी नीली रेखा आकाश के एक कोने से दूसरे कोने तक कौंध गयी एकबारगी। प्रखर आलोक से उद्भाषित हो उठी झोपड़ी। बाहर की दुनिया से अलग किसी अनजाने लोक सी लगी मुझे वह झोपड़ी।

मेरी ओर अभी तक देख रहे थे साधक कालीचरण। सपाट निर्विकार चेहरा। आंखे अभी भी जल रही थी। कुछ भय सा लगा मुझे। सान्याल ने धीरे से मेरा हाथ दबाया यानि वापस लौट चले अब। लेकिन उस अराजकता भरी रात में वापस लौटना सम्भव नहीं था और भूख भी लगी थी जोरों की। थकावट और भीगने के कारण बेहाल हो गये थे हम दोनों और ऊपर से भूख स्वाभाविक थी। सम्भवतः मेरी दयनीय स्थिति को समझ गये साधक कालीचरण। बैठने का संकेत किया हाथ से। हम दोनों बैठ गये

जमीन पर बिछी चटाई पर। तख्त के सामने एक छोटा सा त्रिकोण ताखा था। लाल रंग लगा था उस रहस्ययम ताखे में। जिसके भीतर काले पत्थर की बनी काली की छोटी सी मूर्ति स्थापित थी। सामने मिट्टी का दीप जल रहा था और उस दीप के हल्के प्रकाश में अति रहस्यमयी लगी काली की वह पाषाण मूर्ति।

उस त्रिकोण ताखा के नीचे एक छोटा सा हवन कुण्ड भी था लेकिन उसमें आग नहीं जल रही थी। बगल में बलि देने वाला एक विकराल खड्ग भी खड़ा करके रखा हुआ था। यह सब देखकर भय और रोमाञ्च से भर उठा मैं। सान्याल की भी सम्भवतः यही स्थिति थी। पीला हो रहा था उनका चेहरा। थोड़ा अस्थिर भी लगे वह मुझे। अचानक हवा का एक तेज झोका आया और झोपड़ी के भीतर बिखर गया चारो तरफ। जलता हुआ लालटेन एक बार भभका और फिर शान्त हो गया। एकाएक मेरा सिर घूम गया दरवाजे की ओर। ऐं! यह क्या? आश्चर्यचकित हो उठा एकबारगी मैं। सामने दरवाजे के पास एक छायाकृति खड़ी थी। पहचानने में भूल नहीं हुई थी मुझसे। वह छायाकृति और किसी की नहीं उसी पहाड़ी युवती की थी जो घाट पर अचानक मिली थी और मेरा सामान उठा कर ले आयी थी कैम्प तक। लेकिन वह यहां कैसे? संशय और भ्रम के मिलेजुले भाव से भर उठा मेरा मन। सान्याल मुझसे सट कर बैठे हुए थे। मैंने सिर घूमाकर उनके कान में धीरे से कहा- यही पहाड़ी युवती आपके कैम्प तक ले आयी थी मेरा सामान घाट से। क्या इसे देखा था आपने?

नहीं, सिर हिलाकर उत्तर दिया सान्याल ने। अब तक झोपड़ी के भीतर आ चुकी थी वह युवती। सिर उठा कर साधक कालीचरण ने उस युवती की ओर देखा और फिर मुस्कुराते हुए बोले- आ गयी देवकी।

हां बाबा। आपकी आज्ञा जो थी देवकी ने कोमल और स्निग्ध स्वर में उत्तर दिया। समझते देर न लगी मुझे उस रहस्यमयी पहाड़ी युवती का नाम देवकी था। उस समय देवकी के हाथों में दो थालियां थी भोजन की। जिनकों हम दोनों के सामने रखकर वह झोपड़ी के बाहर चली गयी। बारिश अभी भी हो रही थी। क्या भीगने की चिन्ता नहीं थी देवकी को। जैसे आयी थी वैसे ही चली भी गयी। आश्चर्य का होना स्वाभाविक ही था।

तभी साधक कालीचरण का स्वर सुनाई दिया। स्वर धीमा अवश्य था। लेकिन स्पष्ट था वे कह रहे थे पानी में भीगते हुए इतनी दूर से चलकर आये हो तुम दोनों भूख का लगना स्वाभाविक ही है। भोजन कर लो। फिर वापस लौटना। वर्षा भी थम जायेगी तब तक। समझते देर न लगी थी मेरे खोजी मन को। कोई माया नहीं थी, इन्द्रजाल भी नहीं था, किसी प्रकार का भ्रम और सन्देह की भी कोई बात नहीं थी। सब कुछ योग लीला थी और योग लीला सत्य पर प्रतिष्ठित होती है। सचमुच परम साधक और परम योगी थे साधक कालीचरण महाशय इसमें सन्देह नहीं। लेकिन फिर भी कहीं कुछ खटक रहा था अवश्य मेरे भीतर। वह क्या था उसे समझ नहीं पा रहा था मैं। सब कुछ समझ बूझ कर भी मैं असन्तुष्ट था।

भोजन करने के बाद सचमुच वर्षा बन्द हो चुकी थी। आकाश निर्मल हो गया था। शुक्लपक्ष की चतुर्दशी का चांद पहाड़ों के ऊपर आ गया था और चारो तरफ बिखेर रहा था अपनी रूपहली चांदनी। चारो ओर पहाड़ घने जंगल और उन पर पसरी हुई चांदनी और निस्तब्धत वातावरण। प्रकृति का वह मोहक रूप देख कर अविभूत हो उठा मैं एकबारगी। चलने के पहले उस महासाधक के चरणो का स्पर्श किया। मैंने कहा- मेरी कुछ आध्यात्मिक जिज्ञासा है। आपसे उनका समाधान चाहता हूं मैं।

मेरी बात सुनकर साधक कालीचरण मुस्कुराये और फिर मन्द स्वर में बोले- इतना भ्रमण किया और न जाने कितने महापुरुषों से मिले। लेकिन इतने पर भी तुम्हारी जिज्ञासायें शान्त नहीं हुई आश्चर्य है।

साधक कालीचरण अन्तर्यामी भी हैं। सब कुछ जान समझ गये हैं मेरे आध्यात्मिक जीवन के सम्बन्ध में वह। यह समझते देर न लगी मुझे। बाबा आप तो जानते ही हैं अध्यात्म एक अन्तहीन और गहन समुद्र की तरह है। उससे सम्बन्धित जिज्ञासायें कभी भी शान्त नहीं हो सकती। जितना उनका समाधान होगा उससे कहीं अधिक होगा आविर्भाव।

हां ठीक कहा तुमने, साधक कालीचरण थोड़ा मुस्कुराते हुए बोले- फिर कभी आना समाधान हो जायेगा।

बस आपकी आज्ञा चाहिए थी कृतार्थ हो गया मैं अब। यह कह कर सान्याल के साथ मैं बाहर निकल आया झोपड़ी से। कब हम लोग कैम्प

पहुंच गये पता ही नहीं चला किसी को। न शरीर क्लान्त हुआ और न तो थकावट का ही अनुभव हुआ किसी को।

सान्याल ने घड़ी की ओर देखा भोर का चार बज रहा था उस समय। थोड़ा सो लें हम लोग- सान्याल ने कहा। लेकिन मुझे नींद नहीं आयी। साधक कालीचरण के रहस्यमय व्यक्तित्व ने मेरे अन्दर की जिज्ञासा और कौतूहल की सृष्टि कर दी थी एकबारगी इसमें सन्देह नहीं। मेरे कौतुहल का विषय देवकी भी थी। कौन थी वह। साधक कालीचरण से उसका क्या सम्बन्ध था। घाट पर रहस्यमय ढंग से देवकी का मिलना मेरा कैम्प तक सामान पहुंचाना, झोपड़ी में ताजा भोजन लेकर आना, बारिश में भीगे हुए कपड़ों का अपने आप सूख जाना। क्या था वह सब? क्या योग का चमत्कार था या फिर और कुछ...?

आखिर रहा न गया मुझसे। दूसरे दिन उठा और तैयार होकर चल पड़ा मैं साधक कालीचरण की झोपड़ी की ओर। सान्याल महाशय भी साथ में चलना चाहा लेकिन मना कर दिया मैंने।

रास्ता पहचाना हुआ था। किसी प्रकार की तकलीफ नहीं हुई मुझे। थकान का भी अनुभव नहीं हुआ शरीर को। बस बार-बार यही लगता था कि कोई अदृश्य शक्ति खींच रही है मुझे झोपड़ी की ओर। जब झोपड़ी पर पहुंचा तो उस समय नौ बजने वाला था। भीतर झांक कर देखा साधक कालीचरण सिर झुकाये कल की तरह बैठे हुए थे तख्त पर। उनके सामने एक युवक जमीन पर बिछी हुई चटाई पर बैठा था चुपचाप। आकर्षक और सुन्दर व्यक्तित्व था उस अपरिचित युवक का। आयु अधिक नहीं पच्चीस के लगभग रही होगी। झोपड़ी में उस युवक की उपस्थिति कुछ रहस्यमय लगी मुझे। मैं भी उसके बगल में जाकर बैठ गया। युवक ने सिर घुमाकर कर एक बार मेरी ओर देखा। हे भगवान! कैसी थी उसकी आंखे। पारे की तरह जलती हुई स्थिर और भावहीन। न पलक झपक रहा था ओर न तो पुतलियां ही घूम रही थी। असहज लगा मुझे उसका मेरी ओर देखना।

थोड़ी देर बाद साधक कालीचरण अपना सिर ऊपर उठाये। मेरी ओर देखा और फिर बोले- बहुत जल्दी आ गये आप? शायद मेरे प्रति जिज्ञासा और कौतुहल के भाव ने अस्थिर कर दिया है आपको। स्वाभाविक ही है

संस्कार सम्पन्न जो हैं आप। बिना संस्कार के आध्यात्मिक दिशा में खोज की वृत्ति जागृत नहीं हो सकती। फिर थोड़ा रूक कर सामने महामाया महाकाली की मूर्ति की ओर देखते हुए सहज भाव से आगे बोले वह- मैं तो दीन हीन एक साधारण भक्त हूं मां का और इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं। इतना कह कर आंखे मूंद ली उस महासाधक ने और जब उनकी आंखे खुली तो देखा दया, करूणा और अनुकम्पा का मिलाजुला भाव छलक रहा था उन आंखों में।

उसी अवस्था में कहने लगे साधक कालीचरण- महाकाल-महाकाल की विश्व व्यापिनी महाशक्ति है महाकाली। उनकी साधना करना उनकी करूणा का पात्र बनना और उनसे लाभान्वित होना सबके वश की बात नहीं। वास्तव में महाकाली मृत्यु की अधिष्ठात्री देवी हैं। इनकी साधना से जो परम उपलब्धि होती है वह है मृत्युञ्जय अवस्था। मृत्यु, मृण्मय शरीर का अन्त और चिन्मय जीवन का प्रारम्भ। मृत्यु एक ऐसा परम गूढ़ विषय है कि जिसके रहस्य को जानने की इच्छा सभी में होती है। मृत्यु के रहस्य से परिचित होना महाकाल के रहस्य से परिचित होना है और महाकाल के रहस्य को जान लेता है वह महाकाली तत्व से हो जाता है परिचित। जिस साधक का कालीतत्व से आत्मसात हो जाता है वही उपलब्ध होता है मृत्युञ्जय अवस्था को।

इस विश्व में मनुष्य को जितनी शक्तियां प्राप्त हैं उतनी शक्तियां अन्य किसी प्राणी को नहीं। तप एक ऐसा साधन है जिसका आश्रय लेकर कुछ भी करना सम्भव है। सभी प्रकार के तप में दो ही मूल तथ्य है। पहला है ब्रम्हचर्य और दूसरा है एकाग्रता। बिना ब्रम्हचर्य के एकाग्रता सम्भव नहीं। कहा भी गया है- "मरणं बिन्दु पातेन जीवनं बिन्दु धारणात् " बिन्दु यानि वीर्य की जो रक्षा करता है और धारण करता उसी को जीवन प्राप्त होता और प्राप्त होता है मृत्युञ्जय अवस्था। इसके विपरीत बिन्दु का पतन या नाश ही मृत्यु का कारण है।

ईश्वर की महत्तम शक्ति है काम शक्ति। तंत्र मार्ग की जितनी भी साधनाएं हैं वे सब किसी न किसी रूप में काम शक्ति पर ही आधारित है और यही काम शक्ति महाकाली है। कामशक्ति को ऊर्ध्वगामी बनाकर

साधक शुक्र यानि वीर्य को बिन्दु में परिवर्तित कर देता है। इसी को तंत्र में कामकला की संज्ञा दी गयी है। बिन्दु शरीर की रक्षा करने वाला शुक्र का ही शोधित रूप है। कहा भी गया है- "ब्रम्ह चर्येण तपसा देवाः मृत्यु मुष्ध्वत् " यह सूत्र अमरत्व को प्रदर्शित करता है।

तंत्र की जितनी अन्तरंग और बहिरंग साधनाएं हैं उनके मूलं में एकमात्र बिन्दु साधना है जो अपने आप में अति रहस्यमय है। उसकी दीक्षा सदगुरु योग्य शिष्य अथवा योग्य पात्र को ही देता है और वह भी कठोर परीक्षा लेकर।

बिन्दु साधना में तीन मुख्य क्रियायें हैं पहली है बिन्दु शोधन क्रिया, दूसरी है बिन्दु उत्थान क्रिया और तीसरी है बिन्दु धारण क्रिया। ये तीनों क्रियायें परकीया नायिका द्वारा अनुष्ठित होती है। शाक्त सम्प्रदाय के वाम मार्गीय साधना में परकीया नायिका को भैरवी की संज्ञा दी गयी है। कालान्तर में वही भैरवी बिन्दु धारण की अवस्था में महाभैरवी का पद ग्रहण करती है।

थोड़ा रूककर साधक कालीचरण आगे बोले- वास्तव में काली साधना के अन्तर्गत ही बिन्दु साधना है जो योग-तंत्र परक है। उसके अनुसार मूल तत्व दो हैं। पुरुष तत्व और स्त्री तत्व। इन्ही दोनों तत्वों के संयोग से मैथुनी सृष्टि होती है। भौतिक जगत उसी मैथुनी सृष्टि का एकमात्र परिणाम है। पुरुष तत्व वीर्य अथवा शुक्र का शोधित रूप बिन्दु है। इसी प्रकार स्त्री तत्व रज का शोधित रूप भी बिन्दु है। बिन्दु साधना भूमि में दोनों को श्वेत बिन्दु और रक्त बिन्दु कहते हैं। श्वेत बिन्दु शिव का पर्याय है और इसी प्रकार रक्त बिन्दु है शक्ति का पर्याय। शिव और शक्ति समस्त तांत्रिक साधना भूमि के मूल में विद्यमान हैं इसमें सन्देह नहीं।

यदि विचारपूर्वक देखा जाये तो संसार में जितने प्रकार के आनन्द हैं उनमें सबसे महत्वपूर्ण और प्रमुख आनन्द है सम्भोगानन्द।

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चार पुरुषार्थ हैं। इन चारो पुरुषार्थों में मोक्ष अन्तिम पुरुषार्थ है। धर्म के द्वारा अर्थ की और काम के द्वारा मोक्ष की सिद्धि सम्भव है। कामजन्य पुरुषार्थ में सिद्धि लाभ होने पर ही मोक्ष का द्वार खुलता है इसमें भी सन्देह नहीं। कामजन्य पुरुषार्थ का परिणाम है

सम्भोगानन्द। सम्भोगानन्द में तीन शब्दों का प्रयोग हुआ है। सम, भोग और आनन्द। सम का तात्पर्य श्वेत बिन्दु और रक्त बिन्दु का समान रूप से योग अथवा मिलन और उस मिलन का भोग यानि उपयोग और उस भोग से शारीरिक सुख और साथ ही जो मानसिक तृप्ति उपलब्ध होती है वह है सम्भोगानन्द। सम्भोगानन्द में तन, मन और प्राण ये तीनों समान रूप से अनर्वचनीय आनन्द का अनुभव करते हैं। इस आनन्द के ऊपर और कोई आनन्द नहीं है। संसार का प्रत्येक प्राणी इस आनन्द को प्राप्त करने के लिए सदैव लालायित रहता है। कहने की आवश्यकता नहीं इसी सम्भोगानन्द की अन्तिम उपलब्धि सृष्टि है।

सम्भोगानन्द चार प्रकार का है। तन प्रधान, मन प्रधान, प्राण प्रधान और आत्म प्रधान। तन प्रधान और प्राण प्रधान सम्भोगानन्द के संयोग से पशु-पक्षी, कीट-पतंग आदि की सृष्टि होती है। केवल प्राण प्रधान सम्भोगानन्द से वृक्ष लतादि की होती है सृष्टि। इसी प्रकार मन और आत्म प्रधान सम्भोगानन्द से होती है मानव सृष्टि। किन्तु सम्भोगानन्द भौतिक स्तर का है और है क्षणिक। उस क्षणिक आनन्द की अवस्था में अनजाने में हमें समाधि की झलक मिलती है। तंत्र-योग का कहना है कि वह क्षणिक आनन्द का परिणाम शुक्र का पतन और शरीर का क्षय है। शुक्र का पतन न हो और शरीर का क्षय भी न हो और उस आनन्द की उपलब्धि भी अधिक से अधिक हो और उस परमानन्द के सागर में आकण्ठ डूब कर सहज समाधि में प्रवेश किया जा सके। इसके लिए उसे आध्यात्मिकता में नियोजित करना आवश्यक है। वास्तव में बिन्दु साधना का यही एकमात्र लक्ष्य है।

यह कैसे सम्भव है- मैंने प्रश्न किया और मेरे प्रश्न के उत्तर में उस महासाधक ने बतलाया कि मानव शरीर सम्पूर्ण ब्रम्हाण्ड का लघु रूप संस्करण है। ब्रम्हाण्ड में जो कुछ भी है वह सब किसी न किसी रूप में मानव शरीर में भी विद्यमान है। तंत्र-योग में मानव शरीर में स्थित सात चक्रों की चर्चा की गयी है। वास्तव में वे सात चक्र ऐसे रहस्यमय केन्द्र हैं जिनका अगोचर रूप से सम्बन्ध ब्रम्हाण्ड स्थित सातों लोकों से है।

पहला चक्र है- मूलाधार चक्र। इस चक्र में शक्ति तत्त्व है। जिसे योग

तंत्र की भाषा में कुण्डलिनी शक्ति कहते हैं। जो अपने आपमें काली का ही एक परिस्कृत रूप है। इसी प्रकार अन्तिम सातवां चक्र सहस्रार चक्र है और इस चक्र में शिवतत्व है बीच के पांच चक्रों में पृथ्वी, जल आदि पांच तत्व हैं।

जिस प्राणायाम से साधारणतः लोग परिचित हैं वह योगिक प्राणायाम है। इसी प्रकार एक तांत्रिक प्राणायाम भी है। जिससे वे ही लोग परिचित हैं जो बिन्दु साधना के रहस्यों से परिचित हैं और कुण्डलिनी साधना मार्ग के पथिक हैं। भैरवी से सामरस्य भाव की अवस्था में तांत्रिक प्राणायाम द्वारा शुक्र बिन्दु और रजो बिन्दु यानि श्वेत बिन्दु और रक्त बिन्दू मूलाधार चक्र में मिलकर एकाकार होते हैं और जिसके परिणाम स्वरूप एक विशेष प्रकार का विक्षोभ उत्पन्न होता है और उस विक्षोभ से शक्ति तत्व जागृत होता है। इसी को कुण्डलिनी जागरण कहते हैं। बिन्दु विक्षोभ और शक्ति तत्व का जागरण एक ही अवस्था में होता है। श्वेत बिन्दु और रक्त बिन्दु की संयुक्त सत्ता को महाबिन्दु कहते हैं। महाबिन्दु में पुरुष तत्व और स्त्री तत्व दोनों रहते हैं। तांत्रिक भाषा में जिसे शिव तत्व और शक्ति तत्व का संयुक्त स्वरूप कहते हैं। किन्तु फिर भी उनमें तत्व भेद बना रहता है। कहने की आवश्यकता नहीं इसी स्वरूप को अर्धनारीश्वर की संज्ञा दी गयी है।

बिन्दु विक्षोभ और शक्ति का जागरण मूलाधार चक्र में होता है। यह चक्र त्रिकोणात्मक है। त्रिकोण दो प्रकार का होता है। एक ऊर्ध्व मुख और दूसरा अधो मुख त्रिकोण। पहला है शिव का प्रतीक और दूसरा है शक्ति का प्रतीक। षटकोण शिव और शक्ति के संयुक्त सत्ता को प्रतिभाषित करता है। बिन्दु विक्षोभ से उसी आनन्द की अनुभूति होती है जो सम्भोग से उत्पन्न आनन्द से होती है। लेकिन उस आनन्द में स्थायित्व रहता है। उसकी अनुभूति इतनी गहरी होती है कि साधक उसके प्रभाव से एक ऐसी समाधि को उपलब्ध हो जाता है जिसे सहज समाधि कहते हैं। उस सहज समाधि की अवस्था में उसी आनन्द में मग्न रहता है जिसकी क्षणिक अनुभूति शुक्र स्खलन के समय साधारण मनुष्य को होती है। महाबिन्दु किसे कहते हैं। यह तो तुम समझ ही गये हो और यह भी समझ गये हो कि बिन्दु विक्षोभ से सुप्त शक्ति का जागरण होता है। अब तुमको यह बतला देना आवश्यक है कि मूलाधार चक्र में स्थित त्रिकोण में जो मध्य बिन्दु है वह शक्ति का

मूल केन्द्र है और त्रिकोण के तीनों कोणों से क्रमशः तीन मुख्य नाड़ियां इड़ा, पिगला और सुषुम्ना निकलती हैं और मेरूदण्ड के भीतर से एक साथ ऊपर की ओर जाती है। इड़ा और पिगला तो आज्ञा चक्र में दोनों ओर से प्रवेश कर एक हो जाती है और एक होकर कपाल प्रदेश में स्थित मुख्य मस्तिष्क और अधो मस्तिष्क को प्रभावित करती है। इड़ा मनोवहा नाड़ी है जिसमें मनः शक्ति का प्रवाह होता है और इसी प्रकार पिगला नाड़ी प्राणवहा नाड़ी है जिसमें से प्राण शक्ति का होता है प्रवाह। तीसरी नाड़ी जिसे सुषुम्ना कहा गया है वह शून्य नाड़ी है।

तुमको यहां यह भी बतला देना आवश्यक है कि कोई भी शक्ति जब ऊर्जा में परिवर्तित होती है तो उसकी गति ऊपर की ओर जाती है मूलाधार चक्र में। मूलाधार चक्र में शक्ति जागृत होते ही एक विलक्षण ऊर्जा में परिवर्तित हो जाती है और वह ऊर्जा सुषुम्ना नाड़ी मार्ग से साधना क्रम से ऊपर की ओर उठने लगती है और उसी के साथ महाबिन्दु का भी होने लगता है शनैः शनैः सुषुम्ना नाड़ी में उत्थान।

कहने की आवश्यकता नहीं इस आन्तरिक योग तांत्रिक क्रिया के परिणाम स्वरूप दो लाभ साधक को होते हैं। पहला चक्र भेदन द्वारा उससे सम्बन्धित लोक-लोकान्तरों में प्रवेश और दूसरा आनन्द के खुलते हुए नये-नये आयामों की अनुभूति।

आंखे बन्द कर कुछ सोचने के बाद साधक कालीचरण आगे बोले- आनन्द की अनुभूति इतनी गहन होती है कि उसके प्रभाव से साधक की बाहरी चेतना लुप्त हो जाती है और अन्तर्चेतना क्रियाशील हो उठती है। इसी अवस्था को समाधि की संज्ञा दी गयी है और उसी अवस्था में चक्र भेदन होने पर साधक उस चक्र से सम्बन्धित लोक-लोकान्तरों में प्रवेश करता है और वहां से वापस जब लौटता है तो उसके मस्तिष्क के ज्ञानकोश में उस लोक-लोकान्तर का भरा रहता है अपौरुषेय ज्ञान का अतुल भण्डार। चक्रों का नाम क्या है और उनके द्वारा कैसे अभौतिक सत्ता में प्रवेश होता है। मेरी इस जिज्ञासा का समाधान करते हुए साधक कालीचरण बोले- मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहद, विशुद्ध, आज्ञा चक्र, सहस्त्रार चक्र ये सात चक्र हैं और शरीर में इनके स्थान हैं

क्रमशः मेरुदण्ड के नीचे, गुह्य भाग के ऊपर, नाभि के ऊपर, हृदय के ऊपर, कण्ठ में, दोनों भौहों के बीच में और सिर के ऊपर।

ये सातों चक्र शरीर में नाड़ी गुच्छों के रूप में है और उनमें से अलग-अलग सात प्रकार की विद्युत चुम्बकीय तरंगे बराबर निकलती रहती है। ज्योतिष के नक्षत्र विज्ञान के अनुसार सप्तऋषि मण्डल के सातों तारों से सातों चक्रों का ब्रम्हाण्डीय ऊर्जा द्वारा सम्बन्ध है। सप्तऋषि मण्डल सात भागों में विभक्त है और सभी भाग के एक विशिष्ठ मण्डल हैं और सातों मण्डलों का सीधा सम्बन्ध ब्रम्हाण्ड के सातों लोकों से है। चक्रों से निकलने वाली विद्युत चुम्बकीय ऊर्जा तरंगे साधना द्वारा परिष्कृत होकर ब्रम्हाण्डीय ऊर्जा के माध्यम से सप्तऋषि मण्डल और उसके सातों उप मण्डलों से सम्बन्ध स्थापित करती है और साधक उसी का आश्रय लेकर अपने सूक्ष्म शरीर अथवा मनोमय शरीर द्वारा सम्बन्धित लोक-लोकान्तरों में प्रवेश करता है। (विस्तार से आगे पढ़े)

आपने आनन्द के आयामों की चर्चा की है उससे आपका क्या तात्पर्य है- मैंने प्रश्न किया? साधक कालीचरण ने कहा- आनन्द उपमा और उपमेय दोनों हैं इसलिए उसका उदाहरण अन्य किसी वस्तु से नहीं दिया जा सकता। आनन्द कैसा है? आनन्द जैसा। लेकिन उसकी अनुभूति में परिवर्तन अवश्य होता है। अनुभूतियों के आधार पर मूलाधार में महाबिन्दु द्वारा जो आनन्द प्राप्त होता है उसे सहजानन्द कहते हैं। इसी प्रकार क्रमशः अपने ऊर्ध्वगामी अवस्था में चक्र भेदन काल में महाबिन्दु द्वारा जो आनन्द उपलब्ध होता है उसे विरजानन्द, भवानन्द, नित्यानन्द, आत्मानन्द, विद्यानन्द और परमानन्द कहते हैं। इन आनन्दों से उपलब्ध होने वाली समाधि के भी सात प्रकार हैं। अनामि आनन्द परमानन्द से उपलब्ध समाधि परम समाधि है। परम समाधि की ही अवस्था में साधक भवचक्र से मुक्त होकर परमपद को प्राप्त करता है।

घड़ी की ओर देखा बारह बजने वाला था। शायद फलाहार का समय हो गया था महासाधक का। वह युवक अपने स्थान से उठा और एक झटके से निकल गया झोपड़ी के बाहर। इस प्रकार क्यों निकला? यह मेरी समझ में नहीं आया। लेकिन दस-पन्द्रह मिनट बाद वापस लौटा तो मैंने

देखा उसके हाथ में विभिन्न प्रकार के फलों से भरी टोकरी थी। कहां से ले आया इतना फल और इतनी शीघ्र। उस अरण्य प्रान्त में मीलों तक फल के वृक्ष नहीं थे और न तो थी कोई दुकान ही फलों की। कैसा चमत्कार था वह? मेरे लिए अब वह युवक रहस्यमय बन गया था। फलों को उस साधक के साथ मैंने भी खाया और वह युवक भी। फल अति स्वादिष्ट था। लगा जैसे अभी-अभी वृक्षों से तोड़कर लाया गया हो वहां पर। फल बहुत ही मीठा और स्वादिष्ट था। युवक की ओर देखते हुए साधक कालीचरण ने मधुर स्वर में कहा- बहुत आनन्द आया वैरागी।

समझते देर न लगी मुझे। वैरागी था उस युवक का नाम। मैंने सिर घुमाकर वैरागी की ओर देखा। उसका चेहरा पहले ही की तरह भावहीन और सपाट था। कुछ क्षण भर बाद वह उठा साधक कालीचरण के सामने झुक कर उनके चरणों का स्पर्श किया उसने और बाहर निकल गया झोपड़ी के। बाहर हवा तेज थी और काले-भूरे बादलों के छोटे-छोटे टुकड़े तैरने लगे थे आकाश में। बारिश होने के आसार दिखलायी दे रहे थे। उस महासाधक ने सिर झुकाकर कर मौन साध लिया अब। शायद आगे कुछ बोलने कहने की स्थिति में नहीं थे अब वह।

वहां ठहरना अब उचित नहीं समझा मैंने। महात्मा को प्रणाम कर बाहर निकल आया। अब तक बादलों से अट कर काला हो गया था आकाश और छा गया था स्याह अंधेरा चारो तरफ। कहीं पानी न बरसने लगे। जल्दी-जल्दी आगे बढ़ने लगा मैं। लेकिन पानी को तो बरसना ही था। आधे रास्ते में छोटी-छोटी बूंदे गिरने लगी आकाश से। अब क्या होगा। जल्दी-जल्दी आगे पैर बढ़ाने लगा मैं। एकाएक बारिश तेज हो गयी। एक पेड़ के नीचे खड़ा होकर पानी थमने का इन्तजार करने लगा मैं। घड़ी की ओर देखा चार बजने वाला था। लगभग एक घण्टा खड़ा रहा। शरीर का कपड़ा पूरी तरह से भीग गया था। लेकिन पानी बन्द होने का नाम ही नहीं ले रहा था। क्या करूं अब। कुछ सोचने समझने जैसे शक्ति ही नहीं रह गयी मुझमें उस विकट स्थिति में। वर्षा का अनवरत क्रन्दन, झाड़ियों में छिपे जुगुनुओं की चमक, मेढकों का टर्र-टर्र और पेड़ों की डालों पर बैठे जंगली पक्षियों की कर्कश आवाज रोमांचित कर देता था मेरे सारे शरीर को। किसी अज्ञात भय से कांप उठता था मैं कुछ क्षण के लिए।

पैरों के नीचे पानी भर गया था। ऐसा लगा कोई लम्बी सी चीज पैरों को छू कर सरसराती हुई आगे निकल गयी है। निश्चय ही कोई सांप रहा होगा वह। पानी का वेग कम होने की बजाय तेज होता जा रहा था। काले-भूरे बादलों से अटा काला आकाश अब और काला हो गया था। क्या मेरी जल समाधि हो जायेगी इस निर्जन अरण्य प्रान्त में। यह सोचकर और तेजी से धड़कने लगा मेरा हृदय और तभी सामने से सिर पर गठरी रखे और दोनों हाथों से उसे पकड़े हुए देवकी आती हुई दिखलायी दी मुझे। अरे! इस प्रचण्ड बारिश में देवकी यहां कैसे? लगा जैसे मेरी सहायता के लिए ईश्वर ने भेजा वहां देवकी को। एकबारगी प्रसन्न हो उठा मैं। मुझे देखकर रूक गई देवकी।

आप यहां कैसे बाबू?

सब कुछ बतला दिया मैंने और अन्त में कहा काफी देर से खड़ा हूं यहां मैं एक तपस्वी की तरह। देवकी हंस पड़ी फिर गठरी को सिर से उतार कर बगल में दबाते हुए बोली- आइये चलिए बाबू।

कहां....?

मेरी झोपड़ी में। बस थोड़ी ही दूर पर है मेरी झोपड़ी- उत्तर दिया देवकी ने। उसके साथ चल पड़ा मैं।

अचानक आकाश से वक्ष को चीरती हुई बिजली कड़की और उसके क्षणिक प्रकाश में मैंने देखा सामने एक छोटा सा मकान। क्या यही है देवकी की झोपड़ी?

आगे बढ़कर मकान का दरवाजा खोला देवकी ने। भीतर प्रकाश ही प्रकाश था चारो तरफ। आश्चर्यचकित होना स्वाभाविक था। प्रकाश का स्रोत कहां था। यह समझ में नहीं आया। तीन-चार कमरे रहे होंगे मकान में। बीच वाला कमरा काफी लम्बा चौड़ा था। जिसमें सभी साधन उपलब्ध थे। एक बहुत बड़ा पलंग था ऊंची-ऊंची कीमती अलमारियां थीं।

कमरे के तीन ओर बड़ी-बड़ी खिड़कियां थी जिन पर पीले रंग की रेशमी पर्दे झूल रहे थे। छत से लगा हुआ कीमती झाड़फानूस था और जमीन पर बिछा हुआ था कीमती कालीन। सब कुछ देखकर लगा किसी पुराने और धनी रईस का विश्राम कक्ष हो वह कमरा।

एक अति साधारण सी और मजदूर किस्म की लड़की के रहने का स्थान ऐसा होगा। इसकी कल्पना सपने में भी नहीं की जा सकती। अवाक सा सिर घूमा-घूमा कर देख रहा था मैं चारो तरफ। क्या कोई इन्द्रजाल तो नहीं घटित हो रहा था मेरे साथ और तभी खिड़कियों के पर्दे लहराये और हवा के झोके के साथ पानी का बौछार बिखर गया पूरे फर्श पर। सिर घुमाकर देखा हाथों में भोजन की थाली और पानी का लोटा लिये कमरे में आ रही थी देवकी। भूख तो लगी होगी बाबू। लीजिये खाना खाइए। यह कह कर मेरे सामने एक बड़ी सी मेज पर रख दिया थाली और पानी का लोटा देवकी ने। फिर मेरे सामने ही बैठ गई वह।

मेरा सारा शरीर सनसना रहा था उस समय। किसी अज्ञात भय से रह-रह कर सिहर उठता था मैं। बुद्धि काम नहीं कर रही थी। लगा जैसे सोचने समझने की क्षमता गवां बैठा हो मस्तिष्क। असहाय सा अनुभव करने लगा था मैं अपने आपको।

भोजन के बाद अपने आप लेट गया मैं पलंग पर। लगा जैसे किसी ने प्रेरित किया हो लेटने के लिए। अपने स्थान पर पहले की ही तरह बैठी हुई थी देवकी। उन्ही क्षणों में एक ऐसे अनर्वचनीय आनन्द की अनुभूति मेरी आत्मा को होने लगी जिसे शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता और उसी अनुभूति के साथ ऐसा लगा कि उसका अस्तित्व धीरे-धीरे जैसे विलीन होता जा रहा है मेरे अस्तित्व में। कब और कैसे गहरी नींद के आगोश में चला गया मैं पता ही नहीं चला मुझे। कौन सी स्थिति थी वह। क्या सम्मोहन की कोई विशेष अवस्था थी या और कुछ....।

लेकिन एक बात अवश्य थी और वह यह कि उस रहस्यमय अवस्था में मेरी आन्तर चेतना सक्रिय रही बराबर। जिसके कारण एक अपूर्व आध्यात्मिक घटना का साक्षी बन गयी मेरी आत्मा। भौतिक जगत का अस्तित्व वाष्पीभूत हो चुका था मेरे लिए। अब मैं अपने व्यक्तित्व का अनुभव एक ऐसे विलक्षण और कल्पनातीत जगत में कर रहा था जिसे योग की भाषा में चिन्मय जगत कहते हैं। वातावरण में चारो ओर कुहरे जैसा धुन्ध छाया हुआ था और उस धुन्ध के महासागर में मैंने देखा एक विशाल प्रांगण जो पीले रंग के पत्थरों से बना हुआ था और पारदर्शी भी था और उस विशाल पारदर्शी प्रांगण के तीन ओर तो विशाल खम्भे थे

और एक ओर स्फटिक पाषाण का लम्बा-चौड़ा पंचमुण्डी आसन बना हुआ था और दिव्य आसन पर महामाया पराशक्ति महाकाली की भव्य प्रतिमा स्थापित थी। प्रतिमा काले संगमरमर पत्थर की थी। ऊंचाई कम से कम छः फुट तो अवश्य ही रही होगी इसमें सन्देह नहीं। प्रतिमा बिल्कुल सजीव लगी मुझे। बड़े-बड़े नेत्र जो अपने आप में भंयकर तो थे ही किन्तु इसके अतिरिक्त करूणा, दया, अनुकम्पा और कृपा के सागर भी लहरा रहे थे वहां। लपलपाती हुई रक्ताभ जिव्हा लगता जैसे जगन्माता ने अभी-अभी किसी असुर का किया हो रक्तपान। बड़ी ही अद्भुत और बड़ी ही विचित्र छटा थी मां महामाया की। ऐसा लगा कभी किसी भी समय अट्टहास कर उठेगी प्रतिमा।

महामाया का भय-अभय मिश्रित रूप देख कर रोमाञ्चित हो उठा मैं एकबारगी और तभी मेरी दृष्टि पड़ी साधक कालीचरण पर। उन्हे देखकर आश्चर्य चकित हो उठा मैं। एकाएक मेरे मुंह से निकल गया अरे आप यहां कैसे? वह पहले थोड़ा मुस्कुराये फिर बोले- मैं तो यहीं रहता हूं मां की सेवा में। थोड़ा रूक कर आगे बोले महाशय- तुम्हारी जिज्ञासाओं का पूरी तरह समाधान न कर सका था मैं इसीलिए यहां बुलाना पड़ा तुम्हे। आप यहां कब से और कैसे हैं- सहज भाव से पूछा मैंने?

यहां यह बतला देना आवश्यक है कि उस समय अपने भौतिक जीवन के अस्तित्व को पूरी तरह विस्मृत कर चुका था मैं। मेरी स्मृति में यह भी नहीं था कि उस अरण्य प्रान्त के निर्जन इलाके में स्थित किसी झोपड़ी में पहले भी मिल चुका हूं और आध्यात्मिक प्रसंगों पर बातें भी कर चुका हूं मैं उस महासाधक से।

मेरा प्रश्न शायद बालसुलभ सा लगा साधक कालीचरण को। तभी हंस कर बोले वह- साधना की एक ऐसी उच्च अवस्था है जिसको उपलब्ध होने पर साधक के लिए पार्थिव शरीर निरर्थक सिद्ध हो जाता है साधना की दृष्टि से। उसके लिए तब महत्वपूर्ण हो जाता है सूक्ष्म शरीर और सूक्ष्म शरीर के माध्यम से आगे बढ़ता है अपने साधना मार्ग पर। ऐसी अवस्था में सूक्ष्म जगत अपने और अपनी साधना के अनुकूल चिन्मय सृष्टि अपने आत्मबल से कर लेता है वह। यहां तुम जो कुछ देख रहे हो और जो कुछ अनुभव कर रहे हो यह सब मेरे द्वारा की गयी चिन्मय सृष्टि है। भौतिक

कालगणना के अनुसार लगभग चार सौ वर्षों से यहां साधनारत हूं मैं और इस दीर्घ अवधि में नौ बार संसार में शरीर धारण करना पड़ा मुझे पूर्व कृतकर्मों के क्षय के लिए। यह मेरा दसवां शरीर है। जिसे एक प्रकार से जीवित शव ही समझना होगा। आयु शरीर की होती है आत्मा की नहीं। जब तक आयु है तब तक तो भौतिक जगत में मेरे भौतिक शरीर का अस्तित्व बना ही रहेगा। उसके बाद मेरा उससे जो नाता-रिश्ता है वह टूट ही जायेगा।

यह सब सुनकर मेरी स्मृति का वह अंश एकाएक जागृत हो उठा जिसका सम्बन्ध उस महासाधक के साथ हुई आध्यात्मिक वार्ता के अन्तिम प्रसंग से था और स्मृति जागृत होते ही सहसा मेरे मुंह से निकल पड़ा- आपके कहने का तात्पर्य यह है कि बिन्दु साधना और षट्चक्र साधना ही एकमात्र तंत्र साधना है और जो स्वयं अपने आपमें योगपरक है और जिसकी अन्तिम उपलब्धि परमानन्द और शिवशक्ति का सामरस्य भाव है। जिसका परिणाम है परम मुक्ति लाभ। जिसे अद्वैत लाभ भी कहते हैं। मेरी बात सुनकर साधक कालीचरण बोले- इस विश्व ब्रम्हाण्ड में मूलतः एक ही शक्ति है। जिसे हम ब्रम्ह शक्ति अथवा आद्या शक्ति कहते हैं। सूक्ष्म तत्व प्राण वायु (ईथर) के रूप में शक्ति सम्पूर्ण विश्व ब्रम्हाण्ड में व्याप्त है। ब्रम्हाण्ड विज्ञान के अनुसार वह शक्ति दो रूपों में विभाजित है। पहली है ईश्वर के अनुग्रह शक्ति जिसे योगमाया भी कहते हैं। भगवान श्रीकृष्ण ने इसी योगमाया का आश्रय लेकर अपनी सम्पूर्ण भौतिक लीलाएं की थी। दूसरी है काल शक्ति जिसे दार्शनिक भाषा में तिरोधान शक्ति भी कहते हैं। पहली शक्ति तो मनुष्य के भीतर जीवात्म शक्ति के रूप में काम करती है। जिसके कारण मनुष्य संसार के बंधन में बार-बार बंधता है। जन्म लेता और मृत्यु को प्राप्त होता है। सांसारिक मोह, माया आदि में लिप्त रहता है। इसी दृष्टि से दार्शनिक लोग इस शक्ति को माया कहते हैं।

दूसरी काल शक्ति है। यह महामाया है। माया को अविद्या और महामाया को महाविद्या भी कहा जाता है। काल शक्ति, क्रिया शक्ति अथवा गति शक्ति भी है। इस शक्ति का एकमात्र कार्य है मनुष्य की आत्मा को जीवभाव से मुक्त कराकर उसे उसका परम स्वरूप प्रदान करना। जिसका अर्थ है आत्मा का शुद्ध चैतन्य और मौलिक रूप। अपना मौलिक रूप प्राप्त

होने पर आत्मा, परमात्मा के अत्यन्त समीप हो जाती है। फिर उसमें जीवभाव कभी भी उत्पन्न नहीं होता।

साधक कालीचरण आगे बोले- काल की चार अवस्थाएं हैं। खण्डकाल यह भूत, भविष्य और वर्तमान इन तीनों खण्डों में विभक्त है। इसलिए इसे खण्डकाल कहते हैं। इसके बाद दूसरा है काल। जो अविरल सतत प्रवाह है। जो भौतिक जगत की सीमा रेखा का काम करता है। इस सीमा रेखा को पार करने के बाद ही दिव्य आत्मा सम्पन्न सिद्ध योगीगण लोक-लोकान्तरों में प्रवेश करते हैं। उसके पश्चात तीसरा है महाकाल। जिसकी सीमा के अन्तर्गत समस्त लोक-लोकान्तर और समस्त विश्व एवं समस्त जगत है जो महाकाल के प्रभाव के अधीन है। उसके बाद चौथा है कालातीत अवस्था। जिसके सीमाहीन विस्तार के अन्तर्गत ऋषि मण्डल, देव मण्डल आदि मण्डल हैं और उन सब मण्डलों के ऊपर ब्रम्ह मण्डल है।

इसी प्रसंग में तुमको यह भी जान लेना चाहिए कि महाकाल की शक्ति महाकाली है। इसी प्रकार काल की शक्ति है काली। महाकाल में जो गति है और ज़ो प्रवाह है उसका कारण महाकाली है। क्योंकि महाकाली गति शक्ति अथवा क्रिया शक्ति है। इसीलिए उनका एक पैर आगे की ओर बढ़ा हुआ है। काली के सम्बन्ध में भी ऐसा ही समझना चाहिए। खण्डकाल में महाकाली अपने आपको तीन रूपों में विभक्त कर लेती है। तांत्रिक साधना भूमि में उन तीनों रूपों को महाकाली, महालक्ष्मी और महा सरस्वती कहते हैं। ये तीनों रूप क्रमशः भूतकाल, वर्तमान काल और भविष्य काल से सम्बन्ध रखते हैं।

इस संसार में ही नहीं मानव शरीर में भी जहां-जहां गति है और जहां-जहां क्रियायें हो रही हैं वहां-वहां चेतना के रूप में महाकाली ही विद्यमान है। तांत्रिक साधना भूमि में उपासना की दृष्टि से महाकाली और काली में थोड़ा भेद कर दिया गया है। भेद के कारण काली तारा के रूप में प्रतिष्ठित है। वैसे काली और तारा में बाह्य भेद अवश्य है किन्तु आन्तरिक नहीं। आन्तरिक रूप से दोनों का अस्तित्व एक ही है। तारा शव वाहिनी है जबकि काली शिव पर आरूढ़ है। शव क्रियाहीन निष्क्रिय

जगत का प्रतीक है और शिव सक्रिय जगत के प्रतीक हैं। इस दृष्टि से तारा बहिर्चेतना का प्रतिनिधित्व करती है और काली करती है प्रतिनिधित्व आन्तर्चेतना का। चेतना का केन्द्र है हृदय और इसीलिए चेतनारूपी काली का पैर शिव के हृदय पर स्थित है। चेतना ही प्राण के रूप में शरीर में क्रियाशील है और जब तक वह क्रियाशीलता है तब तक शरीर शिव रूप है यानि जीवित है। चेतना की क्रियाशीलता समाप्त होते ही शरीर शव में परिणत हो जाता है।

तुमको यह भी जान लेना चाहिए कि तंत्र के कई सम्प्रदाय हैं और उन सम्प्रदायों से सम्बन्धित कई साधना-उपासना मार्ग भी है। जहां तक प्रश्न शक्ति का है उससे सम्बन्धित केवल मात्र एक ही सम्प्रदाय है और वह है शाक्त सम्प्रदाय। इस सम्प्रदाय में शक्ति साधना के दो मुख्य मार्ग हैं दक्षिण मार्ग और वाम मार्ग। शाक्त सम्प्रदाय की अधिष्ठात्र शक्ति शिवारूढ़ महाकाली है।

दक्षिण मार्ग में उनको दक्षिणा काली और वाम मार्ग में श्यामा काली कहा गया है। दक्षिण मार्ग साधना का रजोगुणी मार्ग है जबकि वाम मार्ग साधना का है पूर्णरूप से तमोगुणी मार्ग। वामा स्त्री का पर्याय है। यह कहना अनुचित होगा कि वाम मार्ग की समस्त अन्तरंग-बहिरंग साधनाओं की मूलभित्ति एकमात्र स्त्री यानि वामा है इसीलिए इस तमोगुणी मार्ग को वाम मार्ग की संज्ञा दी गयी है। वाम मार्ग में पुरुष नगण्य है प्रकृति प्रधान है। शिव उपेक्षित है। शक्ति मुख्य है। प्रकृति अथवा शक्ति पर अधिकार प्राप्त करना और उसे अपने अनुकूल बना लेना वाम मार्ग का प्रथम लक्ष्य है और इसी लक्ष्य की सिद्धि के निमित्त पंचमकार का प्रयोग चक्रार्चन, चक्र पूजा, भैरवी पूजा, गुह्य पूजा, अंग-उपांग पूजा आदि पूजाएं और चिता साधना, श्मशान साधना, शव साधना आदि साधनाएं हैं। वास्तव में वाममार्ग अति रहस्यमय और गहन मार्ग है। उसकी गुह्यता, रहस्यमयता और गोपनीयता से विरला ही कोई परिचित हो सकता है। कहा भी गया है- "वामः मार्ग परम गहनो योगिनामप्य गम्यः"।

मेरी एक यहां जिज्ञासा है और वह यह कि दीपावली से काली का और तंत्र-मंत्र का क्या सम्बन्ध है? मेरी इस जिज्ञासा के समाधान में साधक

कालीचरण ने संक्षिप्त में केवल इतना ही बतलाया कि चार मुख्य और अत्यन्त महत्वपूर्ण रात्रियां हैं- महारात्रि, मोह रात्रि, दारूण रात्रि और काल रात्रि। शिवरात्रि को महारात्रि, कृष्ण जन्माष्टमी को मोह रात्रि, होलिका की रात्रि को दारूण रात्रि और दीपावली की रात्रि को काल रात्रि कहते हैं।

महारात्रि के समय भूत, भविष्य और वर्तमान ये तीनों कालखण्ड एक पल के लिए एक हो जाते हैं। जिसके फलस्वरूप यक्ष, गन्धर्व, किन्नर आदि के लोकों से सीधा सम्बन्ध स्थापित हो जाता है भूलोक से। मोहरात्रि के समय काल का अनन्त प्रवाह भी एक या दो पल के लिए ठहर जाता है। जिसके फलस्वरूप देव लोक से सीधा सम्बन्ध स्थापित हो जाता है भूलोक का। इसी प्रकार दारूण रात्रि के समय महाकाल का अन्तहीन प्रवाह भी कुछ पल के लिए ठहर जाता है और जिसका परिणाम यह होता है कि महाकाल के अन्तर्गत जितने भी लोक-लोकान्तर हैं उन सबका सम्बन्ध स्थापित हो जाता है भूलोक से। भूलोक का एक भाग सूक्ष्म लोक है। जिसमें विदेही आत्माएं निवास करती हैं। उस अवस्था में उन लोगों का भी सम्पर्क स्थापित हो जाता है लोक-लोकान्तरों से। चौथी रात्रि काल रात्रि है। यह रात्रि अन्य रात्रियों से पृथक अपना महत्व और वर्चस्व रखती है। इसकी अपनी आध्यात्मिक विशेषता तो है ही इसके अतिरिक्त अलौकिक विशेषता भी है इसलिए कि महाकाल के ऊपर जो कालातीत अवस्था है वह परम शून्य है। जिसे योग की भाषा में परमाकाश कहते हैं।

आकाश सात प्रकार के हैं जिनमें परमाकाश अन्तिम आकाश है और उस परमाकाश में महाकाल की अनन्त शक्तियां क्रियाशील हैं। कहने की आवश्यकता नहीं वे अनन्त शक्तियां ही विभिन्न रूपों में अंक, वर्ण और स्वर के रूप में अभिव्यक्त होती है। जिनका उचित संयोजन कर यंत्र और मंत्र का रूप दे दिया जाता है। दीपावली की ही एक ऐसी रात्रि है जो अन्य रात्रियों से गहन और प्रगाढ़ होती है और इसी कारण उसे महानिशा भी कहते हैं। महानिशा में नैसर्गिक रूप से महाकाल की शक्तियां भू मण्डल में अवतरित होती हैं और सभी प्रकार के देवी-देवाताओं के विग्रहों मूर्तियों और प्रतिमाओं और उनसे सम्बन्धित पीठ स्थानों को प्रभावित करती हैं। उनके प्रभाव काल का समय केवल तीन घण्टा मात्र होता है यानि रात्रि ग्यारह बजे से लेकर दो बजे रात्रि तक। इस समयावधि में देवी-देवताओं

का विधिवत पूजन अर्चन स्तुति और उनसे सम्बन्धित यंत्रों का विधिवत निर्माण और मंत्रों का जप आदि किया जाता है तो शीघ्र अभीष्ठ लाभ होता है। मनोकामना पूर्ण होती है और सभी प्रकार के भौतिक सुखों की होती है प्राप्ति। इस प्रसंग में यहां यह बतला देना आवश्यक है कि महाकाल की शक्ति महाकाली के होने के फलस्वरूप महाकाली के विग्रह को प्रभावित करती हैं वे शक्तियां। इसीलिए दीपावली की महानिशा बेला में महाकाली की पूजा, अर्चा और साधना विशेष रूप से की जाती है। इतना कहकर वह महासाधक कुछ पल शान्त रहे। फिर आगे जो बतलाया मुझे वह अपने आपमें काफी महत्वपूर्ण था।

चेतना का सबसे रहस्यमय बोध मन के द्वारा ही होता है। जैसे चेतन मन की सारी क्रिया मस्तिष्क के माध्यम से होती है। लेकिन चेतना की महत्वपूर्ण शक्ति अवचेतन मन है। अवचेतन का अस्तित्व जहां और जिस आवारण में है वह नाड़ी तन्तु मेरुदण्ड के सबसे निचले भाग में स्थित है। उस सूक्ष्म तन्तु में अवचेतन मन की असीम और आलौकिक शक्तियां सुप्तावस्था में विद्यमान है। जिसे योग परामानसिक चेतना कहता है और तंत्र कहता है पराशक्ति यानि कुण्डलिनी शक्ति। योग और तंत्र की यावत साधना चाहे प्राण साधना के द्वारा हो या मंत्र साधना के द्वारा इस चेतनारूपी शक्ति को जागृत कर ऊर्ध्वमुखी करना ताकि वह सहस्रार चक्र का भेदन कर परम ज्ञान को उपलब्ध हो।

अवचेतन मन की परामानसिक शक्ति व्यक्त और अव्यक्त रूप है और उन्हीं विभिन्न रूपों की एकमात्र साधना है कुण्डलिनी साधना। सच पूछा जाये तो भारतीय संस्कृति और साधना के रहस्यमवाद के मूल में यही परामानसिक शक्ति है और आधार है।

कुण्डलिनी साधना में सबसे महत्वपूर्ण स्थान नाड़ी का है। जिस पर समस्त साधना आधारित है वह है सुषुम्ना नाड़ी। सुषुम्ना नाड़ी के अन्दर कुछ भी नहीं है। शून्य है उसके भीतर कुछ भी नहीं है। वह बिल्कुल रिक्त है। इसलिए सुषुम्ना को योग में शून्य नाड़ी भी कहते हैं। शून्य का मतलब अभाव नहीं है पूर्णता है। जहां कुछ नहीं है वहां सब कुछ होता है। सुषुम्ना नाड़ी के महत्व का पहला कारण यह है अधो लघु मस्तिष्क में स्थित सहस्रार से कुण्डलिनी के शक्ति केन्द्र मूलाधार से जुड़ी है।

दूसरा कारण यह है कि कुण्डलिनी शक्ति जागृत होकर इसी नाड़ी मार्ग से सहस्त्रार में प्रवेश करती है। जहां संयोग शिव तत्व से होता है। जिसे सामरस्य मिलन अथवा सामरस्य भाव कहते हैं। तंत्र का यही अद्वैत सिद्धि लाभ है।

तीसरा महत्वपूर्ण कारण है इसी नाड़ी के द्वारा षट्चक्रों का भेदन होता है। जिसकी सहायता से साधक साधना में क्रमिक उन्नति करता चला जाता है।

चौथा कारण यह है कि सुषुम्ना के साथ एक और नाड़ी है जिसे चित्रिणी नाड़ी कहते हैं। यह ज्ञान वाहिनी नाड़ी है। यह मूलाधार चक्र से निकल कर लघु मस्तिष्क के केन्द्र को उस नाड़ी से जोड़ती है जो केन्द्र से निकल कर आज्ञा चक्र में गुह्यनी नाड़ी से मिलती है। चित्रिणी नाड़ी ही एक ऐसी नाड़ी है जो अवचेतन मन को चेतन मन से जोड़ती है।

इसी नाड़ी के माध्यम से कभी-कभी अवचेतन मन की अकल्पनीय शक्तियां चेतन मन की सीमा को लांघ कर चेतन मन में आकस्मिक प्रगट हो जाती है। वह चमत्कार जैसा होता है।

इसी नाड़ी द्वारा मानव को ज्ञान शक्ति प्राप्त होती है। जिसका आविर्भाव कुण्डलिनी में होता है। कुण्डलिनी साधना के चार क्रम हैं। प्रथम अवस्था में चक्रों का जागरण होता है। दूसरी अवस्था में उत्थान होता है। तीसरी अवस्था में चक्रों का भेदन होता है। चौथी अवस्था में सहस्त्रार में स्थित शिव-शक्ति से सामरस्य भाव स्थापित होता है। इन चारों अवस्था में कुण्डलिनी का एकमात्र आधार है और सहयोगिनी है सुषुम्ना नाड़ी।

कुण्डलिनी शब्द गुण वाचाक नहीं लाक्षणिक शब्द है। मेरुदण्ड जहां से शुरु होता है वह छोटा सा गढ्डा है योग उसे कुण्ड कहता है। वही कुण्ड ऊर्जा का केन्द्र हैं इसलिए इस केन्द्र को कुण्डलिनी कहते हैं। दूसरी महत्वपूर्ण बात है यहीं चार प्रमुख नाड़ियों का संगम है।

जिस कुण्ड की चर्चा की गई है वह त्रिकोण की तरह है। इस त्रिकोण में इड़ा, पिगला और सुषुम्ना तीन नाड़ियां मिली हुई हैं। जोकि हमारे शरीर का महत्वपूर्ण केन्द्र है। वास्तव में हमारे शरीर में जीवनी शक्ति इसी केन्द्र को माना गया है।

इसी केन्द्र को मूलाधार कहते हैं। यह त्रिकोण रूपी है। तंत्र में त्रिकोण को योनिरूप कहते हैं यानि योनिचक्र। योनि के बांये कोण में इड़ा, दांये कोण पिगला और नीचे के कोण बिन्दु पर सुषुम्ना नाड़ी की सन्धि है। यहीं तीनों नाड़ियां मेरुदण्ड के माध्यम से ऊपर चली गई है। ऊपर जाकर तीनों अलग-अलग हो गई हैं। इड़ा और पिगला कान यानि कर्ण की ओर से आकर आज्ञा चक्र में मिलकर तीनों मस्तिष्क केन्द्रों को पार कर ब्रम्हरंध्र में जाकर मिल जाती है। इसी प्रकार सुषुम्ना नाड़ी भी दोनों नाड़ियों से अलग होकर कपाल के पीछे से जाकर सीधे ब्रम्हरंध्र में मिल गयी है योनि चक्र में भौतिक शरीर के निर्माण का बीज रहता है। मूलाधार चक्र यानि योनि चक्र शक्ति का केन्द्र है। इसलिए तीनों नाड़ियों के द्वारा मन, प्राण और वाक (विचार) की शक्तियां इसी केन्द्र से प्रगट होती है और प्रगट होकर समस्त शरीर केन्द्रों में हजारों अन्य नाडियों के द्वारा प्रवाहित होती रहती है। इसलिए योनि चक्र को महाशक्ति पीठ कहते हैं।

योनि चक्र के ऊपर वाले दोनों कोणो में मनः शक्ति और प्राण शक्ति का प्रगट भाव है और नीचे वाले कोण में विचार शक्ति का यानि परमा शक्ति का है। इसके तीन रूप हैं। त्रिकोण के मध्य में बिन्दु है। यही सृष्टि का निर्माण तत्व है यानि तंत्र शास्त्र में बिन्दु को ही सृष्टि का निर्माण बतलाया गया है। तंत्र के अनुसार बिन्दु का अर्थ है शिव-शक्ति का सामंजस्य रूप। दूसरे शब्दों में इसे आत्म शक्ति कहते हैं। सृष्टि की प्रक्रिया में परमात्मा का महत्वपूर्ण अंश है आत्मा। जो शाश्वत और अखण्ड है और है नित्य। उसका न कभी नाश होता है न तो उस पर देश-काल आदि का प्रभाव पड़ता है। सृष्टि के प्रागकाल में आत्मा का निर्माण विश्व ब्रम्हाण्ड के दो मूल परम तत्वों से हुआ। तंत्र उसे शिव-शक्ति तत्व कहता है। शिव-शक्ति यानि प्रकृति-पुरुष के समन्वय से जो तीसरे तत्व का आविर्भाव हुआ। वही आत्म तत्व है। यही आत्म तत्व बिन्दु रूप है। जिसे आत्म शक्ति कहते हैं। जब यही शक्ति सृष्टि की प्रक्रिया में आती है तब उसे चेतना कहते हैं।

योनि चक्र में जो कुण्ड है वह आत्मा की ऊर्जा है यानि परम चेतना का कुण्ड है। इसलिए इस कुण्ड को, योनि बिन्दु को महा शक्तिपीठ अथवा

आत्म शक्तिपीठ कहा गया है। यही अचित्य महाशक्ति है। यही योग योगेश्वरी कुण्डलिनी है। मगर यही आत्म शक्ति कुण्डलिनी के रूप में मानव तन में सुप्तावस्था में हैं इसी अवस्था को जीव भाव कहते हैं। वही अपने केन्द्र में आत्म शक्ति, मनः शक्ति, प्राण शक्ति और विचार शक्ति के रूप में है। एक ओर तीनों नाड़ियां प्रवाहित तो होती रहती है परन्तु अपने निज रूप में सुषुप्त रहती है।

यहीं त्रिकोण चक्र में स्थित बिन्दु यानि ऊर्जाकुण्ड सर्प की कुण्डलिनी की भांति है। इसलिए आत्म शक्ति को कुण्डलिनी के नाम से पुकारा जाता है। आत्म शक्ति केन्द्र से जो ऊर्जा मन और प्राण शक्ति के रूप में परिवर्तित होकर अपनी-अपनी नाड़ियों में प्रवाहित होती है उसका केन्द्र है हमारा मस्तिष्क और हृदय। इसी प्रकार विचार शक्ति का केन्द्र है नाभि मण्डल। शक्ति के इन तीनों केन्द्रों को जोड़ने वाली एक और महत्वपूर्ण नाड़ी है जिसे गुह्यनी नाड़ी कहते हैं। गुह्यनी नाड़ी का पथ मस्तिष्क से प्रारम्भ होता है और कण्ठ यानि रूद्र ग्रन्थि को स्पर्श करती हृदय में पहुंचती है। वहां भी एक ग्रन्थि है जिसे विष्णु ग्रन्थि कहते हैं। वहीं से गुह्यनी नाड़ी का पथ आगे बढ़ता है और नाभि के पास आता है। वहां भी एक ग्रन्थि है जिसे ब्रम्ह ग्रन्थि कहते हैं यानि गुह्यनी नाड़ी की तीन ग्रन्थियां हैं रुद्र ग्रन्थि, विष्णु ग्रन्थि और ब्रम्ह ग्रन्थि।

रुद्र ग्रन्थि के ऊपर गुह्यनी नाड़ी पथ को दिव्यौध पथ और ब्रम्ह नाड़ी के नीचे गुह्यनी पथ को महापथ कहते हैं। योग साधना में रेचक द्वारा त्रिबन्ध लगाने से ये तीनों ग्रन्थियां खुल जाती है। क्योंकि जब तक ग्रन्थियां नहीं खुलती तब तक चक्रों में ऊर्जा का प्रवाह नहीं होता। इसलिए चक्र साधना के पूर्व प्राणायाम के माध्यम से ग्रन्थियों का भेदन आवश्यक है। हमारे शरीर में दो मुख्य नाड़ियां हैं मनोवहा नाड़ी और प्राणवहा नाड़ी। ये नाड़ियां जहां-जहां मिलती है वहां-वहां मन और प्राण का संयोग माना गया है। योग कहता इसी संयोग का नाम है स्थूल जीवन यानि हमें भौतिक जगत और जीवन का तभी अनुभव होता है जब तक प्राण के साथ मन चैतन्य और क्रियाशील रहता है अपनी नाड़ी में। इसी को आत्मा की जाग्रत अवस्था कहते हैं।

इड़ा, पिगला और सुषुम्ना नाड़ी के बारे में बतलाया जा चुका मगर उसके अलावा जो क्रियाशील और चैतन्य नाड़ियां है वह प्रमुख रूप से शरीर में है वे हैं हस्त, जिव्हा, गान्धारी, अलम्बुजा, पयस्विनी, कुहू, राका, शखिनी, वज्रा, चित्रिणी ये सभी योग नाड़ियां हैं। मनोवहा नाड़ी का नाम गान्धारी है। प्राणवहा नाड़ी का नाम अलम्बुजा है। जिस नाड़ी में शुक्र का प्रवाह होता है वह है वज्रा नाड़ी। देखा जाये तो गान्धारी सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त है। वह जाल की तरह समस्त शरीर में फैली है पर उसका प्रारम्भ नाभि केन्द्र में होता है। मानव क्लान्त और शिथिल होने पर मनोवहा नाड़ी मार्ग के द्वारा नाभि केन्द्र में चला जाता है। इसी अवस्था को तन्द्रा कहते हैं। नाभि केन्द्र से एक नाड़ी त्रिकोण पीठ के नीचे वाले कोण में जा मिली है। उस नाड़ी का नाम है पयस्विनी। तन्द्रा अवस्था में मन धीरे-धीरे पयस्विनी नाड़ी में प्रवेश करता है और अन्त में क्रियाशील केन्द्र में स्थित हो जाता है। इसी अवस्था का नाम है स्वप्नावस्था।

जाग्रत अवस्था में हमें जो शब्द और ध्वनियां सुनाई पड़ती है। वह बैखरी है और स्वप्नावस्था में मध्यमा सुनाई देती है। क्रियाशील पीठ का सम्बन्ध मध्यमा और स्वप्न से है। यही कारण है हमारा मन, स्वप्न की अवस्था में जो अनुभव करता है क्रियाशील पीठ से इच्छा शक्ति पीठ को मिलाने वाली नाड़ी का नाम है कुहू नाड़ी।

मन जब इस नाड़ी में प्रवेश कर इच्छा शक्ति पीठ (कोण) के केन्द्र में स्थित होता है तो उसे सुषुप्ति अवस्था कहते हैं। कुहू नाड़ी के माध्यम से मन अपनी तीन अवस्थाओं से गुजरता है।

पहली अवस्था है सुषुप्ति, मन तो इस अवस्था में निष्क्रिय भाव में रहता है। लेकिन अल्प ज्ञान बना रहता है।

दूसरी अवस्था है मूढ़ा अवस्था यानि ज्ञान शून्य हो जाना।

तीसरी अवस्था में मन पूर्णरूप से जड़ हो जाता है। इसी को मूर्च्छा अवस्था कहते हैं। इच्छा शक्ति पीठ और ज्ञान शक्ति पीठ को जोड़ने वाली नाड़ी 'राका' है।

साधारण मनुष्य की आत्मा जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति इन्ही तीनों अवस्थाओं में विचरण करती है। मगर कुण्डलिनी साधक यानि योगी ध्यान

की अवस्था में मंत्र शक्ति के द्वारा यानि जप-साधना के द्वारा इन तीनों अवस्थाओं को पारकर तुरीय अवस्था में प्रवेश करता है। जब जाग्रत अवस्था में प्रवेश करता है तो जाग्रत अवस्था के भीतर स्वप्न की अवस्था रहती है और स्वप्न अवस्था के भीतर सुषुप्ति अवस्था रहती है। इसी प्रकार सुषुप्ति अवस्था के भीतर है तुरीयावस्था। तुरीयावस्था में न क्रिया रहती है और न ही इच्छा रहती है, रहता है बस ज्ञान विशेष।

ज्ञान विशेष का तात्पर्य है कि तुरीया अवस्था के अन्तर्भूत भी तीन अवस्थायें हैं जिसे पारकर योगी तुरीयावस्था में प्रवेश करता है। उस प्रथम अवस्था में योगी को सद्गुरु का दर्शन होता है यानि मंत्र दाता गुरु के योग स्वरूप का दर्शन होता है। दूसरी अवस्था में मंत्र से सम्बन्धित जगत और मंत्र शक्ति का दर्शन होता है। तीसरी अवस्था में मंत्र के अधिष्ठाता देवता का उसी लोक भूमि में दर्शन लाभ होता है। इन तीनों लाभ के बाद आत्मा तुरीय की स्थिति में पहुंचती है। तुरीय अवस्था का मतलब है अपनी आत्मावस्था में प्रवेश और उस अवस्था में जन्म-मरण और सृष्टि के मूल तत्वों का साक्षात्कार और ज्ञान। इस अवस्था में साधक के सामने सृष्टि के मूल तत्वों का रहस्य उजागार हो जाता है। यही सातवें और अन्तिम शरीर और चक्र की साधना है। जब साधक को ब्रम्हाण्ड और जगत के रहस्यों का ज्ञान हो जाता है तब वह निर्वाण अथवा मोक्ष को उपलब्ध हो जाता है। (विस्तार से आगे वर्णन किया गया है)

वैरागी और उसका पूर्वजन्म

बाबा क्षमा करें...। एक उत्सुकता बनी है काफी देर से। क्या प्रश्न कर सकता हूं अगर आप आज्ञा दें तो....।

हां...क्यों नहीं....। अवश्य उत्तर दूंगा- हंसते हुए बाबा बोले। मुझे पता है तुम देवकी और वैरागी के बारे में जानना चाहते हो।

अरे! हां बाबा...आप तो मेरे मन की बात जान गये।

तो सुनो- वैरागी अनाथ था शायद कोई नारी लोक लाज के कारण बाहर गांव के कुंए के पास उसे छोड़ गई थी। संयोगवश मैं उधर से गुजर रहा था। प्रातःकाल का समय था। बच्चे के रोने की आवाज सुनकर मेरी निगाह पड़ी लाल कपड़े में लिपटा हुआ वह क्रन्दन कर रहा था। वस्त्र और

बालक को देख कर लगा किसी उच्च घराने का है। किसी ने विवशता के कारण उस बालक का त्याग कर दिया।

मैंने उसे उठा लिया गोद में। वह कातर नजर से मुझे देख रहा था। मन द्रवित हो गया। उसी गांव में एक अधेड़ विधवा महिला थी। मेरी भक्त थी। जब भी मैं गांव से गुजरता उसके पास अवश्य जाता। मैंने उसका द्वार खटखटाया। एक झटके में दरवाजा खुल गया। जैसे वह मेरा इन्तजार कर रही हो।

अरे! बाबा आप आ गये। मुझे आभास था आज पूर्णिमा है बाबा आज अवश्य आयेंगे।

हां...मुझे तो आना ही था। तेरे लिए भगवती का प्रसाद लाया हूं। तेरी कोख सूनी थी न। भगवती की कृपा तुम पर बरस गई। उनका प्रसाद समझ कर इस बालक का पालन-पोषण कर। बाकि सब मां देखेंगी। इतना कह कर मैंने बालक को लाजो की गोद में थमा दिया।

लाजो अवाक .... बस कभी मुझे देखती तो कभी उस नन्हे से बालक को। उसकी आंखों में आंसुओं की एकाएक धार बहने लगी। लाजो ने बालक को गले लगा दिया। गांव के लोग मेरी काफी इज्जत करते थे। उन्हे बुला कर मैंने समझा दिया और कहा- यह मां का प्रसाद है लाजो ही बालक का भरण-पोषण करेगी और आप सभी यथा योग्य सहायता करते रहना। बाकि मैं हूं।

समय-समय पर गांव जाता और लाजो को कुछ न कुछ दे आता। काल अपनी गति से चल रहा था। वह बालक अट्ठारह वर्ष का युवा हो गया। पूरे गांव का दुलारा था।

एक ऐसी घटना घटी जिससे कारण उसका जीवन ही बदल गया। एक दिन अपनी मां लाजो के साथ वह हमारे आश्रम चला आया। उसके मुख पर व्यथा, क्रोध और उत्सुकता का भाव था। मेरे चरणों पर अपना शीश रख दिया। बस यही प्रश्न किया- मेरी माता कौन है? किसने मुझे जन्म दिया और छोड़ दिया मरने के लिए? अगर सही समय पर आप नहीं आते तो क्या मैं जिन्दा बचता। आप तो यही कहेंगे ईश्वर ने तुम्हारी रक्षा की है। ईश्वर है कहां....? खैर,

आपने लाजो माता को शौंप दिया मुझे। बस किसी तरह बड़ा हो गया। सच में मेरा जीवन खुशहाल था। अगर देवकी ने मुझे सत्य का भान न कराया होता तो।

देवकी कौन- मैंने पूछा?

देवकी से मैं विवाह करना चाहता था। वह तैयार थी। लेकिन उसके पिता ने कह- भुवन बहुत अच्छा लड़का है। तुम्हारा ख्याल भी रखेगा। मैं उसे बचपन से जानता हूं। जब बाबा ने लाजो के हाथ में उसे सौंप दिया था। वह अनाथ है पता नहीं किस जाति विरादरी का है। बस यही शंका है बिना जातपात जाने कैसे मैं....।

जब यह सारी बात देवकी ने मुझे बतलाया तो मैं मां से पूछा। बस फिर क्या...मां रोते हुए सारी घटना बतली दी मुझे। उसने आगे कहा- बाबा आप तो ज्ञानी हैं। आप अपनी विद्या से भूत, भविष्य, वर्तमान सब देख सकते हैं। सत्य क्या है? कौन है मेरी मां और पिता? कौन सा कारण था? कौन सी विवशता थी कि उन्हे मेरा त्याग करना पड़ा?

मैं उसे उठाते हुए बोला- भुवन क्यों वैरागियों जैसी बातें कर रहा है। तुम्हारे भाग्य में जो लिखा था वह मिला उसे स्वीकार करो। मैं चलकर देवकी के पिता से बात करता हूं।

नहीं बाबा...। भुवन बोला- देवकी बात तो अब पीछे रह गयी। अब मुझे सत्य जानना है। अपने असली माता-पिता और जाति के बारे में।

पुत्र मैं अपनी साधना बल से सब जान चुका था। लेकिन जो सत्य परदे में था उसे रहने दिया। ताकि समाज में तुम्हारी मां की इज्जत न बिखरने पाये।

उसने कहा- बाबा मेरी माता की विवशता उस समय क्या थी मुझे नहीं पता। लेकिन इस बात को अट्ठारह वर्ष बीत गये। क्या मेरी मां को एक बार भी मेरी याद नहीं आई। अगर आप कहेंगे तो जीवन भर आपकी सेवा करूंगा और साधना भी। वैरागी जीवन भी व्यतीत करूंगा। क्योंकि अब सब कुछ बिखर गया मेरे जीवन से। लगता है पूरे संसार में मैं एकदम अकेला हूं। मेरा कोई अपना नहीं। कहते-कहते भुवन दोनों हाथों से अपना मुख ढक कर रोने लगता है। तभी लाजो उसके पास आकर बोली-

नहीं...पुत्र ऐसा नहीं कहते। मैं हूं ना। ठीक है मैंने तुम्हे जन्म नहीं दिया। लेकिन पालपोष कर इतना बड़ा तो किया। कितनी रात मैं सोई नहीं। तू बाहर जाता मन घबड़ाता रहता। एक पल भी तुम्हे अपनी नजरों से ओझल नहीं होने दिया। मैं तो तेरी जन्म देने वाली मां नहीं हूं। लेकिन मां तो हूं। तुम्हे क्या पता मेरे हृदय पर क्या गुजर रही है। काश....तुम्हे यह सब न बतलाया होता। कुछ पल मैं हतप्रभ सा रहा। लेकिन दूसरे ही पल अपने मन को संयत कर बोला- भुवन....लाजो को घर छोड़ कर आ। कल चलते हैं तुम्हे सत्य से मिलवाने। ठीक है ना।

भुवन दौड़ कर मेरे चरणो में लोट गया। जैसे उसकी मन की कामना पूर्ण हो गई हो।

अरे! गुरुदेव आप...। आप तो कामरूप गये थे भगवती के दर्शन लाभ के लिए। हां तीन-चार दिन हुआ लौटे हुए।

यह युवक कौन है?

एक भटका हुआ पथिक है सत्य जानना चाह रहा है।

महाराज रूद्रदेव आप तो जमींदार हैं सबका ख्याल रखते है। लेकिन कभी-कभी किसी कोने में अंधेरा रह जाता है, आपका ध्यान नहीं जाता।

रूद्रदेव हाथ जोड़ कर बोला- गुरुदेव समझा नहीं...। हां अंधेरा है किसी एक कोने में नहीं बल्कि पूरी हवेली में। मेरी पुत्रवधु आज तक मां नहीं बन पायी। मैं चाहकर भी आपसे विनती नहीं कर पाया। पता नहीं क्यों मेरी जुबान ही बन्द हो जाती है।

मैं उसी विषय पर वार्ता करने आया हूं। क्या आप अपने पुत्र जगत प्रताप और पुत्रवधु नयना से मिलवा सकते हैं। शायद कोई रास्ता मिल जाये।

ठीक है गुरुदेव। मैं इन्तजाम करता हूं। आप थोड़ा विश्राम कर लें..।

बाबा यह सुदर्शन युवक कौन है- नयना पूछती है? मैं कुछ पल चुप रहा फिर बोला- समय आयेगा तो जान जाओगी।

नयना रूद्रदेव की पुत्रवधु थी। रूद्रदेव का पुत्र जगत प्रताप था। नयना बोली- बाबा एक अर्सा बीत गया गर्भ सूनी की सूनी है। मैं तो कितनी बार बोल चुकी जगत प्रताप से यानि अपने पति की ओर देखते

हुए बोली और ये भी बोली कि आप दूसरा विवाह कर लीजिए मेरे भाग्य में सूनापन ही लिखा है। उसे मिटाया नहीं जा सकता। सारा पूजा-पाठ, व्रत-उपवास सब निष्फल रहा।

नयना भाव में कह गई फिर अचानक से उसका ध्यान भुवन पर पड़ा तो अवाक रह गई। फिर सम्भल कर बोली- आपके शिष्य के सामने बातें कर सकते हैं क्या।

मैंने कहा- क्यों नहीं....। यह हम लोगों से अलग नहीं है।

भुवन चुपचाप हम सभी की बातें सुनता रहा। आगे मैंने कहा- तुम दोनों को इसलिए एकान्त में बुलाया ताकि जो भी वार्ता हो इस कक्ष तक रहे। जगत प्रताप उत्सुकतावश प्रश्न किया- बाबा आप पर पूर्ण श्रद्धा और पूर्ण विश्वास है आप बिना संकोच के कह सकते हैं।

फिर मैं बिना संकोच के बोला- तुम दोनों के भाग्य में एक ही सन्तान का योग था चाहे वह पुत्री होती या पुत्र। लेकिन तुम दोनों ने समय के पूर्व एक गल्ती कर दी। जिसे ईश्वर भी क्षमा नहीं कर पाया। जिसके कारण तुम दोनों सन्तान सुख से वंचित हो गये। जिसका कष्ट तुम दोनों के मुख से साफ झलक रहा है। चूंकि तुम नयना से बेहद प्रेम करते हो। परिवार के दबाव के बावजूद दूसरा विवाह नहीं कर रहे। अट्ठारह वर्ष बीत गये।

इतना सुनते ही नयना हड़बड़ा कर खड़ी हो गई और घुटने के बल बैठ गई और बोली- बाबा कुछ तो है जो आप साफतौर से नहीं बतला रहे हैं। हम दोनों ने कौन सा ऐसा पाप किया। जिसकी सजा अभी तक मिल रही है। उसकी आंखों में आंसू थे।

तुम दोनों ने जो जघन्य पाप किया है उसे क्षमा नहीं किया जा सकता। खैर, मैं कौन होता हूं इसका निर्णय करने वाला। सजा तो प्रकृति ने तुम दोनों को दिया।

जगत प्रताप ने जो वचन दिया था साथ निभाने उसने अपना वचन पूरा किया तुम्हे अपनी पत्नी बना कर। लेकिन इसके पहले तुम दोनों ने विवाह के पूर्व सन्सर्ग कर एक बीज को जन्म दिया और उसे पूर्ण वृक्ष बनने के पूर्व ही त्याग कर दिया।

इतना सुनते ही दोनों के मुख में सफेदी छा गई। ऐसा लगा जैसे रक्त

ही नहीं है उन दोनों के मुख पर। दोनों एक झटके से उठे और मेरे चरणो पर लोट गये।

हां... बाबा उस गल्ती का एहसास आज भी है। एक दिन भी नहीं सो पाई। बस अपने नवजात पुत्र का चेहरा नजर आता हर समय। पता नहीं जिन्दा है कि नहीं। लोकलाज के कारण हम दोनों पुत्र को जन्म देने के बाद त्याग कर दिया। लेकिन उस गल्ती की सजा हम लोग आज तक भुगत रहे हैं।

नयना बोली- बाबा आप कुछ तो बोलें, आप तो अन्तर्यामी हैं, सारा सत्य आपको पता है। आप मेरे पुत्र के बारे में जानते अवश्य होंगे। क्या वह जिन्दा है?

मैंने कहा- हां वह जिन्दा है। उसके दाहिने हाथ में जन्मचिन्ह था। यह तो याद है न आप दोनों को।

हां बाबा उसकी दाहिनी भुजा पर शंख जैसा चिन्ह था- जगत प्रताप बोला।

मैं उठा और भुवन को खींचकर अपने पास लाया और उसकी दाहिनी भुजा पर पड़े वस्त्र को हटा दिया। उसकी दाहिनी भुजा पर वही जन्मचिन्ह था जो जगत प्रताप ने बतलाया।

उस चिन्ह हो देखकर दोनों के नेत्रों से आंसू बहने लगे....दुख, वियोग और पश्चाताप के आंसू थे।

भुवन अब तुम कहीं नहीं जाओगे जो गल्ती और डर के कारण तुम्हारा मैंने त्याग किया अब मैं पूरे समाज से कहूंगी भुवन मेरा पुत्र है।

मैंने कोई पाप नहीं किया। चाहे वह वक्त के पहले पैदा हुआ या वक्त के बाद। इससे मुझे कुछ लेना देना नहीं है- नयना भुवन के दोनों बाजुओं को पकड़ कर बोली।

मां....मुझे जो जानना था जान चुका हूं। गुरुदेव ने सत्य दिखला दिया। इनका मैं जीवन भर ऋणी रहूंगा। आप दोनों मेरे माता-पिता हैं उसके लिए आप दोनों को धन्यवाद और आप दोनों का ऋणी हूं कि आप दोनों के कारण संसार देखने को मिला। इस जन्म में मैं तो आपका नहीं हो सकता। अगले जन्म में देखा जायेगा। आप लोकलाज और समाज की

मर्यादा के साथ प्रसन्न रहें। जहां तक मेरी बात है आज मैं जिन्दा हूं तो बस बाबा के कारण। उस पल कुछ भी हो सकता था किसी पशु का भोजन भी बन चुका होता।

संसार और समाज का सत्य जान चुका हूं। अब परम सत्य की तलाश करनी है। जो बाबा ही दे सकते हैं। संसार का सत्य तो जान लिया अब परम सत्य के पथ पर चल कर उसका भी ज्ञान प्राप्त करना है।

मेरी तरफ देखते हुए भुवन बोला- भुवन तो समाज का दिया नाम है आज से भुवन मर गया बस आपका वैरागी जिन्दा है। मेरे चरणों पर अपना सिर रख दिया। बोला- बाबा.... अब हम दोनों को चलना चाहिए। मैं उठा वहां से और चल दिया। भुवन दोबारा पलट कर नहीं देखा अपने माता-पिता को। भुवन का गुरुप्रदत्त नाम वैरागी हुआ। वैरागी गहन साधना करने लगा। जैसा मैं निर्देश देता वह वैसा ही करता चला गया। उसके अन्दर विरक्ति का प्रबल भाव पैदा हो चुका था।

उसकी साधना निर्विघ्न चल रही थी। कभी-कभी मेरे साथ यात्रा पर भी निकल पड़ता। लेकिन फिर कभी अपने गांव नहीं गया। न ही किसी के बारे में जानना चाहता था। यहां तक कि अपनी मां लाजो और देवकी का भी नाम नहीं लेता। जैसे वह संसार के लिए मर चुका हो और संसार उसके लिए।

एक दिन देवकी सामने खड़ी थी। हम दोनों को घोर आश्चर्य हुआ। देवकी दौड़ कर मेरे चरण पकड़ लेती है और बोली- बाबा मैं भुवन के बिना अब नहीं जी पा रही हूं। भुवन जब से गांव छोड़ा चारो तरफ उदासी सी छा गई है। मैं भी घर छोड़ कर भुवन के पास आ गई हूं। मुझे जाने को मत कहना बाबा।

मैं कुछ पल सोचता रहा फिर देवकी को उठाते हुए कहा- देवकी भुवन अब वैरागी है वह साधक बन चुका है। उसे संसार-समाज से अब कुछ लेना-देना नहीं है।

देवकी मेरी बात अनसुनी करते हुए वैरागी के पास जाती है और उसे झकझोरते हुए बोली- भुवन तुम मुझे इस तरह नहीं भूल सकते। न ही अकेला छोड़ सकते हो। वैरागी चुपचाप बस उसे देखता रहा।

तीन दिन बीत गया। देवकी के माता-पिता ने काफी समझाया। लेकिन वह नहीं मानी। हार मानकर उसे भी साधना की दीक्षा देनी पड़ी। क्योंकि इसके अलावा कोई और मार्ग नहीं था।

अपरिपक्व साधना उस पर नारी गन्ध। दोनों युवा थे। एक दिन वही हुआ जो होना था। वासना की आंधी में वैरागी और देवकी बह गये।

जब होश आया तो साधना की ऊर्जा का एक कण भी नहीं था वैरागी के अन्दर। घोर मानसिक यातना से वह गुजरने लगा। जो होना था वही हुआ। दोनों ने अपना शरीर उत्सर्ग कर दिया भगवती के चरणो पर।

अरे! मैं समझा नहीं....हड़बड़ा कर पूछ बैठा।

बाबा मेरी ओर गम्भीर नजरों से देखते हुए बोले- लो तुम अपनी आंखों से देख लो आज से दो सौ वर्ष पहले का दृश्य।

एक पल नहीं...। एक पल भी नहीं...। उससे भी कम समय में दृश्य बदल गया। मैंने देखा- महाकाली का वह परम साधक वीरासन की मुद्रा में बैठा हुआ था और उसके दाहिने हाथ में एक विकराल खड्ग था जिसे उंगलियों से कस कर पकड़े हुए था वह । संकल्प के प्रखर तेज से दप-दप कर रहा था उस समय उसका मुखमण्डल। अपनी अधखुली आंखों से निहार रहा था निर्विकार भाव से मां महामाया की ओर वह। लगा जैसे कोई अघटित घटने वाला हो प्रांगण के निस्तब्ध वातावरण में। किसी अज्ञात भय से सनसनाने लगा मेरा पूरा शरीर और तभी देवकी प्रकट हुई वहां। उसके सिर के बाल खुल कर पीठ पर बिखरे हुए थे। उसके शरीर पर लाल वस्त्र था जिससे उसका सम्पूर्ण शरीर ढका था। उसके चेहरे पर अवर्णनीय आभा थी। उसकी बड़ी-बड़ी आंखे असामान्य लगी मुझे। आंखे बड़ी होने के अलावा खिंची-खिंची सी थी और पुतलियां घूमने के बजाय बीच में स्थिर थी। उसके हाथ में लाल सिन्दूर से भरी एक छोटी सी कटोरी थी। जिसमें से सिन्दूर निकाल कर वैरागी के मस्तक पर लगाया। वैरागी ने भी वैसा ही किया। फिर देवकी सिर झुका कर प्रतिमा के आगे बैठ गई। उसके बाद जो मर्मस्पर्शी, हृदय विदारक और लोमहर्षक दृश्य देखा उससे मेरी आत्मा जड़वत् हो उठी भय से एकबारगी और सारा शरीर कांपने लगा थर-थर। पाषाणवत् खड़ा देखता रहा मैं उस करूण दृश्य को अपलक।

न जाने कब और किस क्षण उस साधक ने हाथ में लिए हुए उस भयंकर खड्ग से देवकी का सर धड़ से अलग कर दिया फिर अपना सिर। यथावत् बैठा हुआ था दोनों का रक्तरंजित शरीर और रक्तरंजित पड़ा हुआ था मां महामाया के समीप दोनों का सिर। चारो ओर जमीन पर खून ही खून। महाकाली की जीभ रक्ताभ लगी मुझे और उनकी आंखे भी लगी आक्रोश से भरी हुई। लगा जैसे जगतारिणी जगदम्बा ने किसी कारणवश स्वयं बलि दी हो उस महासाधक की। उस समय अपना सुध-बुध गवां बैठा था मैं पूरी तरह उस विकट स्थिति को देखकर।

उस निस्तब्ध प्रांगण में एकबारगी गूंज कर चिथड़े-चिथड़े हो गयी मेरी वह हृदय विदारक चीख और उसी के साथ खुल गयी मेरी आंखे भी। चारो ओर सिर घुमाकर देखा सान्याल महाशय के कैम्प में पड़ा था मैं एक चारपायी पर। जिसके पास बैठे थे सान्याल महाशय के साथ एक डॉक्टर भी।

क्या हो गया है मुझे? यहां कैसे और कब पहुंचा मैं...? थोड़ा उठने की कोशिश की मैंने। नहीं...नहीं...उठिये मत। डॉक्टर मेरे ऊपर झुकते हुए बोला- अभी आराम करिए। बाद में सब मालूम हो जायेगा आपको और बाद में जो कुछ मालूम हुआ उससे आश्चर्यचकित हो उठी मेरी आत्मा।

उस दिन पूरी रात बारिश होती रही। सवेरा हुआ और फिर दोपहर में भी मैं नहीं आया तो सान्याल और उनकी पत्नी का चिन्तित होना स्वाभाविक था शंका-कुशंकाओं से घिर गया पति-पत्नी का मन। अपने कुछ सहयोगियों को लेकर मुझे खोजने निकले सान्याल महाशय। तालाब से कुछ पहले एक झाड़ी में मैं बेहोश पड़ा मिला। सारा शरीर सना हुआ था कीचड़ से। किसी प्रकार बैलगाड़ी पर लाद कर लाया गया मुझे कैम्प में। अचेत पड़ा था मैं। यदि उस दिन होश न आया होता मुझे और चेतना न लौटी होती मेरी तो लोग जिला के सदर अस्पताल ले जाते और फिर वहां क्या-क्या होता मेरे साथ वह अन्तर्यामी ही जानता है। जब थोड़ा स्वस्थ हुआ तो प्रश्नों की झड़ी लगा दी सान्याल महाशय ने। उस भयानक बरसाती रात में कौन सी ऐसी अनहोनी घटी जिससे बिल्कुल बेहोश पड़े रहे आप कीचड़ में। जरा सोचिए आपको कुछ हो जाता तो क्या जवाब देता मैं आपके परिवार वालों को।

यह शब्द सुनते ही एकबारगी चौक पड़ा मैं और उसी के साथ मेरा सारा शरीर झनझना उठा एकबारगी। लगा जैसे बिजली के नंगे तार का अचानक स्पर्श हो गया हो मेरे शरीर से और उसी के साथ उस अंधेरी और काली बरसाती रात में शुरू से लेकर अन्त तक चेतन और अवचेतन अवस्था में जो-जो घटनाएं घटी थी और उस महासाधक से तंत्र के विषय में जो-जो चर्चाएं हुई थी वह सब कुछ मेरे स्मृति पटल पर उभर आयी एकबारगी और फिर पूरी कथा सुना दी मैंने सान्याल महाशय को और अन्त में कहा- बन्धू यह तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि उच्चकोटि के योगी और महाकाली के महासाधक हैं साधक कालीचरण इसमें सन्देह नहीं। जिस पारलौकिक वातावरण की सृष्टि उन्होने की थी वह सब उनकी योगमाया थी। उस यौगिक कौतुहल का क्या उद्देश्य था यह मेरी समझ और बुद्धि के परे है। लेकिन यह तो निर्विवाद सत्य है कि उस अवस्था में उन्होने तंत्र के जिन गूढ़ गोपनीय और रहस्यमय विषयों को अनावृत्त किया था वे आध्यात्मिक और साधना की दृष्टि से अति मूल्यवान और महत्वपूर्ण है इसमें सन्देह नहीं। सब कुछ सुन कर स्तब्ध और अवाक हो गये सान्याल महाशय एकबारगी। मेरे साथ ऐसी विलक्षण, अदभुत और साथ ही अति अविश्वसनीय यह घटनाएं घटेगी शायद इसकी कल्पना सपने में भी नहीं की होगी उन्होने। जैसाकि बतला चुका हूं मेरा स्वभाव खोजी वृत्ति का शुरू से ही रहा है। जब तक मैं अपनी उपलब्धियों से पूर्ण सन्तुष्ट नहीं हो जाता हूं तब तक शान्ति नहीं मिलती मेरी आत्मा को।

दूसरे दिन चल पड़ा मैं उस रहस्यमय साधक की झोपड़ी की ओर बिना सान्याल को बतलाये ही।

क्या वहां जाने पर उस परम सिद्ध पुरुष का दर्शन हुआ मुझे? नहीं.....। दर्शन तो हुआ परन्तु उनकी समाधि का। झोपड़ी के बगल वाले पीपल के नीचे उस महापुरुष की समाधि बनी हुई थी मिट्टी के चबूतरे के रूप में। चबूतरा गीला था पूरी तरह से सूखा नहीं था वह। पीपल के सूखे पत्ते बिखरे हुए थे समाधि पर और जंगलों के पीछे छिपे हुए सूरज की हल्की किरणों में लिपटा हुआ धूप का एक छोटा सा टुकड़ा चिपका हुआ था उन सूखों पत्तों के बीच। एक खिन्नता भरी उदासी बिखरी हुई थी चारो

ओर वातावरण में। झोपड़ी के भीतर झांक कर देखा। सांय-सांय कर रहा था वहां। मां महामाया अपने स्थान पर थी। जिस पर कभी के जवापुष्प मुरझा कर सूख गये थे। उस महासाधक का तख्त भी अपने स्थान पर था पूर्ववत्। लेकिन उस पर कोई बैठा नहीं था। बैठने वाला चला गया था इस संसार से हमेशा-हमेशा के लिए।

समाधि के पास निकट गांव के कुछ लोग बैठे यशोगाान कर रहे थे आपस में बाबा का। उसी में से एक वृद्ध सज्जन ने रूंधे स्वर में बतलाया कि छः-सात दिन पहले की बात हैं। उस रात घोर वर्षा हो रही थी। वर्षा के शोर के साथ हवा का तूफानी विलाप भी मिलाजुला था। अपने दालान में खाट डालकर लेटा हुआ था मैं। नींद न जाने क्यों नहीं आ रही थी मुझे। कभी-कभी लगता था जैसे मेरा नाम लेकर पुकार रहे हैं बाबा। सवेरा हुआ रोज की तरह बाबा की कुटिया पर गया फूल लेकर। प्रायः लेटे हुए मिलते थे बाबा। लेकिन उस दिन तख्त पर बैठे थे तन कर वह। थोड़ा आश्चर्य हुआ। सामने फूल रखकर मैं जब वापस लौटने लगा तो मन में कुछ शंका हुई पलटकर बाबा के पैरों को धीरे से टटोला दोनों पैर बर्फ की तरह शीतल लगे मुझे। फिर मन नहीं माना। उनका शरीर हिलाकर देखा। पूरा शरीर पत्थर जैसा हो गया था उनका। बाबा इस संसार में नहीं है यह समझते देर न लगी मुझे। इतना कह चुप हो गया वह वृद्ध व्यक्ति और सिर घुमाकर समाधि की ओर देखने लगा अपलक। मैंने देखा उसकी कमजोर आंखे डबडबा आयी थी उस समय।

यह सब सुनकर छाती के भीतर कुछ खाली-खाली सा लगा मुझे। स्तब्ध होना स्वाभाविक था। काफी देर तक शून्य में निहारता रहा मैं और उस शून्य में बलि का सारा दृश्य घूम रहा था जैसे मेरे सामने। सोचने लगा बलि और समाधि ये दोनों घटनाएं क्या एक ही साथ घटित हुई थी? रहस्य का धुंध और गहरा गया मेरे लिए।

जीवन में बहुत सारी घटनाएं घटती हैं कुछ तो जीवन भर विस्मृत भी नहीं होती। कुछ तो समय के प्रवाह में विस्मृत हो जाती हैं। लेकिन यह घटना जब भी मानस पटल पर आती है मन और आत्मा दोनों को झकझोर देती है। खैर, स्वस्थ होने के बाद वाराणसी चला आया और

अपने कार्य में व्यस्त सा हो गया। एक दिन सांयकाल के समय अपने चिरपरिचित घाट यानि लाली घाट पर बैठा था। गालों पर हाथ रखें। धीरे-धीरे राख होती चिताओं को देख रहा था। महाकाल की अग्नि प्रज्जवलित थी। भौतिक और अभौतिक जगत का द्वार यानि श्मशान। इसे द्वार ही कहेंगे और क्या। पता नहीं कब से यह अग्नि प्रज्जवलित है और आगे भी रहेगी। हर कोई कतार में खड़ा है प्रवेश करने के लिए। जब तक समय नहीं आया तब तक वह संसार का आनन्द लेता रहेगा। जब समय आयेगा वह भी इस परम ज्वाला में अपने को आहूत कर देगा। बस यही सत्य है।

तभी चन्दन और धूपबत्ती की मिलीजुली गन्ध मेरे चारो फैल गयी। जैसे ही गन्ध का आभास मुझे हुआ। मेरी तन्द्रा भंग हो गई। मैं नजरें घुमा कर चारो तरफ देखा। सहसा मेरी नजर सामने पड़ी। देखा लम्बे घने केश, हल्की दाढ़ी, गले में रूद्राक्ष की माला, कान में सोने का कुण्डल, खुला बंदन, कमर में गैरिक वस्त्र। बगल में गैरिक साड़ी पहने और खुले केश, गले में पतली सी रूद्राक्ष की माला। चेहरा दप-दप कर रहा था। चेहरे पर कोई विकार नहीं। दोनों एकटक मेरी ओर देखकर मुस्कुरा रहे थे। जब मैंने उन्हे ध्यान से देखा मेरे शरीर में सनसनी सी फैल गई। मैं उठना चाहा परन्तु उठ नहीं पा रहा था। जैसे पूरा शरीर जड़वत सा हो गया।

अरे! आप दोनों....। अचकचा कर पूछा। हां हम दोनों....वैरागी और देवकी शर्माजी। अब तो आप पहचान गये होंगे। उसी तरह शान्त भाव से वैरागी बोला। आप हम दोनों को देखकर जरा भी परेशान न हों और न ही डरने की आवश्यकता है। वैरागी आगे बोला- यह सब मेरे गुरुदेव की योगमाया थी। पता नहीं कितने वर्षों से हम दोनों की आत्मा भटक रही थी। हम दोनों ने बहुत प्रयत्न किया कि उस मायालोक से बाहर निकल जाये। लेकिन अज्ञान और आवेश में आकर हम दोनों ने जो गल्ती की थी वह क्षमा योग्य नहीं थी। शायद मायाचक्र के कारण। एक तरफ संसार का मोह तो दूसरी तरफ अधूरी साधना। बिना भौतिक शरीर धारण किये साधना पूर्ण नहीं हो सकती।

यह बात हमारे गुरुदेव भी जानते थे। लेकिन वह कहीं न कहीं विवश थे। गुरुदेव अपनी ध्यान की अवस्था में आपको इधर आते देखा जब नाव

से उतर रहे थे। गुरुदेव के आदेश पर देवकी आपको लेने गई थी और गुरुदेव तक आपको पहुंचाया भी। बाकि की सारी बातें तो आप जान ही रहे हैं। लेकिन आप दोनों का यहां आने का रहस्य क्या है।

हां हम दोनों को आपके कारण ही काशी में प्रवेश मिला। हम लोग आपके साथ ही काशी चले आये- वैरागी ने कहा।

मैं समझा नहीं- हठात खड़े होते हुए प्रश्न किया? पता नहीं कैसे मेरा सारा भय जाता रहा।

वैरागी ने आगे बतलाया- गुरुदेव का शरीर अशक्त सा हो गया था। शरीर की अपनी सीमा होती है। वह चाह कर भी हम दोनों को काशी नहीं ला पा रहे थे। क्योंकि काशी में ही रह कर हम दोनों को नया शरीर मिल सकता है। यह बात गुरुदेव जानते थे। मायाचक्र से निकलना हम लोगों के वश की बात नहीं थी।

मायाचक्र मतलब- मैंने फिर प्रश्न किया।

समय चक्र...। हम लोग समय चक्र में फंस गये थे। हम दोनों को बहुत दिनों तक आभास ही नहीं रहा कि हम दोनों का शरीर छूट गया है। यही प्रेत पीड़ा है। जब आभास हुआ कि हम लोग प्रेत योनि में हैं तब महान कष्ट होने लगा। बस किसी तरह इस कष्ट से मुक्त होना चाह रहे थे। गुरुदेव हमारी व्यथा समझ रहे थे। बिना काशी आये यह सम्भव नहीं था। क्योंकि काशी में ही प्रेतमुक्ति सम्भव है। जो आपके कारण सम्भव हो पाया। अब हम दोनों सूक्ष्म शरीर में हैं। बस अपने संस्कार के अनुरूप गर्भ की तलाश कर रहे हैं। जब अनुकूल गर्भ मिल जायेगा जन्म लेकर पुनः अपनी अधूरी साधना पूर्ण करेंगें। गुरुदेव सूक्ष्म शरीर में रह कर ही हम दोनों का मार्गदर्शन करेंगे। यह बात वह पहले ही कह चुके थे। गुरुदेव आपसे सम्पर्क अवश्य करेंगे। मुझे ऐसा विश्वास है।

मैं लम्बी श्वांस लेते हुए बोला- आप दोनों का जो भयानक दृश्य देखा...।

वैरागी बोला- वह आवश्यक था। गुरुदेव ने अपने साधना बल पर आपको अतीत में ले जाकर वह दृश्य दिखलाया। इसका मुख्य कारण यह था कि आपके साथ हम दोनों भी देखें। ताकि मायाचक्र से मुक्त हो सके।

सत्य को स्वीकार कर सके। इसका कारण बस इतना ही था। शरीर मिलने के बाद आपसे मिलने हम लोग अवश्य आयेंगे। आप अवश्य पहचान लेंगे ऐसा विश्वास है।

खैर, आपको पुनः धन्यवाद। मायाचक्र से मुक्त कराने के लिए। धीरे-धीरे दोनों अन्धेरे के आगोश में विलीन हो गये।

कहने का तात्पर्य यह कि हम इस जगत को ही सत्य मानते है। अपने सीमित ज्ञान द्वारा लेकिन इस जगत से भी परे लोक है जिसे सूक्ष्म लोक कहते हैं और योग कहता है वैश्वानर लोक। जहां महान आत्माओं का स्थान है उनके द्वारा कभी-कभी हम ऐसे तथ्य और ऐसे अनुभव से गुजर जाते हैं सहसा विश्वास नहीं होता। हमारी चेतना भौतिक शरीर में बंधी है उसे जाग्रत करने का हम साधन खोजतें हैं और जो अभौतिक शरीर में है उन्हे साधन की आवश्यकता नहीं है उनकी शक्ति असीमित है वे भी प्रकृति के बन्धन से बंधे है। लेकिन सीमा मुक्त है। चेतना सब जगह अपना कार्य कर रही है चाहे भौतिक जगत हो या अभौतिक जगत। चेतना शरीर में है तो आत्मा है शरीर से मुक्त हो तो दिव्यात्मा, सूक्ष्मात्मा। जो सभी से परे है, साक्षी है यानि वह है परम चेतना। वही परमात्मा है।

◆◆◆

प्रसंग सात

मानसिक जगत और ऊर्जा

जहां तक देखा गया पहले विज्ञान जड़-चेतन को अलग-अलग मानता था। लेकिन आज ऐसा नहीं है। विज्ञान कहता है सब ऊर्जा है कोई पदार्थ जड़ नहीं है। यही बात तो हजारों वर्ष पूर्व हमारे तत्ववेत्ता कह चुके थे। जड़ हो या हो चेतन सभी में ऊर्जा है जिसे चेतना कहते हैं। जब कोई भी सिद्ध साधक मन को एकाग्रता की गहन अवस्था में ले जाता है तब चमत्कार हो जाता है। चुंकि जो भी चमत्कार होता है प्रकृति के नियम के तहत ही होता है। लेकिन हमारी बुद्धि और ज्ञान से परे होने के कारण उसे हम चमत्कार मान लेते हैं। चेतन ऊर्जा का प्रवाह हर मनुष्य के अन्दर स्वाभाविक रूप से होता रहता है। लेकिन किसी घटना-दुर्घटना अथवा जन्म-जन्मान्तरों के साधना के कारण वह विशेष रूप से सक्रिय हो जाता किसी न किसी के अन्दर। जब वह व्यक्ति संकल्प शक्ति द्वारा अथवा एकाग्र शक्ति द्वारा मन को विशेष उद्देश्य अथवा वस्तु पर केन्द्रित करता है तब जो परिणाम आते हैं उसे हम चमत्कार कहते हैं। लेकिन उसके लिए सामान्य सी बात होती है।

साठ के दशक में भ्रमणकाल के दौरान मैं कुछ दिन रूद्रप्रयाग में प्रवास कर रहा था। पास में एक शिव मंदिर था अक्सर वहीं जाता था। कुछ साधु-सन्त भी रहते थे उस मंदिर के आस-पास स्वाभाविक था परिचय होना।

एक दिन मन नहीं लग रहा था घर-परिवार की बरबस याद आने लगी। उस समय ऐसी कोई व्यवस्था नहीं थी कि घर के बारे में जान सके। मंदिर के पुजारी जिनका नाम था भोलागिरी। सज्जन और मिलनसार व्यक्ति थे और महादेव के परम भक्त भी थे। मुझे उनसे सत्संग करना अच्छा लगता था। उनकी नजर जब मेरे ऊपर पड़ी तो पूछ बैठे- क्या बात है बेटा इतने

उदास सा क्यों दिख रहे हो? मैंने कहा- हां बाबा काफी समय हो गया घर का हालचाल नहीं जान पाया। पत्र तो भेज दिया पता नहीं मिला होगा कि नहीं।

बाबा हंसते हुए बोले- बस इतनी सी बात है, क्यों घबड़ाते हो मैं व्यवस्था कर देता हूं। मुझे आश्चर्य हुआ बाबा क्या व्यवस्था करा पायेंगे। मैं कुछ समझता बाबा मंदिर में गये। तांबे की लुटिया में जल लेकर बाहर आ गये और बोले- महादेव का चढ़ा जल दोनों हाथ में और सिर पर लगा ले और अपनी आंखे बन्द करके अपने दरवाजे का स्मरण करो और सोचो कि तुम दरवाजे के पास खड़े हो। दरवाजा साफ-साफ दिखने लगे तब प्रवेश करना। इतना कह कर बाबा ने मेरे भ्रूमध्य में अपने अंगूठे से स्पर्श किया एक तेज गर्मी का एहसास सा हुआ जैसे कोई गर्म वस्तु का स्पर्श हुआ। फिर मैंने अपने को घर के मुख्य दरवाजे पर पाया। ऐसा लगा मैं सशरीर खड़ा हूं। अपने भौतिक शरीर का ज्ञान ही नहीं रहा।

दरवाजा बन्द था। जैसे ही घर के अन्दर जाने को सोचा वैसे ही अन्दर पहुंच गया। जहां जाने को सोचता तुरन्त उस स्थान को देखने लगता। किसी भी प्रकार का अवरोध नहीं मालूम पड़ रहा था। मैंने परिवार के सभी लोगों को देखा। सब ठीक लगा। घर के सदस्य अपने-अपने कार्य में व्यस्त थे। मेरा जो कमरा था उसमें ताला बन्द था। उसके अन्दर जाकर देखा सब वैसा का वैसा ही पड़ा रहा। सारा सामान जैसे मैं छोड़ कर आया था। इच्छा हुई मां का दर्शन कर लूं। भगवती के मंदिर में गया शायद दादाजी अभी-अभी पूजा करके गये थे धूपबत्ती की भीनी-भीनी सुगन्ध मंदिर के चारो तरफ फैली थी। मां की प्रतिमा के पीछे हल्का-हल्का प्रकाश सा दिख रहा था। वह शायद ऊर्जा वलय था। तभी मंदिर में किसी भक्त ने घण्टा बजा दिया। मेरा ध्यान भंग हो गया। जब आंखे खोला तो एक बार तो विश्वास ही नहीं हो रहा था कि मैं घर पर था और यहां कैसे। जब मन सामान्य हुआ तब लगा मैं तो घर से काफी दूर हूं। लेकिन घर-परिवार को देख कर मन शान्त हो गया। सामने बाबा बैठे मुस्कुरा रहे थे बोले- देख आये अपने घर-परिवार को, मन शान्त हो गया।

मैंने कहा- हां बाबा। लेकिन इसका रहस्य क्या है? मैं तो चाहकर भी ऐसा नहीं कर सकता।

बाबा बोले- यह एकाग्रता का फल है। चेतना शक्ति यानि चेतन ऊर्जा हर समय प्रवाहित होती रहती है। मैं अपने को एकाग्र कर अपनी चेतन ऊर्जा से तुम्हारी चेतन ऊर्जा को सक्रिय कर दिया। जिससे तत्काल तुम्हारा मन एकाग्र हो गया उस एकाग्रता के कारण। तुम्हारा सूक्ष्म शरीर तत्काल तुम्हारे घर के सामने पहुंच गया। तुमने जो कुछ भी देखा वह सूक्ष्म शरीर के कारण। सूक्ष्म शरीर चेतना का ही रूप है। तुम मुझे अक्सर ध्यान की अवस्था में देखते हो।

मैंने कहा- हां।

बाब बोले- बस ध्यान करते-करते इस सिद्धि को प्राप्त किया भोलेबाबा की कृपा से।

चेतना के विषय मैं जानने की उत्सुक्ता तभी से जागृत हुई। इस अपार शक्ति को कैसे जाना जा सकता है और कैसे सक्रिय किया जा सकता। इस पर मैंने गहन शोध के साथ-साथ अभ्यास भी किया। जिसे हम जड़ कहते हैं। उसमें सुप्त चेतना है। वह धीरे-धीरे अपना कार्य करती है जैसे वृक्ष आदि और जिसे हम चेतना कहते हैं वह जाग्रत जड़ है। जब कोई जड़ संज्ञावाचक हो जाता है और जो तत्व या पदार्थ क्रियाशील रहता है उसे हम चेतन की संज्ञा दे देते हैं। मूल में तो दोनों एक ही हैं। मूल में कोई भिन्नता नहीं है। चेतना शक्ति क्रमशः अपना कार्य करती रहती है।

जो जड़ है वह चेतन भी है और जो चेतन है वह जड़ भी है। जब आप पदार्थ की गहरायी में जायेंगे अथवा प्रवेश करेंगे तब आप पायेंगे कि पदार्थ का अस्तित्व है ही नहीं केवल ऊर्जा है। अणु के विस्फोट से केवल ऊर्जा ही रह जाती है। परमाणु के विस्फोट से रह जाते हैं इलेक्ट्रान, प्रोटान, और न्यूट्रान के विद्युत चुम्बकीय कण। लेकिन वैज्ञानिकों ने विद्युत कण के स्थान पर क्वान्टा शब्द का प्रयोग किया। कण शब्द पदार्थ बोधक है। जो पदार्थ की सीमा के बाहर है वह है क्वान्टम यानि ऊर्जा तरंग यानि ऊर्जा अतिसूक्ष्म होकर तरंग के रूप में परिणत हो जाती है।

जब साधक उच्चावस्था को प्राप्त करता है तो उसकी चेतना अति सूक्ष्म और शक्तिशाली हो जाती है। उसके संकल्प मात्र से वह कहीं भी प्रगट हो सकता और कुछ भी कर सकता है।

मैं भ्रमणकाल में जिन सिद्धावस्था प्राप्त साधकों से मिला। अपने पुस्तकों में वर्णन किया। उन्हे कैसे प्राप्त हुई सिद्धि। कुछ को तो सद्गुरु की कृपा से जिनकी साधना जन्म-जन्मान्तरों से चली आ रही है। कुछ को आघात लगा सामाजिक या भावनात्मक जिससे उनकी चेतन ऊर्जा सक्रिय हो गयी। उन्हे पिछले जन्म का ज्ञात हो गया। वैसे भारत में कुछ प्रसिद्ध साधक भी हुए उनके अन्दर विलक्षणता बचपन से ही देखने को मिली। लेकिन उन्हे ज्ञात नहीं हुआ। जब ज्ञात हुआ तो दुनिया से विरक्त हो गये और अपने में लीन हो गये। जैसे रामकृष्ण परमहंसदेव, विवेकानन्द, बुद्ध, महावीर और अन्य तीर्थंकर, बाल्मिकी, वामदेव और बहुत सारे साधक।

क्योंकि यह शरीर जड़ है चेतना की गति नैसर्गिक है जैसे अन्य सामान्य प्राणी में होता है। बुद्धि, विचार, मन, विकास आदि सब चेतना के कारण होता रहता है। लेकिन चेतना शक्ति का क्रम विकास कैसे किया जाये उसके लिये प्राचीन काल से ही खोज का कारण था मानव तन। मानव इस जगत में विशेष प्राणी है। उसमें सुख-दुख और आगे बढ़ने की प्रबल शक्ति है। तो उसने सोचा चेतन ऊर्जा को और सक्रिय किया जाये। इसलिए साधना के सात चरण बने। ये चरण साधकों की अनुभूति और उनकी सतत साधना का फल है।

साधना के सात चरण ही सात चक्र हैं और हैं सात द्वार। जिसे क्रमशः सक्रिय किया जाता है या खोला जाता है। उसका नाम है कुण्डलिनी। कुण्डलिनी साधना के माध्यम से क्रमशः सातों चक्रों को सक्रिय किया जाता अथवा खोला जाता है। उसके द्वार को जाग्रत करने के लिए चक्रों के ध्यान, मंत्र, आसन आदि हैं।

कुण्डलिनी साधना का प्रथम चरण ही है ऊर्जा का ज्ञान। बिना चेतना शक्ति के ज्ञान से हम चक्रों का भेदन नहीं कर सकते।

अब मूल विषय पर विचार कर लेते हैं। आज का विज्ञान अपनी खोज एवं विश्लेषण की सीमा पर पहुंचा तो उसने पाया कि जगत अथवा ब्रम्हाण्ड में जो ठोस दिखता है वह एक प्रकार से ऊर्जा ही है और उनमें बराबर स्पन्दन (वायब्रेशन) हो रहा है। कोई वस्तु ठोस नहीं है सब ऊर्जामय है। ऊर्जा के अलावा कुछ भी नहीं है। अध्यात्म जब अपने चरम

पथ पर पहुंचा तब उसे चेतना के अलावा कुछ भी नहीं मिला और चेतना का घनीभूत ही आत्मा है। आत्मा ही चेतन ऊर्जा है। विज्ञान और अध्यात्म की चरम उपलब्धि एक ही है। एक की उपलब्धि ऊर्जा है और दूसरे की उपलब्धि आत्मा है यानि चेतन शक्ति। आत्मा ही ऊर्जा है और ऊर्जा ही आत्मा है।

यही उपलब्धि कहीं न कहीं विज्ञान और अध्यात्म की दूरी को खत्म कर देता है। पदार्थ और ऊर्जा के फासले समाप्त कर देता है। जड़ और चेतन के फासले को भी समाप्त कर देता है। जड़ और चेतन को हम जब तक अलग-अलग समझेंगे न तो हम अध्यात्म को स्पर्श कर पायेंगे और न ही विज्ञान स्पर्श कर पायेगा। क्योंकि जड़-चेतन में भेद है ही नहीं। सब चेतन है। जगत का हर पदार्थ चेतनमय है और आत्मा परम चेतन है और मन चेतन है। परम चेतनमय का सक्रिय और महत्वपूर्ण रूप मन है।

मन की कई अवस्थाएं हैं। मन, बुद्धि, चित्त, और अहंकार ये बाह्य रूप से अलग-अलग दिखलायी पड़ते हैं वास्तव में अलग नहीं है। वे भिन्न नहीं है अभिन्न है। मन अनेक रूप से व्यवहार करता है। जब ये भाव आ जाता है कि वही सब कुछ है तो वह अहंकार कहलाता है। जब मन किसी बात पर सोच-विचार करता है तो उसे बुद्धि कहते हैं। जब मन विचार रहित होकर किसी भावना के प्रवाह में बहता है तो उसे चित्त कहते है। जब मन किसी विशेष उद्देश्य को लेकर सोचता है तो उसे मति कहते हैं। मति का ही सघन रूप विवेक है। जब मन निरूद्देश्य सोचता है और दिवास्वप्न देखता है तब उसे भी चित्त कहते हैं। आत्मा की विक्षुप्त अवस्था को ही मन कहते हैं। जब मन शान्त होता है उसमें किसी भी प्रकार की विक्षुप्तता नहीं रहती। तब वह आत्मा कहलाता है।

कहने की आवश्यकता नहीं है कि आत्मा की अस्थिर अवस्था मन है और मन की शान्ति व निर्विकार अवस्था है आत्मा। बस यही अन्तर आत्मा और मन में है। मन और आत्मा चेतना के ही रूप हैं। जो रूप शान्त है वह आत्मा है और जो अस्थिर है और विक्षुब्ध रूप है वह मन है। हमारे अन्दर चेतना का अस्थिर और चंचल भाग अधिक है। इसलिए मन के अस्तित्व का बोध हर पल होता रहता है।

आत्मा स्थिर है और है तटस्थ। इसलिए उसका बोध साधना के क्रमिक विकास से ही सम्भव है जिसे आत्म बोध कहते हैं। चंचल मन के कारण हमारे भीतर हर समय विचारों, भावों और संकल्पों आदि के तूफान उठते रहते हैं। जब तक हमारे अन्दर अस्थिरता बनी रहेगी। मन शान्त नहीं होगा। यह विभिन्न कामनाओं और वासनाओं में उलझा ही रहेगा। एक इच्छा खत्म तुरन्त दूसरी इच्छा सामने खड़ी मिलेगी।

मन की चंचलता कैसे समाप्त हो या मन कब-कैसे शान्त सरोवर जैसा होगा और आत्मा के अस्तित्व का बोध कैसे होगा? यह सम्भव है कुण्डलिनी साधना का क्रमिक विकास से और उसका मूल है गहन ध्यान का अभ्यास। जो धीरे-धीरे सधता है। काफी अभ्यास के बाद ध्यान का सूत्र हाथ में लगता है। ध्यान में मन का अस्तित्व डूब जाता है और हो जाता है एक शान्त सरोवर की तरह। तब उसमें कमलरूपी आत्मा का बोध होता है यानि अनुभूति होती है। तब हमें यह अनुभव होता है कि हम आत्मा हैं। हम आत्म स्वरूप हैं। यही आत्म बोध है एक परम अवस्था, बुद्धत्व की अवस्था, शान्त निर्विकार सूर्य के उदय होने जैसा। तब पता चलता है शरीर केवल माध्यम है। प्रकृति के नियम से बंधा हुआ है। केवल साधना के विकास क्रम का साक्षी है और है परम सहयोगी। लेकिन कुण्डलिनी साधना में शरीर, मन, आत्मा तीनों एक ही हैं। बस अस्तित्व अलग-अलग है। क्योंकि एक के द्वारा ही दूसरे के अस्तित्व का ज्ञान और बोध होता है। जैसे वृक्ष उसके फल, फूल आदि एक ही हैं यानि एक सत्ता के विभिन्न रूप हैं। उसी प्रकार चेतना ही शरीर, मन, आत्मा का विभिन्न रूप है। चेतना एक ही है। लेकिन उसका बोध भिन्न-भिन्न है। मूल में चेतना का ही खेल है। वह अपने को विभिन्न रूपों में अभिव्यक्ति करती रहती है।

जिस प्रकार शरीर और आत्मा में हम भेद समझते हैं। लेकिन मूल में वह एक ही है। एक स्थूल है और दूसरा सूक्ष्म अगोचर। उसी प्रकार विचार है। आत्मा और परमात्मा के बीच जो अन्तर करता है वह है हमारा विचार। एकमात्र विचार ही दो के बीच फासला पैदा करता है। इसलिए कि विचार एक साथ समग्र को एक बार में समेट नहीं सकता। विचार की गति अति तीव्र है। हमारा मन विचार के छोटे से अंश को ही पकड़ पाता है। जिस अंश का वह खण्डित अंश होता है। उस खण्डित अंश से हम सत्य

को खोजते हैं। इसलिए जीवन, सत्य सब खण्ड-खण्ड सा समझ में आता। जिस सत्य को हम जानने का प्रयास करते हैं वह पूर्ण नहीं होता। वह खण्डित सत्य होता है। आत्मा वह है जो हमारे शरीर के अन्दर चेतना रूप में है और परमात्मा वह है जो बाहर खड़ा है। हम कितना भागेंगे। भागकर जायेंगे कहां। किसी भी रास्ते से भागेंगे वह रास्ता परमात्मा की ओर ही ले जायेगा। इसलिए बुद्ध बन कर शान्त बैठ जाना है, विचार रहित होना है। जब हम विचार शून्य होंगे तभी पूर्ण सत्य को जान पायेंगे यानि चेतना के हर प्रवाह को जानने लगेंगे। वह हर जगह दिखने लगेगा परम चेतना के रूप में।

ध्यान हमें निर्विचार की अवस्था में ले जाता है। ध्यान की गहन अवस्था का प्रथम चरण है मन को एकाग्र करना। मन की शक्ति अनन्त है। उसे एकाग्रता द्वारा ही साधा जाता है। उसके बिखराव को एक विशेष बिन्दु पर केन्द्रित करना होता है उसके लिए यंत्र, प्रतिमा आदि का प्रयोग होता है। कुण्डलिनी साधना में षट्चक्रों के यंत्र के प्रयोग का विधान बना। उसके बाद मंत्र, जप आदि का। क्योंकि हमारा मस्तिष्क जब तक किसी एक पर केन्द्रित नहीं होगा तब तक एकाग्रता सम्भव नहीं है। प्रतिमा पूजन, यंत्र पूजन का रहस्य यही है कि बिखरे मन को एक जगह केन्द्रित किया जाये ताकि ध्यान सहज हो सके। ध्यान हमें विचार रहित करता है। जब हम ध्यान द्वारा विचार से निर्विचार की अवस्था में पहुंचते हैं तब हमें सत्य समग्र रूप से दिखलायी पड़ता है। एक में अनन्त और अनन्त में एक।

कुण्डलिनी साधना का यह प्रथम चरण है। सर्वप्रथम मन को एकाग्र करना जब मन केन्द्रित होगा तब ध्यान की परम गहरायी में उतरना सरल हो जाता है। तब हम सब जगह स्वयं को ही पाते हैं कण-कण में। वृक्षों, पहाड़ों, नदियों, अनन्त आकाश, हर जगह स्वयं की अनुभूति होती है, स्वयं के विराट होने की। जिस तरह चेतना सब जगह व्याप्त है उसी तरह हम स्वयं को पाते हैं। तब हम निःशब्द हो जाते हैं। बुद्ध की तरह सरल, निःशब्द और सहज। तब शब्द नहीं फूटते मौन रह जाता है हमारा अस्तित्व। फिर कहीं बिखराव नहीं रहता। सब केन्द्रीभूत हो जाता है। सब कुछ स्वयं घटने लगता है यही विचार रहित साधक अवस्था है।

विचार शक्ति और शब्द

वैज्ञानिकों की अभी तक यही धारणा थी कि विचार का कोई भौतिक अस्तित्व नहीं होता। अब उन्हे यह धारणा बदलनी पड़ी और यह स्वीकार करना पड़ा कि विचारों का भी अपना ऊर्जा वलय होता है। उसमें विशेष ऊर्जा होती है जितनी ज्यादा विचार शक्ति प्रबल होगी उसका वलय उतना घना और दूर तक जाता रहता है। हम जैसे गहन विचार करते हैं हमारे चारो तरफ एक विशेष विचार वलय तरंगित हो उठता है। जब हम विचार करते हैं तब वह शब्द रूप में बाहर आते हैं। तामसिक विचार होंगे तब तामसिक शब्द बाहर आयेंगे। सात्विक विचार होंगे तब सात्विक शब्द बाहर आयेंगे। इसका प्रभाव सर्वप्रथम हमारे मुखमण्डल पर पड़ता है। तामसिक विचार से हमारा मुख मण्डल तेजहीन हो जाता है और सात्विक विचार से हमारा मुख मण्डल तेज से भर जाता है। यही कारण है कि साधना, जप-पूजा और ध्यान करने वालों के मुखमण्डल में एक सात्विक तेज आभा दिखती है। पुराणों में देवताओं को प्रसन्न और सुन्दर दिखलाया गया और राक्षसों को काला और भयानक स्वरूप वाला। ये सात्विक और तामसिक विचार के प्रतीक हैं। हम जैसा विचार करेंगे हमारा हाव-भाव और चरित्र वैसा ही हो जाता है।

शब्द विज्ञान के अनुसार स्वर और वर्ण की शक्तियां अलग-अलग है। स्वर में ऋण विद्युत चुम्बकीय शक्ति होती है। जबकि वर्ण में धन विद्युत चुम्बकीय होती है। इन दोनों के समन्वय शक्तियों से शब्द का निर्माण होता है। तंत्र में १२ स्वरों को शिव का प्रतीक बतलाया गया है। यही १२ रूद्र हैं और ३६ वर्ण शक्ति ही वर्ण मातृकाएं हैं। देखा जाये तो जगत और ब्रम्हाण्ड के निर्माण में ये ३६ तत्व ही हैं।

प्रत्येक वर्ण में एक-एक तत्व है। तंत्र शास्त्र के अनुसार शब्द ब्रम्ह है और १२ स्वर शक्ति और ३६ वर्ण मातृकाएं शक्ति यानि परम चेतना का विराट समन्वय रूप है। इसी से शब्द जगत की रचना हुई है।

शिव-शक्ति के मिलन भाव से ३६ तत्वों की उत्पत्ति हुई है। जिनसे एक ओर जगत की सृष्टि और दूसरी ओर ३६ तत्व शब्द निर्माण की दिशा में वर्णों के रूप में प्रगट हुए है।

शब्द के रहस्यमय प्रभाव को जानने के लिए व्यापक शोध कार्य चल रहा है। देखा जाये तो प्रत्येक अक्षर का अपना वर्ण है, रंग-रूप है, तरंग है, गति और भाव भी है। अक्षरों के संयोजन से शब्द का निर्माण होता है। जिस शब्द में जिस अक्षर की संख्या अधिक होगी उस अक्षर का वर्ण, रूप, रंग और ऊर्जा तरंग अधिक होती है।

जैसाकि विज्ञान कहता है प्रकाश की गति एक सेकेण्ड में १,८०,०००कि.मी. होती है। वह विद्युत शक्ति के वेग का एक सेकेण्ड में २,८८,०००कि.मी. होता है और विचारों की गति २२,६५२० प्रति सेकेण्ड होती है। यह तीव्रता तो बाह्य जगत के विस्तार की है और शरीर के अन्दर जहां किसी भी प्रकार की रूकावट नहीं है। उसमें कितनी तीव्रता होगी एवं उसके परावर्तन की क्या गति होगी? क्या आपने कभी सोचा? हम लोगों के जीवन में एक छोटे से शब्द का कितना प्रभाव पड़ता है। जैसे कड़ा शब्द मन को भयभीत करता है, करूणारूपी शब्द मन को करूणा से भर देता है, कठोर शब्द क्रोध लाता है, प्रिय शब्द प्रेम बढ़ाता है, विनोदी शब्द हंसाता है, मधुर शब्द मन को प्रसन्न करता है, असत्य शब्द निरादर करता है और सत्य शब्द प्रतिष्ठा दिलाता है।

कहने की आवश्यकता नहीं है कि शब्द से हमें ऊंच-नीच की दशा प्राप्त होती है। शब्द से हमें उत्साह प्रशंसा की प्राप्ति होती है। शब्द से भक्ति भाव की प्राप्ति होती है, शब्द से ही मित्र-शत्रु बनते हैं। शब्द से ही हमारा बन्धन और मुक्ति है। शब्द से ही सिद्धार्थ गौतम बुद्ध बन गये। शब्द से ही तुलसीदास गोस्वामी तुलसी दास हो गये। वेश्या के एक शब्द से सूरदास कृष्ण भक्ति में ऐसे डूबे कि फिर कभी वापस नहीं निकले।

विचार संयम

संयम शब्द में 'यम' धातु है। जिसमें सम उपसर्ग लगाने से संयम शब्द बना है। संयम शब्द से यही अर्थ निकलता है कि किसी पदार्थ अथवा विषय पर लगातार विचारों का स्फुरण होता रहे।

हर एक मनुष्य का विचार संयम अपने आप ही होता रहता है। किन्तु यह संयम यदि ज्ञानपूर्वक होगा तो उसका सत्य स्वरूप प्रगट होता है। विचार शक्ति का स्फुरण होते ही इच्छा शक्ति का प्रभाव विचार पर पड़कर

संकल्प बनता है। बार-बार एक ही विषय पर विचार को अन्तर्मुख स्थिर करना संकल्प कहा जाता है। उसमें किसी प्रकार का व्याघात होने पर वही विचार चंचल होकर विकल्प कहलाता है यानि अस्थिर विचार ही विकल्प और सद्विचार ही संकल्प है। इन दोनों के मिश्रण को संकल्प-विकल्प कहते हैं। जिसमें हानि के अलावा कुछ प्राप्त नहीं होता है। भिन्नार्थक संकल्पों का कभी भी संयम नहीं हो सकता। इसलिए योग साधना में संकल्प-विकल्प के त्याग पर जोर दिया गया है। संकल्प अथवा विकल्प से हमारे विचार संयमित नहीं हो सकते।

आकर्षण-विकर्षण, कार्य-अकार्य आदि सब विचार शक्ति पर निर्भर करता है। हमारा जीवन भी तो विचार ही है। योग में छठवां चरण सविकल्प समाधि है। सविकल्प समाधि तक विचार कायम रहता है। क्योंकि इस समाधि में प्रवेश करते समय संकल्प होता है कि उक्त समय तक उत्थान होना है और विचार संयम तथा नियमित साधना करना है और उस समय उत्थान होता भी है।

विचार की दृढ़ता या कार्य का दृढ़ विचार यही संकल्प है। इसलिए विचार ही मनुष्य का जीवन है और विचार शून्यता ही मरण है यानि विचार का सद्भाव जीवन है और विचार का अभाव ही मरण है।

जिस प्रकार विशाल वृक्ष का नाश होने पर भी उसका सूक्ष्म बीज रहता है। उसी प्रकार विचार की सूक्ष्मावस्था बीजभूत में रह कर मनुष्य का फिर जन्म होता है यानि मनुष्य अपने पूर्वजन्म के विचार को लेकर ही फिर जन्म लेता है। लेकिन निर्विकल्प समाधि में सूक्ष्म विचार के बीज का भी लय हो जाता है। ज्ञान की परम अवस्था ही निःसंकल्प है। निःसंकल्प योगी का पुनर्जन्म नहीं होता। क्योंकि उनमें विचार शून्यता नहीं होती बल्कि विचार पर परिशीलन से निःसंकल्प हो जाने पर वे जन्म-मरण से मुक्त हो जाते हैं यानि परम धाम को हो जाते हैं उपलब्ध।

भगवान श्रीकृष्ण का कथन है 'यद्गत्वा न निवर्त्तन्ते तद्धाम परमं मम' जहां जाकर पीछे लौटना नहीं होता वह मेरा परमधाम है। सामान्य मनुष्य विचार संयम करना नहीं जानता। उसके अच्छे-बुरे विचार बीज रूप होकर पुनर्जन्म के कारण बनते हैं। इसलिए कहा जाता है वह व्यक्ति कितना

भाग्यवान है पिछले जन्म में अच्छा कर्म किया होगा। किसी दुखी प्राणी को देखकर आप कहेंगे पिछले जन्म में अच्छा कर्म नहीं किया है। इस जन्म में भोग रहा है। विचार ही से मनुष्य का कर्म बनता है और बनता है जीवन।

विचार ही मनुष्य का जीवन है तो उसके द्वारा मनुष्य चाहे जैसा अपने को बना सकता है। इसलिए वर्तमान जीवन और अगले जीवन के लिए विचार संयम की आवश्यकता है। हमारे विचार ही शब्द रूप में बाहर निकलते हैं। विचार का भौतिक रूप अथवा प्रगट रूप शब्द ही है। शब्द रूप में प्रगट होकर विचार पुनः विचार रूप धारण कर लेता है। शब्द की अपनी शक्ति है जिसके आधार पर मंत्र विज्ञान का निर्माण हुआ। मंत्र विज्ञान के मूल में मंत्र शक्ति है। मंत्र शक्ति का संयोजन-नियोजन, दृढ़ संकल्प, दृढ़ विचार और दृढ़ भावना का आश्रय लेकर किया जाता है तभी सफलता मिलती है।

कुछ पल के लिए आप सोचें। विचारों के कितने बड़े तूफान को हमारा मन, दिमाग और शरीर हर क्षण झेल रहा है। जिसका हमें पता ही नहीं है। शब्द प्रगट किया गया विचार है। अप्रगट शब्द की भी अपनी गति होती है। अपना रूप-रंग होता है जिसको हम विचार कहते हैं। अप्रगट विचार यानि चिन्तन-मनन अथवा सोचना। जब हम किसी भी विषय पर सोचते रहते हैं और विचार मंथन करते रहते हैं उस समय एक विशेष प्रकार का वलय बनने लगता है और जिस स्थान पर यह सब करते हैं वहां उस स्थान पर हमारे मस्तिष्क के चारो तरफ वायु मण्डल में, वातावरण में ऊर्जा फैलती रहती है और हमारे अनुपस्थिति में काफी समय तक विद्यमान रहती है। यही कारण है कि जो साधक साधना-उपासना करता है उस स्थान पर अन्य को प्रवेश नहीं करने देता ताकि उसके साधना की ऊर्जा और विचार ऊर्जा केवल उसकी रहे। यही कारण है कि साधक कभी मनुष्यों से मिलना पसंद नहीं करता क्योंकि सामने वाला विचारों का तूफान लेकर बैठा है। शब्द रूप से तो जहर उगलेगा ही और मानसिक जहर भी छोड़ जायेगा।

विचारों का प्रभाव इतना ज्यादा पड़ता है जिसका हमें आभास भी नहीं होता। कभी-कभी किसी व्यक्ति को देखकर मन घबड़ाने लगता है।

क्योंकि उसकी विचार तरंगे आपके विचार तरंगों के अनुकूल नहीं होते। कभी-कभी किसी से मिलते हैं तो अच्छा लगता है। उससे बार-बार मिलने का मन करता है। आपको ज्ञात होना चाहिए कि हम लोगों के चारो तरफ विचार तरंगे चक्कर लगाती रहती हैं। हर समय, हर क्षण हमारे अन्दर प्रवेश करती रहती। अगर कोई व्यक्ति प्रतिभाशाली, विद्वान और साधक है तो उसके अन्दर से विचार तरंग अधिक निकलेगी। जिस प्रकार फूल से सुगन्ध निकलता है। चारो तरफ का वातावरण प्रफुल्लित हो जाता है और उसी प्रकार उस व्यक्ति के साथ होता है जो लोग उसके चारो तरफ ही रहना पसन्द करते हैं। उस व्यक्ति का सान्निध्य उन्हे अच्छा लगता है। अगर कोई व्यक्ति मूर्ख है, तामसिक है तो उसकी तरंगे भी निम्न होंगी। वह अच्छे वातावरण में भी अपने आपको दीन-हीन समझेगा, उदास रहेगा। यह सारा खेल विचारों का है हम जैसा विचार करेंगे वैसा ही होंगे यानि वैसा ही बनते जायेंगे। विचार को साधने के लिए एकाग्रता आवश्यक है।

एकाग्रता कैसे साधें

एकाग्रता का परिपक्व स्वरूप यह है कि विचारों पर नियंत्रण स्थापित किया जाये। उन्हे अनुपयोगी उलझनों से निकाल कर मात्र विधेयात्मक प्रयोजनों में नियोजित किया जाये यह सतत अभ्यास से प्राप्त किया जा सकता है।

अध्यात्म जगत में एकाग्रता को अत्यधिक महत्व दिया गया है। साधना की सफलता ज्यादातर एकाग्रता पर निर्भर करती है। एकाग्रता जितनी गहरी होगी साधना उतनी प्रबल होगी।

योग में प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि के रूप में चार चरणों में बांटा गया है। उसके मूल में एकाग्रता की साधना है। चेतना के चार भाव को मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार के अन्तःकरण चतुष्टय की संज्ञा दी गई है। लेकिन ध्यान देने वाली बात यह है कि चेतना के चार स्वरूप व्याख्याएं होते हुए भी वस्तुतः एक ही सत्ता की विवेचनाएं हैं। उसी प्रकार एकाग्रता को साधने के लिए योग साधना में राजयोग, हठयोग, भक्तियोग और लययोग ये चारो दिशायें हैं किसी भी दिशा में जा सकते हैं। लेकिन उसका मूल केन्द्र एक ही है जिसे एकाग्रता कहा जा सकता है। जिस प्रकार एक

गोल घेरे को चारों दिशाओं से खींची गई सीधी रेखा एक केन्द्र पर ही मिलती है। उसी प्रकार योग साधना अथवा कुण्डलिनी साधना के मूल उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए एकाग्रता जरूरी है।

कुण्डलिनी साधना में मैंने ज्यादातर समय एकाग्रता को साधने में दिया। क्योंकि बिना एकाग्रता की साधना के प्रगति पाना सम्भव नहीं था और ज्यादातर साधक अपनी साधना की प्रगति और सफलता का निर्णय एकाग्रता के स्तर की मात्रा को देख कर ही लगाते है।

कहने की आवश्यकता नहीं है चाहे योग साधना हो या तंत्र साधना सभी में एकाग्रता का महत्वपूर्ण स्थान है। मैंने अपने साधना काल में जिन अशरीरी दिव्य आत्माओं से सम्पर्क करने का प्रयास किया उसमें एकाग्रता का महत्वपूर्ण स्थान रहा। मेरा बहुत सारी दिव्य आत्माओं से सम्पर्क रहा। काल के प्रवाह में धीरे-धीरे उनका सान्निध्य तो कम होने लगा। लेकिन अपने जीवन के अन्तिम पड़ाव में केवल रोहिणी का सान्निध्य सदैव मिलता रहा और आज भी मिल रहा है।

एकाग्रता की शक्ति सर्वविदित है। केन्द्रीकरण और विकेन्द्रीकरण की प्रतिक्रिया में कितना अन्तर होता है। इसे कौन नहीं जानता। सूर्य के प्रकाश को लेंस के माध्यम से अग्नि पैदा की जा सकती है। उसी प्रकार चेतना के असीम ऊर्जा को एकाग्रता के माध्यम से केन्द्रीकरण कर असीम सम्भावनाएं पैदा की जा सकती हैं।

महाभारत में एक कथा प्रसंग के अनुसार राजा द्रुपद अपनी अतिगुणवती पुत्री द्रौपदी का विवाह किसी ऐसे समर्थ सहचर से करना चाहते थे जिसका भविष्य निर्मल और उज्जवल हो। जिसके अन्दर विपरीत परिस्थितियों में सफल जीवन जीने की क्षमता हो। ऐसा गुणवान व्यक्ति कौन हो सकता है? उसके क्या लक्षण होने चाहिए? इस सन्दर्भ में राजा द्रुपद मनीषियों से विचार विमर्श किये तो यही निष्कर्ष निकला कि बिखरी हुई मनःस्थिति के लोग प्रायः असफल ही होते हैं। जबकि एकाग्र चित्त के छोटे-छोटे कार्य में भी जुड़े रहने वाले लोग क्रमशः आगे बढ़ते ही रहते हैं और एक दिन सफलता को भी प्राप्त कर लेते हैं।

अन्ततः सर्वसम्मति से यही निर्णय हुआ कि द्रौपदी का विवाह ऐसे

व्यक्ति से किया जाये जो एकाग्रता के सत्प्रवृत्ति का अभ्यस्त सिद्ध हो। स्वयंवर रखने का प्रयोजन यही था जो लक्ष्य को भेद देगा द्रौपदी का वरण वही करेगा। मछली के आंख को भेद कर अर्जुन अपनी एकाग्रता की पराकाष्ठा को सिद्ध कर दिये। वे ही सर्वगुण सम्पन्न द्रौपदी का वरण करने में सफल रहे। विज्ञान इस बात को महत्व देने लगा है कि मनुष्य की तुच्छ दिखने वाली सत्ता वस्तुतः सम्भावनाओं से भरी-पुरी है! उसमें बीज रूप में सभी तत्व विद्यमान हैं जो सृजनकर्ता परम चेतना में है। मनुष्य की पूरी सत्ता एक नन्हे से शुक्राणु में बीज रूप में विद्यमान रहती है। विशाल वृक्ष का समूचा ढांचा एक छोटे से बीज में विद्यमान रहता है। प्रश्न तो यह है कि उसे विकसित होने का अवसर मिलना चाहिए। सामान्य क्षमता और विपरीत परिस्थितियों के रहते हुए भी संसार के महान युग पुरुष अनेक कठिनाइयों एवं अभावों से संघर्ष करते हुए अपने लक्ष्य की ओर उत्तरोत्तर बढ़ते ही रहे और अन्त में सफलता उनके कदम चूमी यानि प्रगति के उच्च शिखर को स्पर्श किया। इसमें उनकी प्रमुख विशेषता यही रही कि वे अपने मानसिक चिन्तन और शारीरिक श्रम को अभीष्ठ लक्ष्य की ओर पूरे उत्साह और एकाग्रता के साथ नियोजित किये।

कछुआ और खरगोश की कथा तो आप जानते हैं। कछुआ अपनी बुद्धि और क्रिया को एक ही दिशा में नियोजित किये रहा था और उससे अधिक समर्थवान खरगोश से आगे यानि अपने मंजिल तक पहुंच गया। खरगोश को इसलिए हार का सामना करना पड़ा क्योंकि चंचलता उसे घेरे रही और अपने समय तथा क्रिया-कलाप को अस्त-व्यस्त तरीके से बिखेरता रहा। जिसके कारण उपहास के साथ-साथ असफलता का भी सामना करना पड़ा उसे। अगर एकाग्रता और क्रमबद्धता का अभ्यास उसमें रहा होता तो कछुआ की तुलना में उसी को जीतने का अवसर मिलता। मनुष्य के जीवन में सफलता-असफलता के पीछे प्रायः यही तथ्य काम करता पाया जाता है।

"योगश्चित वृत्ति निरोधः" सूत्र में योग की परिभाषा चित्त वृत्ति के निरोध रूप में की गई है। चित्त की अवांच्छनीय प्रवृत्तियों में से एक है चंचलता। विशेष प्रयोजन के निर्धारित लक्ष्य की सीमा में रहकर विचार के मंथन की उपयोगिता का महत्व बतलाया गया है। योगी, वैज्ञानिक, कवि,

कलाकार, तत्वदर्शी अपने-अपने विषय में एक विशेष गति से चिन्तन करते हैं। परन्तु वह सीमाबद्ध होता है। चंचलता तो बुद्धिमान लोगों को भी मूर्खों की तरह असफल बनाती रहती है।

आत्मिक प्रगति के आंकाक्षी योगीजनों को शास्त्र में चंचलता के निरोध का अनुशासन मानने के लिए कहा गया है। जो ऐसा कर सकता है वही समर्थ होगा। सफलता के लिए यह प्रथम शर्त है। भौतिक या आध्यात्मिक दोनों क्षेत्रों में एकाग्रता का महत्वपूर्ण स्थान है।

अगर विचारपूर्वक देखा जाये तो चिन्तन क्षमता को प्रायः महत्व दिया जाता है। लोग ऐसे चिन्तन में उलझे रहते हैं जिसका वर्तमान परिस्थितियों के साथ कोई तालमेल नहीं होता। निरर्थक सोचते रहने से महत्वपूर्ण सामर्थ्य नष्ट होता रहता है।

एकाग्रता का परिपक्व स्वरूप यह है कि विचारों पर नियंत्रण स्थापित करना और उन्हे व्यर्थ की उलझनों से निकाल कर विशेष उद्देश्य की ओर प्रेरित करना है। कहने की आवश्यकता नहीं विचारों पर नियंत्रण रखने का अभ्यास ही एकाग्रता सिद्धि है। प्रगति पथ पर अग्रसर होकर अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए दो चरण बढ़ाने पड़ते हैं। एक का नाम है तन्मयता और दूसरे का नाम है तत्परता।

इसी को योग में मनोयोग और कर्मयोग भी कहते हैं। तन्मयता में विचार नहीं इच्छा और आकांक्षा की ललक जुड़ी होती है। इस ललक को भक्तियोग भी कह सकते है और साथ में इसे एकाग्रता की सिद्धि प्राप्ति का एक महत्वपूर्ण अंग भी कह सकते हैं।

उपलब्धियों पर सुख-सन्तोष निर्भर है और उपलब्धियां साधना से मिलती है। साधना का दूसरा नाम है एकाग्रता और एकाग्रता के दो अविच्छिन्न पथ हैं तन्मयता और तत्परता।

किसी भी क्षेत्र की सफलता के मूल में एकाग्रता ही होती है।

मनोनिग्रह

एकाग्रता साधने के पूर्व हमें मन के विषय में विचार कर लेना चाहिए। क्योंकि मन की अपार शक्ति जानना आवश्यक है। जहां ब्रम्हाण्ड

और उसके चारो ओर समान रूप से फैली हुई ब्रम्हाण्डीय ऊर्जा है उसे वैज्ञानिकों ने स्वीकार कर लिया। उनका कहना है कि एक पूरे ब्रम्हाण्ड में एक विशेष प्रकार की ऊर्जा समान रूप से फैली है जिसे ईथर कहते हैं। भारतीय योग उसे चेतन ऊर्जा कहता है। आज के वैज्ञानिकों के पास ब्रम्हाण्ड के अनेक प्रश्नों में से एक प्रश्न यह है कि मानवीय चेतना का मूल स्वरूप क्या है? उसका ब्रम्हाण्डीय चेतना से क्या सम्बन्ध है? क्या व्यक्त चेतना से परे मनुष्य किसी अव्यक्त चेतना से भी जुड़ा है? जो भौतिक पदार्थ अथवा जगत के नियमों से भी परे है। जो मनुष्य को प्राकृतिक नियमों से परे कहीं अधिक सूक्ष्म ऐसे पराभौतिक शक्तियां प्रदान कर देती है। जिनके फलस्वरूप वह दुर्लभ, अलौकिक और पारलौकिक सिद्धियों का स्वामी हो जाता है।

प्रश्न यह उठता है व्यक्त और अव्यक्त चेतना क्या है? अव्यक्त चेतना उसे कहते हैं जो निराकार है, जो अनुभव से परे है, जो किसी पदार्थ या किसी वस्तु या किसी अन्य साधन द्वारा व्यक्त न हुआ हो उसे अव्यक्त चेतना कहते हैं। व्यक्त चेतना वह है जो किसी वस्तु या किसी पदार्थ अथवा किसी अन्य साधन द्वारा प्रगट हो गयी हो या अभिव्यक्त हो गयी हो। चेतना का अभिव्यक्त रूप केवल मनुष्य है जिसके द्वारा चेतना के व्यक्त रूप को देखा जा सकता है। जो चेतना को व्यक्त करे वही व्यक्ति है। चेतना की अभिव्यक्ति मन द्वारा होती है। योग विज्ञान की दृष्टि में जो पराचेतना है, वही परम सत्य है और मनुष्य का जाग्रत मन उस विराट अवचेतन मन का एक छोटा सा भाग है। अवचेतन मन का एक बड़ा अंश किसी रहस्यमय आवरण में बराबर छिपा रहता है। जिसे विज्ञान परासाईकिक माईण्ड कहता है और योग उसे अवचेतन मन कहता है जिसमें अपार रहस्यमयी शक्तियां भरी हैं।

अभी तक विज्ञान इलेक्ट्रान के विश्लेषण में नितान्त असमर्थ है। उसके पास अभी तक देखने का कोई आधुनिक यंत्र नहीं है। लेकिन खोज जारी है। विज्ञान की दृष्टि में इलेक्ट्रान उसी प्रकार रूपहीन है जैसे भारतीय धर्म की दृष्टि में ब्रम्ह रूपहीन है। पदार्थ को, भौतिक सत्ता को सर्वोपरि मानने वाले वैज्ञानिक आज कह रहे हैं भौतिक सत्ता से भी परे कोई अभौतिक सत्ता भी है जो शान्त, नीरव और चैतन्य है। वह अपना कार्य

कर रहा है जिसका हमें आभास नहीं होता। अगर इस सत्ता में प्रवेश हो जाये तो विज्ञान के एक नये युग का प्रारम्भ हो जायेगा जो भौतिक चेतना के स्तर पर नहीं हो पा रहा है। वह अभौतिक सत्ता बाह्य जगत में है कि नहीं यह एक प्रश्न है। लेकिन उसके द्वारा मानव का अवचेतन मन है। वैज्ञानिकों का मानना है मन के दो रूप हैं। एक है चेतन और दूसरा है अवचेतन। अवचेतन, मन का दो तिहाई भाग है, जो सक्रिय है। मनुष्य का दैनिक क्रियाकलाप उसी का परिणाम है।

परामनोविज्ञान का गहरायी से अध्ययन करने के बाद वैज्ञानिकों को ज्ञात हुआ कि अवचेतन मन में अकल्पनीय शक्तियां भरी पड़ी हैं। उन शक्तियों का अनुमान भी लगाना असम्भव है। जब ये शक्तियां किसी कारणवश अवचेतन मन की सीमा लांघ कर चेतन मन में प्रगट हो जाती हैं तो उनके अविश्वसनीय और आश्चर्यजनक चमत्कार लोगों को हतप्रभ सा कर देते हैं। ऐसे कार्य को हम दैवीय चमत्कार की संज्ञा देते हैं। लेकिन वह अवचेतन मन की ही असाधारण क्रियाएं हैं।

जब तक हम मन का निग्रह नहीं कर लेते तब तक अवचेतन मन का स्पर्श नहीं कर सकते। एकाग्रता का मुख्य कार्य है मन को विचार शून्य बनाया जाये ताकि अवचेतन मन को सक्रिय किया जा सके। उसके रहस्यों और शक्तियों के माध्यम से साधना के सूक्ष्म रहस्यों को जानकर आगे बढ़ा जा सकता है। यह तभी सम्भव है जब हम मन के क्रियाकलाप और रहस्यों को जानें और समझें और उसकी चंचलता पर नियंत्रण स्थापित कर सकें।

मनोविज्ञान का शोध चेतन मन का है और परामनोविज्ञान का शोध अवचेतन मन का है। परामनोविज्ञान मानव मन की तर्कयुक्त व्याख्या करने का प्रयास करता है। परामनोवैज्ञानिक का कहना है कि मनः शक्ति, पदार्थ की शक्ति से कहीं अधिक प्रबल और शक्तिशाली है। उनका यह भी विश्वास है कि मानव मन चमत्कारिक और रहस्यपूर्ण शक्तियों का भण्डार है परन्तु उसकी अनुभूति के मार्ग में स्वयं उसका मन ही बाधक बनता रहता है। यही बात तो योग भी कहता है। हमारा चंचल मन साधना का बाधक बनता है। विचार करने वाली बात यह है कि हमें अनुभूति तभी होती है। जब हमारा मन निष्क्रिय रहता है। जैसे स्वप्नावस्था, मूर्छावस्था या किसी नशे आदि

की अवस्था। यह सभी अवस्थाएं अज्ञान की अवस्थाएं हैं। ज्ञान की अवस्थाएं हैं एकाग्रता और ध्यान। ध्यान की गहन अवस्था है समाधि की अवस्था। यही अवस्थाएं उपर्युक्त तीनों से परे है।

ध्यान जब अपने चरम पर पहुंचता है तब चेतन मन स्वतः ही निष्क्रिय हो जाता है और उसके निष्क्रिय होते ही अवचेतन मन का द्वार खुल जाता है। द्वार खुलने का मतलब उस अभौतिक जगत में प्रवेश करने का मार्ग जहां मनुष्य के असीमित आलौकिक शक्तियों का भण्डार है।

पश्चिमी देशों में परामनोविज्ञान की पहली बार चर्चा तब आयी। जब १९३४ में अमेरिकी विश्वविद्यालय के मनोविज्ञान के प्राध्यापक डॉ जोसेफ राईन की चर्चित पुस्तक "एक्स्ट्रा सेन्सरी परसेप्सन" का प्रकाशन हुआ। उन्होने पहली बार परामनोविज्ञान की शाखा मानकर महत्वपूर्ण प्रयोग किये। उन्हे आज परामनोविज्ञान का जनक माना जाता है। टैलीपैथी इस खोज का परिणाम है। लेकिन भारत के सिद्ध योगी इसे दूरबोध सिद्धि कहते हैं। इसके माध्यम से वे लोग एक-दूसरे से अपने विचार सम्प्रेषण कर अपनी वस्तु स्थिति बतलाने में समर्थ होते थे। यह मानसिक शक्ति की उच्चावस्था है।

देखा जाये तो भौतिक माध्यमों के बिना एक मन, दूसरे मन को प्रभावित कर सकता है। यहां तक कि मन पदार्थ से भी सम्पर्क अथवा सम्बन्ध स्थापित करने में सक्षम है। इस क्रिया में समय की बाधा नहीं होती। सिद्ध साधक अपने मन द्वारा पदार्थ को इच्छानुसार प्रभावित करने में सक्षम है। मैंने ऐसे साधकों का दर्शन लाभ किया जो अपने मनः शक्ति द्वारा पदार्थ को सक्रिय कर देते थे।

योग के अनुसार मन की तीन अवस्थाएं होती हैं ठोस अवस्था, तरल अवस्था और ऊर्जा अवस्था। जागरण के समय मन ठोस अवस्था में रहता है। स्वप्नावस्था में तरल अवस्था में रहता है और सुषुप्ति अवस्था में ऊर्जा के रूप में रहता है। इन तीनों अवस्थाओं में मन से सूक्ष्म तरंगे निकलती रहती हैं।

योग विज्ञान के अनुसार मानव तन असंख्य परमाणु का घनीभूत रूप है। मन की तरंगे भी उस परमाणु को हर पल तरंगित करती रहती हैं। तन

भी ऐसे तरंगों को वातावरण में सदैव तरंगित करता रहता है। परामनोविज्ञान के अनुसार दूरबोध विचार सम्प्रेषण इन्ही अदृश्य तरंगों का ही परिणाम है। यही अवचेतन मन का सत्य है। डॉ.राईन अपनी दूसरी पुस्तक 'द रिच ऑफ माईण्ड' में एक स्थान पर लिखा है कि परामनोविज्ञान ने मानव रूप के बारे में जो भी तथ्य उद्घाटित किये हैं उसका सीधा सम्बन्ध भारतीय प्राचीन धर्म से है। जो इस सत्य को जगत को पहले ही परिचय करा चुके हैं।

यजुर्वेद (३०३१) में सूत्र है- 'पुरुष एवेद असर्व यद् भूत यच्च भाव्यम' अर्थात् इस सम्पूर्ण सृष्टि में जो वर्तमान है और जो व्यतीत हो चुका और आगे भविष्य में जो होगा वह परम पुरुष ब्रम्ह ही है यानि परम चेतना।

मनोविकार

महर्षि पतञ्जली का कथन है सभी शारीरिक व मानसिक व्याधि का मूल कारण हमारा मन ही होता है। हमारा मन ही सब कुछ है। इस जगत में आज तक जो भी हुआ और भविष्य में होने वाला है वह सब मन के द्वारा ही होता है। इसलिए मन को स्वच्छ बनाने से ही हमें मानसिक और शारीरिक सुखों की प्राप्ति होती है। इस मन के सृजन शक्ति के द्वारा आक़ाश, जल, अग्नि, वायु और पृथ्वी आदि पंच महाभूतों पर अधिकार प्राप्त किया जा सकता है। जिस प्रकार पृथ्वी में सभी प्रकार के गन्ध विद्यमान हैं। जल में सभी प्रकार के रस हैं। उसी प्रकार हमारे मन में सभी प्रकार के सामर्थ्य विद्यमान हैं।

मन के नियमों से अनभिज्ञ होने के कारण ही मनुष्य दुखों को भोगता है और नियमों के ज्ञान से दुखों पर विजय प्राप्त कर सकता है। जिस प्रकार मन व्याधि निवारण का सामर्थ्य है उसी प्रकार उसमें शारीरिक और मानसिक व्याधि उत्पन्न करने का भी सामर्थ्य होता है।

मन के बिना कोई भी क्रिया करने वाली अन्य सत्ता नहीं है। शरीर की रचना करने वाली सत्ता भी मन है। मन की प्रत्येक क्रिया शरीर में रसायनिक परिवर्तन करती रहती है। आजकल देखा गया है कि अनेक रोग सभी प्रकार की उचित चिकित्सा होने पर भी खत्म नहीं होते। चिकित्सक

उन रोगों का वास्तविक निदान नहीं जान पाते। क्योंकि उनका मूल कारण मनोमय कोश में होता है। चिन्ता, भय, स्वार्थ, शोक और सन्ताप के विचार हमारे ज्ञान तन्तु (नर्वस सिस्टम) पर अनजाने में एक प्रकार से अनवरत आघात करते रहते हैं। हमारे रक्त धमनियों में और मस्तिष्क के न्यूरान्स में विष उत्पन्न करते हैं और हमारे शरीर, मन और मस्तिष्क में एक प्रकार से सरलता, सहजता और एकाग्रता पर असर पड़ता है। जिसके कारण उसमें विक्षेप पैदा होता है। इतना ही नहीं मनुष्य की मानसिक और शारीरिक कार्यक्षमता पर भी उसका बुरा असर पड़ता है।

किसी भी क्षेत्र में सफलता के लिए मन का स्वस्थ होना अति आवश्यक है। मन कब विकार से ग्रसित हो जाये समझना असम्भव होता है। इसलिए आध्यात्मिक साधना क्षेत्र में मनोनिग्रह आवश्यक है। जब तक मन सरोवर की तरह शान्त नहीं होगा साधना पथ पर बढ़ना सम्भव नहीं है। इसलिए मैंने इस अध्याय में मन के विषय पर हर प्रकार से प्रकाश डालने का प्रयास किया। इस पर अवश्य विशेष चिन्तन करें।

फ्रायड का कहना है अगर मन विकार रहित है तभी शरीर भी विकार रहित होगा। मन का अपरोक्ष रूप से निरन्तर प्रभाव शरीर पर पड़ता रहता है। इसलिए मन के हर क्रिया-प्रतिक्रिया को सहज नहीं लेना चाहिए।

मनोविकार के कुछ ऐसे लक्षण होते हैं जिसे जानना हम सभी के लिए आवश्यक है। खासकर साधना मार्ग के लिए। ऐसे लोगों से मेरा सामना हुआ उन्हे भ्रम था कि साधना करने से उन्हे ऐसा लग रहा है कि वे साधना कम मनोराज्य में ज्यादा जीने लगे हैं। काम, क्रोध, मद, मोह को भी योगशास्त्र मन की रूग्णता मानता है।

व्यापार आदि आर्थिक हानि होने से, प्रियजन के वियोग की व्यथा, प्रेम आदि में निराशा, हार्दिक इच्छा पूर्ण न होने से, अनुकूल परिस्थिति न प्राप्त होने से, कभी-कभी विपत्तियों के भार से दब जाना, अपने ही विचारों के द्वन्द में डूबते-उतरते रहना। इन सबको विषाद या खिन्नता कहते हैं। जिसके कारण व्यक्ति एकान्त में रहना पसन्द करता है। जीवन और संसार को निरर्थक समझता है। आत्मघात तक सोचने लगता है। वह निराशा में ऐसे डूब जाता है कि संसार की अच्छी सी अच्छी वस्तु उसे प्रसन्न नहीं कर

सकती। ऐसे व्यक्ति को ज्यादातर लोगों के पास रहना चाहिए। स्वयं से प्रश्न कर नये आयाम को खोजना चाहिए। निराशा पैदा करने वालों से दूर रहना चाहिए। योग, प्रणायाम करना चाहिए। हरे-भरे वृक्षों के पास बैठना चाहिए। आध्यात्मिक पुरुषों से सत्संग करना चाहिए।

कभी-कभी ज्यादा काम करने से मन थक जाता है। मन में घबड़ाहट सी होने लगती है। जिसे ज्ञान तन्तु का ह्रास होने लगता है। आनन्ददायक वातावरण में रहने से, गहरी निद्रा आने से, विश्राम से, मनोबल दृढ़ होने लगता है। जिसके कारण स्नायु समूह फिर ऊर्जावान हो जाते हैं।

कुछ ऐसे मनुष्य होते हैं उन्हे हर कार्य बोझ सा लगता है। इसे स्नायविक दुर्बलता कहते हैं। जबकि यह एक प्रकार का अशान्त मन का परिणाम है। ऐसे लोगों को हर कार्य भारस्वरूप लगता है। शरीर और मन हर समय थकान से भरा रहता है। जितना वे काम नहीं करते उससे अधिक थकावट महसूस करते हैं। थोड़े से परिश्रम में सरदर्द होना, आंखों में पानी आना, धड़कन तेज होना मालूम पड़ता है। अपने मानसिक दुर्बल्यावस्था का अधिक चिन्तन व विचार करना। अपना स्वास्थ्य सुधारने के लिए दिन रात लगे रहना। आत्म विश्वास का निरन्तर अभाव से अनुभव करना। एक से दूसरे डॉक्टर के पास दौड़ते रहना। यह मानसिक अस्त-व्यस्तता का लक्षण है। इस विषय पर ज्यादा सोचना अच्छा नहीं। सब ईश्वर पर छोड़ देना चाहिए। ऐसे व्यक्ति को प्रातः भ्रमण, व्यायाम, ध्यान अवश्य करना चाहिए। कुछ क्षण के लिए सब कुछ ईश्वर पर छोड़ कर मन को शान्त करने का अभ्यास करना चाहिए।

ऐसे बहुत सारे मनोविकार होते हैं। जैसे कुछ व्यक्ति ऐसे होते है जो हर समय सफाई करते रहते हैं। कुछ लोगों को ज्यादा बोलने की प्रवृत्ति होती है। ऐसे लोग सामने वाले को अवसर भी नहीं देते की वह कुछ बोले। कुछ लोग कल्पना में जीते रहते हैं जिसे दिवास्वप्न कहते हैं। बढ़ा-चढ़ा कर बोलते रहते है। अपने को सबसे श्रेष्ठ समझते हैं। कुछ लोग डबल पर्सनॉलिटी के होते हैं यानि अन्दर कुछ और बाहर कुछ। ऐसे लोग हर पल भ्रम में जीते हैं। कुछ लोग किसी को स्पर्श नहीं करते। उन्हे लगता है कहीं छूने से वह गन्दा न हो जाये। ऐसे बहुत सारे मनोविकार होते हैं। मन इतना

सूक्ष्म है कि कब वह कहां क्या कर दे पता ही नहीं चलता। इस कारण मन पर केन्द्रित होना आवश्यक है।

आत्मा की मनन शक्ति को ही मन कहते हैं। मन में अनेक विचार आते रहते हैं। विचारों की लहरे उठती रहती हैं। हर समय भटकता रहता है। इसका कार्य ही है हर पल सोचना। हर पल दो विचार उठते हैं और मिटते रहते हैं। हम मन को बांध नहीं सकते, न ही विचार शून्य कर सकते। परन्तु विचारों की दिशा बदल सकते हैं। चिन्तन बदल सकते हैं। मन को बांधना नहीं है। उस पर अंकुश नहीं लगाना है बस सुधारना है। मन को श्रेष्ठ चिन्तन में लगाना है। उसके लिए संकल्प शक्ति की आवश्यकता है।

पांच मिनट का प्रचण्ड क्रोध अथवा व्याकुलता शरीर के विविध भागों के जीव प्रकोष्ठ (सेल्स) में स्थित ऊर्जा जीवन में एक प्रकार का क्षोभ उत्पन्न करते हैं। जिससे शरीर के विभिन्न महत्वपूर्ण अंगों पर बुरा प्रभाव पड़ता है या किसी अंग में पीड़ा तक होने लगती है। त्रास, भय, धमकी या कोई जबरदस्त आघात अथवा क्षोभ आदि का प्रभाव इतना ज्यादा पड़ता है कि सिर के केशों को काला रखने वाला द्रव्य का प्रवाह अवरूद्ध हो जाता है। जिसके कारण सिर के काले बाल समय से पहले सफेद होने लगते हैं और मुखमण्डल पर वृद्धावस्था के चिन्ह भी प्रगट होने लगते हैं। चेहरे पर निस्तेज और झुर्रियां पड़ने लगती हैं। अति कामवासना से भी ऐसा होता है। मन के आवेगों के वशीभूत हो जाने पर मनुष्य शीघ्र ही अपने शारीरिक बल और तेज को नष्ट कर डालता है।

ईर्ष्या मनुष्य के जीवन में ऐसा उपद्रव उत्पन्न कर देती है जिससे पाचन क्रिया शिथिल हो जाती है। जिसके कारण मनुष्य की जीवनी शक्ति का ह्रास होता है। भय और शंका से शरीर के ज्ञान तन्तुओं में शिथिलता आ जाती है और मस्तिष्क में विद्युत वेग यानि ऊर्जा की गति मन्द पड़ जाती है। जिसके कारण रक्त की गति भी मन्द पड़ जाती है और ऐसा होने पर शरीर की प्रतिरोधक शक्ति का शिथिल होना स्वाभाविक है। रक्त का प्रवाह ही जीवन है। रक्त (ब्लड) से मनुष्य के सभी अंगों से सभी अंगों का पोषण होता है। जब तक रक्त (ब्लड) का प्रवाह ठीक नहीं होता तब तक

शरीर में रोग स्थिर बने रहते हैं। चित्त भ्रम, उन्माद, हिस्टीरिया, अनिद्रा, स्मरण शक्ति की कमी, दुर्बलता, हर समय उदास रहना। इसी कारण से उत्पन्न होते हैं। मनोविकार का सबसे प्रबल प्रभाव हमारे शरीर पर पड़ता है। दीर्घकाल तक किसी भी प्रकार का मानसिक विकार मस्तिष्क के ज्ञान तन्तु (नर्वस सिस्टम) पर अनिष्ट प्रभाव डालते हैं। उसके विपरीत निर्भयता, प्रसन्नता, उत्साह, आत्मविश्वास आदि रचनात्मक विचार और कर्म के द्वारा ज्ञान तन्तु को ऊर्जा मिलती है। जिसके कारण हमारा मस्तिष्क प्रत्येक क्षण नई उत्साहरूपी ऊर्जा से सराबोर होता रहता है।

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्ध मोक्षयोः।
बन्धय विषया संगि मोक्षेनिर्विषयं स्मृतम् ॥

(योग सूत्र अमृत बिन्दु)

मनुष्य के बन्धन और मोक्ष का कारण मन ही है। मन के विषयात्मक होने से बन्धन और अविषयात्मक होने से मोक्ष (परमज्ञान) होता है। योग में मन को सभी इन्द्रियों से श्रेष्ठ कहा गया है-

'इन्द्रियाणिपराण्याहुः इन्द्रियेभ्यः परं मनः'

अर्थात् इन्द्रियां बाह्य पदार्थों से श्रेष्ठ हैं और मन इन्द्रियों से भी श्रेष्ठ है। जब मन की श्रेष्ठता है तब मन है क्या? अगर विचारपूर्वक देखा जाये तो जगत में पदार्थों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए मनुष्य की इन्दियां ही प्रथम साधन हैं। लेकिन इनमें भी दो भेद हैं एक है कर्मेन्द्रिय और दूसरा है ज्ञानेन्द्रिय। इनमें ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा बाहरी पदार्थों का जो हमें ज्ञान होता है वह उनके शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध के सिवाय कुछ नहीं है। वरना एक ही पदार्थ में एक ही गुण जब हमें दृष्टिगोचर होने लगते हैं तब वह एक ही पदार्थ हमारे लिये एक स्वतंत्र पदार्थ बन जाता है।

आपको ज्ञात होना चाहिए हमारे अन्दर हर पल अनैच्छिक या ऐच्छिक व्यापार सदैव चलता रहता है। उनके लिए हमारी कर्मेन्द्रियां और ज्ञानेन्द्रियां दो हमारे शरीर के मुख्य द्वार हैं। इनके द्वारा ज्ञानेन्द्रिय जब बाहर के ज्ञान को अन्दर ले जाती है और कर्मेन्द्रिय रूपी द्वार अन्दर की आज्ञानुसार उसे बाहर निकाल कर कार्य रूप में परिणत करता है। ज्ञानेन्द्रिय जो व्यापार करती है उनका ज्ञान उन्हे नहीं होता है इसी से इन्हे

ज्ञाता नहीं कहते। ज्ञाता तो मन है यही अनेकता को एकता में परिवर्तित करता है। यदि मन कहीं और लगा है तो आंखे खुली होने पर भी हम कुछ देख नहीं सकते। कहने की आवश्यकता नहीं कि मन जहां लगता है उसी को महसूस करता है। ज्ञानेन्द्रियों का सीधा सम्बन्ध मन से है। क्योंकि वह ज्ञाता है। ज्ञानेन्द्रियां जब बाह्य जगत के पदार्थों का ज्ञान बाहर से लाकर मन को प्रक्षेपित करती है तब मन के द्वारा उस पदार्थ का ज्ञान होता है। जैसे प्रकाश किसी पदार्थ पर पड़ता है और वापस हमारे नेत्रों में प्रवेश करता है तब हमें उस पदार्थ के रूप का ज्ञान होता है।

मनुष्य का मन प्रारम्भ से ही विकसित है और विकसित होता जा रहा है और उचित व्यवस्था भी करता है। यह बात मनुष्य को छोड़ कर अन्य प्राणियों में नहीं देखी जाती। अन्य प्राणियों का मन विकसित न होने के कारण वे यह नहीं जान पाते। क्योंकि उनमें अनेकता को एकता करने की शक्ति नहीं है। ज्ञानेन्द्रियों द्वारा मन पर जो-जो संस्कार पड़ते हैं उन्हे एकत्र करने की तुलना करता है और अच्छे-बुरे, लाभ-हानि का विचार कर बुद्धि इन्द्रियों के पास निर्णय के लिए भेजती है। बुद्धि जो निर्णय देती है मन उसी को कर्मेन्द्रियों के पास भेजता है और उसी के अनुसार कर्म करने के लिए प्रेरित करता है। आपको ज्ञात होना चाहिए बुद्धि, इन्द्रिय कोई अलग नहीं है। वह भी मन का ही भेद है। सभी मन के ही सूक्ष्म रूप हैं।

मन के मुख्य तीन भेद हैं। (१) ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा बाह्य पदार्थों का ज्ञान प्राप्त कर उनकी तुलना के लिए व्यवस्था पूर्वक रखना। (२) उन पर उचित विचार करना (३) निश्चय हो जाने पर उन्हे प्रवृत्त करना। बुद्धि और इन्द्रियां केवल सार-असार विचार करती हैं यही उनका कार्य है।

बुद्धि में इन्द्रिय का निर्णय करने के अलावा और कोई गुण धर्म नहीं है। उसका कार्य केवल इतना ही है कि जिस कार्य को हम कर रहे हैं या करने वाले हैं। उसका परिणाम क्या होगा? बुद्धि स्वयं कभी इन्द्रियों को प्रेरित नहीं कर सकती। उसे मन की सहायता लेनी पड़ती है। परन्तु ध्यान देने वाली बात यह है कि बिना बुद्धि की सहायता लिये मन भी असत्त होता है किन्तु बुद्धि तभी सही निर्णय लेगी जब वह शुद्ध और सात्विक होगी। अशुद्ध होने पर उसका निर्णय अनर्थ भी करा सकता है। इसलिए

बुद्धि को सदा शुद्ध रखना चाहिए। निग्रह का काम भी इसी बुद्धि को करना पड़ता है। इसलिए बुद्धि को शुद्ध रखने के लिए अनेक यत्न किये जाते हैं। जब बुद्धि आत्मनिष्ठ हो जाती है और मनोनिग्रह से मन और इन्द्रियां इसके अधीन रह कर आचरण करना सीख जाते हैं तब वासना आदि मनोधर्म स्वतः ही शुद्ध और पवित्र हो जाते हैं। एकाग्रता के लिए सर्वप्रथम बुद्धि को निर्मल करना होता है। उसके बाद मन पर संयम करना होता है। जब मन संयमित होगा तभी एकाग्रता सध सकती है। योग साधना के लिए संयम आवश्यक हैं इसे आप साधना का प्रथम चरण भी कह सकते हैं।

ज्ञान तन्तु

मानव शरीर में ज्ञान तन्तु के दो भाग हैं। प्रथम भाग मस्तिष्क और मेरुदण्ड जो ज्ञान तन्तुओं का एक प्रकार से समूह है। दूसरा छाती उदर के नीचे का भाग। प्रथम विभाग शरीर विज्ञान 'सेरीब्रो स्पाईनल सिस्टम' कहलाता है और दूसरे विभाग को 'सेम्पेथिटिक सिस्टम' कहते हैं।

शरीर में इच्छापूर्वक क्रियाओं और भावनाओं का कार्य प्रथम प्रकार के ज्ञान तन्तु करते हैं और दूसरे प्रकार के ज्ञान तन्तु बुद्धि, पुष्टि, पाचन, क्रिया आदि का कार्य करते हैं।

शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध आदि की क्रिया और कार्य मस्तिष्क और मेरुदण्ड के ज्ञान तन्तु के समूह करते हैं और विचार आदि का कार्य क्रिया भी इन्ही के द्वारा होता है।

मेरुदण्ड और उसमें से बहने वाले ज्ञान तन्तु के सूक्ष्म नस हैं बुद्धि अर्थात् मानसिक कार्य मुख्य मस्तिष्क में होते हैं।

मस्तिष्क के तीन भाग माने जाते हैं। पहला है मुख्य मस्तिष्क। दूसरा है गौण मस्तिष्क और तीसरा है अधो मस्तिष्क। मुख्य मस्तिष्क को सेरीब्रम कहते हैं यह मस्तिष्क के आगे और पीछे का भाग होता है। गौण मस्तिष्क को सेरीबेलम कहते हैं यह मस्तिष्क का नीचे का भाग माना जाता है यानि इसमें पिछले भाग का समावेश होता है। अधो मस्तिष्क को मेंडुला आम्लोगटा कहते हैं यह मेरुदण्ड का शिखर भाग है। मेरुदण्ड यहां से आरम्भ होता है। मेरुदण्ड के पीछे के भाग का स्तम्भ है। इसी स्तम्भ में ज्ञान

तन्तुओं का लम्बा समूह है और यहां से शरीर के सब भागों से सम्बन्ध रखने वाले असंख्य अल्प तन्तु सारे शरीर में फैले होते हैं जिनके द्वारा जीवनी ऊर्जा सदैव प्रवाहित होती रहती है। मेरुदण्ड एक रज्जू (रस्सी) के समान है और उसमें से अति सूक्ष्म तार की तरह रक्त वाहिनियां फैली हैं जिसे योग में ज्ञान तन्तु समूह कहते हैं। सभी ग्रन्थियां नसों के द्वारा एक-दूसरे से सम्बन्धित हैं और इनमें से भी असंख्य सूक्ष्म रेखाएं निकल कर शरीर के भिन्न-भिन्न अवयव में रक्त वाहिनी नाड़ियों तक पहुंची हुई हैं। देखा जाये तो भिन्न-भिन्न ज्ञान तन्तु परस्पर एकत्रित होते हैं। इन्ही ज्ञान तन्तु के एकत्र स्थल को योग में कुण्डलिनी चक्र का नाम दिया गया है।

इस प्रकार शरीर में छः चक्र हैं जो चेतना शक्ति के केन्द्र स्थल हैं। (१) मूलाधार चक्र (२) स्वाधिष्ठान चक्र (३) मणिपूरक चक्र (४) अनाहद चक्र (५) विशुद्ध चक्र (६) आज्ञा चक्र। सहस्त्र दल वाला चक्र यानि सहस्त्रार चक्र सातवें और सोम नाम के आठवें चक्र का भी योग में गणना करते हैं। जहां अनवरत सोम की वर्षा होती रहती है यानि जिसे अमृत क्षरण कहते हैं। जिसमें जीवनी शक्ति बराबर गतिमान होती रहती है। जब इस अमृत का क्षरण मन्द होने लगता है तब जीवन चक्र समाप्त हो जाता है। अमृत क्षरण अनवरत चलता है यह साधक के साधना पर निर्भर करता है। हजारों वर्षों तक जीवित रहने वाले दीर्घजीवी साधकों को इस सोम यानि अमृत क्षरण का पान योग द्वारा सम्भव होता है। आज भी हिमालय की कन्दराओं में सिद्ध साधक इसी तत्व का पान कर वर्षों से साधना में लीन हैं।

देखा जाये तो ज्ञान तन्तुओं का समूह शरीर में स्वाभाविक क्रियायें जैसे रक्त का प्रवाह, श्वांस-प्रश्वांस, पाचन क्रिया आदि करता है। मस्तिष्क स्मरण बल आदि के कार्य समूह को पश्चिमी शरीरशास्त्री ज्ञान तन्तु बल (नर्व फोर्स) कहते हैं और भारतीय योग इसे प्राण तत्व कहता है। इसकी सामर्थ्य और तुलना का स्वरूप विद्युत प्रवाह से मिलता-जुलता है। यदि प्राण तत्व न हो तो हृदय अपनी क्रिया नहीं कर सकता। रक्त का प्रवाह अवरूद्ध हो जायेगा। फेफड़े, श्वांस-प्रश्वांस क्रिया ही नहीं कर सकते। प्राण तत्व के बिना शरीर के विभिन्न अवयव अपना कार्य नहीं कर सकते और मस्तिष्क को तो सबसे ज्यादा प्राण तत्व की आवश्यकता पड़ती है।

योग और मेरुदण्ड

मानव शरीर में साधना की दृष्टि से जितने महत्वपूर्ण अंग हैं उनमें सर्वाधिक मूल्यवान, सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंग है मेरुदण्ड। मेरुदण्ड यानि रीढ़ की हड्डियां। जिन हड्डियों के छोटे-छोटे टुकड़ों से मेरुदण्ड का निर्माण होता है उनकी संख्या चौरासी है। जिनका अगोचर सम्बन्ध जीवात्मा के ८४ लाख योनियों से बतलाया गया है। प्रत्येक अस्थिखण्ड में १ लाख योनियों के संस्कार विद्यमान हैं। ८४ अस्थि खण्डों की शृंखला वाले इस मेरुदण्ड के ऊपरी सिरे पर स्थितिशील ऊर्जा यानि परात्पर तत्व (शिव तत्व) की स्थिति है। इसी प्रकार उसके नीचे वाले शिरे पर गतिशील ऊर्जा यानि शक्ति तत्व अथवा पराशक्ति की स्थिति है। योग की भाषा में इन्ही दोनों सिरों को क्रमशः सहस्त्रार चक्र और मूलाधार चक्र कहते हैं। इन दोनों चक्र बिन्दुओं को तंत्र में ऊर्ध्व त्रिकोण और अधो त्रिकोण के रूप में परिकल्पित किया गया है। प्रथम चक्र-बिन्दु पर जहां परात्पर तत्व की स्थिति है वहां शरीर और मन का मिलन होता है। इसी प्रकार दूसरे चक्र-बिन्दु पर जहां पराशक्ति तत्व की स्थिति है वहां शरीर और आत्मा का मिलन होता है।

मन और आत्मा के मिलन केन्द्र को योग की भाषा में अनाहद चक्र कहते हैं। सहस्त्रार, मूलाधार और अनाहद के अलावा चार और चक्र हैं। तंत्र के अनुसार ये तीनों महत्वपूर्ण चक्र महाचक्र हैं। महाचक्र का सम्बन्ध ओम से बतलाया गया है। ओम का ऊपरी भाग सहस्त्रार है। मध्य भाग अनाहद है और निम्न भाग मूलाधार है। ऊपर में 'आ', मध्य में 'ऊ' की और नीचे 'म' की स्थिति है। इस प्रकार पूरा मेरुदण्ड 'ऊँ' से युक्त है। इन तीनों की संयुक्त ध्वनि को योग-तंत्र की भाषा में परावाक कहते हैं। शरीर के भीतर इन तीनों के अपने-अपने केन्द्रों में वैसे तो अलग-अलग ध्वनि उत्पन्न होती है। मगर एक विशेष स्थान पर वे तीनों ध्वनियां आपस में मिलकर परावाक का रूप धारण कर लेती हैं।

वह विशेष स्थान कहां हैं? वह विशेष स्थान है नाभि। योग की भाषा में इस केन्द्र का नाम है मणिपूरक चक्र है। यह परावाक पराशक्ति का ही एक रूप है। पराशक्ति ही परावाक रूप में व्यक्त होकर स्वरों और बाद

में वर्णाक्षरों का निर्माण करते हैं। मगर उस निर्माण का अपना क्रम है और उसी क्रम को परा, पश्यन्ति, मध्यमा और बैखरी कहते हैं। यदि इन चारों को परावाक के चार रूप कहा जाये तो साधुतर होगा। स्वर और वर्णाक्षरों की उत्पत्ति की दिशा में परावाक के ये रूप तो हैं ही। इनके अलावा उसके दो और गरिमामय रूप हैं जिन्हे भाव और विचार कहते हैं। पहले भाव की उत्पत्ति होती और फिर विचार की। विचार की जो शक्ति है। एकमात्र परावाक् अथवा पराशक्ति ही है।

कुण्डलिनी शक्ति

तंत्र में दो मत है पहला है शैवमत और दूसरा है शाक्तमत। पहले मत में शिव की और दूसरे मत में शक्ति की प्रधानता है। दोनों मतों के अपने-अपने कई सम्प्रदाय हैं और उन सम्प्रदायों के अपने-अपने कई साधना मार्ग और उनकी साधना पद्धतियां हैं।

शाक्तमत में शक्ति की प्रधानता होने के कारण उसकी दृष्टि में देवता के दो स्वरूप हैं- शान्त और सक्रिय। सक्रिय रूप को ही शक्ति कहते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि तंत्र का सम्पूर्ण विषय, सम्पूर्ण साधना एकमात्र शक्ति का विषय और शक्ति की ही साधना है। वेद के बाद दूसरा कोई प्रकाशित ज्ञान है तो वह है तंत्र। जैसाकि कहा गया है 'श्रुतिश्च द्विविधा वैदिकी तांत्रिकी च' अर्थात् वैदिक और तांत्रिक ये दोनों प्रकाशित ज्ञान हैं इसीलिए तंत्र को पांचवां वेद कहा गया है। शिव शरीर का और शक्ति आत्मा का मार्ग है।

ज्ञान को कर्म में आयत करना अथवा कर्म में नियोजित करना तंत्र का एकमात्र लक्ष्य है और उस लक्ष्य की पूर्ति का साधन है शक्ति। 'शक्ल' धातु में 'क्तित' प्रत्यक्ष करने पर शक्ति शब्द बनता है। कारण वस्तु में जो कार्य उत्पादन के लिए उपयोगी अपृथक सिद्ध धर्मविशेष है उसी को शक्ति कहते हैं। तात्पर्य यह है कि शक्ति वह वस्तु है जो कारण के साथ अपृथक सिद्ध रहकर कार्य के उत्पादन में उपयोगी सिद्ध होती है।

शाक्तमत के अनुसार शक्ति के तीन रूप हैं- परमा, परा और अपरा। परमा परब्रम्ह की निजी शक्ति है। इसीलिए उसे परमात्म शक्ति भी कहा गया है। परा ज्ञान शक्ति है। ज्ञानरूपिणी पराशक्ति को उपनिषद ने वैष्णवी

शक्ति कहा है। अपरा कर्म शक्ति अथवा अविद्या है। उपनिषद में इसे क्षेत्रज्ञ कहा गया है। क्षेत्रज्ञ का मतलब है जीवात्मा। कर्म शक्ति के कारण ही क्षेत्रज्ञ यानि जीवात्मा जन्म-मृत्यु के बंधन में बंधी रहती है और कर्मानुसार विभिन्न योनियों में गमन किया करती है। क्रमशः स्थिरता, बलशीलता और गतिशीलता इन तीनों शक्तियों का स्वभाव है। परमा का स्वभाव स्थिरता है। परा का स्वभाव बलशीलता है और अपरा का स्वभाव गतिशीलता है। शाक्तमत के आध्यात्मिक पक्ष के अनुसार ये तीनों क्रमशः पारलौकिक शक्ति, अलौकिक शक्ति और लौकिक शक्ति है।

शक्ति और उसके स्वभाव में कोई भिन्नता नहीं है। शक्ति ही स्वभाव है और स्वभाव ही शक्ति है। यदि यह कहा जाये तो साधुतर होगा कि दोनों अद्वैतभावी हैं और यही कारण है कि शाक्तमत की साधना अद्वैत भाव को लेकर शुरू होती है और अद्वैत में ही समाप्त हो जाती है।

शाक्तमत में आदिशक्ति की आदिकल्पना शून्य से की गयी है। शून्य ही उसकी दृष्टि में आदिशक्ति का आदिरूप है। जिसे वह बिन्दु कहता है। शाक्तमत का जो परम साधना मार्ग है वह है पूर्णरूप से अद्वैत भाव पर आधारित कौल साधना मार्ग। इस मार्ग का जो अपना सम्प्रदाय है उसे कौल सम्प्रदाय कहते हैं। शाक्तमत पराशक्ति को कुल और परात्पर यानि शिव को अकुल शब्द से सम्बोधित करता है। इन दोनों शब्दों के संयोग से एक तीसरा शब्द बना है कुण्डलिनी। कुण्डलिनी तो वैसे लाक्षणिक शब्द है मगर इससे शिव और शक्ति के सामरस्य मिलन अथवा दोनों के अद्वैत भाव का ज्ञान होता है। शाक्त मत का कौल साधना मार्ग इसी कुण्डलिनी का साधना मार्ग है जैसाकि कि मंत्र में कहा गया है।

अयं तु परमः कौलमार्गः सम्यड्.महेश्वरी।
असिधाराव्रतसमो मनोनिग्रहः हेतुकः।।
स्थिरचित्तस्य सुलभः सफलस्तूर्णसिद्धिदः।

तांत्रिक साधना मार्ग की जितनी भी साधनाएं हैं उनमें कौलमार्ग और उसकी साधना सर्वश्रेष्ठ है। कौलमार्ग की साधना को तलवार की धार पर चलने के समान दुष्कर बतलाया गया है।

अब तक की विषय चर्चा से यह स्पष्ट हो जाता है कि पराशक्ति ही

कौलमार्ग की साधना भूमि की कुण्डलिनी शक्ति है। इस आधार पर उसे परावाक और विचार शक्ति भी कहा जा सकता है। कौलमार्ग का कहना है कि तंत्र के शाक्त मत में जहां-जहां और जिस-जिस रूप में शक्ति शब्द का प्रयोग किया गया है। वह सब रूप कुण्डलिनी शक्ति का एकमात्र रूप है।

वास्तव में कौलमार्ग ही एक ऐसा तांत्रिक साधना का मार्ग है जो योग का आश्रय लेकर शैव ओर शाक्त दोनों मत के सिद्धातों को कर्म में आयत्त कर साधना में नियोजित करता है और यह आयत्तीकरण तथा नियोजन जिस शक्ति के आधार पर होता है वह है शाक्तमत की कुण्डलिनी शक्ति। योग का आश्रय लेने के कारण और योग पर आधारित होने के फलस्वरूप इसे कुण्डलिनी योग भी कहते हैं।

कुण्डलिनी साधना का लक्ष्य है मेरुदण्ड की दोनों शिराओं के बिन्दु पर स्थित परात्पर तत्व और शक्ति तत्व यानि स्थितिशील और गतिशील ऊर्जा को एक-दूसरे से युक्त कर देना। दोनों में सामञ्जस्य स्थापित कर देना अथवा दोनों में अद्वैत की स्थिति उत्पन्न कर देना। तंत्र इसी को सामरस्य महामिलन यानि शिव-शक्ति का अद्वैत भाव कहता है।

कुण्डलिनी साधना क्रम से प्राण, मन और आत्मा की साधना है। प्राण की साधना हठयोग की साधना है, मन की साधना राजयोग की साधना है और आत्मा की साधना ज्ञानयोग की साधना है। कहने की आवश्यकता नहीं कि हठयोग का विषय प्राण, राजयोग का विषय मन और ज्ञानयोग का विषय आत्मा है। इससे स्पष्ट होता है कि कुण्डलिनी योग में हठयोग, राजयोग और ज्ञानयोग तीनों का समन्वय है।

प्राण पर संयम करना हठयोग का, मन पर संयम करना राजयोग का और आत्मा पर संयम करना ज्ञानयोग का उद्देश्य है। प्राण चंचल है प्राण का मन से सम्बन्ध होने के कारण मन भी चंचल रहता है। इसी प्रकार मन को चित्त भी कहते हैं। जब तक प्राण चंचल है तब तक मन की अस्थिर है। अस्थिरता चित्त की दशा है। अस्थिर चित्त की दशा में आत्मस्वरूप को उपलब्ध करना असंभव है।

प्राण और आत्मा के बीच में मन है। इसीलिए ज्ञानयोग के बाद राजयोग का सर्वाधिक महत्व है। इसे हम क्रियात्मक मनोविज्ञान भी कह सकते हैं। सभी प्रकार की मानसिक बाधाओं को हटाकर मन को पूर्णतया

स्वस्थ और संयमी बनाना इसका उद्देश्य है। इसके अभ्यास का अभिप्राय यह है कि इच्छा शक्ति को जगाना तथा उसे जगाकर बलवती बनाना। इसके साथ ही धारणा शक्ति को भी जाग्रत करके ध्यान और धारणा के द्वारा आत्मा के समीप साधक को पहुंचा देना। इसीलिए राजयोग को योग का सर्वश्रेष्ठ मार्ग बतलाया गया है। राजयोग का कहना है कि संसार की सर्वोपरि शक्ति मनः शक्ति है। यदि मन की शक्तियों को पूरी समाहित करके किसी वस्तु विशेष पर केन्द्रीभूत कर दिया जाये तो उस वस्तु की जो वास्तविक सत्ता है वह प्रकट हो जायेगी। यदि हम एक बिन्दु पर अपनी समग्र मनः शक्ति को पूंजीभूत कर एकाग्र कर सके तो हम सहज ही उस वस्तुविशेष की जिस पर हमने अपनी वृत्तियों को एकाग्र किया है सारी विशेषताएं जान जायेंगे। चाहे वह वस्तु आध्यात्मिक हो, चाहे मानसिक हो या हो भौतिक।

राजयोगियों का कहना है कि राजयोग के अभ्यास से वह शक्ति प्राप्त होती है जो संसार की अन्य सभी शक्तियों का नियंत्रण करने वाली है। उनका भी यह कहना है कि जिसने अपने मन पर विजय प्राप्त कर लिया वह प्रकृति के समस्त कार्यों पर शासन कर सकता है।

तंत्र की सगुणोपासना भूमि में प्राण शक्ति को महाकाली के रूप में, मनः शक्ति को महालक्ष्मी के रूप में तथा ज्ञान शक्ति को महासरस्वती के रूप में परिकल्पित किया गया है। यदि इस दृष्टि से देखा जाये तो एक प्रकार से कुण्डलिनी योग की साधना महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती की भी साधना है। इसमें सन्देह नहीं कि तंत्र की जितनी भी गूढ़ गोपनीय और रहस्यमयी साधनाएं हैं उनमें कुण्डलिनी की साधना सर्वोपरि और सर्वश्रेष्ठ है। इसकी श्रेष्ठता इस बात में निहित है कि इसमें तंत्र के साधना पक्ष के अतिरिक्त, आध्यात्मिक पक्ष, दार्शनिक पक्ष और यौगिक पक्ष का अद्भुत समन्वय है। इसका दार्शनिक पक्ष तो समुद्र की तरह इतना गम्भीर है कि उसे समझ पाना सभी के वश की बात नहीं। इसी प्रकार आध्यात्मिक पक्ष भी इतना गहन, गूढ़ और जटिल है कि उसे हृदयंगम करना सहज नहीं।इसका साधना पक्ष तो उपर्यूक्त दोनों पक्षों से भी दुरूह और रहस्यमयी है।

◆◆◆

प्रसंग आठ

संकल्प शक्ति

विश्व में जितनी भी शक्तियां हैं उनमें सबसे बड़ी व्यापक शक्ति है संकल्प शक्ति। आज तक मनुष्य जो भी विकास किया चाहे वह अध्यात्म का क्षेत्र हो या कोई अन्य क्षेत्र यानि विज्ञान हो, समाज हो, ज्ञान हो सभी के मूल में केवल संकल्प शक्ति ही थी। मानव से महामानव या इन्द्रिय से अतीन्द्रिय जगत की यात्रा का माध्यम भी यही संकल्प शक्ति ही है। यह शक्ति इन्द्रिय और अतीन्द्रिय दोनों से सम्बन्ध रखने वाली शक्ति है।

एक संकल्प मन को चलाता है और एक संकल्प मन को थामता है। हमारो वेदों में और पुराणों में सृष्टि की उत्पत्ति को ही संकल्प माना है। लेकिन वे सभी संकल्प नहीं होते। जब हमारी कामनाओं के साथ उसे पूर्ण करने का दृढ़ मनोबल भी जुड़ जाये तब वह संकल्प बन जाता है।

आज से हजारों वर्ष पूर्व वेद ने एक शब्द का उद्घोष किया था। यह उद्घोष ही मानव की अनन्त सम्भावनाओं का उद्घोष करने वाला वाक्य था- 'अहम ब्रम्हास्मि'। जो भारतीय दर्शन का महान शब्द कहा जा सकता है। ब्रम्हा यानि सम्पूर्ण सृष्टि का सृजक। अगर सरल शब्द में कहा जाये तो यह कह सकते हैं सृजक के रूप में ब्रम्हा एक कर्ता है और सृजनात्मकता उनका गुण धर्म है। आर्ष ऋषियों की यह व्यापक दृष्टि वन्दनीय है और उन्होने सृजक के इस परम गुण धर्म को मानव जाति को प्रेरित किया। क्योंकि मानव भी सृजक की तरह सृजन कर्ता बन सकता है।

कैसे होता है सृजन का कार्य? इसके लिए भारतीय मनीषा बहुत ही गहरे में उतरा। 'एकोऽम बहुस्यामी' में सृष्टिकर्त्ता स्वयं को एक से अनेक में विभाजित करके प्रत्येक में अपनी अवस्थापना का संकेत दिया। लेकिन एक महत्वपूर्ण सूत्र महोपनिषद में है मनोविलास जगत। कहा गया है कि यह जगत मन की एक क्रीड़ा है और है विलास।

कहने का तात्पर्य यह है कि ये ब्रम्हा के विचार की एक तरंग है। यह तरंग उठी कुछ करना है, कुछ रचना करना है और तब उन्होने विचार सृष्टि की रचना कर दी। कहने की आवश्यकता नहीं कि जगत के मूल में विचार शक्ति ही संकल्प शक्ति है। मनु स्मृति में ऋषि मनु का कथन है कि जगत के सृष्टिकर्त्ता ब्रम्हा ने अपनी ही प्रकृति से संकल्प-विकल्प नामक मन को उत्पन्न किया और इसने अहम तत्व को जन्म दिया। यह मानव के आन्तर जगत की रचना का स्वरूप है। महत्वपूर्ण बात तो यह है कि मानव की मनोरचना के तीन मूल तत्त्व बतलाये गये हैं- संकल्प, विकल्प और अहम। इनके अनुपात के अनुसार मानव के मन के स्तरों का निर्धारण होता है और इसी निर्धारण के अनुसार उसके जीवन का स्वरूप निश्चित होता है और इन तीनों की उत्पत्ति केन्द्र में भावना होती है और विचार भी होते हैं। भले ही मानव प्राकृतिक रूप से भावना प्रधान क्यों न हो। लेकिन चेतना की उपस्थिति के कारण वह विचारों से रहित कभी नहीं रहा।

सभ्यता और संस्कृति के विकास क्रम में विचार क्रमशः प्रबल होते गये भावना की तुलना में। लेकिन प्रश्न यह उठता है कि इन सारी बातों का सम्बन्ध क्या इच्छाशक्ति से है? हां, इसका सम्बन्ध इच्छाशक्ति से है। जब हम किसी यौगिक पदार्थ में शामिल समस्त तत्वों को और उनकी विशेषताओं को जान जाते हैं। तब उस यौगिक पदार्थ का विश्लेषण करने की हमारी क्षमता में कई गुना वृद्धि हो जाती है। तब कुछ नया रचने की, कुछ नया करने की सम्भावना बढ़ जाती है।

मनुस्मृति में ऋषि मनु ने मन को ही सृष्टि के निर्माण का प्रथम तत्व माना है। उसके बाद क्रमशः आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी के निर्माण को मानते हैं। इच्छाओं के मूल में मन ही है। यदि मन में केवल संकल्प है तो इच्छाएं थम सी जायेगी। संकल्प का अर्थ एक बस यही है कि संकल्प लिया गया है और कुछ नहीं है। जहां मन एक विचार बिन्दु पर रूका वहीं संकल्प का जन्म हो गया। मन वहीं स्थिर हो गया अन्य विचारों का प्रवाह रूक गया। तब मानव जाति का स्वरूप ही कुछ अलग होता है। तब माया अस्तित्व में नहीं आती। जीवन में कोई दुविधा ही नहीं रह जाती। दुविधा आई ही 'दो' होने के कारण और पहला है संकल्प और दूसरा है विकल्प।

आज विकल्प ज्यादा है संकल्प कम है। प्राचीन काल में यानि द्वापर, त्रेता युग में संकल्प ज्यादा था। देव, दानव, मानव सभी संकल्प शक्ति द्वारा ही कोई कार्य करने में सक्षम होते थे। उनका मन पर नियंत्रण होता था। लेकिन अहम भी साथ हो जाता था यानि मैंने किया, यह मैं कर सकता हूं, मैं सर्व शक्तिमान हूं आदि। जब अहम भाव संकल्प के साथ आ जाता है तब परम चेतना माया का सहयोग लेकर उसका दमन कर देती है। संकल्प शक्ति न अच्छी है न बुरी। उस संकल्प में सात्विक विचार है या तामसिक विचार यह विचार पर निर्भर करता था। देवता सात्विक विचार से संकल्प करते थे और दानव तामसिक विचार द्वारा। लेकिन सफलता दोनों को मिलती थी। परन्तु उसका हश्र क्या होता था यह तो सर्वविदित है। लेकिन आज के युग में मानव में मनः शक्ति इतनी कमजोर हो गयी है कि वह संकल्प तो करता है। लेकिन विकल्प का द्वार खोले रहता है। जैसे हम निर्णय करते हैं कि यह कार्य करेंगे कुछ दिनों बाद हमारा निर्णय जो ठोस रूप धारण करके निश्चात्मक बुद्धि के कारण एक संकल्प बन गया है जैसे ही हम उस संकल्प को पूर्ण करने के लिए ठोस कदम उठाते हैं। तब हम सरल राह तलाशने लगते हैं और वह सरल राह विकल्पों की ओर ले जाती है। विकल्प यानि यह गलत है, वो सही है, हो सकता है आदि...आदि। क्योंकि संकल्प पूर्ण करने की राह इतनी सरल नहीं होती। यही पलायन की मुद्रा है, समर्पण का आवाहन है। जहां कई राह उपलब्ध हैं संकल्प यानि एक इच्छा। विकल्प यानि बहुत सारी इच्छाएं। अगर विचारपूर्वक देखा जाये तो संकल्प-विकल्प सृजनकर्ता ने ही यानि प्रकृति ने ही प्रारम्भ से ही हमारे निर्माण के समय से ही हमें दे दिया। इसलिए इसे नैसर्गिक गुण मानना ही तर्कसंगत है।

अगर इसे ईश्वर की इच्छा मान लें और एक प्रवाह में बहते रहें तो यह गलत है। ऐसा नहीं कि ईश्वर ने मनुष्य को मनरूपी अपार शक्ति नहीं दी है। ईश्वर ने हमें अपार शक्ति दी है परन्तु उसका सही उपयोग कैसे करें और कैसे उच्चावस्था को प्राप्त करें। यहीं से अध्यात्म मार्ग का प्रारम्भ हो जाता है।

अध्यात्म का पहला सूत्र है मन की असीमित इच्छाओं पर नियंत्रण करना। क्योंकि इच्छाओं के नियंत्रण से ही चेतना की उच्चावस्था को प्राप्त

कर सकते हैं और जिसकी चेतना जितनी परिष्कृत होगी वह परम ज्ञान को उतनी जल्दी उपलब्ध होगा।

इसलिए यह वाक्य काफी महत्वपूर्ण है कि हम वही होते हैं जो हमारी इच्छा होती है। वृहदाण्यक उपनिषद इस सत्य को बहुत पहले ही कह चुका है- आप वह हैं जो आपकी गहन इच्छा शक्ति है। जैसी आपकी इच्छा होगी वही आपकी आकांक्षा भी होगी। जैसी आकांक्षा है वैसा हो आपका कर्म है। जैसा कर्म है वैसा ही आपका भाग्य है।

इच्छा और गहन इच्छा

इच्छा और गहन इच्छा यह एक महत्वपूर्ण विषय है। इच्छा और गहन इच्छा वर्गीकृत करना आवश्यक है। इस फर्क को हमें गम्भीरता से विचार करना होगा। वैसे तो इच्छाएं बहुत सी होती हैं यानि इच्छाएं तो अनेक होती हैं जन्म लेती हैं और मिटती भी रहती हैं। जन्म लेना और मिटना एक सहज कार्य है। इसलिए जीवन में सभी इच्छाएं पूर्ण नहीं होती। लेकिन ध्यान देने वाली बात यह है कि गहन इच्छा तो एक ही होगी। जो कभी चैन से बैठने नहीं देती। यही गहन इच्छा हमारी समस्त इच्छाओं के केन्द्र में होती है। चारो तरफ अन्य इच्छाएं उसी तरह चक्कर लगाती रहती हैं जैसे सूर्य के चारो तरफ ग्रह आदि। लेकिन यह नैसर्गिक तौर पर नहीं होता। अपनी अनेक इच्छाओं के बीच एक का चयन करना पड़ता है। उस इच्छा को चयन करने के लिए हमें गहरे आत्म संघर्ष और अति मानसिक द्वन्द से गुजरना पड़ता है। उसे भौतिक आकर्षणों से मुक्त करके ही पाया जा सकता है।

योग कहता है यह एक प्रकार से स्वयं को जानने-पहचानने की प्रक्रिया है। जिसे अध्यात्म आत्म साक्षात्कार कहता है। इस प्रकार की विशेष इच्छा ही सही अर्थों में गहन इच्छा बन जाती है और तभी उसमें आकर्षण की प्रबल क्षमता पैदा होती है कि वह अन्य इच्छाओं के द्वारा आकर्षित न होकर अन्य समस्त इच्छाओं को अपनी ओर आकर्षित कर लेती है। यह गहन इच्छा शक्ति है यानि आपके विल पावर में परिवर्तित हो जाती है। श्रीराम के पास क्या था? वनवास की गहन पीड़ा, सीता का विछोह, कुछ वानरों के सहयोग। क्या श्रीराम थके या रूके? अपने प्रबल

इच्छाशक्ति से उन्होने एक विशाल वानरी सेना तैयार की। वे चाहते तो अयोध्या से सेना बुला सकते थे। परन्तु उन्होने ऐसा नहीं किया। उन्हे अपने आत्मशक्ति पर पूर्ण विश्वास था। उनकी प्रबल संकल्प शक्ति के आगे रावण जैसे परम बलशाली को भी पराजित होना पड़ा।

इच्छा शक्ति-संकल्प शक्ति सब मनोविज्ञान के अन्तगर्त है यानि मन का विज्ञान। जिसे हम मन कहते हैं। योग उसे आत्मा का ही अपरोक्ष रूप कहता है। जैसे बर्फ और जल। आत्मा बर्फ है और मन जल है। लेकिन मूल रूप से जल ही तो है। इस प्रकार एक तरह से यह आत्मा का विज्ञान है और जिसे हम इच्छा शक्ति कहते हैं। इसका जन्म भले ही मन में होता हो। लेकिन वह शक्ति में परिवर्तित तभी होता है जब आत्मा उसका आधार बनती है। तब यही इच्छा शक्ति, आत्म शक्ति का रूप ले लेती है। वैसे देखा जाये तो हमारी आन्तरिक क्षमता मूलतः हमारी आत्मा की ही क्षमता है और यह क्षमता अनन्त होती है। क्योंकि इसमें ब्रम्हाण्ड की अनन्त शक्ति जोड़ने का गुण होता है। ब्रम्हाण्डीय चेतना से जुड़ते ही हम, हम न होकर स्वयं ब्रम्हाण्डीय चेतना हो जाते हैं, अनन्त हो जाते हैं। वह चेतना और हमारी चेतना एकाकार हो जाती है। तब परम ज्ञान का द्वार स्वतः ही खुल जाता है। हम बुद्ध की तरह नेत्र बन्द कर परम गहन अवस्था को हो जाते हैं उपलब्ध।

इसी को पिण्ड में ब्रम्हाण्ड कहा गया है। जो ब्रम्हाण्ड में है यानि जो ब्रम्हाण्ड में चेतना व्याप्त है वही चेतना हमारे पिण्ड में यानि हमारे शरीर के अन्दर भी व्याप्त है।

जगत में जितनी भी शक्तियां हैं उनमें सबसे महत्वपूर्ण शक्ति है वह है संकल्प शक्ति।

आज तक मानव ने जितना भी विकास किया है फिर चाहे वह कोई भी क्षेत्र में हो उसके मूल में केवल संकल्प शक्ति ही है। इसी के कारण साधारण सा दिखने वाला मानव महामानव बन जाता है। देखा जाये तो इन्द्रिय जगत से अतीन्द्रिय जगत की यात्रा का माध्यम भी यही है। यदि विचारपूर्वक देखा जाये तो संकल्प शक्ति ही इन्द्रिय और अतीन्द्रिय दोनों से सम्बन्ध रखने वाली शक्ति है। पुराण ग्रन्थों के अनुसार सृष्टि के मूल में

संकल्प शक्ति ही है। हम अक्सर कामनाएं रखते हैं। इच्छाएं रखते हैं। लेकिन सभी संकल्प नहीं होते। जब भी हमारी कामनाओं के साथ उसे परिपूर्ण करने का दृढ़ मनोबल भी जुड़ जाता है तो वह संकल्प हो जाता है। साधक का मतलब है कि मन जो है अब संकल्प में रूपान्तरित हो रहा है। जो मन को साध ले वही साधक है। मन सधता है संकल्प से। कुछ कर गुजरने की दृढ़ इच्छा से और जब मन सध जाता है तब सब कुछ सधने लगता है। अक्सर देखा जाता है जो लोग जिन्दगी से हारते हैं उसमें परिस्थितियों का तो हाथ कम होता है उनके मन के हारने का हाथ अवश्य होता है।

भावना और संकल्प

अगर आध्यात्मिक दृष्टि से चिन्तन किया जाये तो सच में ब्रम्हाण्ड के, सृष्टि के रहस्य कितने व्यापक हैं इसकी कल्पना करना भी असंभव है। इसकी सृष्टि के मूल में भावना ही तो है। जब भावना पैदा हुई तब संकल्प का उदय हुआ और संकल्प का उदय ही संकल्प शक्ति है और उस संकल्प का परिणाम ही यह ब्रम्हाण्ड है और है जगत। हमारे हर संकल्प के मूल में भावनाओं का गहरा सागर है। भावनाओं और अनुभूतियों के मूल में हमारा गहन विश्वास है।

विश्वास अनुभूतिजन्य सत्य है। वह कोई दृश्यमान वस्तु नहीं है। प्रसिद्ध मनोदार्शनिक डेमेशिया ने अपने गहन शोध से यह निष्कर्ष निकाला कि भावनाएं विभिन्न दबाबों की प्रतिक्रिया में पैदा हुए तन और मन की स्थितियों में होने वाले परिवर्तन हैं।

हमारे शरीर के हाव-भाव विभिन्न परिवर्तन आदि मस्तिष्क में पहुंचते हैं और भावनाओं का रूप ले लेते हैं और हमारे संकल्प इन्ही भावनाओं पर टिके होते हैं। जब हम कोई संकल्प लेते हैं तो उसका मनोवैज्ञानिक संकेत और उनसे जुड़े हुए भाव चेतन और अवचेतन में कार्य करने लगते हैं। संकल्पों से हमारी क्रियाएं और क्रियाओं से हमारा जीवन शरीर, मन, रिश्ते, आशाएं, सपने, इच्छाएं सभी कुछ हमारी भावनाओं द्वारा संचालित होते रहते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं भावनायें हमारे जीवन में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती रहती है। लेकिन विचार करने वाली बात यह

है कि वे जीवन में कैसी भूमिका निभाएं यह पूर्णरूप से आपके वश में है। साधारणतया यह विश्वास किया जाता है कि भावनाओं पर किसी का वश नहीं। यह एक अनियंत्रित मामला है। लेकिन मनोविज्ञान कहता है भावना पर नियंत्रण सतत अभ्यास के द्वारा किया जा सकता है।

मनोदार्शनिक डेमेसिया कहते हैं हम किस परिस्थितियों में भावनाओं के कैसे आवेग से गुजरते हैं और वैसे ही आवेश से क्यों गुजरते हैं, सामने वाला वैसा क्यों नहीं महसूस कर पाता, जिस आवेग से हम गुजर रहे हैं। देखा जाये तो हमारी भावनाएं मस्तिष्क में संकेत और तरंगे प्रक्षेपित करती रहती है। यदि तरंगे और संकेत उस तथ्य का निर्धारण करते हैं जिनसे हम प्रभावित होते हैं या जो प्रभावित करते हैं। यदि हम अपनी भावनाओं, आवेगों, संवेगों द्वारा भेजे गये संकेतों को नियंत्रित और निर्देशित करना सीख जायें तो हमारे संकल्प एक बेहतर, एक संतुष्ट जीवन का सृजन करना प्रारम्भ कर देगें।

यह विचार करने वाली बात है कि इन भावनात्मक अनुभूतियों का निर्धारक कौन है? वह निर्धारक तत्व है हमारा पूर्ण विश्वास। चेतन-अवचेतन मन में गहराई में बैठा हमारा विश्वास। यह विश्वास ही जीवन में एक प्रभावशाली और निर्णायक भूमिका निभाता है।

विज्ञान कहता है इसके पीछे दो नियम काम करते हैं। आकर्षण के नियम (लॉ ऑफ अट्रैक्शन) और कम्पन्न के नियम (लॉ ऑफ बाईब्रेशन)। आकर्षण के नियम के अनुसार हमारी इच्छाएं, ऊर्जाओं से आकर्षित होती हैं और उनसे जुड़ जाती है और कम्पन्न के नियम का कहना है कि हमारी प्रत्येक अनुभूति अथवा इच्छा में एक विशेष प्रकार कम्पन्न अथवा आकर्षण पैदा होता है। यही कम्पन्न ऊर्जा में बदल कर तत्काल किसी एक विशेष विचार या संकल्प से जुड़ कर प्रतिक्रिया करता है। अगर वह गहन भावना है तो संकल्प भी गहन होगा।

मनोविज्ञानी प्ल्यूटचिक ने अपने शोध में पाया कि आठ प्रमुख अनुभूतियां सृष्टि का जैविक सत्य हैं- क्रोध, भय, दुख, आनन्द, साहचर्य, प्रेम, करूणा, दया जो हमारे व्यवहार को सीधे-सीधे निर्देशित करते हैं। जो हमारे जीवन को भी निर्धारित करते हैं। जो वाक्य आज से हजारों वर्ष पूर्व

योगियों ने कहा आज वही विज्ञान कह रहा है यानि सभी शोधों का निचोड़ यह है कि हम अपनी भावनाओं का दमन न करें, उन्हे जबरदस्ती दबाएं नहीं, उन्हे स्वीकार करें। जिस दिन हम अपनी अच्छी-बुरी भावना को स्वीकार करने लग जायेंगे। उसी पल स्वीकार के साथ अवचेतन मन में दबी पड़ी भावनाएं भी प्रगट होना प्रारम्भ हो जायेगी। अवचेतन मन के दमित भाव चेतन संकल्पों को सर्वाधिक प्रभावित करते हैं। जब अवचेतन में दबे भावों के परिणाम स्वरूप नकारात्मक ऊर्जा प्रगट होना शुरू हो। तब हम तत्काल उस ऊर्जा का रूपान्तरण करें। नकारात्मक ऊर्जा को सकारात्मक बना दें यह सतत अभ्यास पर निर्भर करता है। जानते हैं आपकी भावनाएं प्रकृति का सबसे बड़ा उपहार है। अगर भावना न होती तो हम कभी किसी से प्रेम नहीं कर पाते। नेत्र में आंसू न होते।

हम प्रकृति, पशु-पक्षी से यहां तक कि आपस में भी प्रेम न कर पाते। जीवन सुखा सा रह जाता। कोई कवि, लेखक, चित्रकार न पैदा होता। पूरा संसार ही रसहीन होता। सकारात्मक भावना ही हमारी पहचान है जो सकारात्मक संकल्प में बदलती है।

कहने की आवश्यकता नहीं कि प्रकृति के यह अनमोल उपहारों में से एक है इन्हे पहचाने। इनका सदुपयोग करें। धीरे-धीरे नियंत्रित कर अपने संकल्प को पूर्ण करें। अध्यात्म जिस इच्छा शक्ति अथवा संकल्प शक्ति को चेतना अथवा आत्मा मानता है वहीं विज्ञान चेतन और अवचेतन मन मानता है। हमारे चेतन मन के पास सामर्थ्य का केवल पच्चीस प्रतिशत होता है और पचहत्तर प्रतिशत की क्षमता अवचेतन मन के पास होती है। हमारी ज्यादा समझ चेतन के बारे में होती है। क्योंकि हम बचपन से चेतन मन पर निर्भर होते हैं।

जब कोई आकस्मिक अथवा चमत्कारिक घटना हमारे जीवन में घटित होती है तो उसे हम समझ नहीं पाते। उसे ईश्वर का चमत्कार मानकर नजर अन्दाज कर देते हैं। क्योंकि चेतन मन को आधार बना कर जीवन का निर्णय लेते रहते हैं और कार्य भी करते रहते हैं। क्योंकि चेतन मन अपूर्ण है। इसलिए हमारे कार्य भी अपूर्ण ही होते रहते हैं और अवचेतन मन की उपेक्षा होती रहती है। उसकी उपेक्षा ही अपने विशुद्ध सामर्थ्य की

उपेक्षा करने जैसा है। यह हमें वंचित जीवन की ओर ले जाता है।

हम दिन भर जो भी करते हैं, जो भी निर्णय लेते हैं। वह चेतन मन के स्तर पर ही लेते हैं। लेकिन चेतन मन को ऊर्जा की आपूर्ति हमारा अवचेतन मन ही करता है। चेतन मन अस्थिर और तार्किक होता। लेकिन अवचेतन मन संवेदनशील और सतर्क होता है। वह जैसा है वैसा ही है न ही वह तर्क का सहारा लेता है, न ही अव्यवहारिक की सीमा तक जाता है। लेकिन हमारी विडम्बना यह है कि चेतन मन और अवचेतन मन के बीच का एक सूक्ष्म आदर्श, सन्तुलित सम्बन्ध खोते जा रहे हैं। यही हमारी अशान्ति का कारण है।

दुख इस बात का है कि अवचेतन मन के बारे में हम जानते हैं। प्राचीन काल से योगी-साधक कहते आ रहे हैं कि हमारे अवचेतन मन में अपार शक्ति है और सारी योग साधना का मूल है चेतन और अवचेतन को सन्तुलित करना। अवचेतन के अपार शक्ति के प्रवाह को जानना है जिसके मूल में ही है संकल्प शक्ति, इच्छा शक्ति और आत्म शक्ति। ये तीनों पर्यायवाची ही हैं। हम जो भी संकल्प लेते हैं उसका सीधा सम्बन्ध अवचेतन से हो जाता है। चेतन मन तो विकल्प खोजने लगता है।

कहने की आवश्यकता नहीं कि भौतिकता के कारण हमारा शक्तिशाली अवचेतन मन क्षीण होता जा रहा है और एक समय ऐसा आता है जब हम अपनी क्षमता और अपने सच्चे स्वरूप को भूल कर उस छोटे से क्षेत्र को ही स्वयं सब कुछ मान लेते हैं। दुर्भाग्यवश जिसकी सीमा हमने स्वयं निर्धारित की है।

सर्वप्रथम भगवती सीता का पता लगाने के लिए अंगद से कहा गया लेकिन अंगद ने असमर्थता दिखलायी। तब हनुमान जी से कहा जाता है। उन्होने तत्काल हां कह दिया। उनके पास श्रीराम रूपी इच्छा शक्ति थी अतः वे सफल हुए। ऐसा नहीं है कि अंगद की क्षमता में कमी थी। अगर तार्किक रूप से देखा जाये तो उन्हे लंका से इस पार आने का संशय होना ही नहीं चाहिए था। लेकिन सत्य तो यह है कि अंगद जाना ही नहीं चाहते थे। क्योंकि उनके पास इच्छा शक्ति का अभाव था। अगर उनकी इच्छा शक्ति प्रबल होती तो वे कभी भी मना नहीं करते। अंगद के प्रकृति ने एक

अवसर दिया। लेकिन अवचेतन मन में इच्छा शक्ति की कमजोरी के कारण एक शुभ अवसर खो दिया।

कहने का तात्पर्य यह है कि प्रबल इच्छा शक्ति ही हमारे विचारों को प्रबल बनाती है और जब विचार प्रबल हो जाते हैं तो उनमें से प्रबल आकर्षण शक्ति पैदा होने लगती है। उसके प्रवाह में चेतन मन विकल्प की तलाश नहीं करता वह भी उसी में लीन हो जाता है। एकलव्य के पास क्या था? धनुर्विद्या सीखने की प्रबल इच्छा शक्ति। अपने गुरु की मिट्टी की प्रतिमा बनाकर वह अथक परिश्रम कर एक महान धनुर्धर बन गया। उसके मूल में था संकल्प शक्ति और मूल में था संकल्प शक्ति का आधार उसका अवचेतन मन। जिसके कारण वह सफल हुआ।

मनोविज्ञान कहता है बड़ा चिन्तन करें या छोटा चिन्तन करें। लेकिन संकल्प बड़े ही होने चाहिए। सपने बड़े ही होने चाहिए। मस्तिष्क में उनके अनुरूप ऊर्जा का स्वतः प्रवाह होता है। संकल्प के अनुरूप आपके भीतर शक्ति का प्रवाह पैदा होता रहता है। बड़े संकल्प के पहले छोटे-छोटे संकल्प पूर्ण करने से एक आत्म शक्ति पैदा होने लगती है। कहने का तात्पर्य यह है कि बड़े संकल्प के लिए छोटे-छोटे कदम बढ़ायें। न की छलांग लगाये। धीरे-धीरे चढ़ने का अपना आनन्द है। बुद्ध तो आज से हजारों वर्ष पहले ही यह वचन कह दिये थे अपना दीपक स्वयं बनो प्रकाश तो स्वतः पैदा हो जायेगा।

विशेष

कुण्डलिनी साधना योग-तंत्र का सार है। जिसमें साधना और मंत्र क्रिया दोनों है। कुण्डलिनी साधना की सिद्धि सर्वोच्च सिद्धि है। साधक इस साधना के बल पर सर्वोच्च ज्ञान को हो जाता है उपलब्ध।

कुण्डलिनी साधना को लोगों ने इतना रहस्यमय और कठिन बना दिया है अथवा इस साधना को इतना गुप्त बना दिया है कि साधारण लोगों को भ्रम सा होने लगता है। मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि कुण्डलिनी साधना भारतीय साधकों के कठिन परिश्रम और शोध का परिणाम है। यह साधना मानव को जगत में जीने की और जगत पर विजय प्राप्त करने की क्रिया है। इस साधना के बल पर मानव पशुवत्

जीवन से निकल कर दिव्य मानव बनता है। राग, द्वेष, ईर्ष्या, क्रोध, लालच, वासना आदि के कारण मानव पशुवत् जीवन जीता रहता है। वह स्वयं को इसी के आसपास पाता है। लेकिन कुण्डलिनी साधना से मानव धीरे-धीरे इन वासनाओं पर विजय प्राप्त कर लेता है। वह सरोवर की तरह शान्त हो जाता है। बुद्ध की तरह तटस्थ हो जाता है। कृष्ण की तरह हर पल मुस्कुराता रहता है। चाहे जितना भी दुख मिले वह साक्षी भाव से समाज में जीता रहता है। मैंने चेतना के विषय में विशेष बल दिया है। कहने का तात्पर्य यह है कि चेतना सभी जगह व्याप्त है। प्राचीन काल में भारतीय ऋषिगण इसके महत्व को भलीभांति जानते थे। इसी के बल पर प्रकृति के सत्य को जाना और समझा है।

दुर्भाग्य की बात यह है कि विज्ञान आज भी चेतना के विषय पर शोध कर रहा है। उसे चेतना के रहस्य के विराट शक्ति का भान है। लेकिन तर्क के कारण अभी भी स्वीकार नहीं कर पा रहा है। विज्ञान और अध्यात्म में यही अन्तर है। विज्ञान तर्क को लेकर चलता है और अध्यात्म विश्वास को लेकर। वही विश्वास जब घनीभूत हो जाता है। तब वह ज्ञान में रूपान्तरित हो जाता है यानि हमारे ऋषियों ने जब साधना की किसी भी क्रिया पर शोध किया तो उन्होने उस क्रिया पर पूर्ण विश्वास रखा। बिना विश्वास के कोई भी साधना सफल नहीं हो पाती। पूर्ण समर्पण, पूर्ण विश्वास से ही उस साधना अथवा क्रिया में दैवी ऊर्जा का प्रभाव पड़ने लगता है। तब वह साधना अथवा क्रिया ज्ञान रूप में प्रगट हो जाती है। प्राचीन काल से ऋषियों ने नदी, पहाड़, आकाश, वृक्ष, चांद, तारे, सूर्य में चेतना को पाया।

मानवीय सम्पत्ति- प्रेम, करूणा, दया, परोपकार, प्रसन्नता और पाशविक सम्पत्ति- ईर्ष्या, क्रोध, लालच, घृणा, क्रूरता स्वयं को ही सब कुछ समझना है। कुण्डलिनी साधना आपको शनैः-शनैः मानवीय सम्पत्ति की ओर अग्रसर करती है। जब आप मानवीय सम्पत्ति की ओर अग्रसर होते हैं तब आत्मप्रकाश स्वंय प्रस्फुटित हो जाता है। बुद्ध का भी यही कहना था कि स्वयं का दीपक बनो किसी और के दीपक के प्रकाश से मत चलो।

जो भारतीय धर्म और परम्परा है उसके पीछे ऋषियों की वैज्ञानिक सोच थी। वृक्षों की पूजा और उसकी दिशाओं की पूजा, पर्वत, सूर्य-चन्द्र, तारों की पूजा का कारण यही था कि मानव लोक परम्परा के माध्यम से प्राकृतिक चेतना से जुड़े। प्राचीन काल में वृक्षों को काटने के लिए पहले वृक्ष को प्रणाम कर अनुमति मांगी जाती थी। फिर काटा जाता था। आयुर्वेद में तो जड़ी-बूटी तोड़ने के लिए मंत्र पढ़ा जाता था। परन्तु आज ऐसा नहीं है। हम चेतना से अपने को अलग करते जा रहे हैं। उसके बाद प्रतिमा, मूर्ति, मन्दिरों की स्थापना हुई ताकि मानव अपनी चेतना को सामने स्थापित प्रतिमा से एकाकार कर सके।

ध्यान की सर्वोच्च अवस्था है समाधि। ध्यान अवस्था में अपने लक्ष्य का भान तो रहता है। लेकिन स्वयं मन का नहीं। यह किसी विषय पर ध्यान की परिपूर्णता है। इसमें सत्य की प्रत्यक्ष अनुभूति की जाती है। समाधि अवस्था उपलब्ध होने के पहले साधक धारणा यानि एकाग्रता से प्रारम्भ करता है। जब धारणा पूर्ण हो जाती है तब वह स्वयं ध्यान की अवस्था में परिवर्तित हो जाती है। ध्यान की पूर्णावस्था ही समाधि है। यह तभी सम्भव है जब साधना के पहले चरण धारणा यानि एकाग्रता का सतत अभ्यास किया जाये।

'देशबन्धश्चित्तस्य धारणा'

किसी एक पर चित्त को एकाग्र करें यही धारणा कहलाती है। चाहे वह आन्तरिक हो या बाह्य यानि जब बाह्य धारणा यानि एकाग्रता सिद्ध हो जाती है तब आन्तरिक धारणा सिद्ध करना आसान हो जाता है। मन को एकाग्र करने का सबसे सरल साधन है। किसी एक वस्तु विशेष पर मन को एकाग्र करना। वह त्राटक के माध्यम से प्राप्त किया जाता है। कुण्डलिनी साधना में त्राटक का विशेष स्थान है।

समाधि का अर्थ यह है कि समाधि में मन के द्वार यानि समस्त बाह्य और आंतरिक विक्षेपों और बाधाओं के लिए बन्द हो जाते हैं। मन ध्यान में जितना गहरा होता जायेगा यानि डूबता जायेगा एकाग्रता उतनी बढ़ती जायेगी। जिस विषय वस्तु पर मन केन्द्रीभूत किया जाता है और जिसकी वास्तविकता को जानने का प्रयत्न करता है उसके अतिरिक्त मन में कुछ

रहता ही नहीं है। जिस अन्तिम सीमा तक वह जा सकता है वह वहां पहुंच जाता है और उसे लगता है वह उसके आगे नहीं जा सकता। जिस विषय वस्तु पर मन ध्यान करता है उसके सभी पक्ष समाप्त हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में उसे अत्यन्त एकाग्रता की अवस्था में रहना पड़ता है। वह न पीछे जा सकता और न आगे। इस विशेष अवस्था और स्थिति में एकाग्रता का विषय त्याग दिया जाता है। बस मन एकाग्रता की अवस्था में रहता है। मानो शून्यावस्था की स्थिति हो।

इस अवस्था में साधक समस्त बाह्य पदार्थों से एक प्रकार से सारा सम्पर्क समाप्त कर देता है। उसके बाद बस एक ही मार्ग शेष रह जाता है। वह है उच्च लोक में प्रवेश करने का मार्ग। इस अवस्था के लिए सभी कोशों का जाग्रत होना आवश्यक होता है। इसलिए प्रथम अवस्था है एकाग्रता। यही साधना का प्रथम चरण है।

जितना मन एकाग्र होगा ध्यान उतना ही गहन होता जायेगा। इसका अभ्यास हमें बार-बार करना होता है। जब मन सधने लग जायेगा तब मन कहीं भागेगा नहीं। ध्यान तुरन्त ही लगने लग जायेगा और ध्यान की परम अवस्था समाधि है और समाधि की भी गहन अवस्था विषय रहित सचेतन समाधि है। जहां साधक पूर्ण जाग्रत अवस्था में रहता है। लेकिन विषय रहित रहता है। यही जाग्रत अवस्था है, विराट अवस्था है, तटस्थ अवस्था है और इसी को बुद्धत्व कहते हैं।

जड़ और चेतन दोनों एक-दूसरे पर आश्रित हैं। चेतन का आधार ही जड़ है और चेतन के प्रवाह से जड़ चैतन्य हो जाता है। क्योंकि चेतना आकार रहित है। वह ऊर्जा का प्रवाह है। उसको आधार चाहिए जो जड़ से मिलता है और जड़ को चैतन्य होने के लिए चेतना चाहिए।

इसी को योग-तंत्र में प्रकृति-पुरुष की संज्ञा दी गयी है। पुरुष जड़ है और प्रकृति चेतन है। तंत्र में ऊर्ध्व त्रिकोण को पुरुष यानि शिव और अधो त्रिकोण को प्रकृति यानि चेतना कहते हैं। इन दोनों का मिलन ही विस्तार है। अधोत्रिकोण और ऊर्ध्व त्रिकोण के मध्य में जो बिन्दु है वही परम चैतन्य है। जो तटस्थ भाव से लय-विलय का साक्षी है। इन दोनों को मिलाने पर षट्कोण बनता है। त्राटक इसी षट्कोण के केन्द्र में स्थित बिन्दु

पर करना चाहिए। जब त्राटक गहन होगा मन धीरे-धीरे एकाग्रता की ओर अग्रसर होने लगेगा।

इस साधना में स्वच्छता आवश्यक है। जो वस्त्र पहन कर साधना करें वह वस्त्र और आसन (लाल) कोई और न उपयोग करे। कम से कम सुखासन की मुद्रा में तीस मिनट तक बैठने का अभ्यास करे। यंत्र और साधक की दूरी कम से कम दो हाथ की होनी चाहिए और रीढ़ की हड्डी एकदम सीध में होनी चाहिए।

साधक को धैर्यपूर्वक उपरोक्त विधि का अभ्यास करना चाहिए। प्रथम चरण की सफलता से ही आगे की सफलता सम्भव है।

◆◆◆

प्रसंग नौ

शरीर और साधना

विश्व ब्रम्हाण्ड में तो सब कुछ रहस्यमय है जो हमारे विचार से परे दिखता है। लेकिन उन रहस्यों में भी हमारा भौतिक शरीर कम रहस्यमय नहीं है। प्राचीन काल से लेकर आज तक मानव स्वयं को खोज रहा है। यह खोज अध्यात्मिक क्रांति से लेकर विज्ञान क्रांति तक चल रही है। आज का विज्ञान मानव के आन्तरिक और बाह्य रचनाओं का गहन अध्ययन कर रहा है। विज्ञान हर समय भविष्य को लेकर चलता है।

आज का मानव कल कैसा होगा। आज का युग एक क्रांति युग है या मानव जीवन का संक्रमण काल है। मैंने अपने जीवन में सब कुछ धीरे-धीरे बदलते देखा। आज जो युग देख रहा हूं मैं स्वयं भी हतप्रभ हूं। आज का मानव आधुनिकता और अध्यात्म दोनों जीवन को जी रहा है। वह आधुनिक जीवन के साथ आध्यात्मिक भी रहना चाहता है। लेकिन कल का मानव आधा मशीन और आधा मानव होगा। तब संवेदना कहां होगी? क्या वह अध्यात्म और स्वयं के सृजन को तथा सृजन करने वाले परम तत्व को भी भूल जायेगा? वह स्वयं को सृजन कर्ता मानने लगेगा.... आदि ऐसे प्रश्न जो मानसपटल को आन्दोलित करते रहते हैं।

मैंने अध्यात्म की उच्चाई को स्पर्श किया। एक प्राकृतिक शान्त वातारवरण को भी मैंने देखा। आज सब कुछ बहुत ही तीव्रता से बदलता जा रहा है। आज का मानव अति अशान्त होता जा रहा है। उसका ज्यादातर समय यंत्रों के साथ जुड़ता जा रहा है। प्रश्न यह है कि क्या भविष्य का मानव पूर्णरूप से यांत्रिक हो जायेगा? उसके अन्दर भावना, प्रेम, मन का निश्छलपन खत्म हो जायेगा? यंत्रमानव (रोबोट्स) जैसा होता जायेगा? क्या अध्यात्म से उसका कोई लेना-देना नहीं होगा?

२१वीं सदी के बारे में आज के वैज्ञानिकों का कहना है कि एक ऐसा

संसार होगा जो कल्पनाओं से परे होगा। शरीर तो वही होगा। लेकिन हर अंग में चिप लगे होंगे। चमत्कारिक नैनो उपकरण यानि मानव खुद में मोबाईल होगा। खुद ही इन्टरनेट से जुड़ा होगा। खुद ही विचारों की तरंगों के साथ दुनिया के किसी भी कोने में पहुंच जाने की त्रिआयामी प्रोजेक्शन सुविधा होगी। शायद हजारों साल का स्मार्ट मानव २१वीं सदी का होगा।

शायद २१वीं सदी के अन्त तक सब कुछ बदल चुका होगा। जीवन जीने का तरीका, मानवीय आचार-व्यवहार, सामाजिकता और संस्कृति सभी कुछ। प्रसिद्ध भारतीय वैज्ञानिक मिथियों काकू का कहना है २२वीं सदी तक पूरी दुनिया में यंत्रमानवों (रोबोट्स) की भरमार हो जायेगी। वे हर क्षेत्र में प्रवीणता के साथ होंगे। दुनिया के किसी भी काम के लिए वे सिद्धहस्त होंगे। हमारी हर बात उन्हे समझ में आयेगी। उन्होने आगे बतलाया जैसे-जैसे यंत्रमानव (रोबोट्स) में विकास होगा वे और भी करामाती होते जायेंगे। वे भावनाओं से युक्त होंगे यानि आपके मनोभाव को समझेंगे यानि भावनात्मक यंत्रमानव (ईमोशनल रोबोट) बनने लगेंगे। कहने की आवश्यकता नहीं कि अब भावनाओं की प्रकृति को विज्ञान के नजर से वैज्ञानिक देखने-समझने का प्रयास कर रहे हैं। हो सकता है वे सफल भी हों। भावनाएं ही हमसे कहती हैं कि क्या अच्छा और क्या खराब है। जब हम अपनी पसन्द की भावना महसूस करते हैं। तो इसका अर्थ होता है वह वस्तु हमारे लिए उपयोगी है। चूंकि भावनाओं के कारण हम अच्छे-बुरे का निर्णय करते हैं। हो सकता है कि भावनाओं को तकनीक के साथ मिलाने वाली बात समझने के बाद वैज्ञानिक निश्चित तौर पर ऐसे यंत्रमानव (रोबोट्स) बना सकेंगे जो हमारी भावनात्मक साथी होगा। हमारे हर भावना को समझेगा। खुश होना या दुख प्रगट करना सब समझेगा यानि सदी के अन्त तक भावना प्रधान यंत्रमानव (इमोशनल रोबोट) बन जायेंगे।

अगर देखा जाये तो मानव इतिहास पांच क्रांति के दौर से गुजरा यानि आविष्कारों से गुजरा। जिसके कारण मानव सभ्यता उत्तरोत्तर प्रगति करती चली गई। पाषाण युग के बाद, औजार, भाषा, खेती उद्योग और तकनीकि व आध्यात्मिक ज्ञान इन पांच अविष्कारों के बाद जो छठे आविष्कार के क्रांति घटित होने की बात है उसकी शुरूआत हो चुकी है। जो २२वीं सदी तक पूर्ण यौवन पर होगा। जिसमें आप्रकृतिक जीवन,

अप्राकृतिक ज्ञान, यंत्रों का जाल जो छठी क्रांतिरूपी भविष्य के रूप में होगा। काल का प्रवाह अपने गति से बढ़ता जा रहा है। कितने सभ्यताओं का उदय हुआ और पतन भी। लेकिन मानव हर परिस्थिति में अपने को बचाये रखा। क्या ऐसा भविष्य में सम्भव होगा? वैज्ञानिकों का कथन है कि कल यानि भविष्य उसे तो आना ही है और अनेक सम्भावनाओं के साथ आयेगा। जो मानव सभ्यता में क्रांति लायेगा। कल का मानव सौर मण्डल, आकाशगंगाओं में भी अपनी पहुंच बना लेगा। मानव इतिहास और उसका भाग्य तकनीकि के हाथों लिखा जायेगा।

उस समय मानव एक प्रकार से मशीनों का दास होगा। उस समय तक मानव आधा मशीन और आधा मानव (साईबोर्ग) होगा। वैज्ञानिकों का कथन है कि पृथ्वी का दोहन और रोज-रोज नये आविष्कार के कारण मानव स्वयं को विनाश के कगार पर खड़ा पायेगा।

यह तो भविष्य की बात है। लेकिन तकनीकि बाजार, तकनीकि शोर और कृत्रिम जीवन, कृत्रिम व्यवहार में हमारा मन खोता जा रहा है। क्या वह शान्ति के दो पल, प्रेम की भाषा, अपनत्व की उसे आवश्यकता होगी? या मशीनों के शोर में ये मन भी कोई मशीन का पुर्जा बन प्रयोगशालाओं का एक प्रयोग मात्र रह जायेगा? शायद हां, शायद नहीं भी। खैर, कल किसने देखा है। प्रसिद्ध लेखक मार्क ट्वेन का कहना है कि बीता हुआ कल पश्चाताप है और आने वाला कल महज एक प्रयोग है।

विज्ञान एक विशेष शोध कर रहा है मानव के लम्बे जीवन का। क्योंकि मानव प्रारम्भिक काल से मृत्यु और वृद्धावस्था से भयभीत रहा। जितने भी राजा-महाराजा, योद्धा हुए हमेशा बड़े-बड़े साम्राज्यों का शासन किए। लेकिन बढ़ती उम्र हमेशा उनके नियंत्रण से बाहर ही रही। युवा बने रहने की अभिलाषा रही। उसके लिए वह कोई भी कार्य करने को तैयार रहते। उस समय चिर युवा बने रहने के लिए एक से एक औषधि की खोज हुई। लेकिन सब व्यर्थ रहा। जो प्रकृति का नियम है उससे परे जाना सम्भव नहीं है। लेकिन यह अभिलाषा मानव इतिहास से बाहर नहीं निकली। आज भी मानव लम्बी उम्र और युवा बने रहना चाहता है। यह मानव का सबसे बड़ा लोभ है।

दशकों तक वैज्ञानिक भी यही मानते थे कि जीवन का समय तय है। इस पर विज्ञान का कोई वश नहीं है। लेकिन कुछ वर्षो से यह दृष्टिकोण बदला। आज विज्ञान की एक विशेष शोध शाखा है जेराटोलॉजी। इस पर विशेष शोध हो रहा है और ऐसी जीन्स का पता लगाया है जो बढ़ती उम्र को नियंत्रित करने में सक्षम हो। वैज्ञानिकों को विश्वास है कि आने वाले पचास सालों के अन्दर उम्र बढ़ने की प्रक्रिया को धीमा किया जा सकता है और जीन्स थेरेपी द्वारा मनुष्य की उम्र ढेड़ सौ से दो सौ वर्षो तक हो सकती है तथा लम्बे समय तक युवा और स्वस्थ बने रहने का रहस्य मिल जायेगा। बायो तकनीकि जिस तरह से प्रगति कर रही है उससे तो लगता है कि जिन्दगी और मृत्यु पर काफी हद तक मानव का नियंत्रण हो सकता है।

अमेरिका के प्रसिद्ध और युवा वैज्ञानिक रार्बट लेजा जो जीवन के गुप्त रहस्यों को जानने के लिए शोध कर रहे हैं। वैज्ञानिक रहस्यों के साथ-साथ भारतीय योगियों की लम्बी उम्र के रहस्यों पर भी शोध कर रहे हैं। उनका कहना है कि भारतीय योगी अपने योग बल से अपनी उम्र कों बढ़ने से रोक लेते थे। ऐसा भी मानना है कई ऐसे तपस्वी हुए जिनकी उम्र दो सौ से लेकर चार सौ वर्षो तक होने का दावा किया गया। उसके पीछे थी उनके श्वांसों पर नियंत्रण। आज का विज्ञान भी योग की शक्ति को मानता है। कुछ शोधों से यह भी पता चला है कि कम कैलोरी लेने से जीवन बढ़ जाता है और रोग भी कम होते हैं। आज विज्ञान की सोच बदल रही है। पहले उनका कहना था कि भारत के साधु कन्दमूल खाकर जंगलों में रहते थे। इसलिए स्वस्थ थे। आज उन्हे उनकी लम्बी उम्र और स्वस्थ जीवन तथा योग का महत्व समझ आ रहा है।

आने वाला कल 'एंटी ऐजिंग साईंस' का होगा। बायो मेडिकल जेराटोलॉजी का होगा। विज्ञान उम्र की गति को रोक देगा। मानव जल्दी वृद्ध नहीं होगा। स्टेम सेल्स आर्गन रिप्लेशमेन्ट और क्लोनिंग जैसे तकनीकों द्वारा मानव का जीवन इच्छानुसार होगा। प्रसिद्ध भौतिकशास्त्री देकार्ते का कहना है मानव में आत्मा है और पशु यंत्रवत् है। यही आत्मा हमारी इच्छा शक्ति भी है जो हमें संवेदनशील बनाती है। विचार इस बात का है कि भविष्य का मानव जब आधा मशीन और आधा मानव हो

जायेगा। तब क्या इच्छा शक्ति, भावना आदि होगी? क्या मशीनों की दुनिया में मानवता जीवित रहेगी? आनन्द, पीड़ा, ईर्ष्या, क्रोध, आशा-निराशा, प्रेम-घृणा, मोह आदि अनेक अनुभूतियों का रूप है मन। जो आत्मा का एक चंचल रूप है। योग मन को मनः शरीर कहता है यानि सभी को मिलाकर मन बनता है।

मनोविज्ञानी कैडिलोक का कहना है संवेदन ही हमारे ज्ञान का मूलस्रोत है। कल मशीन बन चुके जीवन में अगर संवेदना की जगह नहीं होगी तब कहां बचेगा मन।

प्रारम्भिक काल से जो मानव द्वारा सृजन हुआ है उसके मूल में मन ही तो है। मन जितना चंचल है उतना सृजन कर्ता भी है। योग ने इस मन को बेलगाम घोड़े की तरह माना है। योग की सारी क्रिया मन को केन्द्रित करने के लिए है। इसे साधना एक बेलगाम घोड़े को साधने जैसा है।

यह समझना आवश्यक है कि मन एक मानसिक क्रियाओं का बाह्य जगत की प्रतिक्रियाओं के साथ प्रतिफल ही नहीं है इसमें दुनिया के सत्य के साथ-साथ कल्पना लोक भी शामिल है। कल्पनाशील मस्तिष्क मन को पंख देने का काम करते हैं और मन इन पंखों के जरिये प्राप्त अनुभूतियों के प्रभाव को बढ़ाते हुए उन वस्तुओं की कल्पना कर सकता है। जो अब तक उसके अनुभव जगत में शामिल नहीं था। चिन्तन करने वाली बात यह है कि कल्पना शक्ति मन को गति देने का काम करती है। जिससे आज का मानव एक ओर विकास के चरम की ओर अग्रसर है और दूसरी ओर विनाश के कई तरीके भी जुटा लिये हैं।

चाहे धर्म हो या हो विज्ञान उसके उत्थान और पतन में मन का ही हाथ है। मन एक ओर सृजन का कारण है और दूसरी ओर पतन का भी। चाहे साधारण मनुष्य हो, चाहे ऋषि या समाज हो या पूरा जगत सबके मूल में मन ही है। कल का मन कैसा होगा यह भविष्य के गर्भ में है।

मानव और विकास क्रम

आत्मा, मन और शरीर ये तीनों महत्वपूर्ण है। आत्मा का कर्म है उत्तरोत्तर ज्ञान पथ पर अग्रसर होना। यह क्रम हर जन्म से बराबर चल रहा है। मन सृजन और कल्पना, भावना, अनुभूति का कार्य करता है। जगत

में मानव द्वारा जो भी सृजन हुआ। उसमें मन का काफी योगदान रहा। जहां तक शरीर की बात है यह भी पांच तत्वों का घना रूप है यानि आत्मा का ही भौतिक स्वरूप है। जिसमें आत्मा का वास है।

देखा जाये तो मानव विकास के कई चरणों से गुजरा है। उसने अपने अनुभव और क्रमिक विकास से अपने को अलग किया। एक बुद्धिमान प्राणी के रूप में उभरा और जगत पर अपना आधिपत्य जमाया। लेकिन जैविक रूप से आज भी मानव एक निर्बल प्राणी मात्र है। उसके लिए धर्म और संस्कृति ही एक ऐसा रक्षा तंत्र लगा जो विकास के कई चरणों में उसे सुरक्षित रखा। धर्म और संस्कृति के द्वारा ही धीरे-धीरे सुसज्जित होता चला गया। उसके बाद सामाजिक चेतना के चलते सभी देशों की संस्कृति भिन्न-भिन्न होने पर भी मानव समाज की साक्षी सर्वभौतिक संस्कृति मानी गई। विभिन्न धर्म, सम्प्रदाय और संस्कृति अलग-अलग होते हुए भी सभी मानव कहीं न कहीं एक-दूसरे से परोक्ष-अपरोक्ष रूप से जुड़े हैं। जो मानव विकास क्रम की बहुत बड़ी कड़ी है। जो मानव को मानवता से जोड़ती है। मानव, मानवता को अपने साथ लेकर नहीं पैदा हुआ। वह समाज में रहते हुए अपने आचरण को परिमार्जित करता चला गया है। इसी परिमार्जित का परिणाम है मानवता। यही मानवता मानव के विनाश को रोके रखी है। अगर मानवता खत्म होगी तब मानव भी नहीं बचेगा। तब सच में मानव एक यंत्रमानव (रोबोट्स) के अलावा कुछ भी नहीं होगा।

अब थोड़ा पीछे चलते हैं। मानव के विषय में जानने के लिए, मानव के प्रारम्भिक उत्पत्ति के विषय में इग्लैण्ड के प्रकृति शास्त्री चार्ल्स राबर्ट डार्बिन अपने गहन खोज और शोध के बाद दो पुस्तकें लिखी पहली पुस्तक "प्रजातियों की उत्पत्ति" सन् १८५९ में प्रकाशित हुई। दूसरी पुस्तक १८७१ को "मानव जाति की उत्पत्ति" प्रकाशित हुई। ये दोनों पुस्तकों ने विश्व भर में तहलका मचा दिया। जिसके कारण मानव के प्रति बहुत सारे मिथक दूर गये। उनका कहना था मानव या किसी भी प्रजाति के किसी भी जीव का इस धरती पर आगमन नहीं हुआ। उन्होने तर्कों, उदाहरणों और साक्ष्यों के प्रमाण से यह सिद्ध किया कि पृथ्वी पर जीवन का हरेक रूप किसी समान बिन्दु पर एक ही पूर्वज के द्वारा हुआ। उनका कहना था प्रजातियां पनपती हैं। समय के अनुसार उनका अनुकूलन होता

है और वह आगे बढ़ती है। हजारों वर्षों के अन्तराल पर होने वाले परिवर्तन लाखों-करोड़ों वर्ष में प्रजातियां के पूरे स्वरूप को बदल देते हैं। इस क्रम विकास में कई पड़ाव आते रहे होंगे। जब सहयात्रियों को राहें बदलनी पड़ी होंगी। जिसके कारण उन्हे लम्बे काल खण्ड तक एक विशेष परिस्थितियों में जीने को विवश किया। जिसके कारण नई प्रजातियों की उत्पत्ति हुई।

डार्बिन जीवन को विकसित होना मानते हैं। हर प्रजाति एक उच्च क्षमताओं वाली प्रजाति में विकसित होने की प्रक्रिया में लिप्त रहती है। यह प्रक्रिया लाखों-करोड़ों वर्षों की है।

डार्बिन के बाद अनेक वैज्ञानिक इस पर गहन शोध करने लगे। अध्ययन और शोध की एक आधुनिक परम्पराओं का जन्म हुआ। शारीरिक विज्ञान, पूर्वज विज्ञान, पुरातत्व शास्त्र, भाषा विज्ञान, अनुवांशिक विज्ञान आदि से पता चलता है कि कैसा था पहले का मानव। कहने की आवश्यकता नहीं कि मानव को मानव बनने में करोड़ों वर्ष लग गये यानि जड़ से चेतन की एक लम्बी यात्रा है। मानव इतना निर्बल नहीं है कि उसका पतन हो जाये। वह फिर अपनी सुरक्षा के लिए कोई न कोई नया राह बना लेगा ऐसा विश्वास है।

मनुष्य स्वयं अपने लिए एक रहस्य है। सुकरात का कहना था और प्लेटों ने भी अपनी रचना 'फेडरस' में यह व्यक्त किया कि मनुष्य सदा उससे अधिक है जितना वह अपने बारे में सोच पाता है। जब वह अपने को एक पदार्थ के रूप में देखता है तब वह अनुभव करने वाला दृष्टा चैतन्य है, जो अपने को जानता है। मनुष्य एक भौतिक जीवन से अधिक है। मनुष्य एक दैहिक विस्तार मात्र नहीं है वह आत्म विस्तारवाद है। उसका परम लक्ष्य है परम ज्ञान को उपलब्ध होना। लेकिन मानव प्रकृति का एक भाग ऐसा है जो वस्तुनिष्ठ नहीं है। वह अवस्तुनिष्ठ पहलू ही मानव को इस प्रकृति जगत से अलग बनाता है। मानव केवल नैसर्गिक प्रवृत्ति का प्राणीमात्र नहीं है। न ही वह मस्तिष्क का केन्द्र मात्र है। उसके अलावा भी कुछ है। लेकिन मानव अस्तित्व कभी समाप्त नहीं होता। वह किसी न किसी रूप में समाज में रहता है। मानव की सबसे बड़ी उलझन है उसका भय है। आत्मवादी, अध्यात्म और समाज विज्ञानी सब एक विषय पर

एकमत हैं कि धर्म और अध्यात्म मानव के भय एवं अकेलेपन पर विजय पाने का परम मार्ग है। अकेलेपन की भावना क्यों है? क्या वह भयग्रस्त मानव के जाग्रति उपक्रम का अन्त है या कोई और नियति है?

जहां तक भारतीय मनीषा का विचार है कि धर्म और अध्यात्म मानव की बौद्धिक प्रकृति एवं अपने को जानने की उसकी विशेष प्रक्रिया है। अध्यात्म कहता है कि मनुष्य अविद्या से ग्रसित है। इस अविद्या से काम का जन्म होता है। मनुष्य पीड़ित अथवा पतित अवस्था में है। उसने अपने को पशुस्तर से धीरे-धीरे विकसित तो कर लिया है और अपने अन्दर ऐसी आत्म चेतना का विकास कर लिया है जो खण्डित है।

तथागत कहते हैं जीवन दुख के अलावा कुछ नहीं है। हम कर्म द्वारा शासित जगत में रहते हैं। बिना आत्म ज्ञान से इनसे मुक्त होना सम्भव नहीं है। कहा जाता है आदम-हौवा ईश्वर के सबसे नजदीक थे। ईश्वर ने उनके सुख के लिए उन्हे सब कुछ दिया क्योंकि वे दोनों प्राकृतिक थे। लेकिन आदम पुरुष था उसके अन्दर उत्सुकता हुई। ईश्वर ने सबसे सुन्दर फल खाने को क्यों मना किया। हौवा के लाख मना करने पर आदम ने उस वृक्ष का फल तोड़ लिया। जैसे ही उस फल को चखा उसी पल ईश्वर प्रगट हो गये और बोले- आदम यह ज्ञान वृक्ष है। लेकिन अभी तुम्हे कुछ दिन और इन्तजार करना चाहिए था। जब तुम्हारे अन्दर ज्ञान परिपक्व हो जाता तो मैं स्वयं आदेश देता फल खाने के लिए। लेकिन तुमने मेरे आदेश का पालन नहीं किया। अब तुम्हारा पतन निश्चित है। इतना कह कर ईश्वर अदृश्य हो गये। यह एक मिथक है कथा का प्रतीक है। जानते हैं आप उस ज्ञान वृक्ष का फल खाने के बाद आदम-हौवा को सर्वप्रथम एक खालीपन और अकेलेपन का एहसास हुआ ईश्वर से दोबारा न मिल पाने के कारण। सर्वप्रथम भय का आभास होता है जो आज तक चला आ रहा है वह भय मानव मन के आन्तर तल में बैठ गया है।

कहने की आवश्यकता नहीं कि आदम-हौवा की कथा एक पतन का प्रतीक रूप है। जो सत्य को प्रगट करता है। मनुष्य ज्ञान वृक्ष का फल चखता है परिणाम उसका पतन है। मनुष्य के विद्या में बौद्धिक ज्ञान आगे की एक उछाल है।

बुद्धि द्वारा तर्क उत्पन्न होगा ही किन्तु उसे पतन इसलिए कहा गया है कि वह मानव जीवन में एक दरार है, एक अन्तर पैदा करता है। उसमें प्राकृतिक क्रम में एक रोक है, एक व्यवधान आता है। कहने का तात्पर्य यह है कि पाप-पुण्य के ज्ञान वृक्ष का फल खाने के बाद आदम-हौवा को ज्योंहि सत्य और यथार्थता के नये सम्बन्ध में अथवा नर-नारी के रिश्ते में प्रवेश करने का ज्ञान हुआ उसी क्षण वे भयग्रस्त हो गये। भयग्रस्त होने का कारण यह था कि उनके नवीन ज्ञान ने उनके ऊपर जो उत्तरदायित्व डाल दिया कहीं वे उनकी पूर्ति करने में समर्थ होंगे कि नहीं? इसी अवस्था को पतन की अवस्था कहा गया। क्योंकि वे ऐसी खोई चीज का अनुभव कर प्रकाश की खोज कर रहे थे जिनकी एक झलक मात्र उन्हे मिली थी। कहने की आवश्यकता नहीं कि उन्हे पाप-पुण्य, नर-नारी के विषय में ज्ञान हुआ। तब उन्हे जन्म और मृत्यु का ज्ञान होना स्वाभाविक था।

देखा जाये तो प्रत्येक मानव अपने ढंग में पूर्ण है। अपने जीवन चक्र के अन्दर वह अपने को पूर्ण कर लेता है। निस्सन्देह वह मृत्यु के अधीन है परन्तु उसे इसका भान नहीं है। उसकी मृत्यु कब होगी। लेकिन मृत्यु का भय एकाकीपन की भावना पैदा करता है। यही भावना उसके अधूरेपन का बोध कराती है और ज्ञान व विकास के लिए उसकी आवश्यकता को व्यक्त करती है। मरण भय के निराकरण का प्रयास ही मानव ने प्रत्येक युग में ऐसे सूत्रों का आविष्कार किया और करता जा रहा है। फिर चाहे विज्ञान के रूप में हो अथवा अध्यात्म के रूप में, उसका प्रयास चल रहा है।

स्वयं के बारे में और दूरस्थ ऐसी सत्ता के बारे में जो कहीं है पर उसका ज्ञान नहीं है। आत्मबुद्धि की भ्रान्तियां एवं स्वतंत्रता के दुरपयोग के कारण पतन होता है। उद्धार का मार्ग, ज्ञान का मार्ग, मुक्ति का मार्ग, बुद्धि के परे जो प्रेरणा है उस तक पहुंचना है और स्वतंत्रता का उचित उपयोग करना है। एक ऐसा यथार्थ है जो तर्क से भी कहीं अधिक गहन है यह मानव के अस्तित्व के मूल में है।

असतो मा सद्गमय।
तमसो मा ज्योतिर्गमय।
मृत्योऽर्मा अमृतं गमय।

(उपनिषद)

असत से सत की ओर ले चल, अन्धकार से प्रकाश की ओर ले चल, मृत्यु से अमृत की ओर ले चल।

उपनिषद का यही वचन भारतीय अध्यात्म का सूत्र है। भारतीय अध्यात्म यहीं से अपनी यात्रा प्रारम्भ करता है। भारतीय अध्यात्म मानव को बन्धन मुक्त होने का मार्ग बतलाता है। इस जगत में मानव को सीमित जीवन के ज्ञान अथवा शाश्वत जीवन की ओर जाने का मार्ग बतलाता है। जब तक मानव अभेद जीवन को प्राप्त नहीं करता तब तक उसे अवसर मिलता रहेगा। कर्म के सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक प्राणी को अपने लक्ष्य प्राप्त करने के लिये अनेक अवसर मिलते हैं। प्रत्येक प्राणी अपने कर्मों एवं प्रवृत्तियों का परिणाम है और अपने संकल्प बल द्वारा वह अपने कर्मों एवं प्रवृत्तियों का परिशोधन कर सकता है।

जब तक हमें सत्य का साक्षात्कार नहीं हो जाता तब तक हमें चलते रहना है और अपने को हर क्षण बदलने रहना है ताकि पतनोन्मुख न होकर आत्मोन्मुख होता रहे।

जब भारतीय अध्यात्म पुरुषों को यह ज्ञान हुआ कि जीवन चक्र सीमित है और शरीर का क्षय प्रतिक्षण हो रहा है। तब परम ज्ञान प्राप्ति के लिये शरीर के क्षरण को नियंत्रित करना आवश्यक है। उन्होने देखा शरीर को गति देने वाला एकमात्र श्वांस-प्रश्वांस है। जो शरीर की जीवन ऊर्जा है जिसके कारण शरीर गतिमान है। जब उन्होने श्वांस-प्रश्वांस का गहन अध्ययन किया तो पाया इसमें अपार शक्ति है। यह तो हर जगह प्राण रूप यानि मुख्य रूप से व्याप्त है। यही जीवन का मुख्य आधार है। इसलिए इसे प्राण तत्व कहा और इसे साधने के लिए शरीर का स्वस्थ रहना आवश्यक है। शरीर के साधने का आधार जो बना वह है आसन। आसनों को परिमार्जित करते-करते चौरासी आसनों की खोज हुई। जिसका परिणाम है योग। योग ही एकमात्र विकल्प था और है हमें परम ज्ञान की ओर अग्रसर करने के लिए।

◆◆◆

प्रसंग दस

योग की प्राचीनता

योग शास्त्र प्राचीन काल से ही भारतीय हिन्दु धर्मावलम्बियों का एक सबसे समीचीन सम्पदा है। यही एक ऐसी विद्या है जिसमें तर्क का कोई स्थान नहीं है। योग ही मोक्ष और परम चेतना का मार्ग है और भक्ति तथा ज्ञान का प्रधान सहायक है। आदि ऋषियों के तपस्या, अन्तर्दृष्टि की उत्पत्ति में योग ही प्रधान कारण था। योग एक स्वतंत्र दर्शन भी है। यह मानव के जीवन में एक सच्चा पथ प्रदर्शक है, विज्ञान है। योग मनोविज्ञान का प्रायोगिक अंश है। इसलिए किसी न किसी रूप में योग हर दर्शन में आ ही जाता है। अतः इसकी प्राचीनता निर्विवाद है।

योग दर्शन पर अनेक भाष्य हुए हैं। वर्तमान काल में प्राप्त सभी भाष्यकारों का मत है कि महर्षि पतञ्जली योग दर्शन के प्रथम प्रणेता नहीं है। योग का वर्णन श्रुति और स्मृति में आया है।

याज्ञवल्क्य स्मृति में कहा गया है कि "हिरण्यगर्भो योगस्थ वक्ता मान्य पुरातन" अर्थात् हिरण्यगर्भ ही आदि वक्ता हैं योग दर्शन के। सांख्य ऋषि ने भी कहा है हिरण्यगर्भ ने ही प्रथम बार योग का परिचय जगत से कराया। हिरण्यगर्भ किसी मानव का नाम नहीं है। हिरण्यगर्भ ही सर्वप्रथम उत्पन्न प्रजापति है। इसकी पुष्टि वेदों में भी की गई है। योग शास्त्र एक प्रकार से प्राचीन शास्त्र है। इसी से इसकी प्राचीनता सिद्ध होती है। भारतवर्ष में योग का महत्व और क्षेत्र काफी विस्तृत है। ज्ञान का जीवन से सीधा सम्बन्ध होने के कारण हर क्षेत्र में क्रियात्मक ज्ञान की आवश्यकता रही है। जीवन के लक्ष्य को क्रियात्मक रूप देना प्राचीन काल से ऋषियों ने आवश्यक समझा है। सभी शास्त्रों ने लक्ष्य प्राप्ति के मार्ग बतलाये हैं। इन लक्ष्यों तक पहुंचने के मार्गों को ही योग कहा जाता है। धर्म, दर्शनविज्ञान सभी में योग का विशेष स्थान है।

भारत में कोई भी सैद्वान्तिक ज्ञान, व्यवहारिक ज्ञान के बिना नहीं रहा। हर सैद्धान्तिक ज्ञान को क्रियांत्मक रूप दिया गया है। क्योंकि क्रियात्मक रूप योग है। इसलिए कोई भी शास्त्र योग के बिना पूर्ण नहीं माना गया है। वेद, पुराण, उपनिषद, दर्शन और श्रीमद्भागवत आदि सभी में योग शास्त्र का वर्णन मिलता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि योग शास्त्र भारतवर्ष का सबसे प्राचीन शास्त्र है और इसका क्षेत्र अति विस्तृत है। ऋग्वेद में योग के बारे में विस्तृत वर्णन मिलता है जिससे यह पता चलता है कि योग शास्त्र कितना प्राचीन है। कर्मवाद के विषय में भी वेदों में उल्लेख मिलता है। मानव को अपने अच्छे-बुरे कर्मों का फल भोगना पड़ता है। देवता भी कर्म फल से मुक्त नहीं हैं। शुभ कर्मो द्वारा ही मानव अमर होता है। हर मनुष्य अपने कर्मों द्वारा ही निरन्तर जन्म-मरण के चक्र में घूमता रहता है। पूर्वजन्म कृत दोषों से छुटकारा के लिए मानव प्रार्थना-पूजा और योग का शरण लेता है। मनुष्य अपनी सारी क्रियाओं के लिए स्वतंत्र है। वह जिस प्रकार क्रिया करेगा उसी के अनुकूल प्रतिक्रिया होगी। कर्म के प्रेरक कारण पूर्व जन्म के संस्कार होते हैं। मनुष्य में ही पूर्ण आत्मा की अभिव्यक्ति होती है। यही कारण है कि उसे सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो सकता है। ब्राम्हण और आरण्यक ग्रन्थों में ज्ञान के सभी अवस्थाओं का वर्णन है। पांच ज्ञानेन्द्रियों, पांच कर्मेन्द्रिय, पांच वायु, पंचभूत और मन से बने भौतिक शरीर की धारणा है। वेद में सभी आध्यात्मिक कर्मों को योग माना है यानि यज्ञ आदि के पूर्व योग करना माना गया है।

ऋग्वेद में सभी योग साधना में प्राण साधना का यथार्थ वर्णन मिलता है। जिसमें सभी इन्द्रियों का रक्षक और कभी भी नष्ट न होने वाला बतलाया गया है। उस प्रवाह का मार्ग नाड़ियां हैं। प्राणों की श्रेष्ठता बतला कर इन्द्रियां, मन आदि सब क्रियाओं का निरूपण किया गया है यानि योग साधना में प्राण साधना मुख्य है बिना प्राण साधना के कोई साधना पूर्ण नहीं हो सकती।

उपनिषद और योग

किसी न किसी रूप में सभी उपनिषदों में योग का वर्णन मिलता है और योग को विशेष महत्व भी दिया गया। योग को एक प्रकार से मुक्ति

प्राप्ति का ज्ञान और परम ज्ञान का साधन माना गया है। श्वेताश्ररोपनिषद में योग और उसकी विशेष क्रिया और फल का विवेचन किया गया है। जिसमें प्राण साधना, नाड़ी साधना, ध्यान साधना आदि है। मुण्डकोपनिषद और कठोपनिषद् में भी वर्णन है। नचिकेता को यम ने अमरत्व प्राप्त करने का उपाय योग में ही बतलाया है। वृहदारण्यकोपनिषद में आत्म उपलब्धि प्राप्त करना बतलाया गया है। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे उपनिषद है जिनमें केवल योग के महत्व का विस्तारपूर्वक वर्णन है। जैसे योग कुण्डल्योपनिषद, योग शिखोपदनिषद, योग चूड़ामण्युपनिषद, योग तत्वोपनिषद आदि।

उपनिषदों में मनस यानि मन को शरीर और आत्मा का माध्यम माना गया है। उपनिषदों में जगत को प्रपंचात्मक माना है केवल आत्मा ही सत्य है। जिसकी सत्ता पर संदेह नहीं किया जा सकता। अज्ञान के कारण जीवबद्ध है। ब्रम्ह की शक्ति माया के द्वारा आत्मा का वास्तविक रूप छिपा रहता है। जब आत्मा अपने को शरीर समझने लगती है तब वह सुख-दुख भोगने वाली बन जाती है। वह शरीर, मन, इन्द्रिय आदि के साथ सम्बन्धित होकर अपना सर्वव्यापक रूप भूल कर सांसारिक बन्धन में बंध जाती है और शरीर को ही सब कुछ समझ लेती है। इसी को माया कहते हैं। अविद्या कहते हैं।

उपनिषदों में शरीर के तीन भेद बतलाये गये हैं स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर। स्थूल शरीर पंचभूतों द्वारा निर्मित है जिसे भौतिक शरीर भी कहते हैं। मृत्यु के बाद भौतिक शरीर पुनः पंचभूतों में मिल जाता है। सूक्ष्म शरीर भौतिक होते हुए भी दृष्टिगोचर नहीं होता। वह आत्मा का वाहक बन जाता है। अन्य शरीर प्राप्त करने के लिए कारण शरीर द्वारा आत्मा पुनः जन्म लेती है।

प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान ये पंच प्राण हैं। इन्ही के ऊपर सम्पूर्ण जीवन चलता है यानि जीवन का आधार यही पंच प्राण ही हैं। आत्मा, ज्ञानेन्द्रियां, कर्मेन्द्रियां, मन और पंच प्राणों सहित मृत्यु के समय भौतिक शरीर को छोड़ देती है। लेकिन इनमें कर्माश्रय भी सम्मलित होता है जो मानव के जीवन काल में किये गये कर्मो का कोश है। इसी कर्माश्रय द्वारा शरीर निकल कर आत्मा के साथ चला जाता है। इसी से जीव का भविष्य निर्धारित होता है। इसी के अनुसार पुनः जन्म होता है।

इसी कर्माश्रय को पूर्वजन्म का संस्कार कहते हैं।

अद्वैत वेदान्त भारतीय विचार दर्शन के विकास में सर्वोच्च स्थान रखता है। वेदान्त में भारतीय दर्शन का सूक्ष्म विवेचन है। भारतीय दर्शन एकमात्र दर्शन नहीं है। तत्व ज्ञान के अलावा जीवन दर्शन पर विशेष ध्यान दिया गया है। सच तो यह है कि यहां जीवन के लिए ही दर्शन है। यही कारण है कि भारतीय दर्शन केवल सैद्धान्तिक ही नहीं है बल्कि व्यवहारिक भी है। परम लक्ष्य और आत्मोपलब्धि के लिए साधन भी बतलाये गये हैं।

सत्य को साक्षात्कार करने का मार्ग प्रायः सभी भारतीय दर्शनों में पाया गया है। वेदान्त के द्वारा जो साधना बतलायी गई है वह मुख्यतया ज्ञान साधना है यानि वेदान्त की साधना ज्ञान के आधार पर ही प्रतिष्ठित है। साधना अवस्था में भी निर्विकार निर्गुण ब्रम्ह ही है। आदि शंकराचार्य ने विवेक चूड़ामणि में कहा है-

उद्धरेदात्मनात्मना मग्नं संसारवारिधौ।
योगारुढ़त्वमासाद्य सम्यग्दर्शन निष्ठया।।

अर्थात् संसार सागर में डूबी आत्मा का हर क्षण आत्मदर्शन में मग्न रहता हुए योगारुढ़ होकर स्वयं ही उद्धार करे।

वेदान्त का प्रमुख वाक्य है। ब्रम्ह सत्य है और जगत मिथ्या है अर्थात् ब्रम्ह ही एकमात्र नित्य है उसके अतिरिक्त सभी अनित्य है। दूसरा सांसारिक सुखों को अनित्य मान कर उसका त्याग ही वैराग्य है। तीसरा है षष्ट सम्पत्ति- शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा और समाधान। विषय भोगों के प्रति विरक्त रहना और अपने ध्येय में अपने को स्थिर रखना शम है। कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रियों के विषयों से अपने को हटा लेना ही दम है। बाह्य विषयों का आलम्बन यानि रूचि न लेना ही उपरति है। विकार-प्रतिकार भावना से रहित होना, शोक-चिन्ता से रहित रहना तथा शीत, उष्ण आदि किसी भी प्रकार के कष्टों में भी प्रसन्न रहना अथवा सहन करना ही तितिक्षा कहलाती है। अध्यात्म शास्त्र और गुरु वचन और वाक्य पर विश्वास रखना ही श्रद्धा है। ब्रम्ह में सदैव लीन रखना ही समाधान कहलाता है। वेदान्त, ज्ञान के आधार पर प्रतिष्ठित है। साधन अवस्था निर्विकार निर्गुण ब्रम्ह ही है। वेदान्त योग में ब्रम्ह और जीव के एकत्व की स्थापना

होती है। वेदान्त साधना के द्वारा ध्याता, ध्यान और ध्येय की त्रिपुटी समाप्त हो जाती है। वेदान्त योग साधना से अहं भाव आदि दोष निवृत्त हो जाते हैं। उसमें ब्रम्ह की अनुभूति होने लगती है। साधक स्वयं ब्रम्ह में लीन हो जाता है। ब्रम्ह का साक्षात्कार ही मोक्ष है। यही वेदान्त की अपनी विशिष्ठ योग साधना है। वेदान्त के अनुसार आत्म तत्व के अतिरिक्त कोई दूसरी सत्ता नहीं है। ब्रम्ह और आत्मा भिन्न नहीं है। दोनों एक ही हैं। माया के आवरण में आत्मा का वास्तविक रूप छिपा रहता है। माया ब्रम्ह की उद्भुत शक्ति है। सत्ता एक ही है अनेकता भ्रममात्र है। निर्गुण ब्रम्ह, सगुण ब्रम्ह तथा जीव में कोई भेद नहीं है।

वेदान्त योग का कहना है कि आत्म साक्षात्कार ही ब्रम्ह ज्ञान है। वेदान्त में निर्विकल्प समाधि (योग शास्त्र का विशेष अंग) से ही अज्ञानता का नाश होकर आत्मोपलब्धि बतलायी गई है। समाधि के निरन्तर अभ्यास से अज्ञानता के कारण उत्पन्न हुए दोष तथा अज्ञान नष्ट हो जाते हैं। योगी निरन्तर समाधि से अपने में ब्रम्ह भाव का अनुभव करने लगता है। अनेकत्व में एकत्व की भावना वेदान्त में बतलायी गई है। उपर्युक्त कथन से यह स्पष्ट होता है कि वेदान्त में भी योग साधना है। योग का उद्देश्य है आत्मा के ऊपर माया के आवरण को हटाना। योग साधना के द्वारा अभेद की स्थापना होती है। ब्रम्ह के सगुण रूप का एकनिष्ठ ध्यान और उसमें लीन होना ही वेदान्त योग का वास्तविक रूप है। वेदान्त योग में ब्रम्ह और जीव के एकत्व की स्थापना होती है। इससे यह सिद्ध होता है कि वेदान्त में योग का पूर्ण समावेश है यानि वेदान्त बिना योग के पूर्ण नहीं कहा जा सकता है।

आयुर्वेद ने भी योग को एक अंग माना है। महाभारत, गीता, बौद्ध धर्म और जैन धर्म में भी योग का विशेष स्थान है। देखा जाये तो वैदिक काल से लेकर वर्तमान काल में भी योग साधना अपना महत्व रखता है। योग भारतीय साधना की आधारभूमि है। भारत में निर्वाण यानि मोक्ष जीवन का अन्तिम लक्ष्य रहा है। अध्यात्म और आध्यात्मिक साधना परम निर्वाण ही परम लक्ष्य है। लेकिन मोक्ष कोई बौद्धिक विवेचन मात्र नहीं है। बल्कि अस्तित्वगत बोध है। इसलिए इसे केवल सैद्धान्तिक स्थापनाओं के द्वारा जाना नहीं जा सकता है। इसलिए क्रियात्मक प्रयास भी आवश्यक

है। एकमात्र योग ही क्रियात्मक प्रयास का आधार है। यही कारण है कि भारतीय साधना भूमि में चाहे तंत्र मार्ग हो या अन्य मार्ग सबके सूत्र योग से ही जुड़े हैं। कुण्डलिनी साधना तंत्र का मार्ग है। फिर भी इसके समस्त क्रिया पक्ष योग से ही सम्बन्ध रखते हैं।

योग शब्द संस्कृत के 'युज' धातु से बना है। 'युज' धातु का अर्थ है जुड़ना और समाधि व्याकरण के आधार पर 'युज समाधौ, युजिर योगे' युजिर योग से योग शब्द की उत्पत्ति होती है। यह शब्द युज समाधौ से उत्पन्न होता है जिसका अर्थ होता है समाधि। योग शास्त्र के अनुसार योग की परम अवस्था आत्मा-परमात्मा का मिलन है और समाधि का अर्थ है स्वयं का साक्षात्कार। लेकिन अर्थ भिन्नता के कारण इस आवरण को भेद कर अन्दर जाया जाये तो ज्ञात होता है कि इन दोनों अर्थों में योग का उद्देश्य एक ही है मोक्ष की प्राप्ति यानि परम निर्वाण की प्राप्ति। चाहे वह आत्मा-परमात्मा का मिलन हो या स्वयं से साक्षात्कार दोनों की परिणति एक ही है। जैसाकि प्रसंगवश आगे वर्णन किया जा चुका है कि योग शास्त्र का उल्लेख आदि ग्रन्थ वेदों में मिलता है। वेद मंत्रों द्वारा इसके उद्देश्य और उपयोग को स्पष्ट किया गया है। जैसाकि ऋग्वेद में वर्णन है। बिना योग साधना के ज्ञानी पुरुष का भी यज्ञ कर्म सिद्ध नहीं होता। देखा जाये तो वेदों और उपनिषदों के बाद गीता में योग पर विशेष प्रकाश पड़ा। यद्यपि महाभारत में अनुशासन पर्व, शान्ति पर्व और भीष्म पर्व आदि में योग का विस्तृत वर्णन मिलता है। लेकिन भगवान कृष्ण द्वारा गीता उपदेश में योग के कई महत्वपूर्ण विषयों पर अर्जुन को ज्ञान दिया गया था।

"समत्व योग उच्चते" अर्थात् समत्व की प्राप्ति योग से ही होती है। योग कर्मशुः कौशलम यानि कर्म की कुशलता ही योग है। गीता में ज्ञान योग, भक्ति योग और कर्म योग के रूप में इसका विभाजन भी किया गया है। यह विभाजन धार्मिक-व्यवहारिक चेतना के अनुकूल है।

देखा जाये तो जीवन के तीन आयाम होते हैं। चाहे उसे व्यवहारिक रूप से देखा जाये या धार्मिक रूप से। वह है ज्ञान, भक्ति और कर्म। योग इन तीनों से सम्बन्धित होकर क्रमशः ज्ञान योग, भक्ति योग और कर्म योग का रूप ले लेता है। योग के तीनों मार्ग पर चलकर जीवन के लक्ष्य को

प्राप्त किया जा सकता है। चाहे वह व्यवहारिक जीवन हो या आध्यात्मिक जीवन।

इस प्रकार योग की एक लम्बी परम्परा रही है। जिसे उच्चतम् शिखर पर पहुंचाने का कार्य महर्षि पतञ्जली ने पूर्ण किया। उन्होने तमाम योग सम्बन्धित बिखरें सूत्रों को संकलित कर, उन्हे व्यवस्थित कर नया आयाम दिया। देखा जाये तो महर्षि पतञ्जली ही सबसे महत्वपूर्ण योग के विवेचक थे। क्योंकि उन्होने न केवल योग के भिन्न प्रक्रियाओं का संकलन किया बल्कि योग सम्बन्धित विभिन्न मान्यताओं, दर्शन को एकत्र कर सम्पादन किया और साथ ही सांख्य तत्व दर्शन से समन्वित कर प्रमाणित भी किया। देखा जाये तो महर्षि पतञ्जली योग शास्त्र के जन्मदाता ही नहीं बल्कि महान प्रवर्तक माने जाते हैं। योग दर्शन के जिस रूप को हम आज देख रहे हैं और उस पर चल कर हजारों साधक योग की उच्चावस्था को प्राप्त किये इस महान कार्य का देन केवल महर्षि पतञ्जली ही हैं।

योग प्रसंग

महर्षि पतञ्जली ने सामाजिक और आध्यात्मिक मार्ग को अष्टांग योग में निरूपित किया। योग केवल अध्यात्म मार्ग नहीं है। समाज और जीवन में इसका क्या उपयोग है उन्होने भलीभांति वर्णन किया है। चाहे वह सांसारिक हो या हो आध्यात्मिक। अगर वह योग मार्ग के साथ चलता है तो उसका जीवन सुखमय होगा। हम लोग योग की बहुत सारी पुस्तके पढ़ते हैं और योग का अभ्यास भी करते हैं। लेकिन आसन-प्राणायाम के साथ-साथ उन तथ्यों पर विचार करें और जीवन पर उसे अपनाये तो जीवन सच्चे अर्थों में सत्य का मार्गी हो जायेगा।

महर्षि पतञ्जली ने योग को केवल आसन, प्राणायाम, ध्यान तक ही सीमित नहीं रखा उसे आठ भागों में विभक्त भी किया। जिसे हम अष्टांग योग के नाम से जानते हैं। योग साधना में ये आठों अंग काफी महत्वपूर्ण हैं। यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार यह योग की बाह्य साधना है। ध्यान, धारणा और समाधि यह अन्तरंग साधना है।

अन्तरंग साधना तभी पूर्ण होती है अथवा साधक को तभी सफलता मिलती है जब वह बाह्य साधना को भी लेकर चलता है। एक प्रकार से ये

बाह्य साधना अन्तरंग साधना की नींव है। इस पर गम्भीरता से विचार करना आवश्यक है। अगर विचारपूर्वक देखा जाये तो यम-नियम का महत्व केवल योग साधक के लिए नहीं बना है। बल्कि समस्त मानव जाति और समाज के लिए भी बना है। आज जो समाज और देश में अशान्ति हिंसा आदि फैली है उसके मूल कारण है कि हम यम-नियम से दूर हैं। यम का पालन तो हर जाति, देश, समाज तथा हर मत के मनुष्यों के लिए है। अगर हमें समाज में शान्ति चाहिए, सामाजिक उन्नति चाहिए तो यम के नियमों को लेकर चलना होगा। तभी हम मानव कहलायेंगे।

मानव कभी भी हिंसक नहीं हो सकता। सच्चे मानव का सबसे बड़ा गुण है दया, प्रेम, करूणा और शान्ति। अगर ये गुण नहीं है तो मानव नहीं है वह पशु है। यम के अन्तर्गत अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रम्हचर्य और अपरिग्रह है और नियम के अन्तर्गत शौच, सन्तोष तप स्वाध्याय तथा ईश्वर चिन्तन आता है।

अहिंसा

हिंसा तीन प्रकार की होती है शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक। किसी भी प्राणी मात्र को शारीरिक चोट पहुंचाना शारीरिक हिंसा होती है। अपशब्द बोलना, अपमान करना, उपेक्षा करना मानसिक हिंसा है। मन में द्वेष, ईर्ष्या, जलन रखना, अन्तःकरण को मलिन रखना आध्यात्मिक हिंसा है। इन तीनों प्रकार के हिंसा से दूर रहना ही अहिंसा कहलाती है। योग में आध्यात्मिक हिंसा को प्रमुख माना है यानि मन के मलिन होने को प्रमुख माना गया है। अगर एक बार मन मलिन हो गया तो वह जल्दी समाप्त नहीं होता। वह विष की तरह बढ़ता रहता है। जो क्रोध, घृणा, मानसिक अवसाद का कारण भी बन जाता है। वैसे किसी भी प्रकार की हिंसा नहीं करनी चाहिए। मानसिक, शारीरिक और वाचिक हिंसा न करना ही परम अहिंसा है। वैसे हिंसा का विचार तो अति सूक्ष्म विषय है। इसे समझना या समझाना इतना सरल कार्य नहीं है। हम इस सूत्र से समझ सकते हैं। जैसा कर्म और व्यवहार हम सामने वाले से अपेक्षा करते हैं वैसा सामने वाला भी आप से चाहता है यानि जिस व्यवहार से स्वयं को कष्ट होता है वैसा व्यवहार हम न करें। जिस मनुष्य के अन्दर दूसरों के प्रति करूणा, दया

होगी उससे हिंसा कभी नहीं हो सकती। बौद्ध धर्म का प्रथम सूत्र ही अहिंसा है। जब साधक और योगी अहिंसा व्रत को परम दृढ़ कर लेता है तब उसके पास आये हिंसक प्राणियों की भी हिंसा वृत्ति समाप्त हो जाती है। ऐसे बहुत सारे उदाहरण है। योग में मन की मलिनता ही हिंसा मानी गई है। योग का प्रथम चरण अहिंसा से ही प्रारम्भ होता है। योग का कहना है कि जब मन दूषित वृत्तियों से भरा रहेगा तब साधना कैसे होगी। पहले मन के मलिनता को दूर करना होगा। नहीं तो यह विष मन के साथ-साथ पूरे शरीर में फैलने लगता है। मन को स्वच्छ रखने का उपाय है अहिंसक होना, तटस्थ होना। अहिंसा व्रत का पालन वीर-चरित्रवान पुरुषों का काम है। निर्बल, चरित्रहीन और कायर पुरुष कभी भी अहिंसक नहीं हो सकता है। ऐसे लोग ही समाज में हिंसा को प्रोत्साहित करते हैं। वीर, धीर, और योगी ही सच्चे अर्थों में अहिंसक होता है। जो अपने आत्मबल, चरित्रबल से हिंसक प्राणी को भी अहिंसक बना देता है। तथागत इसके प्रबल उदाहरण हैं।

सत्य

सत्य वह है जो मन, वचन और कर्म से वस्तु के यथार्थ रूप में अभिव्यक्त किया जाये। स्वय का ज्ञान जिस प्रकार हुआ उसी ज्ञान को उसी रूप में दूसरों को अवगत कराने के लिए कही गई वाणी तथा कर्म ही सत्य है। मन, वचन के एकरूपता को ही सत्य कहते हैं। जिस वचन से किसी भी प्राणी का अहित नहीं होता उस वचन का प्रयोग करना उचित है। वहीं अहितकारी वचन सत्य प्रतीत होते हुए भी पापजनक हैं। प्राणियों को पीड़ा पहुंचाने या हानि पहुंचाने वाली वाणी कभी भी किसी काल में उचित नहीं है।

सत्य बूयात्प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात्सत्यमप्रियम।
प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः।।

(मनुस्मृति)

अर्थात् सत्य बोलें। लेकिन प्रिय बोले। अप्रिय सत्य न बोले तथा प्रिय असत्य भी न बोले। सत्य वही सत्य है जो हितकर हो। जिसमें किसी का आत्मिक शारीरिक, मानसिक व सामाजिक का थोड़ा सा भी नुकसान

न हो। सत्य का मार्ग अत्यन्त कठिन है। सभी लोग नहीं चल सकते। असत्य का मार्ग सरल है। लेकिन उसका अन्त बड़ा ही भयानक होता है। सत्य कठिन है। लेकिन अन्त परम शान्ति का है। लेकिन लोक व्यवहार के साथ सत्य को लेकर चलना ही ठीक होता है। देखा जाये तो सत्य अहिंसा का ही आधार है। सत्य कठोर होता है। यह भी सत्य है। लेकिन जिस वाणी से जानबूझकर कष्ट पहुंचाने की भावना हो वह वाणी अर्थात् सत्य उचित नहीं है। सत्य एक प्रकार से कर्तव्य भी है और अहिंसा भी कर्तव्य है। जिन वचनों से पारस्परिक द्वेष बढ़ता है। दुख होता है। धोखा होता है उनको न बोलना उचित है।

अध्यात्म योग का कहना है कि सत्य वचन उत्तम है। हितकारक वचन बोलना सत्य से भी उत्तम है। क्योंकि जिससे सब प्राणियों का हित होता है वही सत्य है। योग साधना के अन्तर्गत चलने वाले प्राणी अथवा योग वचन को पालन करने वाले प्राणी के वचन में ऊर्जा बल का स्वाभाविक प्रवाह होने लगता है। उसके बोले हुए वचन कभी असत्य नहीं होते। उसके द्वारा दिये गये आशीर्वाद और श्राप दोनों ही अपना तत्काल प्रभाव दिखलाते हैं यानि सत्य व्रत के पालन से वाणी में ओज आ जाता है और एक विशेष आकर्षण भी पैदा होता है। जिससे लोग आकर्षित होने लगते हैं। सत्य वचन रूपी ज्ञान-प्रवचन जो साधक संन्यासी देता है वह मनुष्य की आत्मा की गहरायी में उतर जाता है। उसके वचन से वह धीरे-धीरे सत्यमार्गी हो जाता है। आध्यात्मिक हो जाता है।

बुद्ध के प्रवचन और कर्म में सत्य था। उन्होने जो आध्यात्मिक अनुभव किया उसे सत्य रूप से लोगों के सामने रख दिया। वे जो भी बोले वह सत्य ही बोलते थे। जहां सत्य होगा वहीं अहिंसा होगी। उनके सत्य में इतनी शक्ति थी कि लोग उनके अनुयायी बनने लगे। अहिंसा और सत्य के मार्ग पर चलने लगे। चाहे वह राजा हो या गरीब लाचार हो सब उनका अनुशरण करने लगे। इससे बड़ा सत्य का प्रमाण और क्या हो सकता है।

अस्तेय

अस्तेय शब्द भी बड़ा आध्यात्मिक है। स्तेय का मतलब चोरी करना और अस्तेय का मतलब चोरी न करना। चोरी भी हिंसा के अन्तर्गत ही

आता है। चोरी न करना अहिंसा है। अहिंसा शब्द बड़ा व्यापक है। अस्तेय एंक प्रकार से सत्य का रूपान्तरण है। जब किसी व्यक्ति की प्रिय वस्तु कोई चुरा लेता है तो यह एक प्रकार का हिंसा है। जिस व्यक्ति की वस्तु चोरी हो जाती है उसके अन्दर कितनी तड़प होती है वह चौबीस घण्टे उसे खोजने में जुटा रहता है। उसे एक प्रकार से आत्मिक, मानसिक कष्ट से गुजरना होता है। सामाजिक, प्राकृतिक अधिकार सभी मनुष्यों को मिला है। उसके अधिकार को बलपूर्वक हरण कर लेना या उसे वंचित कर देना या प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कष्ट देना हिंसा है। स्तेय एक प्रकार से हिंसा के अन्तर्गत ही आता है यानि किसी भी मनुष्य के वस्तु, अधिकार का हनन ही स्तेय है।

अगर विचारपूर्वक देखा जाये तो मानव जीवन का चरम लक्ष्य है आत्मोपलब्धि। जो भी उसके इस आत्मोन्नति के नैसर्गिक अधिकारों का हनन करता है सच में चोर है और है हिंसक। क्योंकि उसके अधिकार का हनन करना, परोक्ष-अपरोक्ष रूप से उसके वस्तु आदि पर अधिकार कर लेना इससे बड़ा पाप कोई नहीं हो सकता। सत्य तो यह है कि जो भी मनुष्य अपने नैतिक कर्तव्य का पालन ठीक-ठाक नहीं करता वह चोर है, स्तेय है। कहने की आवश्यकता नहीं कि मनुष्य को सत्य से, अहिंसा से और अस्तेय से वंचित करने वाला उसका अपना शत्रु उसी के आस-पास ही रहता है। उसका नाम है लोभ और राग। इन दो शत्रुओं के कारण मनुष्य अनुचित आचरण अपनाता है। हर मनुष्य को लोभ और राग रहित होने का अभ्यास करना चाहिए। लोभ का ही दूसरा रूप है त्याग और राग का भी दूसरा रूप है विराग यानि आसक्तहीन होना। केवल व्यवहारिक रूप से नहीं बल्कि मानसिक रूप से भी पालन करना ही अस्तेय है। अगर कोई साधक के अन्दर राग उत्पन्न हो जाता है इसका मतलब है वह पूर्णरूप से अस्तेय को प्राप्त नहीं किया यानि मानसिक रूप से भी इच्छा न हो यानि भावना ही पैदा न हो वह अस्तेय है।

अध्यात्म योग कहता है जो अस्तेय का पूर्णरूप से पालन करता है वह राजा जनक के समान सभी सुखों का भोग करता है और परम ज्ञान और परम त्यागी के समान होता है।

ब्रम्हचर्य

काम के प्रति विरक्त अथवा उसे उदय न होने देना ब्रम्हचर्य कहलाता है। अगर विचारपूर्वक देखा जाये तो जब तक समस्त इन्द्रियों पर नियंत्रण नहीं होता तब तक काम के विकार की उत्पत्ति पर नियंत्रण नहीं किया जा सकता है यानि उसे रोका नहीं जा सकता है। मन हर पल अनियंत्रित होता रहता है। उसे धीरे-धीरे साधा जा सकता है। ब्रम्हचर्य की सफलता के लिए खान-पान और रहन-सहन को उसके अनुकूल बनाना पड़ता है।

ब्रम्हचर्य दो प्रकार का होता है। एक है शारीरिक यानि बाह्य ब्रम्हचर्य और दूसरा है आन्तरिक ब्रम्हचर्य। बाह्य ब्रम्हचर्य से ज्यादा महत्वपूर्ण है आन्तरिक ब्रम्हचर्य। आन्तरिक ब्रम्हचर्य का सीधा सम्बन्ध हमारी ऊर्जा यानि ओज से होता है। सात्विक और आध्यात्मिक पुरुष के चेहरे पर विशेष आभा प्रदीप्त होती रहती है। वहीं कामी पुरुष के चेहरे पर क्रूरता दिखती है और वह आभाहीन होता है। क्योंकि वह हर पल काम चिन्तन से पीड़ित रहता है। योग ऋषि दक्षमुनि का कहना है शारीरिक सम्बन्ध से ज्यादा खतरनाक है काम का चिन्तन। काम चिन्तन से मानव का ओज धीरे-धीरे नष्ट होने लगता है। ओज क्षय होने से विभिन्न प्रकार की शारीरिक और मानसिक व्याधि स्वतः उत्पन्न हो जाती है। जिसके कारण तन और मन को भारी क्षति उठानी पड़ती है समय से पूर्व वृद्धावस्था आ जाता है। हर समय मन उद्विग्न सा बना रहता है।

दक्ष संहिता के अनुसार आठ प्रकार से रहित होना ही ब्रम्हचर्य है। हर समय वासना का चिन्तन करना। उसके विषय में चर्चा करना, स्त्री के साथ क्रीड़ा करना। स्त्री के विभिन्न अंगों को चोरी से देखना। स्त्री के साथ कामजनित बातें करना। हर समय भोग इच्छा के लिए आतुर रहना। राह में चलती स्त्रियों को देखकर अश्लील शब्द कहना आदि। योग का कथन है कि मनुष्य जिस भी उम्र का हो अगर ब्रम्हचर्य का संकल्प लेता है तो उसकी आन्तरिक शक्ति उसी समय से उत्थान करने लगती है। विज्ञान कहता है कि मनुष्य का शरीर जैविक तत्वों से बना है। काम को रोका नहीं जा सकता। यह सत्य है। काम को ऊर्जा कहा गया है कि उसका स्वभाव

ही अधोमुखी है। लेकिन योग के अभ्यास से उसे ऊर्ध्वमुखी बनाया जा सकता है। जैसाकि मैंने पहले कहा है बाह्य काम से ज्यादा खतरनाक आन्तरिक काम है उसे संयमित करना है। जब तक हम मानसिक रूप से दृढ़ नहीं होंगे तब तक हम सफल नहीं हो सकते। हमारे विचार और मन तथा शरीर का सीधा सम्बन्ध हमारे खान-पान यानि आहार से है। जब तक हम रसेन्द्रिय पर नियंत्रण नहीं करते तब तक अन्य इन्द्रियों पर नियंत्रण सम्भव नहीं है। अतः ऐसा आहार नहीं लेना चाहिए जोकि ब्रम्हचर्य अथवा साधना में बाधक हो। तामसिक, राजसिक और उत्तेजक आहार से बचना चाहिए यानि उसका उपयोग नहीं करना चाहिए।

कहने की आवश्यकता नहीं कि किसी भी प्रकार वासना जाग्रत करने वाले शब्द, स्पर्श, रस, गंध आदि विषयों से अपने को दूर ही रखना चाहिए। योग साधना में ब्रम्हचर्य पर विशेष बल दिया गया है। क्योंकि बिना संयम से शरीर, मन, इन्द्रिय को बल तथा सामर्थ्य की प्राप्ति होना सम्भव नहीं है। सांसारिक और पारमार्थिक कोई भी कार्य बिना संयम के सम्पन्न नहीं हो सकता। संयम के ठीक-ठीक पालन से साधक के लिए कुछ भी दुलर्भ नहीं है। सत्य तो यह है कि ब्रम्हचर्य संयम से शारीरिक, मानसिक और सहनशीलता का अद्भुत विकास होता है। साधना के लिए सहनशीलता परम आवश्यक है।

शास्त्र में यौवन का सम्बन्ध केवल स्वस्थ सन्तान प्राप्ति के लिए बतलाया गया है। काम सन्तुष्टि के लिए नहीं।

समाज और विज्ञान की भ्रान्त धारणा है कि काम का दमन करने से अनेक रोगों की उत्पत्ति होती है। जो शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के लिए ठीक नहीं है। लेकिन सत्य तो यह है कि मन पर नियंत्रण न होने से शरीर और इन्द्रियां निरंकुश हो जाती है और उसे बलपूर्वक रोकते रहने से हानि की सम्भावना बढ़ जाती है।

खासकर साधकों को अवश्य ध्यान देना चाहिए। वैसे तो हर व्यक्ति को संयम पर अवश्य ध्यान देना चाहिए। थोड़े से संयम से चमत्कारिक प्रभाव देखने को मिलता है। मनुष्य की चंचलता खत्म हो जाती है। खासकर आन्तरिक ब्रम्हचर्य संयम अति आवश्यक है। आन्तरिक संयम से

स्वतः बाह्य ब्रम्हचर्य घटने लगता है। वैसे योगमार्ग हो या तंत्र मार्ग हो उस पर चलने वाले साधकों को खासकर आन्तरिक ब्रम्हचर्य पर विशेष ध्यान देना चाहिए। बाह्य और आन्तरिक ब्रम्हचर्य संयम के बिना साधक परम ज्ञान, कैवल्य आदि की ओर एक कदम भी नहीं बढ़ सकता। इसके दृढ़ होने पर साधक के साधना मार्ग की सारी विघ्न बाधाएं स्वतः ही दूर हो जाती है। वह साधक स्वतः ही सिद्ध मार्ग की ओर अग्रसर होने लगता है।

अपरिग्रह

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद दुखभाग्भवेत् ।।

योग साधना में उपरोक्त श्लोक का काफी महत्व है। सभी सुखी हो, सभी निरोग हो, सभी का कल्याण हो, कोई भी दुख न हो। यह श्लोक ही अपरिग्रह है। अपरिग्रह का अर्थ है जरूरत से ज्यादा धन, सम्पत्ति का संचय न करना, शरीर के प्रति मोह न रखना, भोग विषय से दूर रहना आदि। कहने की आवश्यकता नहीं मानव की तृष्णा का अन्त नहीं है। तृष्णा का कोई अन्त नहीं है हम जितना भी उसके पीछे चलते हैं उतना ही वह आगे बढ़ता जाता है। विषय भोग की तृष्णा कभी भी शान्त नहीं होती।

महर्षि भर्तृहरि का कथन कितना सत्य है भोगों को हमने नहीं भोगा। किन्तु उसने हमें भोग लिया। काल नहीं बीता किन्तु हम बीत गये। तृष्णा समाप्त नहीं हुई बल्कि हम ही समाप्त हो गये। अगर इन शब्दों को गम्भीरतापूर्वक कुछ पल विचार करें तो सारा उत्तर मिल जाता है।

मानव की तृष्णा कभी भी कम नहीं हो सकती परन्तु हां उसे संयमित तो किया जा सकता है। जब तक हम मानसिक, शारीरिक रूप से अपने को संयमित नहीं करेंगे तब तक हम सफल नहीं हो सकते। क्योंकि भोग को हम जितना बढ़ाते जायेंगे उतना ही राग बढ़ता जायेगा।

राग बढ़ने से यानि लालच बढ़ने से भोग सामाग्री संचय करने की प्रवृत्ति भी बढ़ती जायेगी। यही प्रवृत्ति एक दिन हमारे विनाश का कारण बन जाती है। इस संसार में संग्रह करके कोई भी मनुष्य सुखी नहीं हुआ। आवश्यकता से अधिक संग्रह ही नाश का कारण बनता है।

देखा जाये तो अपरिग्रह सभी के लिए आवश्यक है। केवल साधक के लिये ही नहीं। खैर,

योग साधना में साधक को अपरिग्रह पर विशेष ध्यान देना चाहिए। उसे उतना ही संग्रह करना चाहिए जिससे उसका और उस पर आश्रित लोगों का काम चलता रहे। योग कहता है जब साधक को अपरिग्रह सध जाता है। तब वह एक प्रकार से निर्मल होने लगता है जो अन्दर है वही बाहर है। कोई भेद नहीं रहता। वह जगत और स्वयं के प्रति निरपेक्ष भाव से रहता है।

तब उसके अन्दर विशेष क्रान्ति स्वतः ही घटित होने लगती है। ध्यान की अवस्था में उसे भूत, भविष्य की घटना का भान होने लगता है। यहां तक देखा जाता है कि साधक अपने पूर्वजन्म का आभास भी कर लेता है। पूर्व जन्म में वह क्या था स्वप्न के माध्यम से देख लेता है और भविष्य में क्या होगा वह भी जान जाता है। त्रिकालदर्शी का प्रथम चरण भी कह सकते हैं।

यम के विषय में संक्षेप में बतलाया गया है। अब थोड़ा नियम पर विचार कर लेते हैं। नियम को भी योग साधना में पांच प्रकार बतलाया गया है।

शौच

बाहरी और आन्तरिक स्वच्छता को शौच कहा जाता है। हमारे शरीर को स्वच्छ करने के बहुत साधन उपलब्ध हैं और स्वच्छ रहने के लिए हम तरह-तरह के उपाय तो करते रहते हैं। लेकिन आन्तरिक शुद्धता पर हमारा ध्यान कम ही जाता है। जिसे योग में अभ्यान्तर शुद्धि कहते हैं।

अभ्यान्तर शुद्धि तभी सम्भव है जब हम ईर्ष्या-द्वेष, मान-अपमान से परे हो जायें। कोई व्यक्ति मुझसे ज्यादा उन्नति कर लेता है उसके प्रति जलन की भावना न रखना। कोई व्यक्ति अपमान कर दे उससे बदला लेने की भावना का त्याग करना। सभी के प्रति समभाव रखना आदि भावना से चित्त निर्मल होता है। निर्मल चित्त ही एकाग्रता को प्राप्त करता है। यह चित्त शुद्धि अभ्यान्तर शौच कहलाती है।

अभ्यान्तर शौच दृढ़ होने पर रज और तम का आवरण हट जाता

है। वह पूर्णतया सत्व प्रधान चित्त हो जाता है और स्फटिक के समान स्वच्छ और निर्मल हो जाता है। तब चित्त को एकाग्र करना सम्भव हो जाता है। एकाग्र चित्त द्वारा धीरे-धीरे इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करना सम्भव हो जाता है। अभ्यान्तर शौच सिद्ध होने पर चित्त एकाग्रता, इन्द्रिय नियंत्रण तथा आत्म साधना का ही परिणाम है आत्म साक्षात्कार। आत्म साधना में सफलता मिलने लगती है। इसलिए साधक को बाह्य और आन्तर शुद्धता पर ध्यान देना चाहिए यानि बाह्य और आभ्यान्तर शौच का सदैव पालन करना चाहिए। क्योंकि स्वच्छता का बहुत ज्यादा महत्व है साधना में। कलुषित तन-मन से साधना सम्भव नहीं है।

सन्तोष

समस्त दुखों का मूल है असन्तोष और सभी सुखों के मूल में है सन्तोष। संतोष रहित चित्त में कभी ज्ञान प्रकाशित नहीं हो सकता। सन्तोष का मतलब आलस्य नहीं है। सन्तोष का अर्थ पुरुषार्थ हीनता नहीं है। हम कुछ प्रयत्न न करें और कहें मैं सन्तोषी हूं यह ठीक नहीं है। अपने प्रयत्न और कर्म को सदैव लक्ष्य रख कर करना चाहिए। अपने प्रयत्न और कर्म पर पूर्व निष्ठा और विश्वास रखने से सन्तोष मिलता है।

सन्तोष के पूर्णरूप से दृढ़ होने पर तृष्णा का शमन होता है। तृष्णा के शमन से ही सुख प्राप्त होता है। तृष्णा बिना उद्देश्य के दौड़ने वाला हिरण है और सन्तोष उद्देश्य के साथ चलने वाला हिरण के समान है। बिना सन्तोष के हम कभी भी अपने उद्देश्य को नहीं प्राप्त कर सकते चाहे कर्म हो या साधना।

दूसरे शब्दों में सन्तोष का लोग विरोध भी करते हैं। उनका कहना है कि विकास रूक जाता है। सन्तोषी मनुष्य अपने को कभी भी बदलने का प्रयास नहीं करता। आवश्यकताओं से स्वयं और समाज का विकास होता है। आवश्यकता अविष्कार की जननी है। यह हम बचपन से सुनते आ रहे हैं। अति आवश्यकता हमें असन्तुष्ट और दुखी बनाती है। आज अशान्ति का मूल कारण है अति-आवश्यकता यानि असन्तोष।

असन्तोष से मानव और समाज का कल्याण कभी भी नहीं हो सकता। असन्तोष से मानव का वास्तविक विकास नहीं हो सकता। मानव

का सही विकास ज्ञान की तरफ चलने में है। उसके लिए साधन रूप से भौतिक वस्तुओं का स्थान हो सकता है।

हम भौतिक वस्तुओं का उतना ही उपयोग करें जितनी हमें आवश्यकता है। जब-जब आवश्यकता बढ़ेगी असन्तोष भी बढ़ेगा और यही असन्तोष हमें अच्छे-बुरे का फर्क नहीं बतलाता। हम कब किधर निकल जाये पता ही नहीं चलता। जब पता चलता है तब काफी देर हो चुकी होती है। तब न शरीर पर नियंत्रण रहता और न मन पर। हम उत्थान की जगह पतन की ओर बढ़ने लगते हैं। सन्तोष का तात्पर्य होशपूर्वक कर्म करना है और सदैव अपने लक्ष्य को सामने रखे एकलव्य की तरह। सफलता अवश्य मिलेगी। लेकिन उस सफलता में होगा मन शान्त और होगा सन्तोष। समाज और परिवार के आगे सिर नहीं झुकेगा। आप आत्म सन्तोष से होंगे पूर्ण। यही सन्तोष का अर्थ है।

तप-स्वाध्याय तथा ईश्वर प्राणिधान

अपने परिस्थिति के अनुसार स्वधर्म पालन करना और उसके पालन में शारीरिक, मानसिक कष्ट को सहर्ष स्वीकार करना ही तप है। व्रत, उपवास आदि भी तप के अंग हैं। निष्काम भाव से तप करने से अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है। ईश्वर का मनन-चिन्तन, जप करना स्वाध्याय है। स्वयं के प्रति चिन्तन भी स्वाध्यांय के अन्तर्गत आता है। ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पण ही ईश्वर प्राणिधान है।

कुण्डलिनी साधना के मुख्य चार चरण या अंग हैं। आसन, प्राणायाम, ध्यान और समाधि।

आसन

कुण्डलिनी साधना का प्रथम चरण है आसन साधना। योग साधना में आसनों का अपना विशेष स्थान है। बिना आसन सिद्ध किये ध्यान, प्राणायाम और साधना करना सम्भव नहीं है। इसलिए योग में, यम-नियम में आसन को विशेष प्रमुखता दी गई है। जिस प्रकार भवन का नींव मजबूत हो तो भवन भी मजबूत होता है। उसी प्रकार समस्त साधना में आसन का विशेष महत्त्व है। आसन का तात्पर्य एक अवस्था में काफी

समय तक सुखपूर्वक स्थिर रहना। आसन के साथ-साथ श्वांस-प्रश्वांस का भी महत्व है। किस आसन में श्वांस-प्रश्वांस की क्या स्थिति होगी यह अवश्य जानना चाहिये। प्रत्येक आसन का सम्बन्ध हमारी प्राण ऊर्जा से होता है। हमारी हर मुद्रा का सम्बन्ध श्वांस-प्रश्वांस और प्राण ऊर्जा से होता है। बहुत से लोगों का विचार है कि बचपन से आसन करने से फायदा होता है। उम्र बढ़ने के बाद करने से कोई फायदा नहीं है। यह बात तो सही है बचपन में अगर आसन का अभ्यास किया जाये तो फायदा अवश्य होता है। क्योंकि बचपन में हमारी मांस पेशियां और हड्डी सरलता से मुड़ सकती है। लेकिन अधिक उम्र में ऐसा सम्भव नहीं है। मेरा विचार है जब से आपके अन्दर साधना करने की इच्छा जागृत हो गयी उसी दिन से शुरू कर देना चाहिए।

योग में बहुत सांरे आसन हैं जिससे हमारा शरीर सध सकता है। कम से कम पांच आसनं का अभ्यास अवश्य करना चाहिए। आसन का सीधा का सम्बन्ध हमारे मांस पेशियों से भी है। प्रतिदिन आसन का अभ्यास करने से हमारा शरीर स्वस्थ होता है। आलस्य, भारीपन दूर कर हल्का और स्फूर्तिवान बनाता है। आसनों के द्वारा हमारा शरीर धीरे-धीरे साधना करने के योग्य होता है। शीत-गर्म का भी कम प्रभाव डालता है और प्राकृतिक प्रभाव को सहने की शक्ति भी पैदा हो जाती है।

हठयोग प्रदीपिका में आसन का विशेष महत्व दर्शाया गया है। वास्तव में आसन एक ऐसा सुगम्य मार्ग है जिसके द्वारा शारीरिक-मानसिक विकास तो होता ही है साथ ही किसी भी प्रकार की बीमारी से भी दूर रखता है। साथ ही वृद्धावस्था को भी नियंत्रित करता है। मैं भ्रमण काल में जिन साधकों से मिला सभी ने साधना के पूर्व आसन और प्राणायाम पर विशेष दक्षता प्राप्त की थी। उनका कहना था सभी साधना के मूल में शरीर ही तो है। इसकी उपेक्षा कर कब तक रह सकते हैं। इसलिए योग साधना का अभ्यास आवश्यक है। योग साधना के बल पर भूख-प्यास, ठण्ड-गर्म के प्रभाव को घटाया-बढ़ाया जा सकता है। योग-तंत्र की साधना में आसन का विशेष महत्व है।

अगर विचारपूर्वक चिन्तन किया जाये तो यह बात सामने आती है।

मानव तन चौरासी लाख योनियों के अतिक्रमण का परिणाम है। मानव तन चौरासी अंगुल का है। कितना सामंजस्य है चौरासी लाख योनि और चौरासी अंगुल में। आर्षकाल में ऋषियों ने वृक्ष-पर्वत, पशु-पक्षियों का गहन अध्ययन कर आसनों का निर्माण किया। आज जो आसन हम देखते हैं वह गुरु-शिष्य के परम्परागत तरीके से मिला और उसे समय-समय पर परिष्कृत भी किया गया। गर्भासन छोड़ कर सभी आसन पशु-पक्षियों के भाव मुद्रा और उनके रहन-सहन पर ही आधारित हैं। क्योंकि पशु-पक्षी हमसे ज्यादा प्रकृति के निकट हैं।

चौरासी आसनों के विषय में घेरण्ड संहिता, हठयोग प्रदीपिका, शिव संहिता आदि में वर्णन मिलता है। हमें चौरासी आसन की आवश्यकता नहीं है। जिस आसन में हमारा शरीर सध जाये उसे ही करना चाहिए। क्योंकि हर मनुष्य का आकार, व्यवहार अलग होता है। जरूरी नहीं है कि जो आसन हमें ठीक लग रहा है अन्य को भी ठीक लगे। शरीर, उम्र और अवस्था के अनुसार आसन का चयन करना श्रेयष्कर है।

मेरे विचार से सूर्यासन में सभी आसनों का सार मिलता है। इसे सभी उम्र के लोग कर सकते हैं। मेरे विचार से आसनों का अभ्यास किसी योग्य प्रशिक्षक के सान्निध्य में ही करना चाहिए। जब एक बार बाह्य साधना सिद्ध हो जाये जैसा कि मैंने वर्णन किया तब आन्तर साधना मुश्किल नहीं होती। आन्त्र्र साधना जैसे-जैसे आगे बढ़ेगी वैसे-वैसे मार्ग स्वतः मिलता जायेगा। यह मेरा अनुभव है बन्धु। पहले एक कदम तो बढ़ायें। शक्तियां आपके अन्दर ही हैं। आसन सिद्धि का सबसे बड़ा महत्व है कि साधक गर्मी-सर्दी, भूख-प्यास आदि के द्वन्द से मुक्त रहता है। उसके अन्दर एक प्रकार से सहन करने की शक्ति प्राकृतिक रूप से आ जाती है। आसन सिद्ध होने की यही पहचान है वह शारीरिक रूप से सहनशील हो जाता है।

आसन का सीधा सम्बन्ध हमारे मन से होता है। आसन एक प्रकार से मानसिक सन्तुलन भी पैदा करता है। मन एकाग्र होता है। आसनों के द्वारा हमारे स्नायु मण्डल को भी शक्ति मिलती है। जिसके द्वारा प्राण का प्रवाह शुद्ध होता है। जिसके कारण मानसिक संकल्प शक्ति प्रबल होती है। आसन सिद्धि का सम्बन्ध मन से है और मन का सम्बन्ध प्राण से है। प्राण का सम्बन्ध कुण्डलिनी उत्थान से और कुण्डलिनी उत्थान का सम्बन्ध

आत्मा से समझना चाहिए। सब एक-दूसरे के पूरक हैं। बिना आसन सिद्ध किये मन और प्राण को सिद्ध नहीं कर सकते हैं। जब तक मन और प्राण सिद्ध नहीं होगा कुण्डलिनी की बात करना व्यर्थ है।

प्राण साधना

आसन साधना के बाद प्राण साधना पर विशेष ध्यान देना चाहिए। कुण्डलिनी साधना का दूसरा चरण है प्राण साधना। बिना प्राण सिद्धि के साधना पथ पर आगे बढ़ना सम्भव नहीं है। ईश्वर का सबसे अद्‌भुत उपहार है मानव के लिए वह है शरीर और शरीर के संचालन के लिए प्राण है। जिसे हम सदैव प्राकृतिक रूप से लेते रहते हैं। अगर श्वांस लेना एक कार्य होता तो जीवन के सारे कार्य बन्द पड़ जाते। देखा जाये तो प्राण ही जीवन है, प्राण ही समस्त चराचर जगत की रक्षा करने वाली महाशक्ति है। बिना प्राण के कोई भी प्राणी एक पल भी जीवित ही नहीं रह सकता। देखा जाये तो सभी प्राण जीवन के लिए औषधि है।

आज के आधुनिक युग में श्वांस-प्रश्वांस की क्रिया एक प्रकार से विकृत सी हो गयी है। क्योंकि हमारा जीवन एक प्रकार से कृत्रिम होता जा रहा है। जिसके कारण अपार रोग-व्याधि की भरमार होती जा रही है।

वर्तमान युग में डायबिटीज, हार्ट अटैक, मानसिक रोग महामारी की तरह फैल रहा है। इसके मूल में है प्राणों का सही संचालन न होना। जिसके कारण मनुष्य रोग-व्याधि के साथ-साथ अल्पायु भी होता जा रहा है। योग सिद्ध साधक कभी भी अल्पायु नहीं होते थे। जिसका कारण था उनके जीवन में योग का गहरा सम्बन्ध होना।

१९३२ में लीडर नामक समाचार पत्र में एक चीनी व्यक्ति के बारे में समाचार प्रकाशित हुआ था। उस समय यह काफी चर्चा का विषय था। चीन के संगयुआं गांव बानसेन के उत्तर में था। जिसका नाम था लीचिंग युंग। उसकी आयु २५५ वर्ष की थी वह पूर्णरूप से स्वस्थ था। उसने अपने जीवन काल में चार विवाह किया था और अस्सी से ज्यादा सन्ताने थी। जब उनसे दीर्घायु होने का रहस्य पूछा गया तो वह चार बातें बतलाये- पहला चित्त को शान्त रखना, कछुए की तरह श्वांस लेना और दूसरा वज्रासन में बैठना यानि शान्त होकर ईश्वर का ध्यान करना। तीसरा है

कबूतर की तरह सीना तान कर रहना और चलना यानि रीढ़ की हड्डी सीधी रहे। चौथा था श्वान (कुत्ते) की तरह सोना। उसने कहा मेरे दीर्घ जीवन का यही सूत्र है। इसी प्रकार काशी के चर्चित योगी तैलंग स्वामी २८० वर्ष का दीर्घ जीवन जिये। ऐसे साधक आज भी हैं जो दीर्घ जीवन का रहस्य जानते हैं और जी रहे हैं, साधना कर रहे हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि सही श्वांस-प्रश्वांस दीर्घ जीवन का सूत्र है। योग साधना में प्राण पर विजय प्राप्त करने वाली क्रिया को प्राणायाम कहते हैं। योग की पांच बहिरंग साधना में प्राण साधना का महत्वपूर्ण स्थान है। प्राण को साधा जाता है। जिसे प्राण सिद्धि कहते हैं।

प्राण का सूक्ष्म सम्बन्ध मन से समझना चाहिए। प्राण के साधने से मन को साधा जा सकता है। प्राण से ही मन जुड़ा है। प्राण धूरी है और मन उसके माध्यम से चारो तरफ घूमता रहता है। प्राण पर नियंत्रण करने से मन पर नियंत्रण होने लगता है यानि प्राण का नियंत्रण मन का नियंत्रण है। मन पर नियंत्रण आध्यात्मिक विकास के लिए आवश्यक है। मन पर नियंत्रण इतना सरल नहीं है। मन को नियंत्रण करते समय प्राण का अभ्यास करना आवश्यक है। प्राण साधना के पूर्व आसन सिद्ध करना आवश्यक होता है। बिना आसन सिद्ध किए हुए मन की चंचलता बनी रहती है। जिसके कारण प्राण भी चंचल बना रहता है। कहने का तात्पर्य यह है कि बिना आसन को सिद्ध किये प्राण पर नियंत्रण नहीं हो सकता। मन को सिद्ध करने के लिए आसन आवश्यक है यानि शरीर की स्थिरता बहुत ही आवश्यक है अर्थात् शरीर को स्थिर करने के लिए आसन और प्राण के सिद्ध होने पर ही मन स्वतः स्थिर होने लगता है।

पातञ्जल योग, घेरण्ड संहिता, शिव संहिता आदि में प्राण साधना के लिये तीन भेदों का विवेचन मिलता है। (पूरक, कुम्भक और रेचक)

रेचक- रेचक का अभ्यास यानि प्राण को मन्द गति से बाहर निकलना है। शरीर से श्वांस पूरी तरह निकाल देना है। बाह्य वृत्ति को रेचक प्राणायाम कहते हैं।

पूरक- श्वांस को धीरे-धीरे खींचकर रोकना ही पूरक प्राणायाम है। इसे अभ्यान्तर वृत्ति पूरक प्राणायाम कहा जाता है।

कुम्भक- श्वांस को रोक कर त्रिनेत्र पर ध्यान लगाना कुम्भक प्राणायाम कहलाता है। यही स्तम्भ वृत्ति कुम्भक प्राणायाम है।

देखा जाये तो सभी प्राण साधना के मूल में रेचक, पूरक और कुम्भक ही है। रेचक प्राणायाम में प्राण को बाहर निकालते समय प्राण की दूरी का भी अभ्यास करना आवश्यक है और धीरे-धीरे बढ़ाते जाना चाहिए। इस प्रकार से जब रेचक सिद्ध होता है और रेचक का अभ्यास १२ अंगुल तक स्थिर हो जाता है। तब इसे दीर्घ सूक्ष्म कहा जाता है।

रेचक प्राणायाम में इस प्रकार के अभ्यास के द्वारा श्वांस परिधि बढ़ जाती है। उसी प्रकार पूरक प्राणायाम में श्वांस की गहरायी अन्दर तक बढ़ जाती है। कुम्भक का अभ्यास रेचक और पूरक दोनों में माना जाता है।

घेरण्ड संहिता में आठ प्रकार के प्राणायाम का वर्णन मिलता है। १.सहित २. सूर्यभेदी ३. उज्जयी ४. शीतली ५. भस्त्रिका ६. भ्रामरी ७. मूर्छा ८. केवली।

सहित प्राणायाम

पहला प्राणायाम सहित है। सहित प्राण साधना दो प्रकार का होता है। एक सगर्भ और निसर्गा। बीज मंत्र के उच्चारण के साथ किया गया कुम्भक सगर्भ और बिना बीजमंत्र के किया गया प्राणायाम निगर्भ कहलाता है। निगर्भ सहित प्राणायाम में बीज मंत्र का जप नहीं किया जाता है और सगर्भ प्राणायाम में बीज मंत्र का जप होता है। बीज मंत्र के साथ प्राणायाम करना प्रभावशाली बतलाया गया है।

सगर्भ कुम्भक प्राणयाम का अभ्यास पूर्व या उत्तर दिशा की ओर और सुखासन पर बैठ कर रक्त वर्ण स्वरूप 'अं' अक्षर के रूप में ब्रम्हा का ध्यान करना चाहिए यानि बांये नाक से श्वांस लेते हुए 'अं' मंत्र को १६ बार जपें। उसके बाद कुम्भक करने के पूर्व उड्डियान बंध बांधें। इसके बाद साधक श्याम वर्ण स्वरूप सत्वगुण नारायण 'ऊं' के बीज मंत्र का ध्यान और जप करें। ६४ बार कुम्भक करें उसके बाद श्वेत वर्ण स्वरूप तमस गुण शिव का ध्यान कर ३२ बार 'मं' मंत्र का जप करते हुए रेचक करें। वैसे तो प्राण साधना में बन्ध का विशेष महत्व है। पूरक प्राणायाम करते समय मूल बन्ध तथा उड्डियान बन्ध, कुम्भक के समय मूल बन्ध और जालन्धर

बन्ध, रेचक के समय मूल बन्ध तथा उड्डियान बन्ध करना चाहिए। मूल बन्ध प्राणायाम में शुरू से अन्त तक रहता है।

साधक को पहले बिना मंत्र के प्राणायाम करना चाहिए। जब अभ्यास सध जाये तब मंत्र के साथ करना चाहिए। यह एक प्रकार से लोम-विलोम प्राणायाम है। प्रथम बार चन्द्रनाड़ी से श्वांस को अन्दर लें फिर कुम्भक करें फिर सूर्य नाड़ी से श्वांस को बाहर निकालें। उसी प्रकार सूर्य नाड़ी से श्वांस लें कुम्भक करें फिर चन्द्र नाड़ी से बाहर निकालें। अनुपात का अवश्य ध्यान रखें जैसे १६ बार श्वांस लें ६४ बार तक रोके रहें और ३२ बार तक निकालते रहें यानि १–४–२ का अनुपात होना चाहिए।

अधम प्राणायाम के अभ्यास से ज्यादा पसीना निकलता है। मध्यम प्राणायाम के अभ्यास से सुषुम्ना में कम्पत्र जैसा अनुभव होता है तथा उत्तम प्राणायाम में शरीर फूल की तरह हल्का होने जैसा अनुभव होता है यानि श्वांस का लयपूर्वक अभ्यास उत्तम प्राणायाम कहलाता है। प्राणायाम परिपक्वता के बाद मूलबन्ध के साथ करना श्रेयष्कर होता है।

सूर्यभेदी प्राणायाम

दूसरा प्राणायाम सूर्यभेदी प्राणायाम है। तीव्र गति से वायु को दाहिने नथुने यानि सूर्य नाड़ी से श्वांस को खींचे फिर सूर्य नाड़ी को बन्द करें जालंधर बन्ध लगाते हुए रोके रहे फिर बांयें नथुने से यानि चन्द्र नाड़ी से वेगपूर्वक बाहर निकाले। प्रारम्भिक समय में पांच बार ही करें फिर धीरे-धीरे बढ़ाते रहें। इसके अभ्यास से कपाल शुद्धि होती है। पित्त प्रधान व्यक्ति को यह प्राणायाम नहीं करना चाहिए। जहां गर्मी अधिक हो वहां पर भी नहीं करना चाहिए। जाड़े या ठण्ड स्थान पर करना श्रेयष्कर माना गया है। क्योंकि इस प्राणायाम से शरीर में उष्णता की वृद्धि होती है। सूर्यभेदी प्राणायाम ठण्ड में करना चाहिए। चन्द्रभेदी प्राणायाम गर्मी में करना चाहिए। चन्द्रभेदी प्राणायाम से शरीर में शीतलता आती है। चन्द्रभेदी प्रांणायाम चन्द्र नाड़ी यानि बांये नथुने से बलपूर्वक लें। कुम्भक करें फिर सूर्य नाड़ी यानि दाहिने नथुने से छोड़े। सूर्यभेदी प्राणायाम के अभ्यास से जरा पर विजय प्राप्त होती ही है और मस्तिष्क के न्यूरान्स और भी सक्रिय हो जाते हैं। कुण्डलिनी जागरण में भी सहयोग मिलता है। शरीर के उष्णता

से पित्त की शुद्धि होती है। कफ और वात से उत्पन्न रोग भी दूर होते हैं। रक्त दोष, त्वचा सम्बन्धित तथा वायु के दोष भी दूर होते हैं।

उज्जयी प्राणायाम

तीसरा प्राणायाम उज्जयी प्राणायाम है। इस प्राणायाम में वायु मुख से ली जाती है, हृदय में रोका जाता है फिर बांये नथुनों से धीरे-धीरे बाहर निकाला जाता है यानि पूरक मुख से धीरे-धीरे लें फिर कुम्भक हृदय में करें उसके बाद रेचक चन्द्र नाड़ी से धीरे-धीरे बाहर निकाले।

प्राण को कुम्भक द्वारा हृदय से नीचे नहीं जाना चाहिए और रेचक जितना धीरे-धीरे करना चाहिए अर्थात पूरक में वायु मुख में लिया जाता है। मुख से कण्ठ तक और कण्ठ से हृदय तक धारण किया जाता है। इस प्राणायाम से साधक के चेहरे पर दिव्यता, फेफड़े सम्बन्धित दोष दूर होते हैं। खांसी ज्वर आदि भी दूर होते हैं। मन शान्त रहता है। सिर गर्म नहीं होता। धातु के पतन को संयम करता है।

शीतली प्राणायाम

चौथा प्राणायाम शीतली प्राणायाम है। सुखासन में बैठ कर जीभ को पक्षी के चोंच की तरह बनाये धीरे-धीरे वायु को लें जब वायु पेंट में भर जाये फिर कुम्भक करें। जितनी बार कर सकें उतनी देर तक करें उस समय मुख बन्द रहना चाहिए। फिर दोनों नथुनों से वायु को धीरे-धीरे बाहर निकाले और धीरे-धीरे बढ़ाते जायें। इस क्रिया से चेहरे पर तेज आता है। रक्त शुद्ध होता है। इस प्राणायाम को अत्यन्त शीतकाल में नहीं करना चाहिए। कफ प्रधान व्यक्ति को भी नहीं करना चाहिए।

शीतली प्राणायाम सिद्धासन, पद्मासन अथवा सुखासन में करना चाहिए। इस प्राणायाम से रक्त विकार दूर होता है। भूख-प्यास पर स्वतः नियंत्रण होने लगता है।

भस्त्रिका प्राणायाम

पांचवां प्राणायाम भस्त्रिका प्राणायाम है। भस्त्रिका प्राणायाम का काफी महत्व है कुण्डलिनी साधना में। इसे करने से रक्त में असीम ऊर्जा का प्रवाह बढ़ जाता है। मूलाधार सक्रिय होने लगता है। जिस प्रकार लोहार अग्नि

को तेज करने के लिए विशेष प्रकार से धौंकनी चलाता है उसी प्रकार इस प्राणायाम को करना चाहिए।

सुखासन में बैठकर जल्दी-जल्दी वायु को अन्दर लें फिर तुरन्त बाहर निकाले यानि रेचक और पूरक एक साथ करें। प्रारम्भिक काल में दस बार के ऊपर न करें धीरे-धीरे बढ़ा सकते हैं। ज्यादा से ज्यादा तीस बार के ऊपर न करें। एक प्रकार से सर्प के फुफकार की तरह वायु की आवाज होनी चाहिए। फिर गहरी श्वांस भरकर कुम्भक करें जितना देर तक आसानी से श्वांस रोक सके उतनी देर तक रोके। उसके बाद वायु को धीरे-धीरे बाहर निकाले यानि दस बार रेचक-पूरक के बाद कुम्भक करें। फिर दस बार करें कुम्भक। एक प्रकार से आवृत्ति है। वैसे तीन बार आवृत्ति करना चाहिए। १० बार के बाद कुम्भक एक आवृत्ति मानी जायेगी। ज्यादातर तीन आवृत्ति ही करें।

भस्त्रिका प्राणायाम, कपाल भाति और उज्जयी का मिश्रण है। उज्जयी और कपाल भाती करने से भस्त्रिका प्राणायाम सरल हो जाता है।

कपाल भाति से हमारे मस्तिष्क को शुद्ध वायु मिलती है उसके न्यूरान्स सक्रिय होते हैं। कपाल भाति सुखासन में बैठकर रेचक-पूरक बार-बार करने से इसमें पेट फूलना पचकाना चाहिए। कपाल भाति में कुम्भक नहीं होता। सिर झुकाकर कपाल भाति नहीं करना चाहिए। सिर सामने रहे रीढ़ की हड्डी सीधी रहे।

भस्त्रिका प्राणायाम हर मौसम में किया जा सकता है। पूर्ण वर्णित प्राणायाम के अभ्यास से भस्त्रिका सहज हो जाता है। यह त्रिदोष नाशक है। रक्त के अवरोध को खत्म करता है ताकि रक्त का सरल प्रवाह शरीर पर्यन्त प्रवाहित होता रहे। यह सभी प्राणायामों में श्रेष्ठ भी माना जाता है। क्योंकि यह प्राणायाम ब्रम्ह ग्रन्थि, विष्णु ग्रन्थि और रूद्र ग्रन्थि का भेदन भी करता है। त्रिबन्ध करने के पूर्व यह प्राणायाम करना चाहिए। त्रिबन्ध भेदन कुण्डलिनी साधना के लिए आवश्यक है और त्रिबन्ध भेदन इसी के द्वारा सम्भव है।

भस्त्रिका प्राणायाम मन को स्थिर करता है और कुण्डलिनी जागरण में अत्यन्त उपयोगी है। कब्ज, कफ नाशक और हृदय रोग को दूर भी

करता है। साथ ही शरीर में उष्णता भी प्रदान करता है। साधक को अपने शक्ति के अनुकूल करना चाहिए। ज्यादा करना नुकसान दायक हो सकता है।

भ्रामरी प्राणायाम

छठवां प्राणायाम भ्रामरी प्राणायाम है। सुखासन या पद्मासन में एकान्त स्थान पर बैठ कर, आंखे बन्द कर, दोनों बौंहों के बीच ध्यान लगाकर साधक को दोनों नथुनों से भौरों की तरह आवाज करते हुए, दीर्घ स्वर में पूरक करना चाहिए। फिर शक्ति के अनुसार कुम्भक करके धीमी गति से मन्द स्वर से ध्वनि करते हुए कण्ठ से रेचक करना चाहिए।

अभ्यास दृढ़ होने पर अनहद स्वर सुनाई पड़ता है। उस अनहद ध्वनि की प्रतिध्वनि भी होती है। जिसमें नील या लाल वर्ण की ज्योति प्रस्फुरित होती है। उस ज्योति में मन को लीन करना चाहिए।

भ्रामरी प्राणायाम जब सिद्ध हो जाता है तो समाधि में सफलता सरलता से प्राप्त हो जाती है। साधक का वीर्य ऊर्जामय और वह स्वयं उर्ध्वगामी होता है।

घेरण्ड संहिता के अनुसार मानव के दीर्घ आयु का सीधा सम्बन्ध श्वांसों से है। श्वांस लेते समय हर मनुष्य में स्वतः सः का उच्चारण होता रहता है। इसी प्रकार श्वांस निकालते समय हं का उच्चारण होता है। इस प्रकार सोऽहं अथवा हंस मंत्र का अजपा स्वतः निरन्तर चलता रहता है। जिसका ज्ञान साधारण लोगों को नहीं पता चलता है। यह जप निरन्तर रूप से श्वांस-प्रश्वांस के साथ चलता रहता है। जो साधक सदैव जाग्रत अवस्था में जपता है वही परमहंस है।

हर व्यक्ति दिन-रात में इक्कीस हजार छः सौ बार श्वांस लेता और अजपा जप करता है यानि प्राकृतिक रूप से होता रहता है। इसे अजपा गायत्री भी कहते हैं। अजपा जप का सीधा सम्बन्ध मूलाधार चक्र, अनहद चक्र तथा आज्ञा चक्र पर प्रभाव पड़ता है।

हमारे श्वांस की बाहरी गति बारह अंगुल की मानी जाती है। गाते समय इसकी गति सोलह अंगुल होती है। भोजन करते समय बीस अंगुल तक जाती है। चलने व व्यायाम करते समय चौबीस अंगुल, निद्रा के समय

तीस अंगुल। मैथुन के समय छत्तीस अंगुल तक बाहर निकलती है। चिन्ता, द्वेष, क्रोध में इसकी मात्रा घटती-बढ़ती रहती है। योग का कहना है बारह अंगुल तक श्वांस बाहर निकाले। प्राणायाम कुम्भक के द्वारा बारह अंगुल से भी कम किया जा सकता है। इससे आयु की वृद्धि होती है। बारह अंगुल श्वांस की स्वाभाविक गति होती है। इसकी गति में वृद्धि होने से आयु क्षीण होती है वृद्धावस्था का प्रभाव भी दिखने लगता है। प्राणायाम तो सभी को करना चाहिए। चाहे संसारी हो या हो साधक यदि शरीर रूग्ण है तो न तपस्या हो सकती है न ही संसार का सुख मिल सकता है। प्राण साधना शरीर और जीवनी शक्ति के लिए औषधि है। प्राण ही आधार है शरीर और संसार के बीच उपरोक्त प्राणायाम स्वास्थ्य के साथ-साथ कुण्डलिनी साधना के लिए परम आवश्यक है।

मूर्छा प्राणायाम

सातवां प्राणायाम मूर्छा प्राणायाम है। यह प्राणायाम भ्रामरी प्राणायाम जैसा ही है। अन्तर इसमें केवल इतना ही है कि दोनों कान, नाक, आंख और मुख पर क्रमशः हाथ के अंगूठे, तर्जनी, मध्यमा, अनामिका तथा कनिष्ठिका रख कर किया जाता है। हठयोग प्रदीपिका के अनुसार पूरक करने बाद जालन्धर बन्ध को लगाकर अपनी ठोड़ी को छाती से स्पर्श करना चाहिए। इसके बाद हल्की-हल्की मूर्छा सी आने लगे तब धीरे-धीरे रेचक करना चाहिए। मन को दोनों भौंहों के बीच लगाना चाहिए। इससे मन की लयावस्था उत्पन्न होती है। यह प्राणायाम आधि-व्याधि को नष्ट करने की महान औषधि है। इस प्राणायाम को योग्य शिक्षक के सान्निध्य में करना चाहिए।

केवली प्राणायाम

आठवां प्राणायाम केवली प्राणायाम है। केवली प्राणायाम में कुम्भक का विशेष महत्व है। वैसे कुम्भक के दो भेद हैं एक है सहित कुम्भक, दूसरा है केवल कुम्भक। सहित कुम्भक में पूरक और रेचक जुड़ा रहता है। लेकिन केवल कुम्भक में पूरक और रेचक नहीं होता। सहित कुम्भक को सिद्ध किये बिना केवल कुम्भक सिद्ध नहीं हो सकता है। इसलिए केवल कुम्भक के पहले सहित कुम्भक को सिद्ध करना आवश्यक है।

हठयोग प्रदीपिका में भी कहा गया है कि केवल कुम्भक रेचक और पूरक के बिना ही सुखपूर्वक वायु को धारण करने को कहते हैं। इसमें त्रिबन्ध लगाने की क्रिया है यानि जालन्धर बन्ध, उड्डीयान बन्ध और मूल बन्ध के साथ अपान वायु मूलाधार से ऊपर उठाई जाती है नाभि के पास स्थिर किया जाता है तब जाकर केवल कुम्भक होता है। थोड़ी सी भी असावधानी से लाभ के जगह हानि भी हो सकती है।

उपरोक्त आठों प्राणायाम कुण्डलिनी साधना के लिए महत्वपूर्ण है। जिसे ये आठों प्राणायाम सिद्ध हो जाते हैं उसके लिए कुछ अप्राप्य नहीं रहता। कुण्डलिनी जागरण की बाधाएं समाप्त हो जाती हैं। इसके द्वारा समस्त आधि-व्याधि नष्ट हो जाते हैं और षट्चक्र भेदन करने की शक्ति भी प्राप्त होती है।

ये सभी प्राणायाम किसी योग्य शिक्षक के सान्निध्य करना चाहिए। जिससे सफलता अवश्य सुनिश्चित होगी।

नाड़ी शोधन

योग साधना में नाड़ी शोधन पर विशेष बल दिया गया है। घेरण्ड संहिता के अनुसार शरीर में मल से पूर्ण नाड़ियों में प्राण वायु प्रवेश नहीं हो सकती। प्राण साधना से पूर्व नाड़ी शोधन अति आवश्यक है। नाड़ी शोधन दो प्रकार की होती है समानु और निर्मानु। समानु में बीज मंत्र द्वारा शोधन होता है और निर्मानु में षट्कर्म द्वारा। जैसे धौती, बस्ती, नेति, लोलिकी, त्राटक तथा कपाल भाति आदि।

नाड़ी शोधन साधक अपनी उम्र और सुविधानुसार कर सकता है। वैसे योग में निर्मानु क्रिया का प्रयोग होता है और तंत्र में समानु क्रिया का। दोनों का उद्देश्य नाड़ी शोधन ही है यानि नाड़ी में प्राण वायु का प्रवाह निरन्तर चलता रहे। बिना प्राण वायु के कुण्डलिनी उत्थान नहीं हो पाता। यही कारण है कि योग हो या तंत्र प्राण साधना पर विशेष बल दिया गया है।

पद्मासन या सुखासन पर बैठ कर आकाश यानि धूर्म रंग स्मरण कर 'यं' बीज मंत्र का जप करें। ६४ बार रेचक यानि वायु को रोके रहें। फिर ३२ बार रेचक यानि जप करते समय वायु को बाहर निकाले दाहिने

नासिका से। प्राण वायु का स्थान सम्पूर्ण शरीर में होता है। निराकार अनन्त आकाश का ध्यान करते हुए करना चाहिए।

अग्नि तत्व का स्थान नाभि क्षेत्र है। सिन्दूरी रंग का यानि अग्नि तत्व का स्मरण करते हुए दाहिने नासिका से श्वांस खींचते हुए अग्नि बीज मंत्र 'र' का १६ बार जप करें। ६४ बार कुम्भक बीज मंत्र जपते हुए बांये नासिका से ३२ बार वायु को निकाले यानि रेचक करना चाहिये। उसी तरह पृथ्वी तत्व का स्मरण कर 'लं' मंत्र का भी जप करें। दोनों की विधि एक ही है। क्योंकि अग्नि का आधार पृथ्वी तत्व ही है। बाद में दोनों मिश्रित तत्व पर ध्यान केन्द्रित करें।

इस तरह भी कर सकते हैं 'र' से श्वांस ले फिर कुम्भक करें 'लं' बीज से रेचक करें श्वांस को बाहर निकाले। नासिका के अग्रभाग पर चन्द्रमा के प्रकाश पर ध्यान केन्द्रित करते हुए १६ बार बीज मंत्र 'ठ' का जप करते हुए बांयें नासिका से श्वांस लेते हुए और ६४ बार 'ठ' मंत्र का जप करते हुए सोचें कि चन्द्रमा का मधुर प्रकाशरूपी अमृत शरीर के समस्त नाड़ियों में प्रवाहित हो रहा है और सभी नाड़ियों को शुद्ध कर रहा है। उसके बाद ३२ बार पृथ्वी बीज मंत्र 'लं' का जप करते हुए दाहिने नासिका से रेचक यानि वायु को बाहर निकाले।

योग-तंत्र में प्राणायाम के पूर्व तीनों प्राणायाम से नाड़ी शोधन होता है। इसके बाद नियमित प्राणायाम करना चाहिए। वैसे योग में बाह्य क्रिया का महत्व ज्यादा है। वहीं तंत्र में आन्तरिक क्रिया का महत्त्व ज्यादा है। बीज मंत्रों द्वारा, भावना द्वारा नाड़ी शोधन किया जाता है। जिसका प्रभाव हमारे आन्तरिक शरीर पर पड़ता है। वैसे दोनों का अपना-अपना स्थान है और है महत्व। वैसे प्राणायाम के मूल में है कुम्भक। जो दो प्रकार का होता है। पहला बाह्य कुम्भक है यानि पूरे श्वांस को बाहर निकाल कर बन्ध लगा कर कुम्भक करें। यह बाह्य कुम्भक है। उसी प्रकार पूर्ण श्वांस भरकर बंध लगा कर कुम्भक करें। जिसे आन्तरिक कुम्भक कहते हैं।

प्राणायाम करते समय मन यानि चित्त शून्यवत् होना चाहिए। जब तक चित्त एकाग्र नहीं होगा प्राणायाम को सफल नहीं माना जा सकता। मन की एकाग्रता से प्राण साधना जल्दी सिद्ध होती है। कुण्डलिनी साधना के

अनुसार प्राण का स्थान भौतिक शरीर अर्थात् अन्नमय कोश नहीं है। भौतिक शरीर केवल आधार है इसका स्थान प्राणमय कोश है। यह अन्नयमय कोश से भी सूक्ष्म है। उसके भीतर स्थित रहकर समस्त कार्य सम्पादन करता है। प्राणमय कोश के द्वारा ही प्राण प्रवाह समस्त शरीर के अंगों में होकर प्रवाहित होता रहता है और अनेक प्रकार से शक्ति प्रदान भी करता है। अनेक नामों से जाना जाता है। वैसे प्राण दस प्रकार के होते हैं- प्राण, अपान, समान, उदान, वयान, नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त तथा धनञ्जय। इन दसों का शरीर में अपना-अपना स्थान है। प्रथम पांच प्राणवायु अभ्यान्तर यानि आन्तर शरीर में अवस्थित होते हैं और नागादि अन्तिम प्राणवायु बाह्य शरीर में अवस्थित होते हैं।

प्राण का स्थान हृदय, अपान का गुदा, समान का नाभि, उदान का कण्ठ, वयान का समस्त शरीर में स्थान होता है। श्वांस क्रिया प्राण के द्वारा, मल निष्कासन क्रिया अपान के द्वारा, पाचन क्रिया समान के द्वारा, भोजन निगलना उदान के द्वारा तथा रक्त संचालन क्रिया वयान के द्वारा होती है। खांसी और डकार लेना नाग, पलक झपकाना क्रिया कूर्म के द्वारा, छींकना आदि कृकट के द्वारा, जम्हाई लेना देवदत्त और सम्पूर्ण शरीर स्थल में व्याप्त रहना धनञ्जय प्राण का कार्य है। वैसे नाग चेतना, कूर्म नेत्र ज्योति, कृकर भूख-प्यास, देवदत्त जम्हाई तथा धनञ्जय प्राण शब्द उत्पन्न करता है। जैसे-जैसे शरीर क्षीण होने लगता है उपरोक्त प्राण शरीर से निकलने लगता है या शरीर रूग्ण होने लगता है। तब प्राण में अवरोध आ जाता है। वह अपना कार्य बन्द कर देता है। शरीर से सभी प्राण निकल जाते हैं मृत्यु के समय। लेकिन धनञ्जय प्राण सबसे अन्तिम में छूटता है। यह आत्मा के साथ निकलता है अगले शरीर में प्रवेश करने के लिए।

प्राकृतिक रूप से शरीर में जो कार्य नहीं हो रहा है यह अवश्य समझ लेना चाहिए वह प्राण कहीं अवरूद्ध हो रहा है। वैसे योग के समस्त साधना में प्राण साधना मुख्य है प्राण साधना से ही प्राण शक्ति नियंत्रित होती है। यह केवल वायु का नियंत्रण नहीं है। वह एक प्रकार से सूक्ष्म शक्ति पर नियंत्रण है। देखा जाये तो प्राण और श्वांस में अन्तर है। श्वांस मानव सामान्य रूप से लेता रहता है। प्राण सामान्य रूप से उसके साथ प्रवेश करता रहता है।

वैसे प्राण साधना से वायु में प्राण शक्ति बढ़ जाती है। जैसे विद्युत और विद्युत की गति में अन्तर है उसी प्रकार प्राण और वायु में अन्तर समझना चाहिए। लेकिन दोनों का एक-दूसरे से गहरा सम्बन्ध है। उसी प्रकार प्राण और वायु को भी समझना चाहिए। प्राण वायु के माध्यम से शरीर अपना कार्य करता है। प्राणायाम से बढ़कर कोई तप नहीं है। जिस प्रकार अग्नि में तपकर स्वर्ण का मल नष्ट हो जाता है उसी प्रकार प्राण साधना से नाड़ियों का मल नष्ट होता है और चित्त शुद्ध हो जाता है।

प्राण साधना मन को स्थिर करके धारणा शक्ति प्रदान करता है। जब साधक को प्राण सिद्धि प्राप्त हो जाती है तब स्वतः उसके मुख पर तेज आ जाता है। दिव्य दृष्टि, दिव्य श्रवण, वाक सिद्धि, सूक्ष्म शरीर सिद्धि गमन तथा समस्त व्याधि से मुक्त रहता है। रूग्ण व्यक्ति पास हो या दूर अपने प्राण शक्ति व संकल्प शक्ति से उसमें अपने प्राण प्रवाहित कर उसे रोग मुक्त भी कर सकता है। भारत में प्रसिद्ध सन्त-साधक अपने प्राण शक्ति द्वारा लोगों का भला किये ऐसा जनश्रुतियों द्वारा पता चलता है।

चक्र साधना में प्राणायाम द्वारा मन, प्राण केन्द्रित कर उन्हे जाग्रत किया जा सकता है। बिना प्राण सिद्धि के चक्र भेदन सम्भव नहीं है।

कहने का तात्पर्य यह है कि प्राण सिद्धि अति आवश्यक है। चक्रों के जाग्रत करने और उनके ऊर्जा को नियंत्रण करने के लिए चक्रों के उत्थान और ऊर्जा को प्राण साधना द्वारा ही नियंत्रित किया जा सकता है।

प्रत्याहार

प्रत्याहार को योग का एक विषय मान कर या पढ़ कर छोड़ देते हैं। आपको यह अवश्य जानना चाहिये समस्त साधना का मूल है आन्तर जगत में प्रवेश करना। बिना आन्तर जगत के प्रवेश के बिना हम विराट शक्तियों को कभी भी जान नहीं सकते।

प्रत्याहार साधना समस्त साधना का प्रवेश द्वार है यानि बाह्य और आन्तर जगत का केन्द्र है। योग के पांच बहिरंग साधना में प्रत्याहार पांचवां साधन है। देखा जाये तो प्राण साधना का परिणाम ही प्रत्याहार है। प्राण साधना के बाद ही साधक योग्य होता है प्रत्याहार साधना के लिए।

प्राण साधना से हमारे शरीर के समस्त नस, नाड़ी शुद्ध हो जाते हैं।

सभी मल नष्ट हो जाते हैं। तब मन स्वतः ही सक्रिय हो जाता है आन्तर जगत में प्रवेश करने के लिए। तब प्रत्याहार साधना द्वारा उसके मार्ग को प्रशस्त किया जाता है।

कहने का तात्पर्य यह है कि इन्द्रियों का अपने-अपने विषयों में प्रवृत्त न होकर चित्त में लीन होना ही प्रत्याहार है। जब तक इन्द्रियां मन में लीन नहीं हो जाती तब तक प्रत्याहर की सिद्धि नहीं समझी जा सकती है। प्रत्याहार के अभ्यास से बहिर्मुख इन्द्रियों का अन्तर्मुख होना होता है। योग साधना में प्रत्याहार का अर्थ है बहिर्जगत से अन्तर्जगत में प्रवेश करना या जाना। प्रत्याहार से इन्द्रियां पूर्णरूप से मन के अधीन हो जाती हैं। जो प्रबल अभ्यास से ही सम्भव है। वैसे सामान्य व्यक्ति इन्द्रियों के वश में होता है। इन्द्रियां जैसा कहती हैं व्यक्ति वैसा ही करता जाता है। जहां इन्दियां जायेंगी वहां मन भी जायेगा। जहां मन जायेगा वहां इन्द्रियां भी जायेंगी। यह क्रम जीवन भर चलता रहता है। यही दुख, क्लेश का कारण भी है। देखा जाये तो मन के संयोग से ही इन्द्रियां सक्रिय हो जाती हैं। कभी-कभी हम वो ध्वनि नहीं सुन पाते या कोई दृश्य नहीं देख पाते सामने होते हुए भी उसका कारण है इन्द्रियां तो देख रही हैं, सुन रही हैं। परन्तु वहां मन नहीं होता। मन के संयोग से ही इन्द्रियां सक्रिय होती हैं। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि मन विवश हो जाता है। वह जितना भी हटना चाहे उतना ही फंसता जाता है। उस समय मन और शरीर दोनों विवश हो जाते हैं। इन्द्रियां प्रबल हो जाती हैं। यह मन की विवशता है। लेकिन प्रत्याहार साधना से यह सम्भव है। मन और इन्द्रियों को वश में किया जा सकता है।

प्रत्याहार सिद्ध साधक जिस शब्द को सुनना चाहेगा तभी सुनेगा। जिस दृश्य को देखना चाहेगा तभी देखेगा। जिस गन्ध को सूंघना चाहेगा तभी सूंघेगा। वैसे प्रत्याहार की साधना कठिन है। लेकिन साधक जब प्रत्याहार साध लेता है तब मन और इन्द्रियां किसी भी विषय की ओर आकृष्ट नहीं हो पाती। प्रत्याहार साधना से मन और इन्द्रियां साधक के नियंत्रण में हो जाती है। प्रत्याहार सिद्ध साधक सूक्ष्म विषयों को भी देखने में समर्थ होता है। उसकी इन्द्रियों की शक्ति क्षीण नहीं होती बल्कि वे तो

पूर्ण स्वस्थ होने के कारण पूर्ण सामार्थ्यवान हो जाती है। वह मन के नियंत्रण में हो जाती है और मन साधक के नियंत्रण में।

उदाहरण के तौर पर इसे ऐसे समझा जा सकता है। जैसे सम्मोहन कर्ता किसी व्यक्ति को सम्मोहित करता है। वह व्यक्ति की इन्द्रियां और मन को सम्मोहित करता है। सम्मोहनकर्ता जैसा कहता है वैसा ही सम्मोहित व्यक्ति करता है। देखा जाये तो उसका सम्बन्ध बाह्य जगत से एकदम नहीं रहता। उसका चित्त स्वनियंत्रित नहीं रहता। सम्मोहित व्यक्ति के हाथ पर अग्नि भी रख दे फिर भी उसे अग्नि का आभास नहीं होगा। लेकिन प्रत्याहार साधक का चित्त उसके नियंत्रण में होता है। वह अपनी इन्द्रियों पर पूरा नियंत्रण रखने के कारण जिन विषयों को वह देखना, सुनना, सूंघना, स्वाद आदि का अनुभव करना चाहेगा कर लेगा। जब तक सम्मोहनकर्ता नहीं चाहेगा सम्मोहित व्यक्ति न सुन सकता, न देख सकता, न ही स्वाद का अनुभव कर सकता है। सम्मोहनकर्ता जैसा आदेश देगा वह वैसा ही सुनेगा, देखेगा, गन्ध, स्वाद आदि का अनुभव करेगा।

प्रत्याहार सिद्ध साधक का भी यह हाल होता है। बिना उसकी इच्छा से इन्द्रियां विषयों को ग्रहण नहीं कर सकती। दोनों में इतना अन्तर स्पष्ट है कि एक व्यक्ति दूसरे के अधीन है उसका शरीर, मन और इन्द्रियां आदि रहती है किन्तु दूसरे में शरीर, इन्द्रियां आदि स्वयं उसके अधीन रहती हैं।

प्रत्याहार सिद्ध साधक पूर्णरूप से जितेन्द्रिय होता है। एक प्रकार से आन्तर जगत में प्रवेश मार्ग प्रशस्त हो जाता है साधक के लिए।

योग साधना यम, नियम, प्राणायाम और प्रत्याहार आदि बहिरंग साधना से साधक का चित्त और शरीर पूर्णतया निर्मल भी हो जाता है। चेतना का प्रवाह समस्त शरीर में प्रवाहित होने लगता है। तब आन्तर साधना यानि धारणा, ध्यान और समाधि साधना के लिए पूर्णतया योग्य हो जाता है।

धारणा

चित्त वृत्तियों का निरोध ही योग साधना है। साधक को सर्वप्रथम बाह्य विक्षेपों को दूर करना आवश्यक है। क्योंकि बाह्य विक्षेप यानि काम, क्रोध, राग-द्वेष, लोभ, मोह आदि हमारे चित्त को विक्षिप्त करते हैं।

प्रत्याहार साधना सिद्ध होने पर साधक बाह्य आकर्षण से एक प्रकार से मुक्त हो जाता है। वह परमहंस अवस्था को हो जाता है उपलब्ध।

कुण्डलिनी साधना के लिए उपरोक्त साधना आवश्यक है। बिना इन योग अंगों को साधे अगर साधक सीधे ध्यान करता है तो उसमें सफलता सम्भव ही नहीं है। योग की समस्त साधना ही मुक्ति और परमज्ञान का सोपान है। वैसे बहुत से साधक भी हुए हैं जिनकी साधना पूर्व जन्म से ही चली आ रही है। ऐसे लोग बचपन से ही विरक्त, वैरागी स्वभाव के होते हैं। ऐसे लोग उच्चावस्था प्राप्त होकर जन्म लेते हैं। उन्हे प्रारम्भिक अवस्था से चलने की आवश्यकता नहीं पड़ती। क्योंकि वे अपना मार्ग पूर्ण करके ही पुनः जगत में जन्म लिये होते हैं। ऐसे साधकों के चमत्कार और सिद्धि जग जाहिर है। वैसे योग साधना एक जन्म की नहीं होती।

धारणा का तात्पर्य एकाग्रता से समझना चाहिए। जब तक मन एक लय में एकाग्र नहीं होगा तब तक ध्यान को उपलब्ध नहीं हो सकता। ध्यान लय है और समाधि है उस लय में पूर्णरूप से डूब जाना है यानि बाह्य जगत का भान ही न रहे। वह आन्तर भाव में लीन हो जाये वह समाधि है।

योग विज्ञान के अनुसार मन को पूर्णरूप से स्थिर करना सम्भव नहीं है। उच्चतम् अवस्था में भी मन चलता रहता है। इसलिए धारणा का तात्पर्य है मन की गति का एक सीमा में नियमन है। परन्तु योग के साधना से मन को मनोनिग्रह की स्थिति में पहुंचाया जा सकता है और उस उच्चतम् अवस्था में पहुंचने पर मन पूर्णरूप से स्थिर हो जाता है।

धारणा द्वारा ही षट्चक्र भेदन होना सम्भव है। एक-एक चक्रों की धारणा करते हुए उसी ज्योतिर्मयी उर्ध्वगामी धारा की धारणा के द्वारा आज्ञा चक्र तथा सहस्त्रार चक्र तक पहुंचा जा सकता है। नब्बे मिनट तक प्रतिदिन धारणा करने पर साधक दिव्य दृष्टि को उपलब्ध हो सकता है।

जलाशय, पहाड़, अग्नि, दीपक, शब्द आदि पर मन एकाग्र करना या स्थिर करना यह बाह्य धारणा है। उसी प्रकार नेत्र बन्द करके आन्तर धारणा करना ज्यादा श्रेयष्कर है। अपने इष्ट, गुरु, नाभि, हृदय, दोनों भौं के बीच नील ज्योति पर मन एकाग्र करना आन्तर धारणा है।

ध्यान

कुण्डलिनी साधना का तीसरा चरण ध्यान है। योग साधना में ध्यान का महत्वपूर्ण स्थान है। बिना ध्यान के आत्मा के स्वरूप का ज्ञान सम्भव नहीं है। धारणा समाधि का प्रवेश मार्ग है और ध्यान समाधि में प्रवेश कर लीन होने का मार्ग है और ध्यान की पराकाष्ठा समाधि है।

कहने की आवश्यकता नहीं मानव एकमात्र ऐसा प्राणी है जो बुद्धिजीवि और हृदयजीवि प्राणी है। मनुष्य के चिन्तन का आधार उसकी प्रतिभा है। सांसारिक ज्ञान के लिए वह अपने मस्तिष्क का प्रयोग करता है। और अपनी भौतिक कामनाओं के लिए भी इसी का प्रयोग करता है। लेकिन आध्यात्मिक ज्ञान और विकास के लिए हृदय का उपयोग करता है। देखा जाये तो मस्तिष्क इन्द्रियजन ज्ञान का आधार है और इसकी सहायता से बड़ी से बड़ी सांसारिक उपलब्धियां प्राप्त होती है। मानसिक क्षमता का विकास करके मानव विज्ञान की चरम अवस्था को प्राप्त कर चुका है और अपने चारो तरफ सारी सुख-सुविधा जुटा चुका है या जुटा रहा है। भौतिक सुख के लिए पृथ्वी के अलावा, आकाश, ग्रहों पर भी अपना प्रभुत्व बना रहा है और विध्वंस के सारे सामान की भी व्यवस्था करता जा रहा है और कर भी चुका है। जहां से उसे वापस लौटना सम्भव नहीं है। इस प्रकार मानव, मस्तिष्क की असाधारण ऊंचाईयां को स्पर्श कर लिया है। लेकिन उसका सबसे महत्वपूर्ण केन्द्र हृदय है जिससे वह काफी दूर होता जा रहा है।

मानव का अन्तःप्रेरणा केन्द्र मात्र हृदय है। मानव और उसके व्यक्तित्व के विकास का सर्वाधिक महत्वपूर्ण केन्द्र है हृदय। मानव के सद्वृत्तियों का विकास हृदय ही है। हृदय रक्त प्रवाह का केन्द्र है। जो मानव के सम्पूर्ण तंत्र को शुद्ध करता है। इसीलिए नाभि ब्रम्हा स्थान यानि विकास का मार्ग और हृदय विष्णु का स्थान यानि सन्तुलन का, कण्ठ प्रदेश शिव है जहां से आत्मा मुक्त होकर परमतत्व में विलीन हो जाती है। इसलिए योग में ध्यान का स्थान हृदय स्थल कहा गया है।

अध्यात्म आत्मा पर आधारित ज्ञान है। जो मानव को शरीर और मन की सीमा का अतिक्रमण कर आत्मा के क्षेत्र में ले जाता है। सीमित को असीमित से जोड़ने वाली कड़ी को ही अध्यात्म कहते हैं। इसका सम्बन्ध

शरीर से न हो कर मन और आत्मा से है। मन का शुद्धिकरण ही भावातीत अवस्था है और इस अवस्था के लिए जो विधि है वह है ध्यान।

ध्यान का सम्बन्ध मन से है। क्योंकि मन ही हमारे सारे कर्म और शरीर का नियंत्रक है। जो भी कार्य हम करते हैं उसका सूक्ष्म रूप मनः शरीर में उत्पन्न होता है यानि उसका बीज रूप मन में पैदा हो जाता है और उसके बाद भौतिक शरीर द्वारा ही पूर्ण होता है। योग साधना के द्वारा इसे नियंत्रित करने की जो विधि है वह है ध्यान। ध्यान ही वह आधार है जो मन को परिष्कृत कर आत्म तल तक पहुंचाता है यानि ध्यान को छोड़ कर कोई भी मार्ग नहीं है आत्म ज्ञान को उपलब्ध होने के लिए।

कुण्डलिनी साधना में छः चक्रों का जो विवेचन है उसमें ध्यान के लिए अनाहद चक्र यानि हृदय चक्र को महत्वपूर्ण बतलाया गया है। हृदय ध्यान के लिए इसलिए महत्वपूर्ण बतलाया गया क्योंकि उसका सम्बन्ध सभी कोशिकाओं और चक्रों के केन्द्र स्थल से है। रक्त कोशिकाओं में जो रक्त प्रवाहित हो रहा है उसका सम्बन्ध सूक्ष्म और स्थूल रूप से समस्त शरीर से है। हृदय हमारे भाव का उद्गम स्थान है और भाव का साधना में महत्वपूर्ण स्थान है मस्तिष्कजन्य विचार का नहीं। हृदय की पवित्रता सम्पूर्ण शरीर को पवित्रता प्रदान करती है। आध्यात्मिकता की नींव प्रेम है और प्रेम आत्मा का परम धर्म है और प्रेम का स्थल हृदय क्षेत्र है। आध्यात्मिक विकास में प्रेम, श्रद्धा की उत्पत्ति हृदय में होती है। संसार में जिन लोगों को सफलता मिली है उसमें हृदय का महत्व अवश्य रहा होगा। आत्मज्ञान के क्षेत्र में सफलता के लिए आत्म विश्वास आवश्यक है और आत्म विश्वास हृदय की दृढ़ता द्वारा ही पैदा होता है। जिसका हृदय दिव्य भाव से भरा है उसका संकल्प भी प्रबल होता है। इसलिए ध्यान की प्रथम साधना विष्णु पद हृदय से ही प्रारम्भ करना चाहिए। वैसे ध्यान छः चक्रों पर होता है। लेकिन ध्यान की प्रारम्भिक अवस्था हृदय ही है। क्योंकि हृदय भाव का स्थान है। बिना भाव के कुछ भी पाया नहीं जा सकता है। भाव ही समस्त साधना का मूल है।

वैसे ध्यान करने की बहुत सारी विधि प्रचलित है। बाह्य ध्यान और आन्तर ध्यान उसका वर्णन धारणा और ध्यान के वर्णन में किया जा चुका है। अब ध्यान पर कुछ विस्तारपूर्वक चर्चा कर लेते हैं।

कुण्डलिनी साधना में प्राणायाम और ध्यान का प्रमुख स्थान है। दोनों में सतत अभ्यास की आवश्यकता है। दोनों क्रिया बाह्य से आन्तर में प्रवेश की क्रिया है। वैसे देखा जाये तो कुण्डलिनी साधना प्राण, मन और आत्मा की साधना है। जहां तक कुण्डलिनी का प्रश्न है वह हठ योग, राज योग और ज्ञान योग का समन्वय रूप है यानि साधना है।

हठ योग द्वारा प्राण साधना, राज योग द्वारा मन की साधना और ज्ञान योग के द्वारा आत्मा की साधना है। हठ योग का सीधा सम्बन्ध प्राणायाम से है। हठ योग का तात्पर्य श्वांस-प्रश्वांस से समझना चाहिए। हकार श्वांस, उकार प्रश्वांस का बोधक है। श्वांस का मतलब प्राण से है और प्रश्वांस का मतलब अपान से है। हठ शब्द का प्रयोग इड़ा-पिगला के लिए भी किया जाता है। 'ह' यानि इडा नाड़ी और 'ठ' यानि पिगला नाड़ी। श्वांस का प्रवाह इडा नाड़ी में और प्रश्वांस का प्रवाह पिगला नाड़ी में होने के कारण सम्भवतः हठ शब्द का प्रयोग इन दोनों नाड़ियों के लिए किया गया है। तीसरी महत्वपूर्ण नाड़ी है सुषुम्ना। यह नाड़ी शून्य नाड़ी है। शून्य शब्द शक्ति वाचक है। अतः सुषुम्ना शक्तिवाहिनी नाड़ी है। इस नाड़ी में शक्ति का प्रवाह माना जाता है। शक्ति का मतलब चेतना से समझना चाहिए।

मानव शरीर में बहत्तर हजार नाड़ियों का विशाल जाल फैला है। सुषुम्ना मार्ग से शक्ति प्रवाहित होकर चेतना के रूप में बहत्तर हजार नाड़ियों में फैली रहती है। प्राणायाम के द्वारा प्राण की साधना हठयोग का मुख्य लक्ष्य है यानि प्राण साधना से चेतना के द्वारा कुण्डलिनी जागरण समझना चाहिए।

नाथ सम्प्रदाय में हठयोग साधना को प्रमुखता दी जाती है। उनके मत के अनुसार प्राण ही आधार है समस्त साधना का। नाथ सम्प्रदाय प्राण साधना का विशेष महत्व है।

देखा जाये तो राज योग का विषय है ध्यान। ध्यान का सीधा सम्बन्ध मन से समझना चाहिए। ध्यान के द्वारा मन पर अधिकार प्राप्त करना राज योग का परम उद्देश्य है।

आन्तर जगत में प्रवेश के लिए ध्यान ही एकमात्र साधन है यानि ध्यान की चरम अवस्था ही आन्तर जगत में प्रवेश का मार्ग है और यही

एकमात्र कारण है कि सभी सम्प्रदाय और धर्म ध्यान को स्वीकार करते हैं। जीवन में आनन्द का मार्ग ध्यान से ही होकर जाता है। परम अवस्था उपलब्ध होने के लिए ध्यान ही एकमात्र साधन है।

ध्यान का अपना विज्ञान है। उसे गहरायी से समझना होगा। ध्यान की पहली अवस्था बैखरी का सम्बन्ध वाणी जगत से है और मध्यमा का सम्बन्ध विचार जगत से समझना चाहिए और तीसरी अवस्था पश्यन्ति है। पश्यन्ति का सीधा सम्बन्ध भाव जगत से है। वहां विचारों के भाव उत्पन्न होते हैं। देखा जाये तो तीनों अवस्था वाणी के तीन तल है। पहला है बोलने का तल और दूसरा है विचार का तल और तीसरा है भाव का यानि दर्शन का तल। पश्यन्ति का तात्पर्य देखना जहां शब्द का साकार रूप है। वह है भाव जगत इसलिए साधना में भाव की प्रधानता है। भाव ही सर्वोपरि है। यह तीसरी अवस्था है।

ऋषियों ने कहा है कि वे वेदों के दृष्टा हैं। उन्होने वेदों के एक-एक अक्षर अथवा शब्दों को देखा। उन्होने यह नहीं कहा कि उन्होने वेदों को सुना। जहां विचार चित्रों की भांति दिखते हैं, सुनाई देते हैं। तीसरी अवस्था पूर्ण नहीं है। एक चौथी अवस्था है वह है परा। परा ही भावातीत जगत है। जहां विचार दृश्य रूप से न दिखलायी पड़ते हैं और न ही सुनायी पड़ते हैं। परा ही शब्द शक्ति का केन्द्र है। ज़हां से भाव, विचार और शब्द के रूप में प्रगट होते हैं।

ध्यान साधना का एक और तल है जो चौथे जगत के पार है जिसे ध्यान जगत कहते हैं। चारों अवस्थाओं के पार ध्यान जगत में हमारी आत्मा निवास करती है। देखा जाये तो हमारा सारा जीवन शब्दों में उलझ कर ही समाप्त हो जाता है। हमारा सारा जीवन बाहर ही बीत जाता है। महल है। लेकिन हम द्वार पर ही पूरा जीवन बिता देते हैं। जीवन का वास्तविक सुख और आनन्द बाहर नहीं है हमारे भीतर ही है। इसलिए योग साधना हो या तंत्र साधना सभी ने एक स्वर में कहा- अन्दर पहुंचने का कोई साधन है तो वह है ध्यान की साधना। ध्यान ही एकमात्र परम मार्ग है। अपार आनन्द भीतर है। हम क्षणिक आनन्द के लिए अमूल्य समय और शरीर व्यर्थ गवां देते हैं।

जिसे हम जीवन कहते हैं। वह संसाररूपी बाजार के अलावा कुछ नहीं है। यहां पर केवल लेना-देना है। कुछ अपना नहीं है। ऐसा जीवन परेशानी, चिन्ता और खालीपन के अलावा कुछ भी नहीं है।

ध्यान हमारे जीवन की उस आयाम की खोज है जहां केवल हम होते हैं। एकमांत्र हम जहां आलौकिक आनन्द है उसके अलावा कुछ भी नहीं। ध्यान विधि है और समाधि है उपलब्धि। बस दोनों में यही अन्तर है। जिस प्रकार निद्रा और ध्यान में है। ध्यान का निराकार और साकार से कोई सम्बन्ध नहीं है। वह केवल आन्तर जगत में प्रवेश मार्ग का माध्यम मात्र है। ध्यान है विषय वस्तु रहित प्रगाढ़ निद्रा की भांति। जिस प्रकार निद्रा की अवस्था में तन-मन का होश नहीं रहता उसी प्रकार ध्यान की अवस्था में होता है। निद्रा में चेतना नहीं है और ध्यान में चेतना पूर्णरूपेण है। मन संसार का द्वार है। ध्यान निर्वाण का द्वार। मन जिसे खोता है ध्यान में वह मिल जाता है। ध्यान अवस्था में हम होशपूर्वक प्रवेश करते हैं। जब वापस आते हैं तो बदल कर आते हैं। नये रूप में आते हैं लेकिन निद्रा में ऐसा नहीं होता। आकार या निराकार पर ध्यान करते-करते डूब जाओ और कर जाओ प्रवेश आन्तर जगत में यही ध्यान है।

समाधि प्रसंग

कुण्डलिनी साधना का चौथा चरण समाधि है। जिस प्रकार राज योग का विषय ध्यान है। उसी प्रकार ज्ञान योग का विषय समाधि से समझना चाहिए। समाधि की गहन अवस्था में ही आत्म जगत में प्रवेश किया जाता है। यहां प्रवेश करते ही सारे रहस्यमय सत्य को एकबारगी में प्रगट कर देता है यानि इस अवस्था के उपलब्ध होते ही प्रकृति के सारे रहस्य प्रगट हो जाते हैं। जिससे वह अनजान रहता था। इसे ही परम ज्ञान की अवस्था कहते हैं।

कुण्डलिनी की साधना एकमात्र प्राण, मन और आत्मा की साधना है और उसका साधन है प्राणायाम, ध्यान और समाधि। कुण्डलिनी साधना हठ योग, राज योग और ज्ञान योग का समन्वय योग है। इसलिए कुण्डलिनी को महायोग भी कहते हैं। सभी कर्मो का योग ज्ञान में ही होता है। भगवान श्रीकृष्ण का कहना है कि 'सर्वकर्माविलं पार्थ! ज्ञाने परिसमाप्यते'

यानि जगत में जितने भी ज्ञान उपलब्ध हुए हैं वे सब समाधि द्वारा ही उपलब्ध हुए हैं। इसलिए ज्ञान योग समाधि का विषय है। योग अथवा तंत्र में जितनी भी साधना भूमि या अवस्थाएं हैं उसमें समाधि को सर्वोच्च और अन्तिम अवस्था यानि बहिरंग और अंतरंग साधना की अन्तिम और महत्वपूर्ण अवस्था मानना चाहिए। उसके बाद ही निर्वाण, मोक्ष, परमपद, कैवल्य आदि की अवस्था समझनी चाहिए।

वास्तव में आत्मा की सम्पत्ति 'स्व' का ज्ञान है। जिसे योग में आत्म ज्ञान या परम ज्ञान कहते हैं यह परम ज्ञान समाधि की अवस्था में आप की अपनी सम्पदा है। जिसके एकमात्र स्वामी आप होते हैं यानि पहले आप इन्द्रियों के दास थे अब इन्द्रियां आपके वश में हैं। आप सहज हो गये। इसलिए संन्यास में एक शब्द है स्वामी यानि साधक। आत्म जगत में जो प्रवेश कर उसका अतिक्रमण कर लेता है वही स्वामी होता है यानि मन और इन्द्रियां उसके वश में होती है। लेकिन यह इतना सरल नहीं है। सतत साधना के बाद ही ऐसी अवस्था को उपलब्ध हुआ जा सकता है।

कुण्डलिनी साधना के शोध और अध्ययन के दौरान बहुत सारे साधकों से सत्संग लाभ हुआ। उसी का परिणाम है कुण्डलिनी साधना। वैसे समाधि की बहुत सारी अवस्थाएं हैं। लेकिन उनमें से जो साधना के लिए हैं उन समाधियों का वर्णन कर रहा हूं जो अति आवश्यक है। वैसे ध्यान की गहन अवस्था समाधि है। वैसे धारणा, ध्यान, समाधि एक ही अवस्था है। उत्तरोत्तर विकसित रूप है। तीनों में एकाग्रता के भिन्नता के कारण भेद है। एकाग्रता की निम्नतम् अवस्था धारणा से प्रारम्भ होती है तथा ध्यान की अवस्था को पार करती हुई समाधि अवस्था तक पहुंच जाती है। योग में इस सम्पूर्ण प्रक्रिया को संयम कहते हैं।

कुण्डलिनी साधना में समाधि चार प्रकार की बतलायी गयी है। जड़ समाधि, प्राणमय समाधि, मनोमय समाधि और आत्ममय समाधि।

जड़ समाधि जमीन के अन्दर गुफा आदि या एकान्त स्थान में लगायी जाती है। इसका सम्बन्ध स्थूल शरीर से समझना चाहिए। इस समाधि में नाड़ी तन्तु शुद्ध होते हैं। मस्तिष्क में प्राण वायु का संचार होता है। जब यह समाधि सिद्ध होती है तो स्वतः ही साधक प्राणमय समाधि

में प्रवेश करता है यानि जड़ समाधि का सम्बन्ध स्थूल शरीर से है। उसी प्रकार प्राणमय समाधि का सम्बन्ध सूक्ष्म शरीर से है। प्राणवहा नाड़ियां शुद्ध हो जाने पर साधक को सूक्ष्म शरीर का आभास हो जाता है। वह जो भी चिन्तन करता है दृश्यवत् उसके सामने आ जाता है। वह भौतिक शरीर से देखता है और अनुभव करता है तो भौतिक शरीर के प्रति आकर्षण कम हो जाता है। वह दोनों शरीर में समान रूप से जीने लगता है। प्राणमय समाधि का सम्बन्ध सूक्ष्म शरीर से समझना चाहिए। जब सूक्ष्म शरीर का साधक अतिक्रमण कर लेता है तब उसे मनोमय शरीर का ज्ञान हो जाता है। इसे ही मनोमय समाधि कहते हैं।

मनोमय समाधि की भी दो अवस्थाएं हैं। सविकल्प अवस्था और निर्विकल्प अवस्था। सविकल्प अवस्था का सम्बन्ध चेतन मन से और निर्विकल्प अवस्था का सम्बन्ध अवचेतन मन से है। सविकल्प अवस्था में परिपक्व हो जाने पर निर्विकल्प अवस्था में प्रवेश होता है। यह साधक की परम अवस्था है। क्योंकि इसी अवस्था में साधक को अपने आत्म शरीर का बोध होता है। आत्म शरीर में रह कर जिस समाधि को उपलब्ध होता है वह है आत्ममय समाधि।

इसी को धर्ममेघ समाधि कहते हैं। यह कुण्डलिनी साधना की सर्वोच्च अवस्था है। यही सामरस्य भाव है। चारो समाधियों का सम्बन्ध क्रम से स्थूल जगत, सूक्ष्म जगत, मनोमय जगत और आत्म जगत से समझना चाहिए। नरमेद्य समाधि प्राप्त योगीगण के मस्तिष्क में बीटा, डेल्टा और थीटा तरंगे निकलती रहती हैं। जो ब्रम्हाण्डीय ऊर्जा के सम्पर्क में आकर विशेष प्रकार से चुम्बकीय तरंगे उत्पन्न करने लगती हैं। योगीगण ब्रम्हाण्डीय ऊर्जाओं से सम्पर्क स्थापित कर लेते हैं। इच्छानुसार किसी भी लोक को देख सकते हैं और आवश्यकतानुसार सम्पर्क भी कर लेते हैं और पहुंचने में भी सक्षम होते हैं।

पुनरूक्त दोष

अनादि अनन्त संसार में हमारी जीवन यात्रा कब से प्रारम्भ हुई है यह न बतलाया जा सकता और न समझाया जा सकता है। हमारी यात्रा कहां जाकर समाप्त होगी यह भी बतलाया नहीं जा सकता। लेकिन हम

अपने जन्म-जन्मान्तरों में करोड़ों कर्म इकट्ठा कर लेते हैं। हर जन्म का कर्म इकट्ठा होता चला जाता है। हम उसके बोझ तले दबते चले जाते हैं। लेकिन कर्मों से छुटकारा मात्र साधना से ही प्राप्त कर सकते हैं यानि जब तक स्व का ज्ञान न हो कर्म बन्धन से छुटकारा पाना सम्भव नहीं है। स्व की अवस्था हमें केवल समाधि के द्वारा ही उपलब्ध होती है। हमारे लिए सबसे सरल बात यह है कि कर्म और धर्म दोनों से बंधे रहते हैं। हम जो करते हैं वह है कर्म। हमारा स्वभाव ही हमारा धर्म है।

कर्म का तात्पर्य यह है कि हम अपने से अतिरिक्त किसी अन्य से जुड़ जाते हैं और धर्म का अर्थ है हमारा आन्तरिक स्वभाव और गुण। कर्म में गल्ती होती है। लेकिन धर्म में नहीं। हम जितना कर्म में उलझते जाते हैं हमारा आंतरिक स्वभाव दबता जाता है यानि हमारा होना भी और अन्त में ऐसी स्थिति आ जाती है कि हम भूल जाते हैं कि कर्म के अतिरिक्त भी कुछ है। हम अपना जो भी परिचय देते हैं वह हम अपने कर्मों का देते हैं कभी अपने स्व का परिचय नहीं देते। क्योंकि उसका हमें ज्ञान ही नहीं होता है।

केवल हम इतना ही जानते हैं हम क्या कर सकते हैं और क्या कर रहे हैं? हम बराबर कर्म ही एकत्र करते जा रहे हैं। बाहर तो कर्म ही हो रहा है। न जाने कितने कर्म किये जा रहे हैं और उन कर्मों की छाया स्मृति और उसके संस्कार हमारे आत्म परत अथवा आत्म पटल पर अंकित होते जा रहे हैं। आज जो कर रहे हैं वही कल भी किया। यही कर्म जन्म-जन्मान्तर से करते चले आ रहे हैं। इसलिए जीवन में ऊबन (बोरियत) भरा रहता है। क्योंकि कुछ नया नहीं होता। योग में एक शब्द है पुनरूक्त यानि जीवन भर दोहराया जा रहा है यानि पूरा जीवन पुनरूक्त दोष से भरा है। इसी को भारतीय मनीषियों ने 'आवागमन' कहा है यानि पिछले जन्म में वही कर्म, वर्तमान जन्म में भी वही कर्म और अगले जन्म में भी वही कर्म। वही क्रोध, घृणा, धन कमाना, बाल-बच्चे पैदा करना आदि। इसी को संसार कहते हैं यानि चक्र जो अपनी धूरी पर निरन्तर घूमता रहता है।

कर्म से कर्म नहीं कटता। वह कटता है अकर्म से और अकर्म उपलब्ध होता है समाधि से।

अकर्म का तात्पर्य है जिसमें कर्ता का भाव अथवा बोध न हो। समाधि में कर्ता रहता ही नहीं है। हम समाधि की स्थिति में चेतना की उस अवस्था में पहुंचते हैं जहां केवल होना ही है। जहां करने का भाव ही नहीं होता। जहां होने के भाव का केवल अस्तित्व है।

उस क्षण हमें पता चलता है कि जो कर्म किया था उसे हमने किया ही नहीं था। कुछ कर्म थे जिसे शरीर ने किया और कुछ कर्म थे जिसे मन ने किया था। हमने तो कुछ किया ही नहीं। यही अकर्म अवस्था है। ऐसा बोध एकमात्र समाधि में होता है और इसी बोध के साथ ही समस्त कर्मों का जाल कट जाता है समाधि में। यहीं आत्म भाव का जन्म होता है। यहीं आत्म भाव का बोध होता है। आत्म भाव का मतलब समस्त कर्मों का कट जाना। आत्म भाव के अभाव के ही कारण हमें भ्रम होता है कि हमने कर्म किया। हम जो भी कर्म करते हैं या तो शरीर तल या मन तल द्वारा ही होता है अथवा इन्द्रियों के कारण होता है।

शरीर की प्रेरणा द्वारा किया गया कर्म शारीरिक कर्म और मन की प्रेरणा द्वारा किया गया कर्म मानसिक कर्म कहलाता है। लेकिन आत्मा साक्षी भाव से सब अन्तर्भूत करती रहती है। जब आप आत्म भाव को उपलब्ध होंगे तब आपको पता चलेगा कि आत्मा की उपस्थिति में सारे कर्म घटित हुए जीवन में। लेकिन उसका किसी कर्म में प्रवेश नहीं था। किसी भी कर्म में उसका मोह भी नहीं था। वह केवल साक्षी थी।

समाधि में जब हम आत्मभाव को उपलब्ध होते हैं उस दिन हम सारे कर्मों से मुक्त हो जाते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि कर्मों ने हमें बांधा नहीं है। हम बन्धन महसूस करते हैं। जब आत्म तल पर हम पहुंचते हैं। तब भान होता है हम तो बंधे ही नहीं थे। यह तभी होगा जब आप साक्षी भाव को होंगे उपलब्ध। चाहे वह कैसा भी कर्म हो साक्षी भाव को ही होना होगा उपलब्ध। कर्ता भाव को हटाना होगा। आप कर्ता नहीं हैं आप अपने कर्मों के साक्षी हैं। यही साक्षी भाव आपको निरपेक्ष बनायेगा। आत्म तल का प्रथम सोपान है यही समाधि भाव है। समाधि एक या दो घण्टे की नहीं है। यह चौबीस घण्टे की साधना है। इसमें निरन्तर डूबे रहना है। आन्तर द्वार कब खुल जाये कहा नहीं जा सकता है।

नींद से जागने की अवस्था और समाधि में प्रवेश की अवस्था देखा जाये तो एक समान ही होती है। नींद के आगोश में हम कब चले जाते हैं पता ही नहीं चलता। उसी प्रकार समाधि के समय हम कब आन्तर जगत में प्रवेश कर जाते हैं पता नहीं होता। लेकिन वह अवस्था जाग्रत ही होती है।

जिस प्रकार जागने पर स्वप्न असत्य सा प्रतीत होता है उसी प्रकार समाधि से वापस आने पर जगत का सत्य खुल जाता है। सारे जगत का सत्य सामने होता है। इतना ही नहीं पूर्व जन्म के भी सत्य प्रगट हो जाते हैं। उस समय जीवन् और शरीर का मूल्य समझ में आता है। पश्चाताप के अलावा कुछ भी नहीं रहता। उस समय एक ऐसी अवस्था उत्पन्न होती है। जिसे परम वैराग्य कहते हैं। जिस प्रकार आत्मा तृप्त होकर स्वच्छ और निर्मल हो जाती है। पतञ्जली योग में इसी परम वैराग्य की चर्चा की है। वह यही परम वैराग्य है।

यहां पर प्रसंगवश चर्चा करना उचित समझता हूं। योग में कैवल्य शब्द का प्रयोग है। ज्यादातर साधक इससे परिचित भी होंगे। वास्तव में कैवल्य न कोई पद है न ही कोई विशेष योगिक अवस्था। यह बोध का विषय है। समाधि को उपलब्ध योगी पहली बार जानता है या बोध होता है मैं केवल हूं अनन्त जन्मों के कर्म हुए हैं स्वप्न की तरह। न वह दुखी होता है, न ही पश्चाताप होता है और न ही आत्म प्रशंसा रह जाती है। सारा कुछ विलीन हो जाता है उस अवस्था में।

अब केवल 'मैं हूं'। जिस समय सारा जीवन और सारे कर्म स्वप्न के समान प्रतीत होते हैं उस अवस्था में केवल 'मैं हूं' का बोध रह जाता है। योगी का न जीवन रह जाता है न ही कर्म यदि कुछ शेष रह जाता है तो केवल मात्र 'वह' रह जाता है। यही केवल शब्द 'कैवल्य' शब्द में परिवर्तित हो गया। जहां कर्म, भाव, विचार भी शेष न रह जाये बस रह जाती है आत्मा।

इसी कैवल्य में सर्वप्रथम अपने आपका और अपनी अवस्था का बोध होता है यानि केवल मैं और कुछ भी नहीं। यदि विचारपूर्वक देखा जाये तो समाधि योग साधना का महत्वपूर्ण स्थान है। जहां सारे कर्म नष्ट हो जाते

हैं। तब धर्म का उदय होता है तब हमें पता चलता है जो हम हैं, जो हमें होना है, जो हमारा स्वभाव है।

कहने की आवश्यकता नहीं कि हमारा होना अथवा हमारा स्वभाव ही हमारा धर्म है। जिसका ज्ञान और बोध हमें तब होता है जब सारे कर्म कट जाते हैं। हम निरपेक्ष हो जाते हैं यानि स्वभाव ही धर्म का उदय है। इसलिए योगीगण इस समाधि को धर्ममेद्य समाधि कहते हैं। इसलिए सभी समाधियों में धर्ममेद्य सामधि को उत्तम बतलाया गया है।

वास्तव में आत्मा का परम धर्म है स्व का ज्ञान। इसी स्व ज्ञान को योगीगण आत्म ज्ञान और परम ज्ञान कहते हैं। यही परम ज्ञान समाधि की अवस्था में उपलब्ध आपकी सम्पदा है। जिसके एकमात्र स्वामी आप होते हैं। इसी को धर्ममेद्य समाधि कहते हैं। योग कहता है कि इस समाधि द्वारा हजारों जन्मों की वासनाओं का समूल नष्ट हो जाता है। कुण्डलिनी साधना की गहरी चिन्तन है इस विषय में। पाप-पुण्य दोनों का समूल यानि आपने जो अच्छा किया था वह भी और जो बुरा किया था वह भी। दोनों का समूल नष्ट हो जाता है।

संसार की भाषा में पाप-पुण्य, अच्छा-बुरा समाज की दृष्टि में ठीक है। लेकिन कुण्डलिनी साधना की दृष्टि में पाप-पुण्य दोनों व्यर्थ हैं। क्योंकि उसकी दृष्टि में कर्ता होना ही सबसे भारी पाप है और अकर्ता होना पुण्य है। जो अकर्ता है वही सिद्धावस्था को प्राप्त करता है। वही कैवल्य को उपलब्ध होता है।

◆◆◆

मूलाधार चक्र

नाम - मूलाधार चक्र	दलों के अक्षर - वँ, शँ, षँ, सँ	देव - ब्रह्मा	ध्यानफल -
स्थान - योनि	नामतत्व - पृथिवी	देवशक्ति - डाकिनी	वक्ता, मनुष्यों में श्रेष्ठ,
दल - चतुर्थ	दल - लँ	यंत्र - चतुष्कोण	सर्वविद्या, विनोदी, आरोग्य,
वर्ण - रक्त	बीजकावाहन - ऐरावत हाथी	ज्ञानेन्द्रिय - नासिका	आनन्दचित्त, काव्य प्रबंध में
लोक - भूः	गुण - गन्ध	कर्मेन्द्रिय - गुदा	समर्थ होता है।

स्वाधिष्ठान चक्र

नाम - स्वाधिष्ठान चक्र	दलों के अक्षर - वँ से लँ तक	देव - विष्णु	ध्यानफल -
स्थान - पेडू	नामतत्व - जल	देवशक्ति - राकिनी	अहंकारादि विकार नाश,
दल - षष्ठ	दल - वँ	यंत्र - चन्द्राकार	योगियों में श्रेष्ठ, मोहरहित
वर्ण - सिन्दुर	बीजकावाहन - मकर	ज्ञानेन्द्रिय - रसना	और गद्य-पद्य की रचना
लोक - भुवः	गुण - रस	कर्मेन्द्रिय - लिंग	में समर्थ होता है।

मणिपुर चक्र
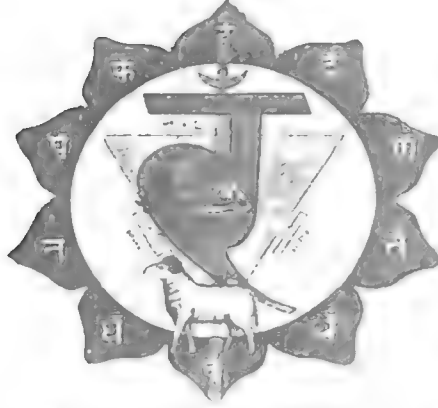
नाम - मणिपुर चक्र	दलों के अक्षर - डँ से फँ तक	देव - वृद्धरुद्र	ध्यानफल -
स्थान - नाभि	नामतत्व - अग्नि	देवशक्ति - लाकिनी	संहार पालन में समर्थ, वचन
दल - दश	दल - रँ	यंत्र - त्रिकोण	और रचना में चतुर हो जाता
वर्ण - नील	वीजकावाहन - मेष	ज्ञानेन्द्रिय - चक्षु	है एवं उसके जिह्वा पर सरस्वती
लोक - स्वः	गुण - रूप	कर्मेन्द्रिय - चरण	निवास करती है।

अनाहद चक्र
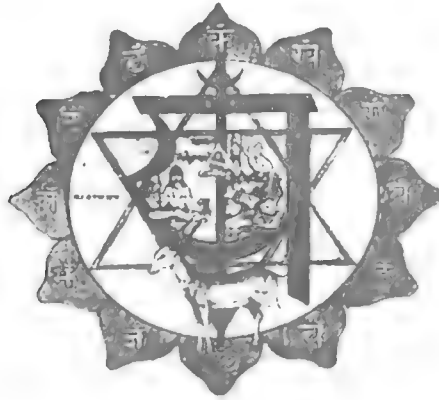
नाम - अनाहद चक्र	दलों के अक्षर - कँ से ठँ तक	देव - ईशानरुद्र	ध्यानफल -
स्थान - हृदय	नामतत्व - वायु	देवशक्ति - काकिनी	वचन रचना में समर्थ, ईशत्व सिद्धि-
दल - द्वादश	दल - यँ	यंत्र - षटकोण	प्राप्त, योगीश्वर, ज्ञानवान, इन्द्रियजीत,
वर्ण - अरुण	वीजकावाहन - मृग	ज्ञानेन्द्रिय - त्वचा	काव्यशक्ति वाला होता है और पर
लोक - महः	गुण - स्पर्श	कर्मेन्द्रिय - कर	कायाप्रवेश करने को समर्थ होता है।

विशुद्ध चक्र

नाम - विशुद्ध चक्र	दलों के अक्षर - अ से अः तक	देव - पन्चवक्त्र	ध्यानफल -
स्थान - कण्ठ	नामतत्व - आकाश	देवशक्ति - शाकिनी	काव्य रचना में समर्थ, ज्ञानवान,
दल - षोडश	दल - हँ	यंत्र - गोलाकार (शून्य)	उत्तम वक्ता, शान्तचित्त, त्रिलोकदर्शी,
वर्ण - धूम्र	बीजकावाहन - हस्ती	ज्ञानेन्द्रिय - कर्ण	सर्व हितकारी, आरोग्य, चिरजीवी
लोक - जनः	गुण - शब्द	कर्मेन्द्रिय - वाक	और तेजस्वी होता है।

आज्ञा चक्र
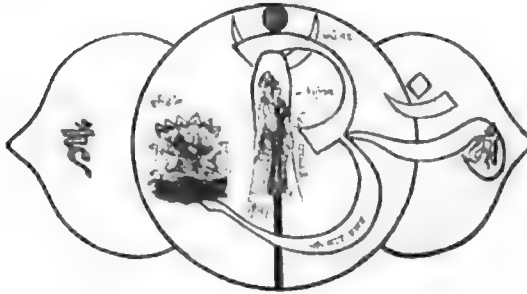
नाम - आज्ञा चक्र	दलों के अक्षर - हँ, क्षँ	देव - लिंग	ध्यानफल -
स्थान - भ्रूमध्य	नामतत्व - महत्तत्व	देवशक्ति - हाकिनी	वाक्य सिद्धि
दल - द्विदल	दल - ओ3म्	यंत्र - लिंगाकार	प्राप्त होती है।
वर्ण - श्वेत	बीजकावाहन - नाद	लोक - तपः	

सहस्त्रार चक्र

विसर्ग - परमशिव

नाम - शून्यचक्र स्थान - मस्तिष्क दल - सहस्त्र लोक - सत्यः	दलों के अक्षर - अँ से क्षँ तक नामतत्व - तत्वातीत तत्वबीज - विसर्ग	देव - परब्रह्म देवशक्ति - महाशक्ति यंत्र - पूर्णचन्द्र निराकार	ध्यानफल - अमर, मुक्त, उत्पत्ति पालक में समथ, आकाशगामी और समाधियुक्त होता है।

प्रसंग ग्यारह

कुण्डलिनी साधना

मनुष्य स्वयं में रहस्यमय है और उसका जीवन उससे भी ज्यादा रहस्यमय है। इस रहस्य के साथ जीवन के अस्तित्व की खोज एकमात्र सत्य की खोज है यानि स्व की खोज। अगर विचारपूर्वक देखा जाये तो हमारे पास ज्ञान विवेक है, बुद्धि और इन्द्रियां हैं। लेकिन फिर भी जीवन का रहस्य, रहस्य ही बना हुआ है। हम जीवन के विकास की जिस स्थिति पर पहुंचे हुए हैं वह भी अधूरा ही है। देखा जाये तो विराट सम्भावनाओं की तुलना में हमारा अस्तित्व सागर में एक बूंद के समान है।

जीवन के रहस्यों को जानने के लिए, सत्य को उपलब्ध होने के लिए और चेतना के विकास के लिए अनेकों आयामों का अतिक्रमण करना पड़ता है। तब जाकर सत्य की उपलब्धि होती है और रहस्यों का अनावरण होता है और स्व की जागृति होती है। मानव सभ्यता के इतिहास में अनेक महापुरुषों ने जीवन के परम रहस्यों को जानने और सत्य को जानने के लिए उन्होने लम्बी आन्तर यात्राएं की, परम्परा भी रही और श्रृंखला भी। उनके इस अन्तर्विकास की जो प्रक्रिया खोजी गयी उसी में धर्म का आविर्भाव हुआ।

जिस प्रकार वैज्ञानिकों ने पदार्थ जगत की खोज की उसी तरह भारतीय योगियों ने आन्तर चेतना जगत की खोज की। जिसे पराविज्ञान कहते हैं। इसी खोज को धर्म साधना कहता है और उसकी अन्तः प्रक्रियाओं को कहता है योग। देश, काल, परिस्थिति के अनुसार योग के कई आयाम विकसित हुए।

यदि आध्यात्मिक दृष्टि से देखा जाये तो योग के जितने भी आयाम विकसित हुए उनमें कुण्डलिनी साधना, योग की एकमात्र सर्वाधिक महत्वपूर्ण साधना है।

कुण्डलिनी साधना वास्तव में भौतिक शरीर से लेकर आत्म शरीर तक के विकास की साधना है। शरीर में विद्यमान अन्तर्चेतना की जागृति और उनके क्रम विकास की साधना है।

कुण्डलिनी की साधना यात्रा सूक्ष्मतम् से सूक्ष्मतम् की यात्रा है। सूक्ष्मातिसूक्ष्म का भी अतिक्रमण कर हमें परम सत्य तक पहुंचाती है। मन, प्राण और आत्मा का विकास कुण्डलिनी साधना द्वारा ही सम्भव है। इसके अलावा हमारा बाह्य और आन्तरिक रूपान्तरण भी सम्भव है। योगियों का तो यहां तक कहना है कि जीवन का आमूलचूल परिवर्तन भी, विकास भी सम्भव है। इसलिए इसे सिद्धयोग और महायोग भी कहा जाता है। हमारे भीतर आत्मा है वह खोयी हुई है उसका अनुभव करते हैं परन्तु जान नहीं पाते। कुण्डलिनी साधना के अन्तर्गत ध्यान साधना से वह जाग्रत होती है। और समाधि से पूर्ण चैतन्य होती है।

आत्म जागरण का परिणाम परम आनन्द, परम शान्ति और परम प्रेम की जीवन में उपलब्धि है और उस परम चैतन्य आत्मा से सुगन्ध और प्रकाश फैलता है। तब व्यक्ति खो जाता है जीवन के अन्तहीन अनन्त रहस्यमय अस्तित्व के सागर में। एकरस हो जाता है जीवन के स्रोत में। उसके जीवन की सारी सीमाएं टूट जाती हैं। सारे द्वन्द समाप्त हो जाते हैं और सारी पीड़ायें समाहित और शान्त हो जाती हैं उस परम सत्य की उपलब्धि में। मगर इस परम उपलब्धि के लिए हमें स्वयं अपने भीतर की यात्रा करनी होगी। जुड़ना होगा। चलना होगा स्वयं अपने अस्तित्व के साथ। साधना करनी होगी स्वयं अपनी वृत्तियों और आन्तरिक स्थितियों के साथ। जगाना होगा स्वयं को और अपनी आन्तरिक शक्तियों को।

कुण्डलिनी साधना एक जन्मों की साधना नहीं है। कई जन्मों की साधना है। परन्तु धैर्यवान साधक के लिए यह लम्बी यात्रा नहीं है बस चलना है इस पथ पर। आगे तो परमात्मा की शक्ति ही साधना के सारे रूपान्तरणो को सम्पन्न करती चली जाती है और साधक परम सत्य को उपलब्ध होता है साधना के प्रवाह में बहते हुए। वह प्रवाह चेतना शक्ति की होती है अनन्त में विलीन होने के लिए।

कुण्डलिनी साधना के मुख्य चार अंग हैं आसन, प्राणायाम, ध्यान और समाधि। यह चारो साधना स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर, मनः शरीर और

आत्म शरीर से समझना चाहिए। आसनों के अभ्यास से स्थूल शरीर का विकास होता है। प्राणायाम से प्राण शरीर और सूक्ष्म शरीर का विकास और उसकी अनुभूति होती है। ध्यान के द्वारा मनः शरीर का विकास होता है। उसी प्रकार समाधि की अवस्था में हमारा आत्म शरीर विकसित होता है और उसका अनुभव भी होता है।

कुण्डलिनी साधना सत्य का मार्ग है। इसके साधक सत्य के अनुयायी होते हैं सत्य के साक्षी होते हैं और सत्य में प्रवेश करते है। सत्य से ही अपनी आत्मा का तादात्म्य स्थापित करते हैं। उनका लक्ष्य परमात्मा होता है और उनका इष्ट आत्मा होती है और उसका साधन और आसन स्वयं साधक का शरीर होता है। स्वयं अपनी आत्म साधना पर अग्रसर होता है।

आदिचेतना शक्ति

हठयोग प्रदीपिका आदि ग्रन्थों में कुण्डलिनी साधना, अव्यक्त शक्ति के नाम से वर्णन मिलता है। यही आदिचेतना का समष्टि रूप है। वहीं व्यष्टि रूप में कुण्डलिनी शक्ति के नाम से सम्बोधित होती है इसे आधार शक्ति भी कहते हैं। समस्त जगत मानव इसी शक्ति के आश्रित हैं। विश्व में क्रियाशीलता, चेतना आदि सब इसी शक्ति के कारण है।

यदि विचारपूर्वक देखा जाये तो समष्टि रूप से सम्पूर्ण विश्व ब्रम्हाण्ड इसके आश्रित हैं। विश्व के समस्त पदार्थो में व्याप्त हैं। यही निर्माण-विनाश की शक्ति है। तंत्र में कुण्डलिनी को प्राण शक्ति कहते हैं। समस्त प्राण की गतिविधि इस शक्ति पर ही आधारित है। यही शक्ति प्रसुप्त अवस्था में मूलाधार चक्र में स्थित है। मनुष्य की समस्त क्रिया मूलाधार चक्र से ही शक्ति प्राप्त करती है। मन भी मूलाधार शक्ति से क्रियाशील होता है। मानसिक और शारीरिक क्रियाएं, रक्त संचालन आदि आन्तरिक क्रियाएं भी कुण्डलिनी शक्ति के द्वारा ही होती है। हमें भ्रम है हमारे चक्र सुप्त हैं लेकिन ऐसा नहीं है। अगर चक्र सुप्त होते तो हमारी सारी क्रियाएं भी सुप्त होती। योग साधना के द्वारा इन चक्रों को और भी सक्रिय किया जाता है। उनकी ऊर्जा को और प्रवाहित करना होता है।

कुण्डलिनी शक्ति ही आदिशक्ति है। यही विश्व आधार महाशक्ति

मानव में चक्रों के माध्यम से ऊर्जा रूप में अवस्थित है। मानव और उसकी समस्त क्रियाएं कुण्डलिनी शक्ति की अभिव्यक्तियां हैं। यही मूल सत्ता रूप में विद्यमान है। शरीर और मन की समस्त शक्तियों का मूल रूप है। मनुष्य में चेतन-अवचेतन, जड़, दृश्य जगत की शक्ति और उसके पदार्थों के रूप में अभिव्यक्त है। यही परमा आदिशक्ति है। मानव के तन में मूलाधार में स्थित कुण्डलिनी शक्ति में विद्यमान है। मानव में ब्रम्हाण्ड की समस्त शक्तियों का यह सूक्ष्म केन्द्र है।

इस शक्ति की सुप्तावस्था में ब्रम्हमार्ग बन्द रहता है। सुषुम्ना नाड़ी ही ब्रम्ह मार्ग है। इस मार्ग में कुण्डलिनी ऊर्जा प्रवाहित होकर सहस्रार को स्पर्श करती है। सामान्य अवस्था में ब्रम्ह मार्ग बन्द रहता है यानि जब शक्ति सुप्तावस्था में रहती है तब प्राण शक्ति इड़ा और पिंगला में होकर ही प्रवाहित होती रहती है। जैसाकि ज्ञात हो प्रत्येक चक्र की शक्ति कुण्डलिनी की ही शक्ति है। चक्रों की शक्तियां अव्यक्त देवियां या देवता ये सब कुण्डलिनी शक्ति की ही अभिव्यक्तियां हैं। कुण्डलिनी के शक्ति चक्र सुप्तावस्था में अधोमुखी होते हैं। जब साधक के प्रबल साधना से यह शक्ति जाग्रत होकर ब्रम्ह मार्ग से प्रवाहित होकर अन्य चक्रों का भेदन कर सहस्रार की ओर अग्रसर होती है तब क्रमशः सभी चक्र और नाड़ियां प्रकाशित होती चली जाती हैं और अधोमुखी चक्र उस शक्ति के सम्पर्क मात्र से ऊर्ध्वमुख होते चले जाते हैं।

उन चक्रों की विशेष शक्तियां भी अव्यक्त से व्यक्त हो जाती हैं। अगर विचारपूर्वक देखा जाये तो इन शक्तियों का प्रवाह सदा चलता रहता है। क्योंकि इनके बिना स्थूल शरीर क्रियाशील नहीं रह सकता। सभी मनुष्यों में ये चक्र अपनी शक्ति द्वारा कम अथवा अधिक रूप से क्रियाशील रहतें हैं। कुण्डलिनी साधना की उच्चावस्था में सभी चक्रों की शक्ति विशेष रूप से जाग्रत हो जाती है। देखा जाये तो मूलाधार चक्र ही स्थूल रूप में स्थित सभी चक्रों का आधार है। यह अनादि अनन्त शिव की शक्ति है। यही ब्रम्ह की माया है।

सृष्टि का प्रारम्भ त्रिगुण शक्ति की मूल प्रकृति से होता है। सत्व, रज, तम प्रकृति की लय, स्थित और विनाश क्रम है। सृष्टि के उदय काल में सर्वप्रथम महतत्व का उदय होता है। महतत्व ब्रम्हाण्ड और मानव तन दोनों

में विद्यमान है। मानव शरीर में भ्रूमध्य स्थित आज्ञा चक्र का तत्व है। तंत्र में इसे सृष्टि का कारण कहा गया है। इस महतत्व से ही पंच तन्मात्राओं की उत्पत्ति होती है। चक्र यानि विशुद्ध, अनाहद, मणिपूरक, स्वाधिष्ठान और मूलाधार। चक्रों से शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध आदि है। जिनसे पञ्चीकरण के द्वारा आकाश, वायु, तेज यानि अग्नि, जल, पृथ्वी आदि तत्वों का उदय होता है। दूसरी तरफ पंच ज्ञानेन्द्रियां और पंच कर्मेन्द्रियों का भी उदय होता है। सृष्टि के उदय काल में पहले आकाश तत्व उदय होता है उसके बाद वायु तत्व, अग्नि तत्व, जल तत्व तथा पृथ्वी तत्व का क्रमशः उदय माना गया है। ये तत्व क्रमशः विशुद्ध चक्र, अनाहद, मणिपूरक, स्वाधिष्ठान तथा मूलाधार चक्र से सम्बन्धित माने गये हैं। इन तत्वों की उत्पत्ति के बाद विस्तार बन्द हो जाता है। तब वह शक्ति मूलाधार चक्र कुण्डलिनी रूप में सुप्तावस्था में विद्यमान रहती है ब्रम्ह मार्ग को बन्द किये हुए।

इस अवस्था में आत्मा अन्नमय शरीर यानि भौतिक शरीर में पड़ी रहता है। अपनी भोगेच्छा के कारण स्थूल शरीर प्राप्त करती रहती है यानि जन्म-मरण चक्र में पड़कर भ्रमित रहती है। यही काल चक्र है। जीवन जगत चलता रहता है और काल में प्रवाहित होता रहता है। इन सबके बावजूद भी मनुष्य के अन्दर 'स्व' को जानने की अभिलाषा सदैव बनी रहती है। वह अपने वास्तविक स्वरूप को जानना चाहता है। वह कौन है और उसे जाना कहां है? सत्य क्या है आदि...आदि...? सम्पूर्ण दर्शन और साधना के मूल में यही है स्वरूपोलब्धि। मानव का परम उद्देश्य और कर्तव्य है स्वरूपोलब्धि यानि शिव में लीन होना, शिवरूप हो जाना। शिव से कोई अलग नहीं है। समस्त ब्रम्हाण्ड चराचर जगत कार्य करने वाली शक्ति भी शिव से भिन्न नहीं है। शिव ही शक्ति रूप में तथा शक्ति ही शिव रूप है। दोनों अंभिन्न हैं। शिव ही अपनी शक्ति के रूप में ही विश्व रूप धारण करते हैं। यह महाशक्ति ही मनुष्य के शरीर में कुण्डलिनी शक्ति के रूप में विद्यमान है। इसलिए मानव देह का काफी महत्व है। जो ब्रम्हाण्ड में है वही पिण्ड में विद्यमान है। अतः सहस्रार चक्र में अनादि अनन्त शिव ब्रम्हाण्ड को उत्पन्न करने वाली आदिशक्ति के साथ अभिन्न होकर विद्यमान है यानि ब्रम्हाण्ड के समान ही मानव के भीतर विकास एवं लय की क्रिया

होती रहती है। कुण्डलिनी शक्ति के जाग्रत होने पर जीव सुषुम्ना मार्ग से चक्रों का भेदन करते हुए अन्त में सहस्रार पर पहुंच कर शिव में लीन होने पर स्वयं शिवमय हो जाता है। अतः जब तक कुण्डलिनी जाग्रत होकर सहस्रार का भेदन नहीं करती तब तक मनुष्य स्व को उपलब्ध नहीं हो पाता। वैसे तो कुण्डलिनी शक्ति को जाग्रत करने के बहुत से साधन व मार्ग शास्त्रों में बतलाये गये हैं। लेकिन जाग्रत करने का अर्थ है शक्ति को उर्ध्वगामी बनाना। क्योंकि शक्ति का स्वभाव अधोगामी रहना है। अधोगमन को उर्ध्वगमन करना ही वास्तविक जागरण है और है वास्तविक साधना। आत्म नियंत्रण, संयम, दृढ़निश्चय, श्रद्धा लगन और अभ्यास जिस साधक के अन्दर है वही सफल हो सकता है। यह मार्ग इतना सरल नहीं है कुण्डलिनी शक्ति के तेज को सहन करने की शक्ति पहले प्राप्त करनी होती है।

इसमें गुरु की परम आवश्यकता होती है। गुरु के सानिध्य में आसन, बन्ध, प्राणायाम, ध्यान आदि का अभ्यास करना चाहिए। वैसे तो योगी को छोड़ कर सभी की सुषुम्ना नाड़ी बन्द ही रहती है। प्राण का संचालन इड़ा-पिगला द्वारा ही होता रहता है। लेकिन साधना के विकास क्रम में प्राण का गमन धीरे-धीरे सुषुम्ना नाड़ी से होने लगता है।

कभी-कभी इस शक्ति का जागरण अकस्मात् भी देखने को मिलता है। ऐसे साधकों से मेरा सम्पर्क भी हुआ। इसका कारण उनके पूर्व जन्म के संस्कार और साधना मानना चाहिए। साधना के जितने उपाय हैं वे तभी लाभप्रद हो सकते हैं जब साधक स्वयं पात्र हो अथवा उसके अन्दर पात्रता हो अन्यथा हानि की भी सम्भावना होती है।

योग कुण्डल्योपनिषद में तो इतना तक कहा गया है कि कुण्डलिनी ही शक्ति रूपा है। साधक को इसका जागरण बुद्धिमत्ता पूर्वक करना चाहिए। सर्वप्रथम प्राणयाम का अभ्यास करें। सुषुम्ना में चित्त लीन रहता है। वहां वायु का प्रवेश नहीं रहता। केवल कुम्भक के द्वारा सुषुम्ना मार्ग शुद्ध कर साधक मूल बन्ध द्वारा अपान वायु को ऊर्ध्वगामी करता है। अग्नि के साथ अपान वायु, प्राण वायु तथा अपान के साथ अग्नि यानि ऊर्जा, कुण्डलिनी यानि मूलाधार तक पहुंचती है।

ऊर्जा की उष्णता और वायु की गति जागृत होकर कुण्डलिनी सुषुम्ना मार्ग में प्रवेश कर जाती है। फिर तीनों ग्रन्थियों का भेदन करती हुई अनाहद चक्र पर होती हुई सहस्त्रार चक्र तक पहुंच जाती है। प्रकृति के आठों रूपों को छोड़ कर वह शक्ति सहस्त्रार में लीन हो जाती है। यही परम समाधि की अवस्था है। यही विदेह मुक्ति है।

अगर विचारपूर्वक देखा जाये तो साधना के बल पर जिस प्रकार कुण्डलिनी शक्ति ऊर्ध्वगमन होती है। जब कुण्डलिनी शक्ति जागृत होकर मूलाधार शक्ति को अपने में लीन कर पृथ्वी तत्व, जल तत्व भी लीन हो जाता है उसी प्रकार ऊर्ध्वगमन के समय सभी चक्रों की शक्तियों को अपने में लीन करते हुए कुण्डलिनी छः चक्रों की शक्तियों सहित परम शिव में लीन होकर एकरूप हो जाती है। यही शिव-शक्ति का मिलन है। यही आत्मा-परमात्मा का मिलन धाम है जिसे सायुज्य लाभ कहते हैं।

इससे यह स्पष्ट होता है ऊर्ध्वगमन में कुण्डलिनी शक्ति विभिन्न चक्रों की शक्तियां एक-एक कर अपने में लीन कर अन्त में परम धाम को उपलब्ध हो जाती है। उसी प्रकार प्राकृतिक रूप में कुण्डलिनी शक्ति अधोगमन के समय मानव तन में चक्रों के द्वारा अपनी शक्ति छोड़ती हुई अन्त में मूलाधार चक्र में जाकर विद्यमान हो जाती है। जब तक यह शक्ति मूलाधार में रहती है तब तक उन केन्द्रों में उसकी अव्यक्त शक्ति विद्यमान रहती है। ऊर्ध्वगमन के समय चक्रों से सम्पर्क होने पर अभिव्यक्त होती चली जाती है।

मानव तन में कुण्डलिनी शक्ति प्राकृतिक रूप से अधोमुखी रहती है और ऊर्ध्वगमन के समय ऊर्ध्वमुखी हो जाती है यानि ऊर्ध्वगमन के समय सारे चक्र और नाड़ियां प्रकाशित हो जाते हैं। जिस चक्र में यह शक्ति पहुंचती है वह ऊर्ध्वमुख होकर कमल की तरह खिल जाता है और सारे वर्ण तत्व और शक्तियां जाग्रत हो जाती हैं। जब कुण्डलिनी शक्ति ऊर्ध्वगामी होकर आज्ञा चक्र स्पर्श करती है तब साधक को समाधि की अवस्था उपलब्ध होती है और सारे वृत्तियों का निरोध हो जाता है। यह परम ज्ञान की अवस्था होती है। कुण्डलिनी शक्ति को अग्नि रूप भी बतलाया गया है। जागृत होने पर अत्यधिक उष्णता का भान होता है।

ऊर्ध्वगमन के समय सुषुम्ना मार्ग स्थित चक्र में से होकर प्रवाहित होती है। जैसे-जैसे चक्रों का भेदन कर शक्ति आगे बढ़ती है उसका ज्ञान होता जाता है और वह शीतल होता चला जाता है।

सुषुम्ना नाड़ी में प्राणों का प्रभाव तथा सूक्ष्म जगत में प्रवेश होने से विचित्र अनुभव होना स्वाभाविक है। क्योंकि प्राण शरीर से प्रवाहित होकर सुषुम्ना की ओर चलने लगता है। ऐसी स्थिति में साधक का सम्बन्ध स्थूल शरीर से हटकर सूक्ष्म शरीर और सूक्ष्म जगत से हो जाता है। ऐसे समय में साधक को अपने आहार-व्यवहार पर विशेष ध्यान देना चाहिए। साधना के समय कुछ अलौकिक शक्तियां स्वतः प्राप्त होने लगती हैं। साधक को न अहंकार करना चाहिए न ही व्यक्त करना चाहिए।

क्या चक्रों को देखा जा सकता है

योग-तंत्र की सभी साधना के मूल में कुण्डलिनी जागरण है। बिना कुण्डलिनी जागरण के अन्य ज्ञान मार्ग सम्भव नहीं है। भारतीय शास्त्र में कुण्डलिनी चक्रों का वर्णन मिलता है साथ ही योग शास्त्रों और तंत्र ग्रन्थों में भी इसका वृहद विवरण मिलता है। अतः इनकी वास्तविक सत्ता का अस्तित्व अस्वीकार नहीं किया जा सकता। योगियों द्वारा अपने विशेष ज्ञान के द्वारा प्राप्त सूक्ष्म रूप और शक्ति रूप होने के कारण ये चक्र स्थूल इन्द्रियों या वैज्ञानिक यंत्रों से नहीं देखे जा सकते हैं। इस सत्य को हम नकार नहीं सकते। कुण्डलिनी चक्रों को जिनके ऊपर साधना और योग क्रियायें आधारित है उसे अस्तित्व हीन अथवा काल्पनिक नहीं कहा जा सकता। भारत का आध्यात्मिक ज्ञान जहां तक पहुंचा है अभी विज्ञान को काफी समय लगेगा। अगर विचारपूर्वक देखा जाये तो आज का विज्ञान हमारे शरीर का भी पूर्ण ज्ञान नहीं प्राप्त कर सका है। वही हजारों वर्ष पूर्व भारतीय योगियों ने अपने योगबल से अथवा अपने अतीन्द्रिय ज्ञान और शक्ति से शरीर के सूक्ष्म अवयवों नाड़ी तन्तुओं का ज्ञान प्राप्त कर चुके थे।

सर्वप्रथम ऋषियों ने भौतिक शरीर पर अपना ध्यान और खोज केन्द्रित किया। जिस प्रकार अन्धकार में जाने के लिए प्रकाश की आवश्यकता पड़ती है उसी प्रकार आन्तर जगत में प्रवेश के लिए आन्तर प्रकाश की आवश्यकता पड़ती है। वह मिला गहन ध्यान की अवस्था में। इसलिए सभी साधना में ध्यान अति महत्वपूर्ण माना जाता है।

गहन ध्यान की अवस्था में सर्वप्रथम ऋषियों ने भौतिक शरीर यानि अन्नमय कोश में स्थित केन्द्रों का अनुसंधान किया। योग में भौतिक शरीर को ही अन्नमय शरीर कहते हैं। जब उन्हे इन शक्ति केन्द्रों का पता चला कि इनमें तो अपार ऊर्जा भरी है तो उसे साधने के लिए विशेष आसनों, मुद्राओं तथा प्राणायाम को सिद्ध किया ताकि उन चक्रों की ऊर्जा को सम्भाल सके हमारा भौतिक शरीर। पहले उन्होने बाह्य साधना पर बल दिया जिसे आज हम अष्टांग योग कहते हैं। फिर ध्यान, धारणा, समाधि द्वारा आन्तर जगत में प्रवेश करने का मार्ग प्रशस्त किया। इससे यह बात तो स्पष्ट हो जाती है जिन शक्ति केन्द्रों की हमारे ऋषियों ने खोज की और साधना का मार्ग बतलाया उन शक्तियों को अतीन्द्रिय या अति सूक्ष्म होने के कारण अस्तित्वहीन तो नहीं कह सकते।

अगर विचारपूर्वक देखा जाये तो षट्चक्र शक्ति केन्द्र के रूप में हमारे रीढ़ की हड्डी के भीतर स्थित मेरुदण्ड रज्जू (स्पाइनल कॉड) है। जिसमें सुषुम्ना, बज्रा, चित्रा, तथा ब्रम्ह नाड़ी स्थित है इन्ही छः चक्रों में। इन्ही छः चक्रों को ही सूक्ष्म शक्तियों का केन्द्र कहा जा सकता है। देखा जाये तो प्रत्येक छः चक्रों की अपनी विशेष शक्ति है। जो हमारे मन को प्रभावित करती है। सुषुम्ना मार्ग बेहद संवेदनशील मार्ग है और है अति सूक्ष्म। उस सूक्ष्म मार्ग से यह शक्तियां तथा सूक्ष्म योग नाड़ियां जिन केन्द्रों में जाकर मिलती हैं वे सब अति सूक्ष्म मार्ग पर अति सूक्ष्म शक्ति केन्द्र हैं। वह किसी भी यंत्र से देखे नहीं जा सकते है।

सुषुम्ना मार्ग में स्थित विशिष्ट स्थानों से ज्ञानवहा, गतिवहा नाड़ियों के गुच्छ मिल कर शरीर में ज्ञानात्मक और क्रियात्मक जीवनी ऊर्जा प्रवाहित करते रहते हैं। इन गुच्छों में से होकर एक विशेष प्रकार की विद्युत धारा समस्त शरीर में प्रवाहित होती रहती है। इसी नाड़ी गुच्छे को योग में चक्र कहा गया है। इन अलग-अलग चक्रों की शक्तियों के द्वारा हमारे शरीर, मन और प्राणगति आदि नियंत्रित होते रहते हैं और होते हैं प्रभावित। कहने का तात्पर्य यह है कि ये सारे चक्र सुषुम्ना मार्ग पर विशेष स्थान पर स्थित अतीन्द्रिय शक्ति केन्द्र हैं।

जिनका प्रभाव हमारे स्थूल शरीर के प्रभावित होने के कारण अथवा शरीर में ज्ञान सूत्रों के विशेष गुच्छों के रूप में या विशेष केन्द्रों के प्रतिरूप

में पाया जाता है। तन्तुओं के स्थूल गुच्छे को शरीर शास्त्री अथवा चिकित्सा विज्ञान के द्वारा देखा गया है। उनका कहना है ये स्थूल स्नायु तंत्र गुच्छे शरीर के शक्ति केन्द्र हैं। जहां से पूरे शरीर का सन्तुलन होता है।

आधुनिक विज्ञान के अनुसार ये गुच्छे गति तथा संवेदना प्रदान करते हैं। देखा जाये तो इनकी संख्या अधिक है। लेकिन मुख्य छः है जिन्हे उच्च चेतना का केन्द्र माना गया है। प्रत्येक केन्द्र की अपनी स्वतंत्र शक्ति है। लेकिन उनके बीच एक ऐसी भी शक्ति है जो उन केन्द्रों को नियंत्रण भी करती रहती है। यह मनुष्य के अन्दर सर्पाकार के रूप में सुषुम्ना रंध्र के मूल में त्रिकोण योनि स्थान में स्वयंभू लिंग में गोलाकार लिपटी हुई सुप्तावस्था में ब्रम्हरंध्र के मुख पर विद्यमान है। जिसका सम्बन्ध चेतना के विभिन्न भाग से है।

जिनमें चेतना की गति अति सूक्ष्म शक्तियां कार्य करती रहती हैं। कुण्डलिनी की अलग-अलग शक्तियां इन भिन्न-भिन्न केन्द्रों में होती है। देखा जाये तो सभी शक्ति चक्र कुण्डलिनी शक्ति के ही विभिन्न अंग हैं। आधुनिक विज्ञान इन नाड़ी जालिकाओं (प्लैक्सस) को स्वतंत्र स्नायु केन्द्र माना है।

अमृत क्षरण

जीवन ही अमृत है और विष ही मृत्यु। योग में कहा गया है ब्रम्ह मुहूर्त में यानि सूर्य उदय के पूर्व ब्रम्हरंध्र से अमृत का क्षरण होता है वही हमारी जीवनी शक्ति है। जब इसका क्षरण धीरे-धीरे मन्द हो जाता है तब हमारे शरीर की मृत्यु हो जाती है। योगी जिव्हा को अन्दर मोड़ कर सरस्वती नाड़ी जो जिव्हा के अग्रभाग से सम्बन्धित है उस अमृत क्षरण का पान करते हैं। जिसके कारण उनका शरीर निरोग और दीर्घायु होता है तब समाधि में सफलता मिलती है।

कहने की आवश्यकता नहीं कि योग शास्त्र में शरीर को लघु ब्रम्हाण्ड कहा गया है। तीनों लोकों में जो कुछ भी है वह सब शरीर में स्थित है। सुमेरू पर्वत के समान मेरू सुषुम्ना यानि स्पाईनल कॉड है। जिसमें आठ कलाओं वाला अर्ध चन्द्र स्थित है। जहां से निरन्तर अमृत की वर्षा हो रही है। जिसे विज्ञान में प्रमस्तिष्कीय मेरूद्रव्य यानि सेरेब्रो

स्पाईनल फ्लड कहते हैं। यह रंध्र आठ भागों में विभक्त है। जिसे योग में अष्टकला कहते हैं। ये सब अधोमुखी हैं। जो निरन्तर मेरूद्रव्य प्रवाहित करते रहते हैं। इसी को शिव संहिता में अमृत क्षरण नाम दिया गया है। क्षरण के दो भाग होते हैं एक भाग शरीर व मस्तिष्क को ऊर्जा देता है और दूसरा भाग सुषुम्ना रंध्र में प्रवेश कर जाता है फिर वापस निकलता है। मेरू के मूल भाग पर बारह कला वाला सूर्य विद्यमान रहता है। जो इस मेरूद्रव्य यानि अमृत को अपने किरण से पान करता रहता है। यह किरण यानि ऊर्जा समस्त शरीर में प्रवाहित होती रहती है यानि यह रक्त में मिल कर समस्त शरीर में प्रवाहित होता है।

जालन्धर बन्ध के अभ्यास से साधक अमृत क्षरण का पान करता है। क्योंकि नाभि स्थित सूर्य मण्डल में यह अमृत जाकर भस्म हो जाता है। जो मृत्यु का कारक है। जालन्धर बन्ध के अभ्यास से साधक चन्द्र मण्डल से क्षरण होने वाली अमृत का स्वयं पान करता है।

जो साधक शरीर में स्थित अमृत क्षरण पान करता है वह सिद्धावस्था को उपलब्ध हो जाता है। योग शास्त्र में मस्तिष्क के संरचना का स्पष्ट रूप से विवरण मिलता है। शिव संहिता में बृहन्मस्तिष्कीय बल्क को ही सहस्त्रार चक्र कहते हैं। सहस्त्रार चक्र के मध्य में योनि का वर्णन है। उस योनि के नीचे चन्द्रमा का स्थान बतलाया गया है। यही योनि ब्रम्ह रंध्र है जो बृहन्मतिष्कीय बल्क को दो भागों में विभक्त करती है। इन दोनों भागों के बीच सूक्ष्म भाग है जहां चन्द्रमा स्थित है। जो सोलह कलाओं वाला अमृत से पूर्ण है यानि यह वह स्थान है जहां मस्तिष्क मेरुद्रव्य से युक्त है। उसे विज्ञान सेरेवनल कोरटेक्स कहता है और मस्तिष्क के सोलह भाग का भी समर्थन करता है। बृहत मस्तिष्क के ऊपरी भाग सेलेब्रम कोरटेक्स यानि बृहन्मस्तिष्क बल्क को शिव संहिता में कैलाश कहा गया है। यह शिव का परम स्थान है यही समस्त चेतना का केन्द्र है और मस्तिष्क के इस भाग को वैज्ञानिकों ने शरीर के समस्त ज्ञान और चेतना का केन्द्र माना है।

सम्वेदना, स्मृति, कल्पना आदि समस्त मानसिक क्रिया का सम्बन्ध इसी स्थान से है। योगी इस सहस्त्र दल कमल में अपने चित्त को एकाग्र कर

ध्यान लगाता है। यहां से जो अमृत का क्षरण होता है योग क्रिया द्वारा उसे पान कर अमृत्व को उपलब्ध होता है।

रहस्यमय तन्तु

विश्व ब्रम्ह्ाण्ड में सभी पदार्थ में एक प्रकार से कम्पन होता रहता है यानि ब्रम्हाण्ड का प्रत्येक कण गतिशील है। हर पल पदार्थ का स्वरूप बदलता रहता है। यह बात आज का विज्ञान भी मानता है। हमारे शरीर की भी हर कोशिका हर क्षण बदल रही है। नयी कोशिका बनती रहती है। यही स्थिति हमारे मन और विचारों की भी होती है। हर पल नये विचार जन्म लेते हैं और पुराने तिरोहित होते रहते हैं। उन विचारों का प्रभाव प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से हम पर पड़ता रहता है। उनमें अच्छे भी होते हैं और बुरे भी। लेकिन हम उनके प्रभाव को समझ नहीं पाते। ब्रम्हाण्ड में जो भी हो रहा है उसका प्रभाव हमारे शरीर, मन और विचारों पर पड़ता है। क्योंकि ब्रम्हाण्ड का लघु रूप मानव तन है। जिस प्रकार शास्त्रों के अनुसार ब्रम्हाण्ड का मेरू शिवलिंग है उसी प्रकार मानव तन का मेरु रज्जू यानि स्पाईन कॉड है। जैसे ब्रम्हाण्ड तीन भागों में विभक्त है उसी प्रकार मानव मस्तिष्क भी है। जिस प्रकार ब्रम्हाण्ड को समझना आसान नहीं है उसी प्रकार मानव मस्तिष्क को भी समझना आसान नहीं है।

जो तीन मुख्य भाग हैं वह है मुख्य मस्तिष्क, लघु मस्तिष्क और अधोलघु मस्तिष्क। इन तीनों में अधोलघु मस्तिष्क (मेडुला आब्लोगटा) अति रहस्यमय है। किसी अज्ञात पदार्थ के अन्दर सूक्ष्मतम् ज्ञान तन्तुओं जो एक हजार बार छल्लों के रूप में घूमा है उसी को कुण्डलिनी योग में सहस्त्रार कहते हैं। सोलह कला युक्त चन्द्रमा यही है जिसका वर्णन किया जा चुका है।

जैसाकि ज्ञात होना चाहिए मस्तिष्क के बाद अगर किसी का विशेष महत्व है वह है मेरुदण्ड। मेरुदण्ड इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि हमारे चक्रों से सम्बन्धित है और उन रहस्यमय तन्तुओं से भी जिनका सम्बन्ध शरीर से लेकर ब्रम्हाण्डीय चेतना से जुड़ा है। हम परोक्ष अथवा अपरोक्ष रूप से ब्रम्हाण्डीय चेतना से जुड़े रहते हैं। इसलिए योग में कहा गया है विचार को शुद्ध रखें और दूसरों के प्रति समभाव रखें। क्योंकि हम जो भी सोचते हैं

स्वयं के बारे में या दूसरों के बारे में तब ब्रम्हाण्डीय ऊर्जा सक्रिय हो जाती है। यह परम सत्य है हम जो भी सार्वभौमिक सत्ता यानि ब्रम्हाण्डीय ऊर्जा से मांगते हैं वह मिलता अवश्य है। क्योंकि हमारे एक संकल्प से उनमें हलचल मच जाती है और उसका प्रभाव हमारे मन-मस्तिष्क और शरीर पर पड़ने लगता है। उसे हम समझ नहीं पाते जैसे कोई व्यक्ति कहता रहता है वह बीमार है हर समय बोलता रहता है यह ठीक नहीं। वह कभी स्वस्थ नहीं हो सकता क्योंकि वह बीमारी को हर समय सोचता रहता है। दोहराता रहता है। बहुत सारे लोग हैं धन होते हुए भी लोभ के कारण पैसों का अभाव प्रदर्शित करते रहते हैं। उनके पास सब होते हुए भी जीवन अभाव में बीतेगा। कभी-कभी हम किसी वस्तु या कुछ भी सोचते हैं काश मेरे पास भी होती वह वस्तु। कभी न कभी एक दिन आपको अवश्य मिलेगी सहसा। आपको विश्वास नहीं होगा।

कहने की आवश्यकता नहीं हम जो भी मांगेगे या चाहेंगे एक न एक दिन अवश्य मिलेगा। क्योंकि आपके विचार ब्रम्हाण्ड में हलचल मचा देते हैं। आप जो विचार करेंगे, संकल्प करेंगे चाहे वह दुख हो, चाहे सुख हो या स्वास्थ्य हो वह सब मिलेगा। कहने की आवश्यकता नहीं कि हमारे विचार जैसे होंगे हम वैसा ही होते चले जाएंगे। क्योंकि सार्वभौमिक सत्ता अपने पास कुछ भी नहीं रखती। आप जो मांगेगे वह वैसा ही देगी। इसलिए विचारों को सन्तुलित करें जो संकल्प करें वह शुद्ध हो। साधना में अपने ऊपर विश्वास कर आगे बढ़े। जैसे-जैसे आप आगे बढ़ेंगे सार्वभौमिक सत्ता आपके साथ होगी।

अब आगे विचार करते हैं जिस प्रकार हमारा मस्तिष्क रहस्यमय है उसी प्रकार हमारा मेरुदण्ड भी रहस्यमय है। जिसके साथ तीन महत्वपूर्ण नाड़ियां जुड़ी हैं इड़ा, पिगला और सुषुम्ना। इड़ा-पिगला मुख्य और लघु मस्तिष्क के केन्द्रों से मिली हुई है। लेकिन सुषुम्ना अधोलघु मस्तिष्क सूक्ष्मतम् ज्ञान तन्तुओं के समूह के एक सिरे से जुड़ी हुई है। उसका दूसरा सिरा ब्रम्हरंध्र से जुड़ा है। जैसाकि प्रसंगवश बतलाया जा चुका है योग-तंत्र में जिन षट्चक्रों का उल्लेख है वे मेरुदण्ड पर ही स्थित है। मेरुदण्ड के ऊपरी सिरे पर यानि अधो लघु मस्तिष्क है और ठीक नीचे भाग में एक अत्यन्त सूक्ष्म नाड़ी तन्तु है सर्पिणी की तरह गोलाकार रूप में स्थित है।

जिसके पास से इड़ा-पिगला और सुषुम्ना नाड़ियां मेरुदण्ड के भीतर से होती हुई ऊपर की ओर गयी है और उसके दूसरे सिरे से एक और महत्वपूर्ण नाड़ी है जिसे योग में गुह्यनी नाड़ी कहते हैं। जो नाभि और हृदय केन्द्र को स्पर्श करती हुई भ्रूमध्य स्थित आज्ञा चक्र से जुड़ गयी है। इसी प्रकार एक अन्य नाड़ी भी है मुख्य मस्तिष्क केन्द्र से होती हुई आज्ञा चक्र में गुह्यनी नाड़ी से जुड़ गयी है। इन दोनों नाड़ियों का जहां मिलन क्षेत्र है उसे विज्ञान पिनियल ग्रेण्ड कहता है। जहां तक चेतन मन का सवाल अथवा उसका कार्यक्षेत्र है मतिष्क ही है। लेकिन अवचेतन मन का अस्तित्व है वह है मेरुदण्ड के नीचे निचले भाग में स्थित उस रहस्यमय नाड़ी तन्तु से है। उसी तन्तु में अवचेतन मन की असीम और आलौकिक शक्तियां सुप्तावस्था में विद्यमान हैं जिसे परामनोविज्ञान परामानसिक चेतना कहता है और जिसे योग और तंत्र, कुण्डलिनी शक्ति कहता है और पराशक्ति भी कहता है। योग-तंत्र की सम्पूर्ण साधना इसी केन्द्र के आस-पास है।

कहने की आवश्यकता नहीं चक्रों को जागृत करना अथवा साधना में सुषुम्ना नाड़ी का विशेष महत्व है। इसे रहस्यमयी नाड़ी बतलाया गया है। यह अन्दर से शून्य है। जहां शून्य है वहीं शक्ति है। इसलिए इसे अव्यक्त शक्तिवाहिका भी कहते हैं।

सुषुम्ना का महत्व इसलिए है कि यह मस्तिष्क स्थित सहस्रार को मूलाधार से जोड़ती है और कुण्डलिनी के जाग्रत अथवा चैतन्य होने के लिए इसी नाड़ी मार्ग का महत्व है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत होकर, चैतन्य होकर, ऊर्जामय होकर इसी सुषुम्ना मार्ग के द्वारा सहस्रार तक पहुंचती है अथवा प्रवेश करती है। जिसे योग में महामिलन और शिवत्व समझा जाता है। तंत्र का यही अद्वैत सिद्धि लाभ है।

यही नाड़ी षट्चक्रों के भेदन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। जिसके कारण साधक चरणबद्ध तरीके से साधना में अग्रसर व विकास करता चला जाता है। सुषुम्ना से जुड़ी एक और नाड़ी है जिसे योग में चित्रिणी नाड़ी कहते हैं। यह नाड़ी ज्ञानवाहिनी नाड़ी है। यह कुण्डलिनी से निकल कर लघु मस्तिष्क के केन्द्र से मिल कर आज्ञा चक्र में स्थित गुह्यनी नाड़ी से

मिलती है। चित्रणी नाड़ी एक ऐसी महत्वपूर्ण नाड़ी है जो अवचेतन मन को चेतन मन से जोड़ती है। कभी-कभी इसी मार्ग से अवचेतन मन, चेतन मन की सीमा लांघकर प्रगट हो जाता है। ऐसे-ऐसे चमत्कार कर देता है जिससे लोग हतप्रभ हो जाते हैं। सहसा विश्वास नहीं होता। इसके अलावा इसी नाड़ी तन्तु से मानव मस्तिष्क में ज्ञानशक्ति भी प्राप्त होती है। जिसका प्रादुर्भाव कुण्डलिनी चक्रों में होता है।

हम विश्व ब्रम्हाण्ड के जिस भाग में रहते हैं धर्मग्रन्थों में उसे वैश्वानर जगत कहते हैं। उसके आस-पास अनेक लोक-लोकान्तर है। मानवी विचारों के अदृश्य तरंगों के अलावा इन ब्रम्हाण्ड की भी तरंगे बराबर तैरती रहती हैं। जो हमारे मस्तिष्क से बराबर टकराती रहती है। जिन्हे हमारा अवचेतन मन बराबर ग्रहण करता रहता है। वह माध्यम एकमात्र सुषुम्ना नाड़ी है।

सर्वप्रथम वे अदृश्य तरंगे ब्रम्हरंध्र मार्ग से होकर अधो लघु मस्तिष्क स्थित ज्ञान तन्तु में प्रवेश करती है। वहीं से सुषुम्ना मार्ग के द्वारा अवचेतन मन में प्रवेश करती है। यही नहीं वे तरंगे पुनः विचारों में परिवर्तित होकर चेतन मन के द्वारा प्रगट होना चाहती हैं। लेकिन अवचेतन मन इसके लिए बाधक बन जाता है। यह प्राकृतिक रूप से ठीक है। वैज्ञानिकों का कहना है कि इन तरंगों का सतत प्रभाव विचार रूप से मानव मस्तिष्क को शून्य भी कर सकता है। इसका परिणाम यह होता है कि मानव चरम विकास कर लेता है या फिर समाप्त हो जाता है। एक प्रकार से इन तरंगों और विचारों का हमारा अवचेतन मन अवरोधक होता है। लेकिन अवचेतन मन की अपार शक्ति से हम अनजान हैं। साधना के मूल में अवचेतन मन में प्रवेश करना और उसके विराट शक्तियों को जानना भी है। योग साधना के इस सिद्धान्त को अब वैज्ञानिक भी स्वीकार करने लगे हैं। अवचेतन मन भले ही अवरोधक हो। लेकिन कभीकदा अपनी सीमा तोड़ कर अच्छे-बुरे बाह्य विचार चेतन मन के द्वारा प्रगट कर ही देता है। ऐसे रहस्यमय ज्ञान विचार प्रगट होते हैं जिन्हे योग अन्तर्ज्ञान कहता है।

अन्तर्ज्ञान का तात्पर्य है बिना इन्द्रियों की सहायता के जो ज्ञान प्राप्त हो वह अन्तर्ज्ञान है। जहां तक प्रकृति का साम्राज्य है वहां तक मानवी प्रज्ञा काम करती है। प्रकृति और मानवी प्रज्ञा से भी जो परे है वही सत्य है और

उस सत्य की उपलब्धि अन्तर्ज्ञान से ही सम्भव है। महान वैज्ञानिक आईंस्टीन का कहना था जब भी हम जीवन और ब्रम्हाण्ड के रहस्यों को जानने का प्रयास करते हैं तो हमारा मन भय और शंका से एकबारगी घिर जाता है। परन्तु हमें किसी भी जिज्ञासा को कुंठित नहीं होना देना चाहिए।

अगर हमें किसी अज्ञेय या विचार का थोड़ा भी ज्ञान है तो बहुत है। मैं मानता हूं कि वैज्ञानिक प्रगति केवल अन्तर्ज्ञान से ही सम्भव है।

परम सत्य की खोज वैज्ञानिक विधियों से ही सम्भव है। जो ज्ञान-विज्ञान के लिये आवश्यक है। फिर भी ज्ञान हमारा वहीं तक साथ देता है या दे सकता जहां तक वह जानता है और सिद्ध कर सकता है। परन्तु एक स्थिति ऐसी भी आती है जहां मस्तिष्क बोध की चरम अवस्था पर पहुंच जाता है। इस स्थिति को अन्तर्ज्ञान या कुछ भी कह सकते हैं। आज विज्ञान के बड़े-बड़े आविष्कार या अध्यात्म का परम ज्ञान अथवा मानव प्रज्ञा की चरम अवस्था इसी रहस्यमयी अनुभूति द्वारा ही सम्भव हुई है। सत्य की खोज साधक भी करता है और विज्ञान भी। मगर दोनों का मार्ग भिन्न है। जिस परम सत्य की खोज में विज्ञान लगा है वह यथार्थता नहीं है। जो हमें अपने नेत्रों से दिखलायी देती है। बल्कि वह यथार्थता है जो यथार्थ में निहित है। यदि बोधक्षमता स्वच्छ और निर्मल रखी जाये तो हमें सब कुछ वैसा ही दिखलायी देगा जैसाकि वह है अनन्त, अमित और अपार।

जब तक ऐसा नहीं होता सत्याभास, यथार्थता और नित्य-अनित्य एक जैसे प्रतीत होते रहेंगे। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि जो सूत्र ब्रम्हाण्डीय ऊर्जा से मानव पिण्ड को जोड़ता है और जिस माध्यम से विश्व ब्रम्हाण्ड में व्याप्त समष्टि रूपा परम चेतना का सम्बन्ध मानव तन में स्थित व्यष्टि रूपा पराचेतना से जुड़ता है वह सूत्र और वह माध्यम एकमात्र सुषुम्ना नाड़ी ही है।

वैसे ही कुण्डलिनी साधना के चार क्रम हैं। पहला कुण्डलिनी शक्ति का जागरण, दूसरा शक्ति का उत्थान, तीसरा षट्चक्र भेदन, चौथा है सहस्रार में स्थित शिव-शक्ति यानि शिवतत्व से सामरस्य भाव स्थापित करना होता है। इन चारों क्रम में कुण्डलिनी शक्ति का एकमात्र सूत्र या माध्यम है सुषुम्ना नाड़ी। कहने का तात्पर्य यह है कि अवचेतन मन की

असीम आलौकिक शक्ति यानि परामानसिक चेतना के रहस्य को जानने के लिए तंत्र की एकमात्र कुण्डलिनी साधना से ही सम्भव है। सभी साधना के मूल में कुण्डलिनी शक्ति ही है।

शरीर और स्नायु मण्डल

योग-तंत्र साधना में शरीर विषयक ज्ञान आवश्यक माना गया है। इसका महत्व प्राचीन काल से रहा। प्राचीन भारतीय विद्वानों को शरीर रचना शास्त्र का ज्ञान बहुत था। उनके संकेताक्षरों को हम न समझे यह अलग बात है। भौतिक शरीर को योग में अन्नमय कोश कहा गया है। जिसका साधना में काफी महत्व था। साधना का प्रथम स्थल अन्नमय कोश है। प्राचीन काल में ऋषियों को शरीर की रचना तथा उसके विभिन्न भागों का पूर्ण ज्ञान था। जिसे वह अपने शिष्यों को प्रदान करते थे। योग साधना सम्बन्धित प्रायः सभी ग्रन्थों में शरीर विज्ञान के विषय में मिलता है। उनमें नाड़ी, चक्र, प्राण, मस्तिष्क आदि का विशिष्ट प्रकार का विवेचन प्राप्त होता है।

शिव संहिता में मस्तिष्क, सुषुम्ना, केन्द्रीय स्नायु मण्डल व अनेक गुच्छों का विवेचन मिलता है। योग स्वरोदय में नौ चक्रों का विवेचन मिलता है। वामकेश्वर तंत्र और रूद्रयामल तंत्र में षट्चक्रों के बारे में बतलाया गया। जो अत्यधिक प्रमाणित माना जाता है। तंत्र में चेतना का स्थान मस्तिष्क को माना है। प्रमस्तिष्क मेरुतंत्र (सेरेब्रो स्पाइनल सिस्टम) के द्वारा समस्त चेतना का विवेचन किया है। ब्रम्हरंध्र को जीव का स्थान बतलाया है।

मेरुदण्ड में सुषुम्ना, ब्रम्ह नाड़ी तथा मनोवहा नाड़ियां हैं। स्व संचालित स्नायुमण्डल के अन्तर्गत ऐसे बहुत से नाड़ी गुच्छों के केन्द्र तथा जालिकाएं हैं जिन्हे चक्र और पद्म के नाम से सम्बोधित किया गया है। जहां शिरायें और धमनियां समस्त शरीर में व्याप्त हो जाती हैं। उनका सूक्ष्म अध्ययन व विवेचन प्राप्त होता है। नाड़ी तन्तु केवल एक ही प्रकार की नहीं होती। बल्कि उनका विभाजन अनेक सूक्ष्म और स्थूल नाड़ियों में होता है। कुछ नाड़ियां तो इन्द्रियों के द्वारा देखी जा सकती है। परन्तु कुछ ऐसी भी है जिनका ज्ञान इन्द्रियों द्वारा भी प्राप्त नहीं होता। समस्त स्थूल

शरीर में इन नाड़ियों का वृहद जाल बिछा हुआ है। शरीर के सूक्ष्म से भी सूक्ष्म स्थान नाड़ियां तन्तुओं से रहित नहीं है।

कहने की आवश्यकता नहीं शरीर की सम्पूर्ण क्रियाएं-प्रतिक्रियाएं इन नाड़ियों के द्वारा ही सम्भव है। इन्ही नाड़ियों के द्वारा ही सम्पूर्ण शरीर के विभिन्न अंगों में पारस्परिक सम्बन्ध बना रहता है। विभिन्न योग-उपनिषद तथा तंत्र ग्रन्थों में छोटी-बड़ी नाड़ियों का वर्णन मिलता है। जैसे शिव संहिता में तीन लाख पचास हजार नाड़ियों का वर्णन मिलता है।

शिव संहिता में चौदह प्रमुख नाड़ियां के बारे में बतलाया गया है। इन्ही से अन्य नाड़ियों का सम्बन्ध होने का वर्णन है। इन चौदह नाड़ियों में इड़ा-पिगला, सुषुम्ना तीन मुख्य हैं। जिसका विस्तृत वर्णन योग-तंत्र, उपनिषद में मिलता है। इन तीनों में सुषुम्ना नाड़ी का स्थान प्रमुख माना गया है। अन्य नाड़ियां उसके अधीन मानी गयी हैं।

शाण्डिल्योपनिषद में सुषुम्ना को तो विश्वधारिणी तथा मोक्ष का कारक माना है। हृदय की एक सौ एक नाड़ियों के मध्य परा नाम की नाड़ी है। जिसे ब्रम्ह रूप माना गया है। इस परा में ही ब्रम्ह रूप सुषुम्ना में लीन है। गुदा के पृष्ठ भाग में स्थित मेरुदण्ड जो सम्पूर्ण शरीर को धारण किये है जिसे मेरुप्रभा भी कहते हैं। इस मेरुदण्ड में ब्रम्ह नाड़ी स्थित है। जो इड़ा-पिगला के मध्य में स्थित है। लेकिन सुषुम्ना सभी नाड़ियां से सम्बन्ध रखती है।

रूद्रयामल तंत्र में मूलाधार से ही सभी नाड़ियों की उत्पत्ति बतलायी गयी है। चौदह प्रमुख नाड़ियां मूलाधार से निकलती हैं। इन चौदह नाड़ियों में से सुषुम्ना मूलाधार चक्र (त्रिकोण) के ऊपरी शिखर से निकल कर ब्रम्हरंध्र में चली गयी है।

अलम्बुषा नाड़ी गुदा भाग तक चली जाती है। कुहू नाड़ी लिंग भाग, वरूणा दांतो-मसूड़ों तक, यशस्विनी पैर के अग्र भाग तक, पिगला दाहिनी नासिका, इड़ा बायीं नासिका, पूषा तथा शविनी कानों तक, सरस्वती जिव्हा तक, विश्वोदश पेट तक पहुंचती है। इस प्रकार से समस्त शरीर में नाड़ियों का जाल फैला है। शरीर में स्थित चेतना सुषुम्ना से ही सम्पूर्ण नाड़ियों में प्रवाहित होती है। कहने का तात्पर्य यह है कि समस्त

शरीर में ऊर्जा यानि चेतना समस्त नाड़ी तन्तुओं में व्याप्त है। प्राचीन काल में ऋषियों ने सर्वप्रथम अन्नमय कोश पर ध्यान केन्द्रित किया क्योंकि समस्त साधना का मूल स्थल अन्नमय कोश यानि भौतिक शरीर है।

कुण्डलिनी साधना में शरीर को आसन माना गया है। शरीर ही समस्त साधना का आधार है। प्राचीन काल से ही शरीर के बाह्य और आन्तरिक रूपों का सूक्ष्म अध्ययन भी किया गया। नाड़ी तन्तुओं और चेतना के प्रवाह का परिणाम और खोज नाड़ी तन्तुओं का ज्ञान समझा जा सकता है।

अगर विचारपूर्वक देखा जाये तो सम्पूर्ण जगत ऊर्जा का विस्तार है और ऊर्जा का सघन हो जाना जीवन है। जो हमें पदार्थ के रूप में दिखलायी पड़ता है। वह भी ऊर्जा ही है। जो हमें जीवन की भांति दिखलायी पड़ता है। जो विचार की भांति अनुभव होता है। जो चेतना की भांति महसूस होता है। वह उसी ऊर्ज़ा और उसी शक्ति का रूपातंरण है।

जगत में और जीवन में जो भी है वह सब एक ही परम ऊर्जा, परम चेतना और एक ही परम शक्ति का अनन्त-अनन्त रूपों में प्रकटन है।

हमारा जीवन कहां से शुरू होता है और कहां जाकर समाप्त होता है यह कहना अत्यन्त कठिन है। हमारा शरीर भी कहां जाकर समाप्त होता यह भी कहना कठिन है। जिस शरीर को हम अपनी सीमा मान लेते हैं। लेकिन देखा जाये तो वह भी सीमा नहीं है। हमारा व्यक्तित्व और हमारा शरीर सम्पूर्ण जगत से, सम्पूर्ण आकाश से और उस आकाश में विद्यमान सम्पूर्ण ग्रह-नक्षत्रों से एक विशेष ऊर्जा के माध्यम से जुड़ा है।

कहां हैं हमारे शरीर का अन्त? कहीं नहीं....। अनन्त और असीम है हमारा शरीर।

सर्वत्र हमारे जीवन का केन्द्र है और हर जगह है विस्तार। लेकिन उन केन्द्रों का, उस विस्तार का हमें बोध और अनुभव तभी होगा जब हम स्वयं जीवन्त ऊर्जा बन जायेंगे और बन जायेंगे स्वयं एक जीवन्त शक्तिपुञ्ज। वह है गहन ध्यान की अवस्था। उस गहन ध्यान में डूब जायेंगे और अनुभव करेंगे स्वयं के ज्योतिरूप का।

आत्मा और सात शरीर

परमात्मा सर्वव्यापक है। परम तत्व है ब्रम्हाण्डीय ऊर्जा उसका सूक्ष्म रूप है। वैसा देखा जाये तो आत्मा और परमात्मा का अपना-अपना भाग है और है रूप। परमात्मा तटस्थ है और आत्मा सक्रिय और भ्रमणशील है। इसलिए आत्मा भ्रमणशील है क्रियाशील नहीं है। यह भी परमात्मा की तरह अपने आप में तटस्थ है। उसी आत्मा का स्वतंत्र भाग है मन।

जैसे परमात्मा आत्मा का साक्षी है वैसे ही आत्मा मन की साक्षी है। मन क्रियाशील है। उसकी यही क्रियाशीलता के कारण उसमें विकार उत्पन्न होता है। इच्छा, अहंकार, बुद्धि, कामना-वासना, विचार संकल्प, शोक आदि इन तमाम विकारों से युक्त मन और मन में युक्त आत्मा को जीवात्मा की संज्ञा दी गई है।

मन जो कुछ भी करेगा उसमें आत्मा का कोई सहयोग तो नहीं होता। लेकिन उसके कर्म का साक्षी अवश्य बन जाता है। आत्मा जीवभाव को लेकर मन के साथ तटस्थ और साक्षी होते हुए भी बंधी हुई है।

मन का धर्म है तमाम विकारों के साथ सृष्टि करना। मगर बिना किसी माध्यम से सृष्टि सम्भव नहीं है। यही जो आवरण है वह आत्मा का आवरण है। प्रचलित भाषा में इसी को कोश कहते हैं और कहते हैं शरीर।

कोश यानि शरीर सात हैं। सातों शरीर में आत्मा की विभिन्न अवस्था है। आत्मा के वाहक रूप शरीर क्रमशः इस प्रकार हैं- स्थूल शरीर (फिजिकल बॉडी), आकाशीय शरीर (ईथरिक बॉडी), सूक्ष्म शरीर (एस्ट्रल बॉडी), मनः शरीर (मेन्टल बॉडी), आत्म शरीर (स्प्रिच्युल बॉडी), ब्रम्ह शरीर (कास्मिक बॉडी), निर्वाण शरीर (बॉडी लेस)।

सात शरीर का सम्बन्ध सात केन्द्र से भी है जिसे योग और पुराणों में भुवन की संज्ञा दी गयी है। प्रत्येक भुवन का अपना ज्ञान स्तर है।

वैज्ञानिक दृष्टि से देखा जाये या आध्यात्मिक दृष्टि से ब्रम्हाण्ड की उत्पत्ति शून्य से हुई है। तंत्र इसे बिन्दु कहता है। इसी बिन्दु यानि शून्य में असीम और व्यापक शक्ति अव्यक्त रूप से विद्यमान है। तंत्र के अनुसार इसी शून्य के घनीभूत होने पर सृष्टि के प्रागकाल में सूक्ष्म अणु की उत्पत्ति हुई। आठ बिन्दु का अतिसूक्ष्म अणु है। यही आठ बिन्दु, चार पुरुष तत्व

और चार स्त्री तत्व प्रधान है। पुरुष तत्व को श्वेत बिन्दु और स्त्री तत्व को रक्त बिन्दु की संज्ञा दी गई है। यही ब्रम्ह माया है। यही पुरुष-प्रकृति, शिव-शक्ति के नाम से प्रसिद्ध है।

ये दोनों बिन्दु संघर्षशील है। इन बिन्दुओं से निकलने वाली विद्युत चुम्बकीय ऊर्जा का वैज्ञानिक नाम है इलेक्ट्रान और न्यूट्रान। समस्त विश्व ब्रम्हाण्ड में व्याप्त होकर आपस में नित्य संघर्षशील है। जिसके परिणामस्वरूप प्रोटान नामक तीसरे चुम्बकीय ऊर्जा का जन्म होता है। जो एक तरफ शक्ति रूप और दूसरी तरफ तरंग या प्रवाह रूप में है। इन्ही तीनों ऊर्जाओं को तंत्र में आदिशक्ति के रूप में दर्शाया गया है और तरंगों को ब्रम्ह के तीन रूम्प में दर्शाया गया है ब्रम्हा, विष्णु, महेश और तीन शक्तियां मन, प्राण और वाक रूप में प्रगट होती हैं। जिन्हे तंत्र में महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती के रूप में दर्शाया गया है।

योग विज्ञान में सात शरीर, सात आकाश अथवा सात भुवन की चर्चा की गई है। यही सात भुवन आत्मा का निज लोक है और सात शरीर कोश है जिससे क्रमशः आत्मा का क्रम विकास माना गया है। सूक्ष्म रेणुओं के द्वारा प्रथम निर्वाण शरीर की रचना होती है।

प्रथम भुवन और प्रथम शरीर आत्मा का अपना भुवन और अपना निज शरीर है। जिसे दिव्य लोक की संज्ञा दी गयी है यानि उससे सम्बन्धित लोक-लोकान्तर जो दिव्य लोक है अपने संस्कार को लेकर अपने निज शरीर के साथ नीचे उतरती है। यहीं से आत्मा की विश्व यात्रा प्रारम्भ होती है।

दूसरा है ब्रम्ह शरीर (कास्मिक बॉडी)। जिसे आत्मा प्रथम शरीर के साथ स्वीकार करती है।

तीसरा है आत्मिक शरीर (स्प्रिच्यियुल बॉडी) इसे दिव्य शरीर या योग काया कहते हैं। आत्मा का स्वरूप दिव्य और निज रूप होता है। यह सभी विकार से मुक्त रहता है। इन तीनों भुवनों का अस्तित्व प्रकाशमय है। लेकिन इसके चारो तरफ गहन शून्यता है।

चौथा भुवन का वह भाग है जहां आत्मा का एक भाग मन के रूप में प्रगट होता है। आत्मा और मन दोनों मिलकर पिछले कोश यानि शरीर

के साथ मनस शरीर यानि मेन्टल बॉडी में प्रवेश करते हैं। यह वह भुवन और शरीर है जहां आत्मा को जीवात्मा की संज्ञा दी गयी है।

पांचवां भुवन सम्बन्धित लोक में सूक्ष्म शरीर यानि एस्ट्रल बॉडी का निर्माण होता है। इस भुवन में और शरीर में जीवात्मा केवल मन को लेकर प्रवेश करती है। उसके साथ वाले पिछले चार शरीर छूट जाते हैं यानि आत्मा का यहीं से दिव्य भाव समाप्त हो जाता है। आत्मा मन से युक्त होने पर वह जीवभावी हो जाती है। अब तक आत्मा का सृष्टि क्रम था किन्तु इस स्थान पर आत्मा साक्षी हो जाती है और मन हो जाता है सृष्टिकर्ता। सूक्ष्म शरीर मन का प्रथम शरीर समझा जाता है। आत्मा और मन दोनों इसी सूक्ष्म शरीर को लेकर छठे भाव यानि इथरिक बॉडी में प्रवेश करते हैं।

छठा शरीर आकाशीय है। इसी को भाव शरीर और वासना शरीर भी कहते हैं। यहीं से दृश्य जगत की सीमा प्रारम्भ होती है।

सूक्ष्म अणु और अणु के सम्मिश्रण से सातवें भुवन का निर्माण माना गया है। इसका एक भाग सूक्ष्म अणुओं से है और दूसरा भाग अणुओं से है। इसलिए एक भाग को अव्यक्त लोक और दूसरे भाग को व्यक्त लोक कहते हैं। लेकिन दोनों दूध और पानी के समान मिले हुए हैं। सूक्ष्म अणुओं से वासना शरीर और अणुओं से स्थूल शरीर का निर्माण होता है।

स्थूल शरीर में आत्मा बंध जाती है। यही आत्म बन्धन है। कोश और चक्रों की साधना द्वारा आत्मा बन्धनों से मुक्त होकर, ज्ञानमय होकर अपने निज लोक में प्रवेश कर जाती है। आत्मा का पतन होता है अज्ञानता के कारण और उत्थान करती है साधना बल के द्वारा, ज्ञान के द्वारा। पतन ही अज्ञानता है और उत्थान ही ज्ञान है। उपरोक्त प्रकरण से यह स्पष्ट होता है। जिन अणु-परमाणु तत्वों, भुवनों, लोक-लोकान्तर की सृष्टि हुई है उन्ही से सम्बन्धित कोशों यानि शरीरों का भी निर्माण हुआ है। देखा जाये तो भुवनों की सीमा असीम है। प्रत्येक भुवन का अपना लोक है। धार्मिक दृष्टि से उन लोकों का नाम नीचे से क्रमशः इस प्रकार है- भू लोक, भुव लोक, मनः लोक, स्व लोक, जन लोक, तप लोक और सत्य लोक। भू लोक, अणु-परमाणु निर्मित भौतिक लोक है। भू लोक के अन्तर्गत अनेक

लोकान्तर हैं। पृथ्वी जैसे कितने लोकान्तर हैं कहा नहीं जा सकता है।

अणु निर्मित भौतिक शरीर आत्मा का वाहक है भौतिक जगत में। जब तक शरीर है तभी तक मनुष्य का सम्बन्ध भौतिक जगत से बना रहता है।

भाव शरीर (इथरिक बॉडी) को वासना शरीर या प्रेत शरीर भी कहते हैं। स्थूल शरीर के बाद सूक्ष्म शरीर (एस्ट्रल बॉडी) का महत्व है। बीच के शरीर वासना कणों से बने होने के कारण केवल एक सीमा तक ही महत्व रखते हैं। जिन प्राणियों को जीते जी स्थूल शरीर में वासना के प्रति विरक्ति सी हो गई है एक प्रकार से वह पूर्ण आयु भोग लिया है। वे वासना शरीर यानि प्रेत शरीर में कुछ समय तक रह कर सूक्ष्म शरीर में चले जाते हैं। उसमें कुछ काल तक रह कर अपने संस्कार के अनुरूप जन्म ले लेते हैं।

कहने की आवश्यकता नहीं आत्मा के जितने आवरण, रूप एवं शरीर हैं उनमें मनः शरीर का अपना महत्व है। भारतीय साधनायें विशेष कर कुण्डलिनी योग और तंत्र की साधनायें एकमात्र मनः शरीर को लेकर ही साधित होती हैं।

योग-तंत्र की जितनी साधनायें हैं उनका बहुत ज्यादा सम्बन्ध स्थूल शरीर से नहीं होता। वे सूक्ष्म शरीर से शुरू होती है और मनः शरीर को आश्रय बना कर आगे बढ़ जाती है।

वस्तुपरक और आत्मपरक सत्ता

भौतिक शरीर की मर्यादा जहां तक है। वहां तक वस्तुपरक है। वस्तुपरक में प्रमाण और प्रमेह दोनों हैं। उसके बाद जो भी है वह आत्मपरक है। आत्मपरक सत्ता प्रमेह ही प्रमाण है। वस्तुपरक और आत्मपरक सत्ता में यही भिन्नता है। लेकिन मन दोनों अवस्थाओं में अलग-अलग कार्य करता है। वस्तुपरक में मन का प्राकृतिक रूप और आत्मपरक में उसका आन्तर रूप सक्रिय होता है। इसी को चेतन और अवचेतन मन कहते हैं।

मनः शरीर की अपनी सीमा है। लेकिन ज्यादातर मन का अवंचेतन रूप ही काम करता है यही कारण है कि आत्मपरक जगत में हुई किसी भी अनुभूति को वस्तुपरक जगत में व्यक्त करने के लिए चेतन मन की शक्ति

पर्याप्त नहीं होती। अगर विचारपूर्वक देखा जाये तो मनोमय शरीर में मन का जो बाहरी रूप है वह अधिक से अधिक पिछले तीन शरीर में व्यक्त है। उसका जो अल्प अंश है वह मनोमय शरीर में रहता है और वह अपने आन्तर मन को बाहरी जगत में प्रगट करने का बराबर प्रयत्न करता रहता है। योग साधना में और तंत्र साधना की गहरायी में पहुंचने पर मन का वह जो बर्हिरूप आन्तर रूप से सम्बन्धित है शिथिल पड़ जाता है। यही कारण है कि उच्च कोटि के साधक, सांसारिक अनुभवों और पदार्थों से परे हो जाते हैं। उनमें अपने आप संसार-समाज और पदार्थ के प्रति विरक्ति भाव उत्पन्न हो जाता है। वे सदैव आत्म जगत में रहकर आत्मलीन रहते हैं और उनका आन्तर मन आध्यात्मिक और विलक्षण अनुभूतियों को ग्रहण करता रहता है।

मनः शरीर इस विश्व ब्रम्हाण्ड की ऐसी सीमा पर स्थित है जो वस्तुपरक और आत्मपरक सत्ता को अलग करती है। मनः शरीर के एक भाग में आत्मा साक्षी भाव में है दूसरे भाग के अंश में चेतन और अवचेतन मन सक्रिय है। जब आत्मा वस्तुपरक से आत्मपरक सत्ता में प्रवेश करती है तब अवचेतन मन पूर्णरूप से सक्रिय हो जाता है और धीरे-धीरे आत्म उन्नति विकास की ओर बढ़ता है। मगर यह अवश्य समझ लेना चाहिए कि मनः शरीर मानवीय और आत्म विकास की अन्तिम सीमा नहीं है। चेतन मन की पूर्ण उन्नति, पूर्ण विकास वस्तुपरक जगत का विषय है। इसका अन्तिम परिणाम है स्थूल अथवा भौतिक जगत एवं पदार्थों पर विजय और पूर्ण ज्ञान प्राप्त करना। जब इसकी उपलब्धि हो जाती है तब साधक पूर्ण विरक्त और पूर्ण वैराग्य को उपलब्ध होता है।

आत्म शक्ति

मनः शरीर के जिस केन्द्र में आत्मा रहती है वह पूर्ण विकसित होकर आत्म शरीर के रूप में प्रगट हो जाती है। मन की सीमा मनोमय शरीर तक ही समझना चाहिए। उस केन्द्र से आत्मपरक सत्ता प्रारम्भ हो जाती है। योग आत्म शरीर को अध्यात्म शरीर भी कहता है।

अगर विचारपूर्वक देखा जाये तो आत्म शरीर में प्रवेश तभी सम्भव है जब मनः शरीर में कुण्डलिनी चक्र का जागरण होता है।

कुण्डलिनी के जागरण होते ही एक विशेष प्रकार का भावात्मक स्पन्दन का बोध होने लगता है और उस अवस्था में स्थूल शरीर स्थूल जगत में, भाव शरीर भाव जगत में, सूक्ष्म शरीर सूक्ष्म जगत में और मनोमय शरीर मनः जगत में एक साथ दिखलायी पड़ता है। एक शरीर से दूसरे शरीर में क्या अन्तर है। यह भी साफ-साफ आभास होने लगता है। कुण्डलिनी आत्म शक्ति है। उसका जागरण होता है मनः शरीर में मगर उसका विकास और उत्थान होता है आत्म शरीर में। कुण्डलिनी शक्ति को परमात्म शक्ति भी माना गया है। वही आद्या शक्ति भी है। तंत्र में पराशक्ति कहते हैं।

कहने की आवश्यकता नहीं परमात्म शक्ति का एक भाग मूलशक्ति है, आद्या शक्ति है। यही विश्व ब्रम्हाण्ड में परमा शक्ति नाम से जानी जाती है और पिण्ड में पराशक्ति रूप में विद्यमान है। एक महामाया है और दूसरी है माया।

मायारूपी पराशक्ति कुण्डलिनी आत्म शक्ति के चार रूप में है और प्रत्येक रूप क्रम से एक-एक शरीर में प्रकाशित है।

पहला रूप है अन्नमय शक्ति। यह स्थूल शरीर में प्रगट है। अन्नमय शक्ति से शुक्र का निर्माण होता है और उससे रचना होती है स्थूल शरीर की। इसी शक्ति से शरीर की रक्षा, पालन आदि होता है।

दूसरा रूप है भाव, इच्छा, कामना और वासना। यह सब भाव शरीर में प्रगट होता है।

तीसरा रूप है विचार, संकल्प आदि और उसकी शक्तियां सूक्ष्म शरीर में प्रगट होती है।

चौथा रूप है मन की शक्ति जो मनोमय शरीर में प्रगट होती है।

ब्रम्ह शरीर और निर्वाण शरीर आत्मा का अन्तिम छठा और सातवां शरीर है। आत्मा के पूर्ण विकास हो जाने पर ब्रम्ह शरीर की प्राप्ति होती है।

मनः शरीर की अन्तिम उन्नति की चरम सीमाएं मोक्ष की प्रतीति है और जब पांचवें आत्म शरीर की प्राप्ति होती है तो पीछे के चारों शरीर के बन्धन टूट जाते हैं। यही आत्मा की परम मुक्ति है। पांचवे शरीर को उपलब्ध हो जाना है। आनन्द का अतिक्रमण होते ही हम परमात्मा के इतने

निकट हो जाते हैं वह हमें स्वयं अपनी ओर खींच लेता है और स्वयं अपने आपमें लीन कर लेता है। हमें कोई प्रयास नहीं करना पड़ता अपनी ओर से। इसी को कहते हैं निर्वाण, मोक्ष और परमगति।

आत्मा जब अपने मूलस्वरूप को भूलकर भौतिक शरीर में बंध जाती है यहीं आत्मा का पतन है। लेकिन उत्थान के लिए उसी भौतिक शरीर का आश्रय लेना पड़ता है। भौतिक शरीर का अतिक्रमण करने के लिए मूलाधार चक्र की साधना फिर उसी प्रकार पांच शरीर और षट्चक्रों की साधना करते हुए अतिक्रमण करते हुए आत्मा आज्ञा चक्र यानि तीसरा नेत्र तक पहुंच जाती है। यहीं से आत्मा भौतिक जगत से अभौतिक जगत में प्रवेश करती है। आज्ञा चक्र भौतिक और अभौतिक जगत का सन्धि क्षेत्र है। यहीं शिव का त्रिनेत्र है और अनन्त में प्रवेश का करने का मार्ग भी।

◆◆◆

प्रसंग बारह

भौतिक शरीर और मूलाधार चक्र

हमारा शरीर अनेक परतों से बना है। साधना की दृष्टि से इन परतों का सम्यक बोध आवश्यक है और उसके पार भी जाना आवश्यक है। जिससे हमें मुक्त होना होगा। कुण्डलिनी साधना पंचकोशों और षट्चक्र की साधना है। योग-तंत्र की समस्त साधना कुण्डलिनी की साधना है।

कुण्डलिनी साधना में पंचकोशों में पहला कोश अन्नमय कोश है। इसका जो विकास है वह है भौतिक शरीर। देखा जाये तो यह पहली परत है। यह शरीर माता-पिता के द्वारा प्राप्त होता है। यह हमारा नहीं है। यह परत हम नहीं हैं। यह केवल हमारा आधार है। एक माध्यम है संसार और हमें जोड़ने का। यह परत एक लम्बी परम्परा है। हजारों-लाखों शरीरों ने इस शरीर को निर्मित किया। माता-पिता से जो बीजाणु हमें प्राप्त होते हैं उसमें शरीर की सारी सम्भावनाएं छिपी होती हैं। हमारे शरीर की एक लम्बी यात्रा है। जो हमें अपने माता-पिता से मिली और उन्हे उनके माता-पिता से।

यदि हम शरीर के पीछे लौटे तो प्रत्येक व्यक्ति के शरीर और जगत का सारा इतिहास छिपा हुआ है। यह जगत जब पहले दिन बना होगा उस दिन भी हमारे शरीर का भाग उपस्थित रहा होगा। वही विकसित होकर शरीर बना। एक छोटे से बीजकोश में हमारे अस्तित्व की सारी कथा लिपिबद्ध है। वह आपका और हमारा नहीं है। उसकी लम्बी परम्परा है। वह बीजकोश न जाने कितने पेड़ पौधों, न जाने कितने खनिजों और पशु-पक्षियों और मनुष्यों की लम्बी यात्रा करता हुआ आया है। उस परत को अन्नमय कोश कहते हैं। क्योंकि यह अन्न से निर्मित होता है। जो हम भोजन करते हैं उसी से यह शरीर निर्माण होता है। फिर अन्य के लिए माध्यम बन जाते हैं।

हो। बहुत सारे भोजन ऐसे होते हैं जो भीतर प्रवेश करने ही नहीं देते। भोजन ऐसा हो जो अन्तर्यात्रा में बाधक न बने। जिस अन्न से भीतर की झलक मिले वही शुद्ध अन्न है। जिस भोजन से हमारा शरीर निर्मल हो, शुद्ध हो जिसके फलस्वरूप हमें अपने दूसरे परत की झलक मिलनी लग जाये। इसलिए साधना में अन्नमय कोश का काफी महत्व है। क्योंकि पहली परत यानि भौतिक शरीर सम्पूर्ण रूप से अन्न से निर्मित है। इसलिए मूलाधार चक्र की साधना अन्नमय कोश से ही प्रारम्भ होती है। इसलिए भौतिक शरीर का शुद्ध होना आवश्यक है। क्योंकि हमारे व्यक्तित्व के पीछे संस्कार भी होता है उसे भी शुद्ध करना आवश्यक है यानि मनुष्य का जीवन कोश है। जिससे गर्भ निर्धारण होता है।

अन्न का सार तत्व जीव कोश में संग्रहित होता है। विज्ञान का भी यही मानना है। भोजन के रूप में शरीर में जो कुछ भी जाता है वह शरीर को बदल देता है। स्त्री और पुरुष में केवल हार्मोन्स का ही अन्तर है। लेकिन उसका परिणाम पूरे व्यक्तित्व पर पड़ता है और यह हार्मोन्स भी अन्न तत्व से ही निर्मित होता है।

अन्न का प्रभाव केवल शरीर तल तक नहीं पड़ता बल्कि बुद्धि और मन पर भी पड़ता है। इसलिए अन्नमय कोश का अपना महत्व है। यह साधना का पहला चरण है क्योंकि मूलाधार चक्र का आधार अन्नमय कोश है।

व्यक्तित्व

सांख्य योग के अनुसार आत्मा समस्त वासनाओं सहित सूक्ष्म शरीर तथा स्थूल शरीर में मिल कर व्यक्ति कहलाती है। अतः व्यक्ति अथवा व्यक्तित्व केवल स्थूल शरीर तक ही सम्बन्धित नहीं है। बल्कि सूक्ष्म शरीर और आत्मा का भी सम्बन्ध समझना चाहिए। व्यक्तित्व को हम शब्दों में नहीं बांध सकते। व्यक्तित्व शब्द सामान्य रूप से अनेक अर्थों में प्रयुक्त किया जाता है। जैसे मनोविज्ञान ने अन्तर्मुखी और बहिर्मुखी प्रवृत्तियों के ऊपर व्यक्तित्व का विभाजन किया है। क्या मृत्यु के बाद व्यक्ति समाप्त हो जाता है? नहीं.... ऐसा नहीं है। मृत्यु व्यक्तित्व का अन्त नहीं कर पाती है। विश्व में बहुत से ऐसे महान व्यक्ति हुए, महापुरुष हुए जो मृत्यु के बाद

आज भी संसार उनके व्यक्तित्व से प्रभावित है और उनके बतलाये मार्ग का अनुकरण भी कर रहा है।

अगर विचारपूर्वक देखा जाये तो जन्म और मृत्यु केवल पड़ाव है शरीर का। हमारा जीवन हमारे कर्मों से बंधा है जिसे प्रारब्ध कह सकते हैं और उस प्रारब्ध के कारण हमारे संस्कार के बीज पड़ते हैं। उस संस्कार से हमारे व्यक्तित्व का निर्माण होता है। सांख्य दर्शन के अनुसार हमारा व्यक्तित्व अनन्त काल से चला आ रहा है। उसमें हमारे कर्म के अनुसार परिवर्तन होता रहता है। उन कर्मों के द्वारा हमारे चित्त के संस्कार अंकित होते हैं। कुछ तो संस्कार रूप में पड़े रहते हैं और कुछ कर्म मृत्यु के बाद भी नहीं छोड़ते हैं। कर्म प्रारब्ध के रूप में या कर्मों के अनुसार आत्मा नया शरीर धारण करती है।

इस प्रकार प्रारब्ध के अनुसार मनुष्य जन्म लेता है उन कर्मों को प्रारब्ध रूप में भोगने के लिए। उसी के अनुसार शरीर को भी ग्रहण करता है। इस प्रकार से उसके व्यक्तित्व में परिवर्तन पूर्व जन्मों से ही निर्धारित हो जाता है यानि मनुष्य पूर्व जन्म के कर्मों को भोगने के लिए अपने संस्कार के अनुसार माता-पिता के संयोग से जन्म लेता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि पूर्व जन्म के संस्कार के अनुसार ही माता-पिता, शरीर, जन्म स्थान आदि प्राप्त होते हैं। इस प्रकार से धर्म-अधर्म, कर्म के द्वारा जाति, धर्म, आयु तथा भोग प्राप्त होता है। वर्तमान जन्म में अनेक प्रकार से कर्म भी वह स्वतंत्र रूप से करता है। वर्तमान कर्म और पूर्व जन्म के कर्म प्रारब्ध मिल कर वर्तमान जन्म में फल प्रदान करते हैं। यही उसके दुख-सुख का कारण बनता है। लेकिन मनुष्य चाहे तो अपने व्यक्तित्व को इच्छा शक्ति से परिवर्तन कर सकता है यानि व्यक्ति अपने पुरुषार्थ से अपने व्यक्तित्व का विकास कर सकता है।

योग कहता है कि विकास की चरम अवस्था कैवल्य अवस्था है। भगवद् गीता में दो प्रकार के व्यक्तित्व का वर्णन मिलता है- आसुरी सम्पदा वाले व्यक्ति और दैवी सम्पदा वाले व्यक्ति।

दैवी सम्पदा वाले व्यक्ति का अन्तःकरण शुद्ध होता है। वे भयरहित सात्विक प्रकृति वाले होते हैं। सत्यभाषी, क्रोध और अभिमान से रहित,

क्षमाशील सबको अपना समझते हैं और दयालु होते हैं। वहीं आसुरी सम्पदा वाले यानि आसुरी प्रकृति वाले व्यक्ति को उचित-अनुचित का विवेक नहीं होता। ऐसे लोगों के पास कर्तव्य और अकर्तव्य को जानने की शक्ति भी नहीं होती। ईश्वर व पवित्रता धर्म के प्रति उत्साह नहीं होता। ऐसे लोगों से समाज और संसार का विनाश ही होता है। उनकी जो भी क्रिया-प्रतिक्रिया होती है अपने इन्द्रियों को संतुष्ट करने में ही लगी रहती है। ऐसे लोग इन्द्रिय सुख को ही सब कुछ समझते हैं। वे सदैव दुखी, व्यथित, चिन्तित रहते हैं। झूठे अभिमान तथा शक्ति आदि के भ्रम में पड़कर अनुचित मार्ग अपनाते रहते हैं। गीता में आगे कहा है मनुष्य का स्वभाव तीन तत्वों पर केन्द्रित है वह है सत्व, रज और तम। उसी के द्वारा मनुष्य के स्वभाव, गुण और व्यक्तित्व को जाना जा सकता है। कहने की आवश्यकता नहीं मनुष्य स्वयं अपने गुण और व्यक्तित्व को समझे और उसका गुण स्वभाव किस तत्व से मिलता है उसके आधार पर अपने विवेक और इच्छा शक्ति से उसे बदले तभी भौतिक शरीर शुद्ध होगा। क्योंकि केवल शुद्ध अन्न खाकर कुछ हद तक अपने को बदला जा सकता है। लेकिन आन्तर गुण-अवगुण को आन्तर शक्ति से ही शुद्ध किया जा सकता है।

सात्विक स्वभाव वाले व्यक्ति

सात्विक स्वभाव वाले व्यक्ति आस्थावान, ईश्वर भक्त, निरपेक्ष भाव, शान्त और बुद्धिवाले होते हैं एवं इन्हे सात्विक भोजन ही प्रिय होता है। ऐसे लोग धार्मिक स्वभाव, अपने कर्तव्य के प्रति जागरूक होते हैं। कोई भी कर्म सोच समझ कर करते हैं। उसका परिणाम भलीभांति सोच लेते हैं। अपना कर्म और उसका फल ईश्वर पर छोड़ देते हैं। उन्हे बन्धन और मुक्ति का भेद ज्ञान होता है। ऐसे लोग सदैव ईश्वर के प्रति श्रद्धा रखते हैं और ज्ञान और मुक्तावस्था की ओर निरन्तर अग्रसर होते रहते हैं। ऐसे लोग संसार के प्रति निरपेक्ष, कर्म के प्रति तटस्थ और परिणाम के प्रति साक्षी भाव रखते हुए दुख-सुख में समान भाव रखते हैं और ज्ञान तथा मुक्ति का मार्ग तलाशते रहते हैं। साधना पथ के लिए सात्विक गुण ही सर्वोपरि माना गया है। अन्नमय कोश को शुद्ध और पारदर्शक बनाने के लिए सात्विक गुण को परिष्कृत करना चाहिए।

राजसिक स्वभाव वाले व्यक्ति

राजसिक स्वभाव वाले लोगों का स्वभाव पाखण्ड पूर्ण होता है। उनका कर्म तत्काल फल की इच्छा वाला होता है। वे अपनी सफलता-असफलता से प्रसन्न और दुखी होते रहते हैं। उनकी पूजा-पाठ, दर्शन, यज्ञ आदि केवल मान-प्रतिष्ठा आदि के लिए होता है। सिर्फ सांसारिक कार्यों को सिद्ध करने और अपने पाप को कम करने के लिए दान-पूजा आदि करते हैं। राजसिक स्वभाव वाले व्यक्ति केवल तीष्ण भोजन पसंद करते हैं। ये व्यवहार और भाषा से दूसरों को कष्ट देने वाले होते हैं। उग्र देवी-देवताओं का पूजन इन्हे प्रिय होता है ताकि उन्हे तत्काल फल मिल जाये।

तामसिक स्वभाव वाले व्यक्ति

तामसिक स्वभाव वाले धर्म-कर्म और वास्तविक पूजा-आराधना से अनभिज्ञ सा रहते हैं या उनकी रूचि नहीं होती। उन्हे तामसिक पूजा-पाठ आत्माओं का पूजन प्रिय होता है। रात्रि में जगना, स्वयं अशान्त रहना और अपने लोगों को भी अशान्त करना। उन्हे तामसिक खानपान प्रिय होता है। अशुद्ध रहना शरीर से, मन से और वचन से। दूसरों को कष्ट देकर प्रसन्न होना आदि। अज्ञान और भ्रम में अपना कर्तव्य भूले रहना। ऐसे लोग घमण्डी, विचारहीन, दुष्ट प्रकृति वाले, मन, बुद्धि के विपरीत कार्य करते हैं। इनकी धारणा हर विषय से विपरीत होती है। ऐसे लोग दुष्ट प्रकृति के होते हैं।

आयु, बुद्धि और आरोग्य आदि बढ़ाने वाला आहार सात्विक पुरुष को प्रिय होते हैं। कड़वे, खट्टे, मशालेदार गर्म अति तीक्ष्ण दाह कारक दुख चिन्ता और रोगों को उत्पन्न करने वाला आहार राजस व्यक्ति को प्रिय होते हैं। बासी, उच्छुष्ट, तामसिक, अपवित्र आदि तामसिक लोगों को प्रिय होते हैं। त्रिगुण के आधार पर भोजन का विभाजन साधक के लिए बड़ा ही उपयोगी होता है। उससे साधक को अपनी परीक्षा करने एवं अपने को कसौटी पर परखने की सुविधा होती है।

कैसा भोजन आपको प्रिय है क्योंकि जो आपको प्रिय है वह अकारण प्रिय नहीं होगा। क्योंकि वह आपके अन्तःकरण की सूचना देता

है। आप कौन हैं और आपका व्यक्तित्व और रस कैसा है? उससे आपके भीतर के चेतना की सूचना मिलती है। राजसी व्यक्ति जीवन में उत्तेजना खोजता है तामसिक व्यक्ति ऐसा भोजन खोजता है जिससे नींद आये, आलस्य में पड़ा रहे। गरिष्ठ और ठण्डा भोजन और जिस भोजन से उत्तेजना पैदा न हो केवल बोझ पैदा हो शरीर में और सोता रहे यानि तन्द्रा की सुविधा के लिए गरिष्ठ तामसिक भोजन बहुत उपयोगी है।

शरीर का अपना विज्ञान है। उसकी बुनियादी आवश्यकतायें हैं। पहले वह पूरी हो जाये। फिर आगे सोचता है।

कहने की आवश्यकता नहीं कि मानव व्यक्तित्व के तीन तल हैं शरीर, मन और आत्मा। शरीर सबसे पहले है जिसके बिना न मन हो सकता और न ही आत्मा टिक सकती है। शरीर आधार है, शरीर मूल है, शरीर गहरी जड़ है। उसके बिना न मन का कोई अस्तित्व है और न ही आत्मा का। जब शरीर तल पर सब बिखरा है तब आगे का विचार ही नहीं किया जा सकता है। देखा जाये तो बुद्धि के बिना भी जीवन जिया जा सकता है। लाखों-करोड़ों जीव बिना बुद्धि के जी रहे हैं। बुद्धि उनके लिये है जिन्हे कुछ करना है। जड़ से चेतन बनना है। जब शरीर की आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाये और ऊर्जा बच जाये तब वह बुद्धि को मिलती है और जब बुद्धि से ऊर्जा बचे तो वह चेतना को मिलती है।

तामसिक भोजन से मस्तिष्क को ऊर्जा नहीं मिल पाती। इसलिए तामसिक भोजन करने वाला व्यक्ति शरीर तल पर जीता है। शरीर ही उसके लिए सब कुछ है। उसके पास नाममात्र की बुद्धि होती है। बस अपने भोजन की व्यवस्था कर लें। उसे आत्मा-परमात्मा से कोई मतलब ही नहीं होता। उसके लिए कैसी आत्मा और कैसा परमात्मा। तामसिक व्यक्ति के लिए शरीर ही सब कुछ होता है। जीवन भर शरीर को महत्व देता रहता है। उसका सारा जीवन शरीर के तल का जीवन है।

राजसिक व्यक्ति के लिए मन ही सब कुछ होता है। उसका सारा जीवन मन के तल का जीवन है उसे आत्म और शरीर से कोई मतलब नहीं होता है। वह धन, ऐश्वर्य, मान, अभिमान और पैसों के लिए भूखा रहता है। उसके लिए यही सब महत्वपूर्ण है।

सात्विक व्यक्ति इन दोनों से भिन्न होता है। वह तन-मन से सन्तुलित होता है। वह आत्मा को महत्व देता है। उसका जीवन आत्म तल का जीवन होता है। क्योंकि वह प्रकृति के अनुसार जीता है। वह तन-मन से स्वस्थ्य होता है। जिसके कारण उसकी आयु भी लम्बी होती है।

तामसिक अन्न आलस्य बढ़ाता है। राजसिक अन्न क्रोध बढ़ाता है और सात्विक अन्न, प्रेम, स्नेह बढ़ाता है।

शरीर अन्न से बना है। इसलिए बहुत कुछ अन्न पर निर्भर है। सन्त, संन्यासी, योगी सात्विक अन्न ग्रहण करते हैं। इसलिए उनके पास या उनके सान्निध्य में प्रेम, करूणा और स्नेह ही मिलेगा। उनके पास से उठने का मन नहीं करेगा। सात्विक व्यक्ति प्रकृति के अनुकूल चलता है। साधारण से साधारण अन्न भी उसे परम स्वाद देता है। क्योंकि वह प्रकृति के निकट होता है। जहां प्रकृति है वहां परमेश्वर है। इसलिए उसकी सम्वेदना खुल जाती है। उसकी सारी इन्द्रियां संवेदनशील हो जाती हैं। प्रकृति उसे सुन्दर लगती है। वायु उसे अधिक शीतलता देती है। साधारण और कुरूप लोग भी उसे सुन्दर लगते हैं। सारा जगत उसे सुन्दर लगता है। क्योंकि वह अन्दर से पवित्र और सुन्दर होता है।

देखा जाये तो प्रकृति त्रिगुणात्मक है। लेकिन योग कहता है आत्मा इन तीनों गुणों के परे है। आत्मा का बन्धन अज्ञान के कारण है। इसी अज्ञानता के कारण आत्मा अपने को शरीर, मन और इन्द्रिय समझ लेती है। जिसके कारण मानव को दुख प्राप्त होता है। दुख-मोह आदि इन्ही तत्वों के कारण होता है। सत्व के कारण शान्ति, राजस के कारण दुख, तमस के कारण मोह होता है। जब योगी को यह ज्ञान हो जाता है कि त्रिगुणात्मक प्रकृति के कारण वह स्वयं के गुणों से परे है तब वह त्रिगुणातीत को उपलब्ध हो जाता है।

त्रिगुणातीत अवस्था

कृष्ण कहते हैं जो योगी त्रिगुणातीत अवस्था को उपलब्ध होता है वह स्वयं मुझे पा लेता है। जिस प्रकार मैं सारे बन्धनों में होते हुए भी बन्धन मुक्त हूं उसी प्रकार योगी संसार में राग-रहित जीवन के समस्त परिवर्तनों के मध्य में मेरी तरह अप्रभावित रहता है। सब कुछ जानते हुए सांसारिक

कार्यों में रत रहता है। उसे कोई भी गुण-अवगुण विचलित नहीं कर सकता। उसके लिए मान-अपमान, शत्रु-मित्र, दुख-सुख सब समान होता है। उसकी सारी क्रियायें मेरी तरह राग रहित होती हैं। वही मुझे प्रिय है। कहने की आवश्यकता नहीं जो तीनों दोषों से परे है यानि सात्विक, राजसी और तामसी दोषों से मुक्त है उसके लिए मिट्टी और सोना दोनों समान हैं। उसकी सारी क्रियाएं राग रहित होती है। ऐसे व्यक्ति को त्रिगुणातीत कहते हैं।

उपरोक्त प्रकरण से यही ज्ञात होता है। भौतिक शरीर द्वारा ही आत्मा का सम्बन्ध है भौतिक जगत से। प्रश्न यह है कि शरीर को कैसे साधा जाये। उसके लिए मन में कई प्रश्न पैदा होते हैं। हमें पहले यह समझना चाहिए कि भौतिक जगत का माध्यम शरीर है। जो एक बायलॉजिकल यंत्र के अलावा कुछ नहीं है। यह गतिमान है यानि सजीव है। इसलिए इसकी अपनी निश्चल वृत्तियां हैं। लेकिन शरीर को व्यवस्थित ढंग से कार्य लेना है तो इसे व्यवस्थित करना आवश्यक है। चाहे सांसारिक कर्म हो या आध्यात्मिक। शरीर की क्षमता को बढ़ाना आवश्यक है। शरीर के क्षमताओं की कोई सीमा नहीं है। उसकी जो सीमा है वह हम लोगों द्वारा निर्धारित है। उसकी असीम सीमा से हम अपरिचित हैं। इसके लिए शरीर के एक-एक अंग को और आन्तरिक गठन को भी समझना आवश्यक है।

कुण्डलिनी की साधना भौतिक शरीर से प्रारम्भ होती है। यदि साधक को अपना शरीर नियंत्रित करना आ गया है, शरीर की संरचना को समझ गया है और उसके आन्तरिक गठन को भी समझ गया है तो वह बड़ी ही सरलता से अपने शरीर को अपने से अलग समझ सकेगा। अलग अनुभव कर सकेगा। इससे यह बोध होगा कि वह शरीर में नहीं है। वास्तव में यह ज्ञान कुण्डलिनी साधना का सर्वाधिक महत्वपूर्ण ज्ञान है और इस ज्ञान को उपलब्ध हुए बिना साधना मार्ग पर चलना असम्भव है।

हम जब तक शरीर के बाहरी स्वरूप से परिचित हैं तब तक शरीर मानने की सम्भावना अधिक है। यह सम्भावना अपेक्षाकृत कम हो जाती है यदि हम अपने मन में इसके वास्तविक स्वरूप को देख सके। अब इसके बाद साधक को स्थूल शरीर के कार्य को समझना चाहिए। क्योंकि शरीर

यंत्र के अलावा कुछ नहीं है। परन्तु यह सत्य है कि इसी यंत्र की सहायता से आत्मा भौतिक जगत के सम्पर्क में आती है और उसका निवास भौतिक शरीर ही होता है।

अगर विचारपूर्वक देखा जाये तो हमारे शरीर का विकास शनै-शनै हुआ है। लेकिन यह नहीं समझना चाहिए कि हमारे शरीर का विकास समाप्त हो गया। आज भी यह क्रम बराबर चल रहा है। एक बात और समझ लेना चाहिए कि स्थूल शरीर की विकास प्रक्रिया के साथ पांचों ज्ञानेन्द्रियों का भी विकास क्रमिक ढंग से हुआ है और अभी भी हो रहा है। इन्ही की सहायता से आत्मा भौतिक जगत का ज्ञान प्राप्त करती रहती है तथा कर्मेन्द्रियों द्वारा बाह्य जगत में परिवर्तन लाता है। देखा जाये तो स्थूल शरीर के विकास में ये सभी इन्द्रियां क्रमशः विकसित हुई।

भौतिक जगत का ज्ञान हमें इन्द्रियों द्वारा होता है। यदि ये ज्ञानेन्द्रियां न हो तो हमारा सम्पर्क भौतिक जगत से कभी भी नहीं हो सकता। भौतिक जगत का ज्ञान इन्ही ज्ञानेन्द्रियों द्वारा ही सम्भव हुआ।

भौतिक जगत में दो महत्वपूर्ण वस्तु है। वह है प्रकाश और ध्वनि। जहां ध्वनि है वहां प्रकाश है और जहां प्रकाश है वहां ध्वनि है। हमारी ज्ञानेन्द्रियां भौतिक जगत के वातावरण में विद्यमान प्रकाश ध्वनि और दृश्यों के कम्पनों को ग्रहण करती है और स्नायु मण्डलों में पहुंच कर कम्पन विषय वस्तु में परिवर्तित होकर आत्मा के सम्पर्क में आती है। इसी प्रकार स्थूल शरीर आन्तर में विद्यमान आत्मा से प्रेरक संवेग और विचार प्राप्त करता है। जिसे स्वीकार करता है मस्तिष्क और असंख्य कोशिकाएं। जो कर्मेन्द्रियों के माध्यम से उन प्रेरक संवेगों और विषयों को बाह्य जगत में प्रेषित करता है।

प्रसंगवश यह बतला देना आवश्यक है। शरीर के जिन भागों से शरीर विज्ञान परिचित है वह अन्नमय कोश है। जिसका परिणाम स्थूल शरीर है। हमारा जगत तीन तत्वों से निर्मित है। वे तीन तत्व हैं ठोस, तरल और वाष्पीय। इन्ही तीनों तत्वों से भौतिक शरीर का भी निर्माण हुआ। जिन्हे हम अपने नेत्रों से देख सकते हैं। भौतिक जगत के इन तीन तत्व अथवा भाग के अतिरिक्त चार तत्व अथवा भाग और भी हैं। इन चारो भागों

के पदार्थ अपेक्षाकृत अत्यन्त सूक्ष्म से सूक्ष्मतम् हैं और वे ठोस, तरल और वाष्पीय पदार्थों में भी अन्तर्व्याप्त हैं।

भौतिक शरीर की रचना दो भागों से हुई हैं। पहला है स्थूल तत्व और दूसरा है सूक्ष्म तत्व। स्थूल शरीर का सूक्ष्म भाग इन चार भागों के पदार्थ से निर्मित है। इसी सूक्ष्म भाग को मनुष्य का छाया शरीर अथवा सूक्ष्म शरीर कहते हैं। सूक्ष्म शरीर स्थूल शरीर की प्रतिछाया है। दोनों समान हैं, दोनों एक साथ रहते हैं। केवल मृत्यु के समय दोनों एक-दूसरे से अलग होते हैं। वैसे सूक्ष्म शरीर को चेतना का अलग कोश नहीं समझना चाहिए। वह वास्तव में शरीर का आधार है। सहायक है और है पोषक। दोनों को मिलाकर ही सम्पूर्ण शरीर का निर्माण होता है। क्योंकि सूक्ष्म शरीर प्राण के वाहक के रूप में कार्य करता है। स्थूल शरीर की जितनी भी क्रियाएं हैं उनका संचालन और नियंत्रण प्राण शक्ति द्वारा ही होता है। अगर विचारपूर्वक देखा जाये तो स्थूल शरीर की संरचना अति जटिल और रहस्यमय है। हमारे शरीर के कुछ ऐसे अंग और केन्द्र हैं जिनका मानवीय विकास के साथ-साथ कार्य बराबर बढ़ता ही जाता है अन्तिम विकास तक। क्योंकि उस समय तक निम्न और उच्च चेतना के बीच जो सम्पर्क है वह अति घनिष्ठ हो जाता है और स्थूल शरीर आत्मा के लिए एक माध्यम के अलावा कुछ नहीं रह जाता। इसलिए सात्विक भोजन का अपना महत्व है। क्योंकि सात्विक भोजन से जितना भौतिक शरीर शुद्ध होगा उससे ज्यादा सूक्ष्म शरीर शुद्ध होगा।

हमारे शरीर में दो महत्वपूर्ण ग्रन्थि है ब्रम्ह ग्रन्थि और पीयुष ग्रन्थि। ये दोनों काफी महत्वपूर्ण हैं। शरीर विज्ञान इसे पीनियल ग्लैण्ड और प्यूटरी ग्लैण्ड कहता है। इस ग्रन्थि का स्थान मस्तिष्क में है। योग पीनियल ग्लैण्ड को तीसरा नेत्र मानता है। योग में इन दोनों ग्रन्थि का काफी महत्व है। जीवशास्त्री इन दोनों को प्रारम्भिक मानते हैं। उनके अनुसार विकास की पहली अवस्था में इनका कार्य पूरा हो चुका होता है और वर्तमान अवस्था में इनका कार्य स्थूल शरीर के विकास और रक्षण के लिए कुछ रस तत्व पहुंचाने तक ही रह जाता है। लेकिन इन रहस्यमय ग्रन्थि का वास्तविक कार्य केवल उच्चकोटि के योगियों को ही ज्ञात है। योग विज्ञान के अनुसार मानवीय विकास यानि साधना की उच्चावस्था जब अपने चरम सीमा पर

पहुंच जाती है तो उसके आगे की अवस्था में इनका कार्य सर्वाधिक महत्व का समझा जाता है।

पीयुष ग्रन्थि मस्तिष्क का सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंग है। इस ग्रन्थि में एक विशेष प्रकार की विद्युत चुम्बकीय ऊर्जा विद्यमान है। हमारे शरीर के सन्तुलन के लिए हमें जो तापमान चाहिए वह बना रहता है। उससे कहीं अधिक तापमान पीयुष ग्रन्थि में बराबर बना रहता है। योग के अनुसार ब्रम्हाण्ड में विशेष प्रकार का स्पन्दन व्याप्त हैं। पीयुष ग्रन्थि उन स्पन्दनों को आकर्षित कर मस्तिष्क के उस भाग को प्रेषित करता है। जहां से स्पन्दन (वाईब्रेशन) विभिन्न प्रकार के विचारों में परिवर्तित हो जाता है। जिनमें कुछ लौकिक विचार होते हैं और कुछ पारलौकिक विचार होते हैं, कुछ तो इन दोनों से परे उच्चतम् श्रेणी के विचार होते हैं।

ब्रम्ह ग्रन्थि आज्ञा चक्र का एक विशेष अंग है। ब्रम्ह ग्रन्थि के कई कार्य हैं। एक कार्य यह है कि ब्रम्ह ग्रन्थि के माध्यम से विचारों का संक्रमण होता है। उनके अनुप्राणित हो जाने पर मनुष्य अपने मस्तिष्क में कोई भी विचार किसी दूसरे मनुष्य के मस्तिष्क में प्रेषित कर सकता है। इसी प्रकार किसी भी मनुष्य के विचारों को अपने मस्तिष्क द्वारा समझा जा सकता है। भले ही वह मनुष्य हजारों मील दूर क्यों न हो। इतना ही नहीं सूक्ष्म जगत में निवास करने वाले योगियों से भी सम्पर्क साधा जा सकता है।

चक्र और स्पन्दन

चक्रों को हम भौतिक शरीर में केवल नाड़ी पुञ्ज के रूप में ही देख सकते हैं। लेकिन प्राण साधना के माध्यम से जब स्थूल शरीर से सूक्ष्म शरीर अलग होता है तब सूक्ष्म शरीर के माध्यम से विभिन्न स्थानों पर चक्र दिखलायी देते हैं। प्रत्येक चक्र एक-दूसरे से भिन्न दिखते हैं। जिनमें तीव्र गति से स्पन्दन होता है। ये सभी चक्र प्रकाशयुक्त होते हैं। सभी चक्रों के प्रकाश भिन्न-भिन्न रंगों के होते हैं और उन रंगों के अपने-अपने खण्ड होते हैं। जिसे कुण्डलिनी योग में दल कहते हैं।

ये चक्र स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर, मनोमय शरीर और आत्म शरीर के बीच सम्पर्क बिन्दु का काम करते हैं। इन सम्पर्क बिन्दुओं द्वारा विभिन्न प्रकार की शक्तियां सूक्ष्म शरीर के माध्यम से स्थूल शरीर में प्रवेश करती

हैं। इन सभी चक्रों में स्पन्दन क्रिया बराबर चलती रहती है। जिसके फलस्वरूप उनमें शक्ति उत्पन्न होती रहती है और बराबर अव्यक्त जगत के स्पन्दनों को आकर्षित करती रहती है।

इस प्रकार सभी चक्र भौतिक-अभौतिक अथवा दृश्य-अदृश्य जगतों से सम्बन्धित है। लेकिन बिना साधना के हम उनका अनुभव नहीं कर पाते। क्योंकि सभी चक्र अनुप्राणित (जाग्रत) नहीं है और अनुप्राणित (जाग्रत) न होने के कारण ही उनके माध्यम से अव्यक्त जगत आदि से सम्पर्क स्थापित नहीं कर पाते। साधक इन चक्रों को जाग्रत कर अथवा अनुप्राणित कर उनके माध्यम से वह अव्यक्त जगत से बैठे-बैठे ही सम्बन्ध स्थापित कर सकता है। सूक्ष्म शरीर द्वारा अव्यक्त जगत में प्रवेश भी कर सकता है।

चक्रों को जाग्रत अथवा अनुप्राणित हो जाने पर साधक अभौतिक जगत से सीधा सम्बन्ध स्थापित कर सकता है। उसे एक असामान्य दृष्टि प्राप्त हो जाती है। जिसके कारण गोचर-अगोचर जगत के समस्त अनुभव को सही और स्पष्ट स्मृति अपने मस्तिष्क में लाना सम्भव हो जाता है। उसके लिए व्यवहारिक दृष्टि से जगत और अव्यक्त जगत एक हो जाते हैं। जैसे जाग्रत चेतना के अंग हों।

अब प्रश्न यह है कि ये चक्र अनुप्राणित (जाग्रत) कैसे होते हैं? ये चक्र कुण्डलिनी साधना से ही अनुप्राणित (जाग्रत) होते हैं। जैसाकि उपरोक्त में बतलाया जा चुका है कि कुण्डलिनी शक्ति एक परम रहस्यमयी चेतना शक्ति है जो सम्पूर्ण चराचर जगत में व्याप्त है। लेकिन मानव तन में प्रसुप्त अवस्था में विद्यमान है। शरीर में उसका स्थान मेरुदण्ड के मूल में है। गुरु के निर्देशन में किये गये योग अभ्यास से यह चैतन्य और क्रियाशील होती है और सुषुम्ना नाड़ी द्वारा धीरे-धीरे उर्ध्व होती है। सुषुम्ना मेरुदण्ड में एक आन्तरिक मार्ग है। जैसे-जैसे कुण्डलिनी चेतना एक के बाद एक चक्र से गुजरती है जिस चक्र का स्पर्श करती है उसे अनुप्राणित (जाग्रत) कर देती है। जब वह अन्तिम चक्र को अनुप्राणित करती है तब साधक को आत्मज्ञान का बोध होता है।

मूलाधार चक्र और साधना

मूलाधार चक्र में चार प्रकार की शक्तियां काम करती हैं। इनमें चार

प्रकार की चेतना विद्यमान है। इस चक्र में चार योग नाड़ियां मिलती हैं। (सुषुम्ना, वज्रा, चित्रिणी, ब्रम्हनाड़ी)। इनमें प्राण शक्ति रूप योग नाड़ियों की उत्पत्ति होती है। इन दलों में कुण्डलिनी, प्राण शक्ति रूप में नाड़ियों के द्वारा प्रसृप्त यानि फैलती है। इन प्राण शक्ति के द्वारा दलों का भी लय हो जाता है। अगर विचारपूर्वक देखा जाये तो मूलाधार चक्र सूक्ष्म स्वरूप का सांकेतिक स्थूल रूप है।

मूलाधार शब्द से ही व्यक्त होता है कि यह चक्र सुषुम्ना के मूल स्थान के नीचे स्थित है। अतः मूलाधार चक्र सुषुम्ना में गुदा और लिंग के बीच चार अंगुल विस्तार वाले कन्द के रूप में स्थित कुण्डलिनी शक्ति का प्रथम चक्र है।

यह चार कमल दल वाले रक्त वर्ण हैं। इन चार दलों पर चार अक्षर व, श, ष, स स्वर्णांगित है। जोकि कुण्डलिनी के रूप में है। इस कमल पुष्प के मध्य में पीत वर्ण है जिसके मध्य में अधोमुखी त्रिकोण देश है। जिसे योनिरूपा अथवा कामरूपा कहते हैं। कामरूप के मध्य अतिसूक्ष्म प्रज्ज्वलित अग्नि शिखा सम गतिशील, स्पन्दनशील परम तेजवान वीर्य समस्त शरीर में विचरण करता है। कभी ऊर्ध्वमुख होता है तो कभी अधोमुख। अति कामवासना से अधोमुख होता है। प्रबल ब्रम्हचर्य से ऊर्ध्वमुखी यानि ऊपर की ओर प्रवाहित होता है। इसलिए कुण्डलिनी साधना में प्रबल ब्रम्हचर्य का महत्व है।

सूक्ष्म प्रज्जवलित शिखा को स्वयंभू लिंग कहा गया है। यह लिंग स्वर्ण अण्डाकार के समान है। इस स्वयंभू लिंग का ऊपरी भाग मणि के समान चमकता है। यह कामरूप कला रूप त्रिपुर है। जहां कुण्डलिनी शक्ति स्थित है। यह चक्र कुण्डलिनी शक्ति का आधार होने के कारण मूलाधार कहा जाता है। विद्युत के समान प्रबल तेज कुण्डलिनी स्वयंभू लिंग के ऊपरी भाग से सर्पाकार रूप में लिपटी हुई स्वयंभू लिंग के द्वार को अपने मुख से बन्द किये है।इस प्रकार से कुण्डलिनी के द्वारा उसकी सुप्तावस्था में सुषुम्ना का छिद्र ब्रम्ह रन्ध जो सहस्त्रार तक जाता है बन्द रहता है। ऐसी अवस्था में सुषुम्ना में प्राण शक्ति का प्रवेश नहीं हो पाता। यह तपते स्वर्ण के समान परम तेज प्रभारूप तीनों तत्वों (सत्व, रज और तम) की जननी

कुण्डलिनी विष्णु की शक्ति है। सुषुम्ना भी कामबीज के साथ कुण्डलिनी के स्थान पर स्थित है। इन तीनों का संयुक्त नाम त्रिपुर भैरवी है। जिसे परमा शक्ति भी कहते हैं। कुण्डलिनी दल में चार प्रकार के सूक्ष्म शब्द हैं। जो हर समय स्पन्दन करते रहते हैं। जिसे बीज मंत्र कहते हैं। (वं, शं, षं तथा सं) इसका तत्व बीज लं है। यह तत्व पृथ्वी तत्व प्रधान है। ऐरावत हाथी बीज वाहक है। जिस पर इन्द्र विराजमान है। ब्रम्हा देवता है। भू लोक है। गंध गुण है। इनकी शक्ति डाकिनी है। यंत्र का स्वरूप चौकोर है। नासिका ज्ञानेन्द्रियां, गुदा कर्मेन्द्रियां है। मन तथा अपान वायु का स्थान है।

योगशिखोपनिषद में मूलाधार चक्र में जीव रूप शिव का स्थान बतलाया गया है। जहां पर पराशक्ति कुण्डलिनी विद्यमान है। वहीं से वायु, अग्नि, बिन्दु, नाद, हंस तथा मन की उत्पत्ति होती है। इसी स्थान को कामरूप पीठ कहा गया है। जो साधक के सभी इच्छाओं को पूर्ण करने वाला है।

ब्रम्ह ही विश्व का आधार है। उत्पत्ति तथा लय होता है। इस आधार पर शक्ति की सुप्तावस्था के कारण विश्व भी सुप्तावस्था में रहता है। शक्ति की सुप्तावस्था भंग होने पर विश्व जाग्रत हो जाता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि चक्र के सक्रिय होने पर साधक परम ज्ञान को उपलब्ध हो जाता है। इस स्थान पर मुक्त त्रिवेणी संगम (इड़ा-पिगला और सुषुम्ना) का मिलन होता है। मानसिक स्नान त्रिवेणी पान करने से साधक पूर्वकृत समस्त पापों से मुक्त हो जाता है। उसके शरीर में एक प्रकार से स्पन्दन होने लगता है। जो साधक मूलाधार चक्र पर ध्यान केन्द्रित करता है और निरन्तर बीज मंत्र का जप करता है। उसे आसन सिद्धि (दार्दुरी सिद्धि) स्वतः हो जाती है। वह अपने आसन से ऊपर उठ जाता है यानि भूमि सिद्धि प्राप्त होती है। साधक को मूलाधार स्थित स्वयंभू लिंग का निरन्तर ध्यान करते हुए पहले पृथ्वी तत्व का बीज (लं) जप करना चाहिए। फिर बीज मंत्र का (वं, शं, षं, सं) जप करना चाहिए। लाल आसन का प्रयोग करना चाहिए।

मूलाधार चक्र का यंत्र बनाकर पूर्व दिशा में स्थापित कर ध्यान करना चाहिए। एक चक्र की साधना कम से कम छः माह तक करने से सफलता अवश्य मिलती है।

साधना में आसन का महत्व

साधना का सबसे महत्वपूर्ण साधन है साधक का आसन। आसन का अपना विशेष महत्व है। आसन का गलत चयन साधना के पूर्णता में बाधक होता है। आसन का सही चयन करना आवश्यक होता है साधक के लिए। सही आसन का चयन साधना का प्रभाव बढ़ा देता है। हर पदार्थ का स्पर्शजन्य प्रभाव अलग-अलग होता है। इसी वस्तुगत प्रभाव के चलते साधना के लिए अलग-अलग आसनों का चयन किया जाता है।

शास्त्रों के अनुसार बांस से बना आसन पर बैठ कर जप, साधना करने से साधक मानसिक और शारीरिक रूप से रूग्ण हो जाता है। सीढ़ी, पहाड़ अथवा पाषाण यानि पत्थर पर बैठ कर जप अथवा ध्यान करने वाला साधक अनेक व्याधियों से ग्रस्त हो जाता है। इसीलिए योग साधना, ध्यान, जप बिना आसन लगाये पत्थर या जमीन पर करना मना है। क्योकि इस तरह की साधना कई तरह के दुख उत्पन्न कर देती है।

घुन अथवा दीमक लगी लकड़ी की चौकी या आसन साधक को दरिद्र बना देती है। साथ ही घास-पूस का आसन अनेक कष्टों का जनक होता है। पत्तों या तिनकों का आसन बना कर साधना करने वाले साधक को अनेक मानसिक अस्थिरताओं से ग्रस्त बना देता है।

ऐसे आसनों का प्रयोग नहीं करना चाहिए। इन आसनों का प्रयोग अज्ञानवश क्यों न हुआ हो। नुकसान तो पहुंच ही जाता है। इसलिए ऐसे आसनों का प्रयोग करना चाहिए जो साधना सिद्धि में सहायक हो। कम्बल का आसन कर्म सिद्धि और कामनापूर्ति के लिए श्रेष्ठ माना जाता है। क्योंकि हमारे शरीर में साधना के समय विशेष ऊर्जा सक्रिय होने लगती है। अगर भूमि का सीधा स्पर्श हो रहा है तो हमारी ऊर्जा भूमि के स्पर्श से प्रभावहीन होने लगती है। ऊनी आसन एक प्रकार से अवरोधक का काम करता है। हमारी ऊर्जा को प्रभावित नहीं होने देता है।

देव आराधना के लिए पीला आसन, शक्ति आराधना के लिए रक्त वर्ण (लाल) आसन। कुण्डलिनी साधना शक्ति की ही साधना है इसलिए कुण्डलिनी साधना के लिए लाल ऊनी आसन श्रेष्ठ माना गया है। अपना आसन और वस्त्र अन्य को धोने न दें, न ही स्पर्श करने दें। साधना में

उपयोग वस्तु और वस्त्र साधक को स्वयं शुद्ध व साफ रखना चाहिए। काला आसन तामसिक साधना के लिए, धुंए के रंग का आसन प्रेत साधना के लिए प्रयोग में लाया जाता है। कुश का आसन तंत्र साधना में शुभ माना जाता है। प्राचीन काल में विभिन्न प्रकार के पशुओं के खाल का आसन प्रयोग में लाया जाता था। लेकिन वर्तमान में सम्भव नहीं है। योग साधना, ब्रम्हचर्य, वैराग्य, सिद्धि, संयम, शान्ति और मोक्ष के लिए हिरण के चर्म आसन का प्रयोग होता था। साथ ही इस आसन पर बैठ कर साधना करने से रक्त विकार, वात, पित्त, दोष का भी शमन करता था।

कुश का आसन, मृगचर्म आसन, सात्विक ऊनी आसन राजसिक गुणों को दर्शाता है। उसी प्रकार व्याघ्र चर्म आसन भी राजसिक गुण परिचायक है। इस आसन पर साधना करने से पास में कोई भी जीव-जन्तु नहीं आ सकता है। सर्प आदि भी दूरी बनाये रखते हैं। अभौतिक बाधाएं भी इस आसन के प्रयोग करने से आक्रांत नहीं कर पाते। भालू, लोमड़ी, सियार आदि के चर्म का आसन तामसिक साधना के प्रयोग में लाया जाता था। वर्तमान में कुश का आसन और ऊनी आसन सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। आप कुशासन बिछा कर उसके ऊपर ऊनी आसन बिछा कर साधना कर सकते हैं। यह आसन साधना के प्रगति में पूर्णरूपेण सहायक सिद्ध होगा। मेरा ऐसा विश्वास है।

◆◆◆

प्रसंग तेरह

प्राणमय शरीर और स्वाधिष्ठान चक्र

सभी साधना-उपासना में भौतिक शरीर का अपना विशेष महत्व है। भौतिक शरीर द्वारा ज्ञान, सिद्धि और मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है। भौतिक शरीर की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह पंच तत्वों के योग से होता है। जबकि अन्य शरीर में नहीं है।

मनुष्य के शुक्राणु और स्त्री के रजाणु के संयोग से पांचों तत्व आपस में मिलकर गर्भ में बिन्दु रूप धारण करते हैं। शनै-शनै विकास क्रम में अग्रसर होकर भौतिक शरीर का रूप धारण करता है। इसलिए भौतिक शरीर काफी महत्वपूर्ण है कुण्डलिनी साधना के लिए।

कहने की आवश्यकता नहीं योगियों ने साधना की दृष्टि से शरीर को सात भागों में विभक्त किया है। योग शास्त्र में उन भाग को चक्र कहते हैं। वास्तव में ये चक्र एक प्रकार से साधना के सोपान हैं। जिन पर क्रम से चढ़ता हुआ साधक अन्त में अपने लक्ष्य को प्राप्त करता है। लेकिन इन यात्रा पर चलने के पूर्व चक्रों का और उन सोपानों का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है। क्योंकि उन्हे बिना जाने समझे मार्ग से भटक जाने की सम्भावना होती है।

कुण्डलिनी साधना का एकमात्र लक्ष्य है स्वयं तक पहुंचना, स्वयं को जानना, स्वयं से परिचित होना और स्वयं को प्राप्त करना है। हम जिसे शरीर कहते हैं या परिचित हैं अथवा जिस शरीर का बोध होता है हर पल, जिस शरीर को नाम, रूप, धर्म मिला है वह अन्न के रसों से बना है। अन्नमय स्थूल शरीर है। हमें यह ज्ञात होना चाहिए इस शरीर के पीछे भी कई शरीर हैं।

स्थूल शरीर से जो तादात्म्य बनाये रखता है हर समय वह है प्राण शरीर। प्राण शरीर में जो सबसे अधिक सूक्ष्मतम् प्राण है वह है धनञ्जय

प्राण यानि ऊर्जा। स्थूल शरीर का जो ताप है वह ऊर्जा है यानि प्राण शरीर की उष्मा है। मृत्यु के समय प्राण शरीर पृथक हो जाने पर पार्थिव शरीर शीतल हो जाता है। वास्तव में प्राण शरीर अत्यन्त रहस्यमय और अद्‌भुत है। अगर विचारपूर्वक देखा जाये तो समस्त साधना प्राण शरीर से ही प्रारम्भ होती है।

प्राण शरीर विद्युतमय है। विद्युत का ही रूप है धन और ऋण। दोनों एक-दूसरे की ओर प्रवाहित होते रहते हैं यानि दोनों का आकर्षण दोनों को एक-दूसरे की ओर आकर्षित करता रहता है। प्राण शरीर की धन विद्युत धारा मस्तिष्क की ओर प्रवाहित होती रहती है और ऋण विद्युत धारा शरीर के अन्य भागों में प्रवाहित होती है। दोनों धाराएं जिस केन्द्र में मिलती है। वह है हमारा हृदय क्षेत्र। हृदय वह महत्वपूर्ण केन्द्र है जहां प्राण शरीर की दोनों धाराएं मिल कर स्पन्द रूप में परिवर्तित होती रहती है। प्राणायाम की चरम अवस्था में जब साधक प्रवेश करता है तो उसका सम्बन्ध प्राण शरीर से स्थापित होता है। प्राणायाम दो प्रकार का होता है स्थूल प्राणायाम और सूक्ष्म प्राणायाम। प्रथम प्राणायाम का उद्देश्य होता है प्राण शरीर से अधिक से अधिक तादात्म्य स्थापित करना और सूक्ष्म प्राणायाम का उद्देश्य है प्राण शरीर को अधिक से अधिक ऊर्जामय बनाना। लेकिन यह आवश्यक है कि पहले प्राणायाम की सफलता पर ही दूसरे प्राणायाम की सफलता निर्भर है।

हमारा प्राणमय शरीर जितना ऊर्जामय होगा उतना ही हम आन्तर यात्रा में सफल होगें और साधना में प्रगति करते जायेंगे। जैसे भौतिक विज्ञान के मूल में विद्युत है यानि ऊर्जा है उसी प्रकार योग अथवा तंत्र साधना के मूल में भी ऊर्जा है। देखा जाये तो दोनों ऊर्जा पर ही आश्रित हैं।

तंत्र का कहना है कि स्त्री-पुरुष की प्राण ऊर्जा अलग-अलग होती है। यही कारण है दोनों में अन्तर का एकमात्र और दोनों में अन्तर का एकमात्र कारण प्राण शरीर है। पुरुष के प्राण शरीर की ऊर्जा धनात्मक है और स्त्री के प्राण शरीर की ऊर्जा ऋणात्मक है। शायद यही स्त्री-पुरुष के आकर्षण का कारण भी है। दोनों जहां मिलते हैं, एक-दूसरे के सामने होते हैं तो दोनों की ऊर्जा एक-दूसरे को आकर्षित करने लगती है। शायद यही

प्राकृतिक आकर्षण है। यह सभी के साथ नहीं होता। जिसकी ऊर्जा जिससे मिलती है उसी को आकर्षित करती है। शायद इसी को स्त्री-पुरुष प्रेम समझ बैठते हैं। लेकिन उसके मूल में ऊर्जा का एक-दूसरे के प्रति आकर्षण होता है। लेकिन जब साधक प्रबल साधना काल में ध्यान की गहन अवस्था में होता है। उस समय उसके प्राण शरीर का आकर्षण, उसकी तीव्रता और उसकी ऊर्जा बाहर प्रवाहित न होकर आन्तर मुख होने लगती है और ऊर्जा स्थूल शरीर की ओर न प्रवाहित होकर प्राण शरीर की ओर प्रवाहित होने लगती है। उस अवस्था में हम न पुरुष रह जाते है न ही स्त्री। बस ऊर्जामय हो जाते हैं।

शरीर का दूसरा पर्त प्राणमय कोश हैं यानि प्राणमय शरीर। देखा जाये तो जहां वृद्धि होगी वहीं विकास होगा, वहीं प्राणमय कोश होगा। वृद्धि, गति, विकास, प्राण में होता है। हमारा प्राणमय शरीर ऊर्जा से निर्मित होता है। वह मिलता है प्रकृति, सूर्य, वायु से, प्राणायाम के अभ्यास से और ब्रम्हाण्डीय चेतना से।

प्राणमय शरीर का पोषण प्राणाहार से होता है। मैं अपने भ्रमण के दौरान हिमालय में ऐसे योगियों से मिला अथवा दर्शन लाभ किया। जिन्हे प्राणाहार सिद्धि थी। हफ्तों-हफ्तों उन्हे अन्न की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। जिस प्रकार शरीर को शुद्ध करने की आवश्यकता पड़ती है तभी हम आगे की साधना कर सकते हैं। उसी प्रकार आन्तर जगत में प्रवेश करने के लिए, ऊर्जा के उत्थान के लिए प्राणमय शरीर को भी शुद्ध करने की आवश्यकता पड़ती है। प्राण साधना के द्वारा शरीर निर्मल होता है। एक विशेष ऊर्जा का हर पल आभास होने लगता है।

आपको ज्ञात होना चाहिए कि प्राण साधना के सभी प्रयोग और सभी क्रियाएं प्राणमय शरीर को शुद्ध, निर्मल और ऊर्जामय बनाने की है। प्राण साधना के द्वारा प्राणवायु हमारे शरीर में जितना ज्यादा प्रवेश करती है उतना ही वह ऊर्जामय होती चली जाती है जैसाकि मैं वर्णन कर चुका हूं। ऊर्जा का स्थूल रूप वीर्य है। जो हर पल अधोगति में रहता है। कामवासना के थोड़े से चिन्तन से वह तत्काल अधोगति तीव्र हो जाती है। उसे ऊर्ध्वगति के लिए प्राण ऊर्जा की अति आवश्यकता होती है। हमारा

प्राणमय शरीर जितना शक्तिशाली होता है। उतना ही हमें चक्रों के भेदन में सहायता मिलती है और ऊर्जा को ऊर्ध्वगति में सहायता मिलती है। जब तक हमारी ऊर्जा ऊर्ध्वगति प्राप्त नहीं कर लेती तब तक हम चाह कर भी ब्रम्हचर्य को उपलब्ध नहीं हो सकते यानि हमारी समस्त साधना में प्राण ऊर्जा का विशेष महत्व है। प्राण ऊर्जा के विषय में पिछले प्रसंग में चर्चा की जा चुकी है।

स्वाधिष्ठान चक्र और साधना

स्वाधिष्ठान चक्र के सूक्ष्म रूप का सांकेतिक स्थूल रूप है। यह चक्र कुण्डलिनी शक्ति का दूसरा चक्र है। इसका स्थान जनेन्द्रिय (लिंग) के मूल में स्थित है। यह चक्र योग के अनुसार जलतत्व प्रधान है जिसका सम्बन्ध कफ, शुक्र और जल तत्वों से सम्बन्धित है। यह चक्र सिन्दूरी रंग प्रधान छः दलों वाला है। इन छः दलों में व, भ, म, य, र और लं वर्ण अंकित है। इसका जप छः माह तक अवश्य करना चाहिए।

इस चक्र का तत्व बीज 'वं' है। इस चक्र में सूक्ष्म ध्वनियां विकीर्ण होती रहती हैं। षट्दल कमल के बीच में श्वेत अर्धचन्द्र स्थित है। जिसके मध्य में विष्णु शाकिनी शक्ति के साथ विद्यमान है।

इस चक्र का वाहक मकर है। जिस पर वरूण देव विराजमान हैं। लोक भुव है जिसके देवता विष्णु हैं और वाहक गरूड़ हैं और मण्डल अर्ध चन्द्राकार है। तत्व रंग अत्यंत शुभ्र है और गुण रसवाहा है। इस चक्र का प्राण अपान वायु है। छः योग नाड़ियों के मिलन का भी स्थान है। (सुषुम्ना, वज्रा, चित्रिणी, ब्रम्ह नाड़ी)। इन नाड़ियों का सम्बन्ध कर्मेन्द्रिय, संवेग अनुभूतियों तथा उत्तेजना से है।

जननेन्द्रिय में उत्तेजना इन्ही नाड़ियों के द्वारा होती है। कामोत्तेजना के साथ-साथ, द्वेष, शिथिलता, जड़ता, अभिमान, क्रूरता, उदय होती है। इसके जागरण से ब्रम्हचर्य, प्रेम, क्षमा का उदय होता है। इस चक्र के सिद्ध होने पर साधक मृत्यु पर भी विजय प्राप्त कर लेता है और ज्ञानी होता है। इसके शरीर में समान रूप से प्राणवायु प्रवाहित होती रहती है। जिसके कारण साधक के शरीर में रसवृद्धि होती रहती है। सहस्त्रार से जो अमृत वर्षा होती है उसमें भी वृद्धि होती है। जिसके कारण साधक युवा बना रहता

है। उसके आयु का पता नहीं चलता है। नेत्रों में अपार तेज रहता है। शरीर से एक विशेष प्रकार का दैवीय गन्ध निकलता रहता है।

निरन्तर जप और ऊर्जा के ऊर्ध्वगमन का अभ्यास त्रिबन्ध सिद्धि (मूलाधार बन्ध, उड्यान बन्ध और जालन्धर बन्ध) तथा इस चक्र के देवता भगवान विष्णु के ध्यान तथा मंत्रों के जपसिद्धि से साधक त्रिकालदर्शी और परम वैराग्य को उपलब्ध होता है। आसन पीला होना चाहिए और स्वाधिष्ठान चक्र का चित्र सामने रख कर मन को एकाग्र करना चाहिए और अपने शरीर में स्थित चक्र पर मन को केन्द्रित करना चाहिए। पहले तत्व बीज का जप करना चाहिए। फिर बीज मंत्र का और यंत्र पर ध्यान केन्द्रित करें और चिन्तन करें जहां चक्र का स्थान है।

◆◆◆

प्रसंग चौदह

मनोमय शरीर और मणिपूर चक्र

शरीर की तीसरी परत है मनोमय शरीर। जब हमारा प्राण शरीर प्राण साधना से निर्मल हो जाता है तब हमें तीसरे शरीर की झलक मिलने लग जाती है। मनोमय शरीर का सम्बन्ध भाषा, शब्द और विचार से है। इसलिए कहा गया है हम जैसा सोचेंगे वैसा ही हो जायेंगे। हम वर्तमान में जो हैं वह हमारे सोचने का परिणाम है।

जाने-अनजाने में हमारे मन में जो प्रवेश कर जाता है वह उसका हिस्सा बन जाता है हम जो भी सोचते हैं, चिन्तन करते हैं उसका प्रभाव हमारे मनोमय शरीर पर पड़ता रहता है।

शरीर और मन दोनों महत्वपूर्ण हैं हमारे जीवन के लिए। भौतिक शरीर और मनोमय शरीर के बीच प्राणमय शरीर है। शरीर और मन को जोड़ने वाला सूत्र एकमात्र प्राण है। प्राण बीच में न रहे तो शरीर और मन कभी भी आपस में मिल नहीं सकेंगे। दोनों का मिलन ही जीवन है। प्राण एक ऐसा सूत्र है जिसके कारण शरीर और मन आपस में बंधे रहते हैं।

जब कभी प्राण का सूत्र टूट जाता है तब भौतिक शरीर यहीं पड़ा रह जाता है। मनोमय शरीर आत्मा के साथ एक नई यात्रा पर निकल पड़ता है। इसी अवस्था का नाम मृत्यु है। अगर विचारपूर्वक देखा जाये तो प्राण का अपना विज्ञान है इस विज्ञान के अनुसार श्वांस की विभिन्न गतियां हैं। इन गतियों का प्रभाव शरीर और मन दोनों पर पड़ता है।

विचार मन का विषय है। वह मन में उत्पन्न होता है। इसलिए प्राण की गतियों से वह भी उद्वेलित होता रहता है। मन में जो अनुभव होता है। विचार उन अनुभवों का संग्रह रूप समझा जा सकता है। अब तक धारणा यह थी कि विचार आकार-प्रकार और रंगहीन है। लेकिन विचार पर जो वैज्ञानिक शोध हुआ उससे सिद्ध हो चुका है कि विचार का भी अपना रंग-

रूप और आकार-प्रकार भी होता है। इतना ही नहीं वह पदार्थगत भी सिद्ध हो चुका है। विचार का पदार्थगत अस्तित्व भी है।

कहने की आवश्यकता नहीं चित्तशक्ति के परिणाम से उत्पन्न होने वाली विचार शक्ति चित्ति शक्ति का ही परिणाम है और मस्तिष्क में स्पन्दन के रूप में एक नैसर्गिक शक्ति है। इस शक्ति को संघटित कर संचित शक्ति का रूप दिया जा सकता है और उस शक्ति द्वारा अनेक अद्‌भुत कार्य हो सकते हैं। यह प्रमाणित हो चुका है कि यह संचित विचार शक्ति मनुष्य के मस्तिष्क में या अन्तःकरण में विद्युत के समान विचार लहरी उत्पन्न करने में समर्थ है। इस विषय में पश्चिम के विद्वान विलियम्स वाकर एककिंग्स अपने 'थॉट आर थिंग्स' नामक पुस्तक में लिखा है इसमें जो अपरिमित शक्ति भरी है उसका मुख्य कारण विचारों की निरूद्धावस्था ही है। तात्पर्य यह है कि निरूद्ध यानि संचित एकाग्र विचार शक्ति के समान अमोघ साधन कोई अन्य इस जगत में नहीं है।

मनुष्य के मस्तिष्क में से विचार का प्रवाह निकलता रहता है। उसकी तरंग शक्ति वातावरण और ईथर में मिल कर अथवा प्रवाहित होकर मनुष्य के चित्त पर छाप छोड़ती है और वह छाप जड़ और चेतन सृष्टि में अनन्त काल तक समाप्त नहीं हो पाती। इस प्रकार हम अपने शरीर के द्वारा जो भी कर्म, कार्य क्रिया करते हैं उनकी छाप वातावरण में जो कि एक अत्यन्त प्रचण्ड और अनन्त पृष्ठयुक्त पुस्तक है उन पृष्ठों पर अंकित हो जाती है। जैसे टेप रिकार्डर में हम जो भी बोलते हैं वह टेप हो जाता है। जब तक उसे मिटाये नहीं वह मिट नहीं सकता।

हम जो भी विचार करते हैं, कर्म-कुकर्म करते हैं, वातावरण तत्काल ग्रहण कर लेता है। कहने की आवश्यकता नहीं इसी का नाम पाप-पुण्य है। इसका हिसाब रखने वाला चित्रगुप्त है। हमारे अन्दर विद्यमान पुस्तक को देख कर हमारे कर्मो का निर्णय करते हैं। क्षण-प्रतिक्षण मनुष्य जो कुछ भी विचार करता है, बोलता है, कर्म करता है तब तक उसकी छाप अर्थात् चित्र हमारे अन्दर ही नहीं अंकित होते हैं बल्कि पदार्थों के अन्दर भी प्रवेश कर जाते हैं और सूक्ष्म रूप से दीर्घकाल तक जमा रहते हैं। वे किसी को समझ में नहीं आते। लेकिन समय आते ही प्रगट हो जाते हैं। जैसे आप

किसी नये शहर में जाते हैं तो लगता यहां कभी पहले भी आ चुका हूं। कोई भी महल हवेली में शून्यता रहती है या भयानक दिखता है। इसका कारण है उस स्थान में दुख, दर्द, यातना के विचार अंकित हैं। वहां कोई आत्मा नहीं होती विचारों का समुद्र होता है, दर्द होता है और होता है श्राप। जिसका परिणाम उसकी परिणति है सूनसान और खालीपन।

डॉ. बुकेन और डॉ डेन्टन पाश्चात्य विद्वानों ने परिश्रमपूर्वक वर्षों के शोध के बाद यह परिणाम प्राप्त किया और सिद्ध भी किया कि विचारों के परावर्तन की छाप मकानों की दीवालों, दरवाजों, छत, जमीन, जड़, मनुष्य, वनस्पति आदि चेतन पदार्थों पर अंकित होकर काफी समय तक रहते हैं।

दोनों विद्वानों ने अनेक प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध करके बतलाया है कि इस प्रकार की शक्ति प्रत्येक मनुष्य के अन्दर है। किन्तु जब तक उस शक्ति का निरोध नहीं किया जाता तब तक वह प्रत्यक्ष नहीं होती। जैसे किसी मनुष्य को स्थिर बैठा कर किसी विशेष स्थान की मिट्टी या पत्थर का टुकड़ा लेकर जिसके बारे में वह नहीं जानता फिर नेत्र बन्द कर मन को एकाग्र कर, विचार को उस पदार्थ पर केन्द्रित करें वह तत्काल उस पदार्थ का भूतकाल और विवरण जान सकता है।

ऐसा कुछ समय तक करने से कोई भी व्यक्ति अपने विचार शक्ति द्वारा उस पदार्थ की भूतकाल की सारी घटना को वह सरलतापूर्वक कह सकता है। किसी घर में पूर्वकाल तक जिन-जिन मनुष्य का निवास हुआ करता है उन-उन के आचार-विचार, घटना आदि की छाप दीवारों और अन्य स्थान पर पड़ कर जो चित्र अंकित हो जाते हैं उन्हे योग सिद्ध साधक सहज ही देख लेते हैं। पहले के लोग गांव या मन्दिर के पुजारी बाबा या ज्योतिषी लोगों के पास जहां उन्हे मकान आदि बनवाना होता था वहां की मिट्टी ले जाकर पूछते थे कि वह जमीन शुद्ध है कि नहीं? मकान बनवाना ठीक होगा? वे लोग मिट्टी को हाथ में लेते थे और मन को एकाग्र कर बतला देते थे वह स्थान शुभ है कि नहीं। लेकिन आज ऐसा नहीं होता। जिसका कारण भूतकाल के विचार संक्रमण की वजह से है। हम विभिन्न परेशानियों से घिरे रहते हैं। कभी ग्रह, कभी भाग्य, कभी दूसरों को दोष

देते हैं। जिस मकान, भूमि में सूनापन लगे, खालीपन लगे, उस स्थान पर मन घबड़ाने लगे, समझ लें भूतकाल में निवास करने वाले लोगों की प्रबल छाप पड़ी है। लेकिन बेपरवाह होकर लोग वह स्थान या मकान ले लेते हैं। उसका परिणाम दुख के अलावा कुछ भी नहीं मिलता यानि भूतकाल के लोगों के विचारों की छाप आपके विचार से नहीं मिल रहे होते हैं। उन्हे जो कष्ट, परेशानी या रोग हुआ होगा उसका प्रभाव आप पर पड़ेगा यह सत्य है। यही कारण है कि हिन्दु कर्मकाण्ड में भूमि शोधन, गृह प्रवेश पूजा का विधान था। मंत्रों के प्रभाव से उन विचारों के छाप को हटाना और दैवीय ऊर्जा को स्थापित करना है। परन्तु आज ऐसा नहीं हो रहा है।

तत्व का महत्व

इस बात से यह सिद्ध होता है कि मनुष्य विचार शक्ति के संयम से उन संस्कारों द्वारा अमोघ शक्तिशालिनी चित्तिशक्ति का उदय करके आलोकिक शक्तियां प्राप्त कर सकता है।

पतंञ्जली के कथनानुसार संयम में प्रवृत्त होने के पूर्व विक्षेपों यानि विघ्नों को दूर करना चाहिए। विघ्नों को हटाने के लिए, विचारों के प्रवाह को रोकने के लिए एवं नियमबद्ध निरन्तर चित्तिशक्ति को प्रत्यक्ष करने के लिए कम से कम एक तत्व का अभ्यास करना चाहिए अर्थात् आकाश, वायु, जल, अग्नि एवं पृथ्वी में से किसी एक तत्व का अनुसंधान करना चाहिए। ज्योतिष में जातक के कुण्डली के आधार पर तत्व को जाना जा सकता है कि जातक कौन से तत्व प्रधान में पैदा हुआ है। उस तत्व पर केन्द्रित कर तत्व को जाग्रत किया जा सकता है।

योग तत्व के अनुसार पैर से जंघा तक पृथ्वी तत्व, जंघा से गुदा तक जल तत्व, गुदा से हृदय तक अग्नि तत्व, हृदय से भ्रकुटी (तीसरा नेत्र) तक वायु तत्व एवं भ्रकुटी से ब्रम्ह रंध्र तक आकाश तत्व का प्रभाव रहता है।

पृथ्वी तत्व का केन्द्र मूलाधार चक्र है। जल तत्व का स्वाधिष्ठान चक्र और अग्नि तत्व का केन्द्र मणिपूरक चक्र है। वायु तत्व का सम्बन्ध अनाहद चक्र से हैं आकाश तत्व का सम्बन्ध विशुद्ध चक्र से समझना चाहिए। जिस तत्व का ध्यान करना है उस तत्व के स्थान, आकृति एवं

तत्व बीजाक्षर के साथ धारणा, भावना करने से वह तत्व सक्रिय होने लगता है और उस तत्व के जागरण से विचार शक्ति स्वतः ही केन्द्रित होने लगती है।

योग शास्त्र के अनुसार पृथ्वी की आकृति चतुष्कोण, पीत वर्ण, 'लं' बीज, ब्रम्ह देवता है। जल की आकृति अर्धचन्द्र, श्वेत वर्ण, 'वं' बीज, विष्णु देवता है। अग्नि की आकृति त्रिकोण, रक्त वर्ण, 'रं' बीज, रूद्र देवता है। वायु की आकृति वर्तुल, नील वर्ण, 'यं' बीज, ईश्वर देवता है। आकाश की आकृति भी वर्तुल, नील वर्ण है, 'हं' बीज है,सदाशिव देवता है।

इस प्रकार पंचतत्वों के स्थानों पर मन विचार केन्द्रित कर उन आकृति में बीज मंत्र का चिन्तन करना चाहिए। ऐसा करने से उन तत्व का प्रभाव मिलने लगता है। हमारे मनः शक्ति, विचार शक्ति और संकल्प शक्ति पर इन तत्वों का विशेष प्रभाव भी पड़ता है। साधक अपने संकल्प बल से जो भी इच्छा करेगा वह पूर्ण होता है। विचार यह है कि अपने विचार शक्ति को कैसे सकारात्मक बनाये।

सकारात्मक विचार शक्ति के लिए दुखीजनों के साथ-साथ उनका यथासम्भव सहयोग करना और मित्रवत् व्यवहार तथा करूणा करना चाहिए। सुखीजनों के साथ मित्रता, सच्चरित्रजनों के साथ आनन्द एवं दुष्टजनों के साथ उपेक्षा की भावना रखने से विचार शक्ति निरूद्ध होती है। प्राणायाम के अभ्यास से भी विचार शक्ति को बल मिलता है। अपने इष्टदेव का स्मरण करने से विचार शक्ति निरूद्ध होती है।

सात्विक भाव, भय, चिन्ता, विषय वासना से दूर रहने से विचार शक्ति प्रबल होती है। अगर गहरायी से चिन्तन किया जाये तो हम अपने स्वामी नहीं हैं, मन पर हमारा अधिकार नहीं है। यही कारण है कि हम अपने भीतर अनुकूल और प्रतिकूल दोनों प्रकार के विचार ले जा रहे हैं और यही कारण है कि हमारा चित्त चंचल और बेचैन रहता है।

देखा जाये तो दोनों प्रकार के विचार अन्दर जाकर आपस में बराबर संघर्ष करते रहते हैं और इस संघर्ष के कारण हमारे अन्दर अस्थिरता और बेचैनी बनी रहती है। जिसे हम अनुकूल विचार और प्रतिकूल विचार कहते हैं। योग उसे सद् विचार और असद् विचार कहता है। देखा जाये तो दोनों

विचार एक-दूसरे के विरोधी हैं। अगर मनोमय शरीर को शुद्ध और निर्मल करना है तो दोनों प्रकार के विचारों में समांजस्य रखना चाहिए और यह तभी सम्भव है जब हम दोनों प्रकार के विचारों से अलिप्त रह कर उनके प्रति साक्षी हो जायें और हो जाये तटस्थ। सद् विचार के प्रति भी और असद् विचार के प्रति भी।

शरीर और चित्त की स्थिरता

हृदय के नीचे कुर्माकार नाड़ी चक्र है जिसे कुर्म नाड़ी कहते हैं। उसमें संयम करने से साधक का चित्त स्थिर हो जाता है अर्थात् विचार शक्ति निरूद्ध होकर चित्त शक्ति का उदय हो जाता है। यही सूर्य चक्र, मणिपूरक चक्र, मूल बन्ध है। यह प्रचण्ड सुवर्ण के समान तेजरूप, सत्व, रज, तम गुणों को उत्पन्न करने वाली शक्ति होती है। यहीं से प्राण वायु को ऊर्ध्व होने में शक्ति मिलती है और परावाणी का स्फुरण होता है। योगी इसी कुण्डलिनी शक्ति को प्राण वायु और अग्नि के सूक्ष्मांस विद्युत के कण (इलेक्ट्रान) स्वरूप मानता है।

देखा जाये तो विद्युत एक प्रकार से गतिमात्र है उसे संघठित नहीं किया जा सकता है। उसका अपना प्रवाह है। अगर हम वायु को संघठित कर एक दिशा में प्रवाहित करें तो वह भी महाविद्युत धारा बन सकती है। उसी प्रकार मनुष्य के अन्दर जो श्वांस-प्रश्वांस का केन्द्र है वह हृदय प्रवेश के पीछे मेरुदण्ड में अवस्थित है। वह श्वांस-प्रश्वांस की नलिकाओं को नियमित रूप से चलाता है और अन्य स्नायु चक्रों पर अधिकार रखता है। उसी को सूर्य चक्र कुण्डलिनी भी कहते हैं।

प्राणायाम या प्राण संयम द्वारा सभी नाड़ियों की शक्ति संयम करने से एक प्रकार से अपार विद्युत शक्ति उत्पन्न होती है। यही शक्ति मेरुदण्ड में रह कर ज्ञान, इच्छा और क्रिया रूप बन कर बाह्य और आन्तर क्रिया का सम्पादन करती है। असंख्य शून्य अथवा वायुवाहिनी धमनियां मेरुदण्ड में सम्मिलित रहती हैं। उनमें से ज्ञानवाहिनी, इच्छावाहिनी और क्रियावाहिनी ये तीन नाड़ियां मुख्य हैं। इन्ही के द्वारा देह में सर्वत्र ज्ञान, इच्छा और क्रिया का संचालन होते हुए शरीर के हर अणु-अणु में उत्पन्न होता है। यही विद्युत शक्ति यानि ऊर्जा जब मूलाधार में आघात करती है

तब परम सूक्ष्म शब्दों की मूल ब्रम्हरूपा स्फूर्ति प्रगट होकर प्राण के माध्यम से नाभि, हृदय, कंठ प्रदेश में उत्तरोत्तर व्यक्त होकर पश्यन्ति, मध्यमा,बैखरी का रूप धारण करती है।

योग कहता है प्राणिमात्र का चैतन्य शब्द ब्रम्ह है। जिसके मूल में कुण्डलिनी शक्ति है। उपरोक्त विषय पर संक्षेप में मैंने प्रसंगवश चर्चा की। लेकिन देखा जाये तो बाह्य जगत में जो कुछ भी है वह आन्तर जगत का ही परिणाम है। हम जो विचार करते हैं अथवा विज्ञान-ज्ञान आदि जो भी है वह पहले आन्तर जगत में विचार रूप में आया और फिर उसका क्रियान्वयन रूप बाह्य जगत में आया। हम यह कैसे कह सकते हैं कि बाह्य जगत ही सब कुछ है। कहने का तात्पर्य यह है कि हमारे पास जो कुछ भी है ज्ञान-विज्ञान आदि वह तभी प्रकाश में आया जब वह विचार रूप में प्रगट हुआ। इसका मतलब तो यही हुआ हमारा आन्तर जगत जितना विकसित है उतना बाह्य जगत नहीं। इसलिए समस्त साधना-उपासना की यात्रा आन्तर जगत की यात्रा है।

इसी प्रसंगवश एक ऐसे महान योगी की कथा का स्मरण हो गया जो अपने आप में अद्भुत हैं।

सन् १८४० में दक्षिण भारत में एक ऐसी योगी हुए जिनकी योग सिद्धि की पूरे दक्षिण भारत में चर्चा थी। उन्होने कभी योग चमत्कार नहीं दिखलाया बस अपने सद्गुरु के आदेश पर वे योग का प्रचार करते थे। उन्हे योग के प्रति आकर्षण बचपन से था। लेकिन माता-पिता और परिवार की जिम्मेदारी उन्हे योग मार्ग पर चलने के लिए रोकती थी।

उनका विवाह जल्दी हो गया था। दो पुत्र के पिता थे। शान्त, सौम्य पत्नी थी और माता-पिता। उनका नाम योगी सभापति सवर्णी था। जब सभापति की उम्र उन्तीस वर्ष की हुई उस समय माता-पिता भी गुजर चुके थे। दोनों पुत्र भी बड़े हो चुके थे और अपने दायित्व को समझने लगे। चुंकि सभापति का बचपन से ध्यान, पूजा में ज्यादातर समय बीतता था। उसके बाद भी वे अपना कर्तव्य पूरी तरह से निभाते रहते थे।

उनसे किसी को कोई शिकायत नहीं थी सब कुछ होते हुए भी उनका मन संसार में नहीं लगता था। एक दिन अपने मन की बात पत्नी को

बतलाते हैं और पत्नी से आज्ञा लेकर ज्ञान मार्ग की राह पर निकल पड़ते हैं। अपने घर मद्रास से सात किलोमीटर दूर स्वयंभू स्थल महादेव मन्दिर पहुंचते हैं और तीन दिन और तीन रात लगातार ध्यान में बैठे रहे यह सब उनके साथ स्वतः हो रहा था। उन्हे भूख-प्यास भी नहीं लग रही थी।

रात्रि के तीसरे प्रहर सभापति को एक दिव्य योगी का दर्शन होता है। हे! सभापति उठो अगस्त्य आश्रम की ओर प्रस्थान करो और उसी के पास गुफा है जो साधना स्थली है। मैं तुम्हारा इन्तजार कर रहा हूं। तुम्हारे पूर्व जन्म का संस्कार जागृत हो चुका है। सभापति तुरन्त उठ जाते हैं उसी क्षण अगस्त्याश्रम की ओर चल पड़ते हैं। जैसे ही अपने पूर्व जन्म के सद्‌गुरु को देखते हैं गम्भीर और ईश्वरीय तेज से दप-दप करता उनका मुख देखकर सभापति अपने गुरु के चरणों पर अपना सिर रख देते हैं। जैसे उन्हे बचपन से जिस चीज की तलाश थी वह अब जाकर पूर्ण हुई।

सात वर्ष तक अपने गुरु के सान्निध्य में कठोर योग साधना की। एक दिन गुरु बोले- सभापति तुम्हारी साधना पूर्ण हुई अब मेरा हिमालय प्रस्थान करने का समय आ गया है। तुम्हे जो भी सत्य ज्ञान मिला उसे समाज में बांटो शान्त भाव से परन्तु चमत्कार से दूर रहना।

सभापति अपने सद्‌गुरु का वचन मान कर गुरु को प्रणाम कर योग के प्रचार व प्रसार के लिए चल पड़ते हैं। सभापति कई बड़े शहरों में योग के ज्ञान का प्रसार किया। उनके व्यवहार और ज्ञान से गरीब-अमीर और सभी वर्ग के लोग शिष्य बनने लगे और समय मिलता तो पुस्तकें भी लिखते।

सन् १८८० में सत्य ज्ञान और योग का प्रचार करते-करते लाहौर पहुंचे और वहीं शिव मन्दिर में अपना निवास बनाया। सभापति की ख्याति लाहौर में भी फैलने लगी। अक्सर लोग उनके योग प्रवचन सुनने को आते। लेकिन कभी भी चमत्कार नहीं दिखलाते। क्योंकि उनके गुरु का आदेश था चमत्कार से सत्य ज्ञान के प्रचार पर असर होगा। लोग उसे भूल कर चमत्कार के पीछे भागने लगेंगे। लेकिन एक ऐसी घटना घटी उन्हे विवश होना पड़ा चमत्कार दिखलाने के लिए। उसके बाद सभापति कहां चले गये पता नहीं चला। एक दिन लाहौर के नवाब अपने हिन्दू मित्रों के साथ

सभापति से मिलने आते हैं। चूंकि वह नवाब थे और मुसलमान भी वह योगी सभापति से किसी और कारण से मिलने आये थे। उनके आने का कारण योगी सभापति समझ गये। उन्हे बैठने के लिए आसन दिया। लेकिन वह बैठता नहीं है। तब योगी सभापति को भी खड़ा होना पड़ा। नवाब की बातें सुनते-सुनते वह प्रांगण के बाहर निकल आते हैं और उनके पीछे-पीछे शिष्यगण भी।

नवाब आकाश की ओर देखते हुए बोला- आप खुदाई का दावा रखते हो तो आप में ऐसी क्या ताकत है और आप खुदा के नूर हो यह किस वजूद पर कहते हो?

योगी सभापति कुछ गम्भीर होते हुए बोले- हम लोग ईश्वर का ही अंश हैं आप में और मेरे में यही अन्तर है आप ईश्वर से जरा दूर हैं और मैं थोड़ा नजदीक। नवाब जिद्दी था फिर बोला- आप खुदा के नूर हैं तो कुछ तो दिखलायें ताकि मुझे भी सुकून मिले।

धीरे-धीरे शिष्य और वहां पर आये लोगों की भीड़ लग गयी। सभी के चेहरे पर उत्सुकता थी और आश्चर्य भी। योगी पुनः बोले- नवाब साहब मेरा धर्म है लोगों को सत्य का ज्ञान कराना। उन्हे सत्यमार्ग पर चलने की प्रेरणा देना। बस यही गुरु का आदेश है। लेकिन आप कुछ और चाहते हैं वैसा ही होगा। योगी सभापति कुछ पल हाथ ज़ोड़ कर अपने गुरु का स्मरण करते हैं। शायद आज्ञा मांग रहे हों ऐसा प्रतीत होता है। उसके बाद जमीन पर पड़ी एक लकड़ी का टुकड़ा उठाते हैं और कुछ क्षण अपना हाथ उस पर फेरते हैं और आकाश में उछाल देते हैं।

वह लकड़ी का टुकड़ा तीव्र गति से आकाश में विलीन हो जाता है। वहां पर खड़े लोग और नवाब कुछ समझ पाते उसके पहले वह लकड़ी का टुकड़ा हजारों छोटे-छोटे बाणों में बदल जाता है और सामने खड़े फल वृक्षों को भेद देता है। उस बाण में इतनी शक्ति थी जिस जगह वृक्ष को भेदता वह टुकड़े-टुकड़े होकर फैल जाता। हवा में गर्जना होने लगी। बिजली चमकने लगी। चारो तरफ बादल की वजह से अंधेरा छाने लगा और वर्षा होने लगी। तभी योगी बोले- मैं यदि इससे अधिक शक्ति लगाऊंगा तो कुछ ही पल में सब कुछ नष्ट हो जायेगा...। नवाब ने हाथ

जोड़ कर योगी से प्रार्थना की और अपनी गल्ती के लिए क्षमा मांगा और कहा- सच में आप खुदा के नूर हैं। लेकिन यह सब हुआ कैसे? योगी बोले- संकल्प शक्ति से। इसके बाद उन्होने आगे कहा- मैंने अपने गुरु को वचन दिया था कि चमत्कार नहीं दिखलाऊंगा। लेकिन ऐसा मुझसे हो गया। इसके लिए मुझे हिमालय जाकर प्रायश्चित करना होगा। तूफान शान्त हो गया था। आकाश खुल चुका था। चारो तरफ छोटे-छोटे बाण बिखरे पड़े थे। लेकिन योगी सभापति वहां नहीं थे।

मणिपूर चक्र की साधना

मणिपूर चक्र नाभि स्थान में स्थित है। यह तीसरा चक्र है। इसे नाभि चक्र भी कहते हैं। अगर देखा जाये तो मणिपूर चक्र मानव शरीर का केन्द्र है। आत्मा जब भी गर्भ में प्रवेश करती है वह मणिपूर चक्र यानि नाभि केन्द्र ही है।

यहां से अनके नाड़ियां मिलती हैं और निकलती हैं। यह समान वायु का स्थान है। मेरुदण्ड में स्थित सुषुम्ना, वज्रा, चित्रणी, ब्रम्ह नाड़ी का सम्बन्ध इसी चक्र से है। यह चक्र दस दलों वाले नील वर्ण कमल के समान है। यह अग्नि तत्व का केन्द्र है और गुण उष्ण है। तत्व बीज 'रं' है। वाहन मेष है और उस पर अग्नि देव विराजमान हैं। स्वः लोक, देवता रूद्र, गुण रूप और शक्ति लाकिनी है। यंत्र त्रिकोण, रूप तन्मात्रा से उत्पन्न देखने की शक्ति और ज्ञानेन्द्रिय तथा अग्नि तत्व से उत्पन्न शक्ति और कर्मेन्द्रिय का स्थान है और तत्व रक्त वर्ण है। इस केन्द्र पर होने वाली सूक्ष्म ध्वनियां के बीज मंत्र डं,ढं, णं, तं, थं, दं, धं, पं और फं हैं। इस चक्र पर साधक को परा शब्द का ध्यान करना चाहिए। इस चक्र पर दस सूक्ष्म शक्तियां काम करती हैं और दस योग नाड़ियों का केन्द्र भी हैमणिपूर चक्र का सम्बन्ध हमारे निद्रा, भूख, प्यास, साहस, वीरता, आक्रामक, प्राणशक्ति तथा यौवन से है। नील वर्ण कमल पुष्प के मध्य में लाल त्रिकोण है जिसके चारो तरफ से लाल वर्ण विकीर्ण होता रहता है। इस लाल त्रिकोण के मध्य में महारुद्र नील वर्ण वाली शक्ति चतुर्भुजा लाकिनी के साथ ध्यानस्थ बैठे हैं।

यह वही स्थान है जहां बालक को नौ माह तक रस प्राप्त होता है।

इसकी सिद्धि से सम्पूर्ण शरीर का ज्ञान प्राप्त होता है। नाभि चक्र पर ध्यान करने से बाह्य और आन्तर जगत का ज्ञान होने लगता है। यह षटचक्र का महत्वपूर्ण स्थान है। जिस प्रकार सूर्य, ग्रहों-पिण्डों का केन्द्र है उसी प्रकार नाभि चक्र हमारे शरीर का केन्द्र कहा गया है। यह स्थान सूर्य की स्थिति मानी गयी है।

योग सूत्र में नाभि में स्थित सूर्य का संयम करने को कहा गया है। जो पिण्ड में है वही ब्रम्हाण्ड में है। अतः नाभि स्थित सूर्य का ध्यान करने से सम्पूर्ण लोक का ज्ञान होता है। लेकिन ध्यान या भावना सूर्य उदय के समय ही करना चाहिए। सूर्य उदय के पूर्व अथवा सूर्यास्त के बाद नहीं करना चाहिए। क्योंकि सूर्योदय के पूर्व अमृत स्त्राव होता है जिससे हमारा जीवन चक्र चलता है। सूर्यास्त के बाद नाभि स्थित सूर्य का ध्यान करने से अथवा अमृत पान करने से साधक के पूरे शरीर का रस सूख सकता है और वह मृत्यु तुल्य कष्ट प्राप्त होता है। पहले तत्व का ध्यान करना चाहिए, फिर बीजाक्षरों का, उसके बाद नाभि पर ध्यान करना श्रेयष्कर होगा।

आसन रक्त वर्ण का होना चाहिए। मणिपूरक चक्र को पूर्व दिशा में जमीन से १२ अंगुल ऊपर लकड़ी के तख्त पर स्थापित कर पूजा आदि करके तत्व बीज और फिर बीज मंत्र का जप करना चाहिए और चक्र को नाभि स्थल पर भावना करनी चाहिए। तीन माह तक साधना करनी चाहिए।

◆◆◆

प्रसंग पन्द्रह

विज्ञानमय शरीर और अनाहद चक्र

मनुष्य का चौथा शरीर विज्ञानमय शरीर है। इसके द्वारा चेतना का बोध होता है। जब हमारा चौथा कोश यानि विज्ञामय शरीर चैतन्य हो जाता है तब वह विचार जाल में उलझा नहीं रहता। विचारों से घिरा नहीं रहता। आवश्यकतानुसार विचार का प्रयोग कर लेता है। विचार उसके लिए आज्ञाकारी हो जाता है। बिना उसके अनुमति से विचार प्रवेश नहीं कर सकता। उसका पूरा नियंत्रण विचारों पर हो जाता है। एक प्रकार से वह विचारों के जाल से मुक्त हो जाता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि भौतिक शरीर का भोजन अन्न और प्राण शरीर का भोजन प्राण ऊर्जा और मनोमय शरीर का भोजन है मन की ऊर्जा। उसी प्रकार विज्ञानमय शरीर का भोजन है ध्यान। क्योंकि ध्यान ही एकमात्र चैतन्यता को बढ़ाता है। ध्यान बोध को जागृत करता है। योग-तंत्र में ध्यान को एक विशेष प्रकार की ऊर्जा माना गया है।

मन की अस्थिरता, मलिनता के कारण और मन की अशुद्धता के कारण विज्ञानमय शरीर मलिन और अस्थिर रहता है। हमारा मन जितना सघन होगा, जितना चित्त एकाग्र होगा और हमारा ध्यान जितना सफल होगा, उतना ही विज्ञानमथ शरीर निर्मल और चैतन्य होगा। उसका निर्मल और चैतन्य होना ही सब कुछ नहीं है। उसका पारदर्शी और प्रकाशवान और उसमें प्रकाश जैसी गति भी होना आवश्यक है। लेकिन यह तभी सम्भव है जब हम मन के पार पहुंचते हैं ध्यान की चरम अवस्था में।

उच्चकोटि के साधक के लिए विज्ञानमय शरीर अत्यन्त उपयोगी और आवश्यक है और है महत्वपूर्ण। वे इस शरीर द्वारा क्षण भर में किसी भी दूरस्थ स्थान पर जा सकते हैं साथ ही अव्यक्त लोक का भी विचरण कर लेते हैं। विज्ञानमय शरीर योग साधना की महत्वपूर्ण उपलब्धियों में से

एक है। इस परम अवस्था को प्राप्त योगी मन, बुद्धि, अहंकार से रहित निर्विकार अवस्था को उपलब्ध हो जाता है। अगर दूसरे शब्दों में कहा जाये तो मन के शुद्ध और निर्विकार होने पर ही विज्ञानमय शरीर चैतन्य होता है। जिसके फलस्वरूप मन की शक्ति असीम हो जाती है और इसी असीम मनः शक्ति की सहायता से विज्ञानमय शरीर द्वारा योगी हजारों मील की यात्रा एक क्षण में पूर्ण कर लेते हैं और अव्यक्त जगत में निवास करने वाले सन्त-साधकों से इच्छानुसार सम्पर्क भी करने में समर्थ होते हैं। योग विज्ञान के अनुसार विशुद्ध और निर्विकार मन का ही दूसरा नाम अवचेतन मन है और अवचेतन मन अपनी असीम आलौकिक शक्ति के साथ विज्ञानमय शरीर में प्रगट होता है।

विज्ञानमय शरीर की उपलब्धि कुण्डलिनी योग की सबसे बड़ी उपलब्धि है। जिसका बोध होता है प्राणमय शरीर में और जागरण होता है मनोमय शरीर में। उसी प्रकार उत्थान होता है विज्ञानमय शरीर में। षट्चक्रों का क्रमिक उत्थान अथवा भेदन विज्ञानमय शरीर में उत्थान होते ही योगी भौतिक जगत की सीमा लांघकर आन्तर जगत में प्रवेश कर जाता है।

विज्ञानमय कोश (कारण शरीर)

सात शरीरों में कारण शरीर यानि विज्ञानमय कोश का अपना विशेष महत्व है। देखा जाये तो चेतना का जो क्रियाशील भाग है वह है मन। मन के दो रूप हैं चेतन और अवचेतन। ये दो रूप आत्मा के ही भाग हैं। जो भाग चेतना से जुड़ा है वह उसका पहला रूप है। उसी प्रकार जो भाग अवचेतन से जुड़ा रहता है उसे अन्तःप्रज्ञा कहते हैं। वह दूसरा रूप है। उसे गुह्य विद्या में अन्तःप्रज्ञा कहते हैं।

देखा जाये तो अन्तःप्रज्ञा में विश्व ब्रम्हाण्ड की असीम शक्तियां भरी पड़ी हैं। यह अनन्त ज्ञान-विज्ञान का असीम भण्डार है। यहां तक कि आत्मा की अनन्त यात्रा का सूत्र अथवा प्रारम्भ से लेकर वर्तमान तक का सम्पूर्ण विवरण का एक प्रकार से विशाल ग्रन्थ है।

मस्तिष्क के विषय में पिछले प्रकरण में वर्णन किया जा चुका है। फिर भी प्रसंगवश चर्चा करना आवश्यक है। अगर विचारपूर्वक देखा जाये तो

सभी मानसिक क्रियाओं का जन्म मस्तिष्क में होता है। मस्तिष्क की संरचना स्वयं अपने आप में रहस्यमय और जटिल है। इसे आप सुपर कम्प्यूटर कह सकते हैं। यह हमारे शरीर में इन्द्रियों के कम्पन्नों से एक प्रकार से डाटा एकत्र करता है। फिर विश्लेषण भी करता है। दूसरी तरफ ब्रम्हाण्डीय कम्पन्न को यानि बायब्रेशन को ग्रहण कर भौतिक चेतना में भौतिक रूप देने का काम भी करता है।

देखा जाये तो प्रत्येक कोशों का एक वर्ग मस्तिष्क को सभी आन्तरिक लोकों की शक्तियों से जोड़ता है। प्रत्येक कोश में एक विशेष प्रकार का कम्पन्न (बायब्रेशन) होता रहता है और वह कम्पन्न मस्तिष्क बराबर ग्रहण करता रहता है। जिसके कारण हमारे शरीर में जटिल से जटिल और सरल से सरल विभिन्न प्रकार की क्रियाएं उत्पन्न होती रहती है।

मस्तिष्क में मानसिक जगत के कम्पन्नों की जो प्रतिध्वनि होती है वही प्रतिध्वनि हमारे अन्दर विचार को जन्म देती है। विश्व ब्रम्हाण्ड में अनेक सूक्ष्म जगत हैं उन्ही के कम्पन्नों की सूक्ष्मतम् प्रतिध्वनि हमारी अन्तःप्रज्ञा है।

हमारे विचार दो प्रकार के होते हैं। एक है मूर्त विचार और दूसरा है अमूर्त विचार। नाम, रूप आदि से सम्बन्धित विचार मूर्त विचार कहलाता है। धारणाओं के सिद्धान्तों पर आधारित विचार अमूर्त विचार कहलाता है। दोनों विचार मस्तिष्क के माध्यम से प्रगट होते हैं। लेकिन दोनों एक-दूसरे से भिन्न होते हैं।

हमारे शरीर में स्थित मनोमय कोश का सम्बन्ध मनोमय लोक से समझना चाहिए। यहीं से दोनों प्रकार के विचारों का जन्म होता है। पहला भाग मनोमय लोक के ऊपरी भाग में अमूर्त विचार से और निचले भाग से मूर्त विचार सम्बन्ध रखता है। दोनों भाग को तंत्र में उच्च मनोमय कोश और निम्न मनोमय कोश कहते हैं। लेकिन दोनों एक ही सिक्के के दो भाग हैं। कहने की आवश्यकता नहीं अमूर्त विचारों का केन्द्र उच्च मनोमय कोश है और मूर्त विचारों का केन्द्र निम्न मनोमय कोश है। लेकिन सभी प्रकार के मानसिक क्रियाओं की अभिव्यक्तियां इन दोनों कोशों के माध्यम से होती है। निम्न मनोमय कोश परिवर्तनशील जीवात्मा का सूक्ष्म कोश

है जो प्रत्येक जन्म में बदल जाता है। यही कारण है हमें पूर्वजन्म की स्मृति याद नहीं रहती है।

विरले ही लोगों को पूर्वजन्म की घटनाएं याद रहती है। जो चमत्कार से कम नहीं है। उच्च मनोमय कोश को विज्ञानमय कोश कहते हैं। इसी को पराविद्या में कारण शरीर कहते हैं। यह आत्मा का विशेष कोश समझा जाता है। यह हर जन्म में नहीं बदलता अनन्त काल तक हर जन्म में विकास प्रक्रिया से गुजरता आ रहा है।

काल के अनन्त प्रवाह में पड़ी हमारी आत्मा का यह कोश कारण शरीर आत्मा के पूर्ण विकास के बाद उपलब्ध आत्मा के साथ ही विलीन हो जाता है। चेतना, बुद्धि और मनसः इन तीनों के माध्यम से कार्य करने वाला विज्ञानमय कोश यानि कारण शरीर है। इसे सात कोशों का विशेष कोश समझना चाहिए।

कारण शरीर का इतना महत्व क्यों है? इस पर विचार कर लेते हैं। अगर विचारपूर्वक देखा जाये तो जीवात्मा का दो वर्ग है एक है समूह जीवात्मा और दूसरा है स्वतंत्र जीवात्मा। पशु-पक्षी अन्य जीव समूह वर्ग की जीवात्मा होती है। हजारों पशु-पक्षी समूह जीवात्मा द्वारा जन्म और मृत्यु को उपलब्ध होते हैं। उसी समूह से उन्हे प्राण की गतिशीलता प्राप्त होती है। कार्यक्षमता शक्ति तथा पशुत्व को गुण-दुर्गुण आदि भी प्राप्त होते हैं। उनकी अपनी कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं होती। समूह जीवात्मा प्रकृति के अधीन है। केवल मानव को छोड़ कर प्रकृति के समस्त जीव-जन्तु प्रकृति के अधीन माने गये हैं।

कोई-कोई जीव-जन्तु शरीर छोड़ने के बाद अपने समूह जीवात्मा में मिल जाता है। समय आने के बाद पुनः जन्म ले लेता है। यही समूह जीवात्मा की परिभाषा है।

हमारे विश्व-ब्रम्हाण्ड में तीन प्रकार की नैसर्गिक ऊर्जाएं विद्यमान है इन्ही ब्रम्हाण्डीय ऊंजाओं को वैदिक भाषा में ब्रम्हा, विष्णु और शिव कहते हैं। पशु से मनुष्य होने की प्रक्रिया में सर्वप्रथम शिव ऊर्जा समूह जीवात्मा में प्रवेश करती है और मानवेत्तर जीव उस ऊर्जा के प्रभाव से समूह जीवात्मा से पृथक होकर स्वतंत्र आत्मा हो जाती है और उसके स्वतंत्र होते

ही आत्मा, बुद्धि और मनसः के मिश्रण से वह अपने लिये कारण शरीर का निर्माण कर लेती है। इसलिए कुण्डलिनी साधना में कारण शरीर यानि विज्ञानमय कोश का अपना विशेष महत्व है।

मनसः का सूक्ष्म अस्तित्व होने के कारण वह स्वतंत्र जीवात्मा, मनुष्यात्मा कहलाती है। मन का अस्तित्व केवल मनुष्य में है। इसलिए वह मनुष्य है। यही वह स्थान है जहां से मनुष्यात्मा की स्वतंत्र जीवन यात्रा प्रारम्भ हो जाती है।

शिव ऊर्जा सर्वप्रथम जीवन का सूत्र है और पालक विष्णु ऊर्जा तथा विकास ब्रम्ह ऊर्जा है। यही कारण है मनुष्य का नैसर्गिक आर्कषण शिव के प्रति ज्यादा होता है। क्योंकि हमारी आत्म ऊर्जा का मूलभूत सम्बन्ध शिव से ही है और कुण्डलिनी साधना के मूल में शिव ही है और है उनकी शक्ति। शक्ति उनसे अलग नहीं है, अभिन्न है। हमारी आत्मा शिव ऊर्जा के द्वारा मानव योनि में जन्म लेती है और पूर्ण ज्ञान को उपलब्ध होने पर शिव ऊर्जा में विलीन हो जाती है। जब जीवात्मा, समूह जीवात्मा से शिव ऊर्जा के कारण स्वतंत्र जीवात्मा होती है यानि मनुष्य को फिर कभी भी समूह जीवात्मा में नहीं कहा जा सकता है। वह बार-बार स्वतंत्र जीवात्मा के रूप में ही जन्म लेती रहती है यानि मानव रूप में। क्योंकि यहीं से आत्मा की उत्तरोत्तर प्रगति होती चली जाती है।

जैसाकि पिछले प्रकरण में बतलाया गया है आत्मा अपने मूल से जब नीचे उतरती है इसी को आत्म पतन कहते हैं। वह समूह जीवात्मा में रहती है और उसी समूह जीवात्मा में वह विकास करती रहती है स्वतंत्र जीवात्मा होने के लिये। तब शिव ऊर्जा उसे प्राप्त होती है। जिस प्रकार हजारों शुक्राणु होते हैं परन्तु गर्भ में एक ही शुक्राणु प्रवेश कर पाता है। उसी प्रकार समूह जीवात्मा में से कुछ ही शिव ऊर्जा हो ग्रहण कर पाते हैं। जो ग्रहण कर लेता है उसी क्षण वह स्वतंत्र जीवात्मा बनने की प्रक्रिया में शामिल हो जाता है। यही प्रथम चरण है जहां से मनुष्यात्मा की जीवन यात्रा शुरू होती है। यहीं से जन्म-मृत्यु का चक्र प्रारम्भ हो जाता है। जन्म-मृत्यु का मूल कारण है आत्मा को अज्ञान से ज्ञान की ओर ले जाना। जब तक उसे अपने अस्तित्व यानि अपना स्व का ज्ञान नहीं हो जाता तब तक

जन्म-मृत्यु का चक्र चलता रहता है। एक के बाद एक जन्मों तक वह विभिन्न प्रकार का अनुभव प्राप्त करता चला जाता है। विकास क्रम में उसकी आत्मिक, बौद्धिक और मानसिक शक्तियां हर जन्म में विकसित होती चली जाती है।

विकास का यह अद्‌भुत क्रम निर्बाध गति से चलता रहता है और आत्मा अपने ज्ञान पथ पर अग्रसर होती चली जाती है। साथ ही उस विश्वास के आधार पर ब्रम्हाण्ड में विद्यमान अमूर्त तत्व के कारण शरीर मूर्त रूप प्रदान करता रहता है। समय के साथ-साथ वे मूर्त तत्व अवचेतन मन से चेतन मन की ओर आता है और विचार अथवा कल्पना के आश्रय से मूर्त रूप मस्तिष्क में प्रगट होते हैं फिर साकार रूप ले लेते हैं।

अगर विचारपूर्वक देखा जाये तो कारण शरीर आकारहीन, रूपहीन, तेजोमय प्रकाश है। यह शुभ्र, हल्का पीला, हरा और हल्का गुलाबी प्रकाशयुक्त रंग है। यही तीनों रंग आत्मा, बुद्धि और मन के प्रतीक हैं। यही तेजोमय प्रकाश के रूप में प्रगट होते ही उन रंगों में से स्फुरण होने लगता है। यह स्फुरण सूक्ष्मतम् परमाणुओं के कण होते हैं। इन कणों में विशेष प्रकार की ब्रम्हाण्डीय विद्युत चुम्बकीय ऊर्जा होती है। जिसके फलस्वरूप उन कणों का एक विशेष समूह बन जाता है। यही कणों का समूह कारण शरीर का विशेष आवरण बनता है। उस आवरण का अपना रूप होता है और होता है आकार। उसी को सूक्ष्म शरीर कहते हैं।

सूक्ष्म शरीर एक प्रकार से कारण शरीर का पारदर्शक आवरण है। जिसके अन्दर कारण शरीर की तेजोमय ऊर्जा बाहर विकीर्ण होती रहती है। सूक्ष्म शरीर के आवरण में कारण शरीर एक प्रकार से सुरक्षित रहता है और सूक्ष्म शरीर के निर्माण होते ही कारण शरीर एकदम सक्रिय हो उठता है और आत्मा, बुद्धि और मन अपने-अपने गुण, स्वभाव प्रगट करने लगते हैं। जिसके कारण सूक्ष्म शरीर भी क्रियाशील हो जाता है।

आपको ज्ञात होना चाहिए बिना सूक्ष्म शरीर के कारण शरीर अकेला जन्म नहीं ले सकता है भौतिक शरीर में। सूक्ष्म शरीर की सहायता से कारण शरीर में विद्यमान आत्मा पहली बार स्थूल शरीर ग्रहण करती है। मानव शरीर में आविर्भूत होते हुए आत्मा जन्म-पुनर्जन्म और कर्म के

नियमों के अनुसार मानवीय विकास की प्रक्रिया से होकर गुजरती है। इस मानवीय विकास के फलस्वरूप आत्मा में बीज रूप से विद्यमान आत्मिक गुण एवं बौद्धिक गुण जो अभी तक अव्यक्त रहता है वह धीरे-धीरे व्यक्त होने लगता है। मनुष्य रूप में अनेकों बार जन्म लेने के बाद बनता है मानव जिसके अन्दर दया, परोपकार आदि होता है।

बहुत सारे मनुष्य काफी क्रूर होते हैं। उनके अन्दर हिंसा भरी रहती है। हत्या करना, लोगों को कष्ट देना आदि। आप समझ लें वह मनुष्य सीधे क्रूर पशु योनि से आया है। उसके क्रम विकास का प्रथम चरण है। उसे मानव बनने में कई जन्म लेने पड़ेंगे। उसी प्रकार जो पशु-पक्षी मनुष्य के आस-पास रहते हैं यानि उन्हे मनुष्य के बीच रहना अच्छा लगता है तो आप अवश्य जान लें वह समूह आत्मा से निकल कर स्वतंत्र आत्मा बनने की दिशा में अग्रसर है।

तंत्र में पशु भाव, वीर भाव, दिव्य भाव मनुष्य के विकास क्रम को दर्शाता है। जब मनुष्य पशुभाव में रहता है उसके अन्दर हिंसा, क्रोध, लालच भरा रहता है। जब वह विकास करते-करते त्याग बलिदान, परोपकार और अध्यात्म की ओर अग्रसर होता है तब चरम अवस्था को प्राप्त कर लेता है। उसी पल उसमें दिव्य भाव प्रगट हो जाता है। जिसके फलस्वरूप स्व का बोध होता है वह शरीर नहीं है कुछ और है। यहीं से आत्म ज्ञान को उपलब्ध होता है।

अब प्रश्न यह है कि कारण शरीर (विज्ञानमय कोश) का इतना महत्व क्यों है? योग कहता है कारण शरीर एक प्रकार से मनुष्य के प्रथम दिन से वर्तमान जीवन के जितने भी कर्म हैं उसका बीज रूप में विवरण अंकित होता रहता है। एक प्रकार से यह कभी न खत्म वाला संग्रहालय है। कारण शरीर का पहला कार्य है अमूर्त को मूर्त रूप प्रदान करना। दूसरा है मानवीय विकास क्रम में उनके फलों और अनुभव तथा ज्ञान को संग्रहित करना है। जो अन्तहीन क्रमिक विकास प्रक्रिया में जीवात्मा अपने विभिन्न जीवन चक्रों में उपलब्ध करती है। जीवात्मा अपने कर्मानुसार जीवन जीती है और उस जीवन के अच्छे-बुरे अनुभवों को भी कारण शरीर में संग्रहित कर लेती है।

प्रत्येक नये जन्म में जीवात्मा पूर्व जन्म के संचित कर्मों के साथ नया जीवन प्रारम्भ करती है। अगर विचारपूर्वक देखा जाये वर्तमान में जीवात्मा को पूर्वजन्म के कर्मों का भान नहीं रहता। इसका कारण यह है कि नया भौतिक शरीर वासनामय शरीर और निम्न मनोमय शरीर जो चेतन मन के निम्न स्तर के अंश से बना होता है। उसी को लेकर आत्मा नया भौतिक जीवन प्रारम्भ करने पर उसे पूर्व जन्मों में प्राप्त ज्ञान व कर्म की कोई स्मृति नहीं रहती। लेकिन उन जन्मों से सम्बन्धित जीवनों, क्षमताओं और गुण-अवगुण शक्तियों के रूप में विकसित तथा कारण शरीर में समाविष्ट समस्त अनुभवों का पूरा लाभ अवश्य मिलता है। ऐसे बहुत सारे उदाहरण हैं जो पूर्वजन्म के संस्कार के कारण ज्ञानी, विद्वान, अविष्कारक हुए। रही उनकी स्मृति की बात। नया चेतन मन अथवा नया मनोमय कोश उस अनुभव के बीच से गुजरा ही नहीं रहता। वह तो नये शरीर में, नये रूप में होता है। क्योंकि वह चेतन मन के एक निम्न स्तर के अंश से बना होता है। यही कारण है कि उस मनोमय कोश में उन अनुभवों का कोई ज्ञान नहीं रहता। जहां तक प्रश्न जीवात्मा का उसके पास प्रत्येक जन्म का ज्ञान विद्यमान रहता है। एक प्रकार से पूरा का पूरा विवरण होता है।

साधक अपनी साधना के बल पर अपने पूर्वजन्म के कर्मों को, ज्ञान को और अनुभव को जान सकता है। चेतना की इस उच्च अवस्था को समाधि द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। इसलिए कारण शरीर की साधना ध्यान से ही प्रारम्भ होती है।

अगर विचारपूर्वक देखा जाये तो कारण शरीर में हमारे सभी कर्मों का संग्रह बीज रूप में विद्यमान रहता है और समय के अनुसार अच्छे-बुरे कर्म फलीभूत भी होते रहते हैं। इसी को हम भाग्य अथवा पुनर्जन्म का प्रारब्ध कहते हैं। कर्म के संग्रह में से कुछ जन्मों के कर्मों का निर्णय हो जाता है यानि उसका फल अथवा परिणाम मिल जाता है।

वे कर्म एक प्रकार से नष्ट हो जाते हैं और उसके स्थान पर नये कर्म एकत्र हो जाते हैं। देखा जाये तो यह एक प्रकार से चित्रगुप्त का बहीखाता है। हम कर्म करते रहेंगे। चित्रगुप्त का खाता खुला रहेगा। कर्म पूर्णतया समाप्त हो जाने पर ही बन्द होता है। कर्मक्षय केवल ज्ञान के क्रमिक

विकास से ही सम्भव है। ज्ञानानं मुक्ति....यह साधना द्वारा ही सम्भव है।

साधना यानि तपस्या। जैसे-जैसे तप का प्रभाव बढ़ता है आत्मा को अपने पूर्वजन्म के अच्छे-बुरे कर्मों का ज्ञान होने लगता है। जब उसे पूर्ण ज्ञान हो जाता है यानि आत्म तत्व की उपलब्धि होती है तब उसके सामने सारा रहस्य स्वयं खुल जाता है। जन्म-पुनर्जन्म की सभी कर्म चाहे वह अच्छे रहें या बुरे वे सब अज्ञानता के कारण थे उससे आत्मा का कुछ लेना देना नहीं था। वह तो सभी कर्मों की साक्षी बस थी। यह ज्ञान होते ही सारे कर्म तप में भस्म हो जाते हैं।

उसी क्षण कारण शरीर स्वच्छ और तेजोमय होकर अपने मूल में लीन हो जाता है और आत्मा अपने निज रूप की ओर चल पड़ती है।

कहने का तात्पर्य यह है कि मनुष्य का एकमात्र उद्देश्य है पूर्णत्व की प्राप्ति। पूर्णत्व का तात्पर्य है जीवात्मा का अपने विकास की चरम सीमा पर पहुंचना। सिद्धावस्था को उपलब्ध हो जाने के पश्चात विकास की अन्तिम सीमा यानि चरम सीमा पर पहुंच जाती है जीवात्मा। इसी को मुक्ति, मोक्ष कहते हैं और कहते हैं निर्वाण।

वैश्वानर जगत

हमारा भौतिक शरीर द्वैत का जगत है। मगर अन्य जगह द्वैत नहीं है वहां एक ही भाव है। भौतिक जगत की जहां सीमा समाप्त होती है वहीं से वासना जगत यानि प्रेत लोक की सीमा शुरू हो जाती है। वासना जगत को भाव जगत भी कहते हैं।

भाव जगत एक सीमा पर है और दूसरी सीमा पर सूक्ष्म जगत है। सूक्ष्म जगत अत्यन्त विस्तृत है। इसलिए इसे चार भागों में विभक्त किया गया है। प्रत्येक भाग एक-दूसरे से सूक्ष्म से सूक्ष्मतम् हैं। इन चारों भागों में और वहां के वातावरण के अनुरूप संस्कार वाली आत्माएं निवास करती हैं। सूक्ष्म जगत के चौथे सूक्ष्मतम् भाग को योगीगण वैश्वानर लोक कहते हैं। इस लोक में सूक्ष्मतम् भावना प्रधान है यानि प्रवाह है।

इस लोक की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वहां सूक्ष्मतम् भावना प्रधान वे तमाम घटनाएं विद्यमान रहती हैं जो भूतकाल में घट चुकी हैं या भविष्य में घटने वाली होती हैं।

योगी चलचित्र की तरह देख सकता है। वैसे वैश्वानर लोक में उच्च अवस्था प्राप्त योगी ही प्रवेश कर सकने में समर्थ होता है। जब उनकी आत्मा तुरीय अवस्था को उपलब्ध हो जाती है। तब वे सविकल्प समाधि की स्थिति में प्रवेश कर सकने में समर्ध हो जाते हैं।

यह मैं निःसंकोच कह सकता हूं कि विश्व ब्रम्हाण्ड में सूक्ष्म विचारमय और भावमय जगत और लोक-लोकान्तर भी हैं। जिनका अस्तित्व अपार्थिव है। वह आन्तर लोक अथवा आन्तर जगत है। भारतीय संस्कृति उन्हे वैश्वानर लोक की संज्ञा देता है। पश्चिम के कुछ वैज्ञानिक परामनोविज्ञान की सहाय्यता से वैश्वानर लोक के अस्तित्व का अनुभव कर चुके हैं और अपने वैज्ञानिक तरीकों के माध्यम से प्रवेश करने का प्रयास भी कर रहे हैं। अगर देखा जाये तो यह भौतिक विज्ञान का एक अद्भुत मोड़ होगा। पहले सूक्ष्म जगत की खोज व शोध में न्यूटनीय मैकेनिक्स की सहायता ली जा रही थी। किन्तु अब उसके स्थाने पर क्वाटंम मैकेनिक्स ने ले ली। जिसके द्वारा गहन शोध चल रहा है अदृश्य जगत से सम्पर्क करने के लिए।

वैश्वानर लोक पृथ्वी के मनुष्यों और अन्य लोक-लाकान्तरों के मानवेत्तर प्राणियों के विचारों, भावनाओं और मन की सूक्ष्म अवस्थाओं का लोक है। योग के अनुसार मनुष्य की चार अवस्थाएं हैं। जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय है। इनसे सम्बन्धित चार भिन्न-भिन्न शरीर हैं। स्थूल शरीर, वासना शरीर, सूक्ष्म शरीर और मनोमय शरीर। मन की चार अवस्थाएं हैं जिनका सम्बन्ध उपर्युक्त चारों अवस्थाओं और चारो प्रकार के शरीरों से है।

मन वास्तव में आत्मा का क्रियाशील रूप है वह जिस अवस्था और जिस शरीर में रहता है सृष्टि करता रहता है। योग की उच्चतम् अवस्था समाधि में मन तुरीय अवस्था में और मनोमय शरीर में विद्यमान रह कर वैश्वानर जगत से सम्बन्ध स्थापित करता है।

योग के इस विलक्षण स्थिति में योगीगण मनोमय शरीर द्वारा सूक्ष्मतम् प्राण वायु (ईथर) के सहयोग से वैश्वानर जगत में प्रवेश करते हैं और ज्ञान-विज्ञान के विपुल भण्डार को लेकर पुनः स्थूल शरीर में वापस आ जाते हैं। भारतीय संस्कृति और साधना ने वैश्वानर लोक को सर्वश्रेष्ठ

और उच्चतम् ज्ञान-विज्ञान का विपुल भण्डार बतलाया है। इस सत्य को परामनोविज्ञान और वैज्ञानिकों ने स्वीकार कर लिया है।

इसका कारण यह है कि मनोविज्ञान मन की प्रथम अवस्थाओं का विज्ञान है और परामनोविज्ञान शेष दो अवस्थाओं का। विज्ञान की दृष्टि से जगत मानव से निरपेक्ष है और मानव जगत से।

विज्ञान जीवन और जगत में अर्थ खोजता है। लेकिन इस दिशा में उसके लिए सबसे बड़ी समस्या यह है कि वह अपने आप को ऐसे क्षेत्र में पाता है जहां सारे वैज्ञानिक साधनों और प्रयोगों की सीमा समाप्त हो जाती है। साथ में उसे अपनी सीमा और विवशता का एहसास होने लगता है। इसकी वास्तविकता इसी से समझी जा सकती है कि पदार्थ की मूल ईकाई इलेक्ट्रॉन के विश्लेषण में वैज्ञानिक असमर्थ हैं। वे उसकी केवल कल्पना ही कर सकते हैं। कुछ समय पूर्व पदार्थ को ही भौतिक सत्ता का सर्वोपरि मानने वाले वैज्ञानिकों को जब पदार्थ की मूल ईकाई इलेक्ट्रॉन की गतिविधियों में कोई कार्य कारण सम्बन्ध स्थापित करने में सफलता मिली तो उन्हे यह मानने पर विवश होना पड़ा कि भौतिक सत्ता से आगे सम्भवतः कोई अभौतिक सत्ता भी है। जो एक नीरव चैतन्य है। जो भौतिक और चेतना स्तर पर सम्भव नहीं है और वह अभौतिक सत्ता बाह्य जगत में नहीं बल्कि मानव मन में है।

क्वान्टम मैकेनिक्स

मनोविज्ञान के जिस सूक्ष्म सिद्धान्तों का आश्रय लेकर क्वान्टम मैकेनिक्स के द्वारा वैज्ञानिक स्थूल जगत से सूक्ष्म जगत में प्रवेश कर रहे हैं। किन्तु अपने लक्ष्य में वे कहां तक सफल हो सकेंगे यह अभी कहना अतिश्योक्ति होगी। सफलता प्राप्त करने के उद्देश्य से पश्चिमी वैज्ञानिक इस समय भारतीय योग को पहले से ज्यादा महत्व दे रहे हैं। क्योंकि वे जानते हैं कि बिना योग की सहायता लिये सूक्ष्म वैश्वानर लोक में प्रवेश करना असम्भव है।

वैश्वानर लोक में विश्व ब्रम्हाण्ड के समस्त जगत का लोक-लोकान्तर एवं ग्रह-नक्षत्र तथा ब्रम्हाण्डीय ऊर्जा (कास्मिक रेज) द्वारा अदृश्य सम्बन्ध है। हम इसे प्रकृति प्रदत्त सम्बन्ध ही कहेंगे। विश्व ब्रम्हाण्ड में दो ही मूल

तत्व है जड़ तत्व और चेतन तत्व। पहला है दृश्य यानि स्थूल और दूसरा है अदृश्य यानि सूक्ष्म। एक की अधिकता और दूसरे की न्यूनता से स्थूल सृष्टि तथा दूसरे की अधिकता से और पहले की न्यूनता से सूक्ष्म दृष्टि सम्भव होती है। तंत्र में इन्ही दोनों तत्वों को शिव तत्व और शक्ति तत्व की संज्ञा दी गयी है। देखा जाये तो वैश्वानर लोक में शक्ति तत्व सम्पूर्ण विश्व ब्रम्हाण्ड को नियंत्रित करती है। इसीलिये शक्ति तत्व को मूल शक्ति, पराशक्ति और जगत नियंत्रणकारिणी शक्ति की संज्ञा दी गयी है।

इसका प्रथम अभिव्यक्त रूप ब्रम्हाण्ड ऊर्जा यानि कास्मिक ऊर्जा है। जिससे सम्पूर्ण विश्व का नियंत्रण होता है। सूक्ष्मतम् प्राण वायु यानि ईथर द्वारा सूर्य रश्मियों और ब्रम्हाण्ड ऊर्जाओं से जो अदृश्य संघर्ष होता है। उसके परिणामस्वरूप तीन प्रकार की विद्युत चुम्बकीय तरंगों यानि इलेक्ट्रॉन, प्रोटान और न्यूट्रान का आविर्भाव होता है। जिसके संयोग से अणु-परमाणुओं की सृष्टि होती है। इन्ही के परिणाम द्वारा जगत और मानव में ज्ञान शक्ति, इच्छा शक्ति, क्रिया शक्ति, मनः शक्ति, विचार शक्ति, संकल्प शक्ति और मन, प्राण, वाक के रूप में अभिव्यक्त विकसित और क्रियाशील है।

अद्‌भुत शक्तियों का विकास

वैश्वानर लोक केवल चेतन तत्व युक्त होने के कारण अनन्त शक्तियों का भण्डार है। उन्हे कार्यो की सहायता के लिए अथवा लौकिक-पारलौकिक कल्याण के निमित्त उपयोग के लिए भारतीय संस्कृति ने दो मुख्य साधन बतलाये हैं- पहला है योग साधना और दूसरा है तंत्र साधना।

योग-तंत्र का मुख्य विषय है संकल्प शक्ति, विचार शक्ति और प्राण शक्ति। यही शक्तियां योग साधना का मूल आधार हैं। इसी प्रकार तंत्र साधना का मूल आधार है मनः शक्ति के साथ तीनों शक्तियां हैं।

एक की शक्ति की अधिकता के कारण तंत्र को योग से विशिष्ठ माना गया है। योग में जहां प्राण की प्रधानता है वहीं तंत्र में मन की प्रधानता है। योगी और तंत्र साधक इन शक्तियों को विकसित और उन्नत कर वैश्वानर लोक में प्रवेश करते हैं और जब वापस लौटते हैं तो वही शक्तियां योगजन्य और तंत्रजन्य सिद्धियों और चमत्कारों के रूप में प्रगट होती है।

साधारण लोगों में संकल्प, विचार आदि शक्तियां कमजोर होने के कारण वे कुछ भी करने में असमर्थ होते हैं या उन्हे कठिन संघर्ष करना पड़ता है।

योग तंत्र साधना का प्रथम लक्ष्य है उन शक्तियों को विकसित करना ताकि वे वैश्वानर लोक से सम्पर्क स्थापित कर सके और उनमें प्रवेश कर सके। मानव शरीर में उपयुक्त तीनों विद्युत चुम्बकीय तरंगों के केन्द्र हैं मतिष्क, हृदय और नाभि। इनकी सहायता से संकल्प विचारादि शक्तियां जब उन्नत और पूर्ण चैतन्य होती हैं तब मस्तिष्क से अल्फा तरंगे और चित्त से एवं नाभि से बीटा और डेल्टा तरंगे निकलती हैं। ये तीनों विद्युत चुम्बकीय तरंगों का परिवर्तित रूप है।

अल्फा, वीटा और डेल्टा ये तीनों तरंगों संकल्प, विचार, मन आदि शक्तियों की वाहिका है। जिस प्रकार वैज्ञानिक उपकरणों की सहायता से ध्वनि, शब्द और चित्र आदि विद्युत धारा में परिवर्तित होकर रेडियो, फोन, टेलीविजन आदि में प्रगट होते हैं उसी प्रकार शरीरस्थ तीनों केन्द्रों के चक्रों द्वारा संकल्पादि शक्तियां उपर्युक्त तीनों तरंगों में परिवर्तित होकर वैश्वानर लोक में प्रगट होती है। संकल्प द्वारा योगी साधक इनकी सहायता से कहीं भी प्रगट हो सकता है। किसी भी वस्तु का निर्माण कर सकता है और प्रकृति में कुछ भी कर सकता है। सिद्ध साधकों के चमत्कारों का वर्णन जो हम सुनते हैं या कभी-कभी देखने को मिलता है और जिसके कारण हम सोचने पर विवश हो जाते हैं। उनका यही मूल रहस्य है। जैसाकि पिछले प्रकरण में बतलाया गया है कि मन के दो रूप हैं चेतन और अवचेतन। इन दोनों रूपों का सम्बन्ध उसकी चारों अवस्थाओं से हैं। सुषुप्ति और तुरीय अवस्था में होने वाले अवचेतन मन के क्रियाकलापों से साधारण लोग अनभिज्ञ रहते हैं।

योग तंत्र के अनुसार मन की एक और अवस्था है जिसे तुरियातीत अवस्था कहते हैं। परामनोविज्ञान इस अवस्था को अभी जान समझ नहीं पाया है। इस अवस्था में मन का अतिसूक्ष्म रूप मनसातीत है। अवचेतन मन में अकल्पनीय और अविश्वसनीय शक्तियां तो हैं ही इसे परामनोवैज्ञानिक गण समझते तो हैं परन्तु उन्हे यह नहीं मालुम है कि मनसातीत रूप और तुरीयातीत अवस्था में कितनी अकल्पनीय शक्तियां विद्यमान है। इसे उच्च

अवस्था प्राप्त योगी और साधक ही समझ सकता है। मन की शक्ति पदार्थ की शक्ति से कहीं अधिक और अनन्त है। तुरीयातीत अवस्था समाधि की एक ऐसी अवस्था है जिसमें मन की शक्ति असीम हो जाती है। इस स्थिति में इच्छा शक्ति द्वारा किसी भी जड़, पदार्थ को चेतनायुक्त किया जा सकता है। किसी भी वस्तु के रूप, गुण का परिवर्तन किया जा सकता है।

देश-काल की सीमा का उल्लंघन कर एक से अधिक स्थानों पर प्रगट हुआ जा सकता है। आकाश संचरण, दूर ध्वनि श्रवण, दूरस्थ मनुष्य के चित्त की अवस्था एवं उसकी गतिविधियों का ज्ञान आदि जितनी भी चमत्कारपूर्ण एवं आश्चर्यजनक योग सिद्धियां हैं उन सबके मूल में मन की तुरियातीत अवस्था की ही शक्तियां कार्य करती है। इतना ही नहीं इन शक्तियों के माध्यम से सूक्ष्म शरीर द्वारा सूक्ष्म जगत व लोकों में भ्रमण भी करते हैं। काल की सीमा उन्हे बांध नहीं सकती।

मन की जितनी अवस्थाएं हैं उनमें तुरीय अवस्था और तुरीयतीत अवस्था सर्वोच्च अवस्थाएं हैं। अब तक विज्ञान ने जितने भी आविष्कार किये और जितनी भी प्रगति की उन सबके मूल में मन की यही अवस्थाएं रही हैं। विश्व के महान वैज्ञानिक अलबर्ट आईन्सटीन ने भावपूर्ण शब्दों में कहा- ज्ञान हमारा वहीं तक साथ दे सकता है जहां तक हम उसे जानते हैं और सिद्ध कर सकते हैं। परन्तु एक स्थिति ऐसी भी आती है जहां मस्तिष्क सहसा बोध के उच्चतर स्तर पर पहुंच जाता है। इसको सहजोपब्धि या अन्तर ज्ञान कुछ भी कह सकते हैं। संसार में महान अविष्कार मनुष्य के प्रज्ञा के आगे की इस रहस्यमयी अनुभूति द्वारा ही सम्भव है।

अन्तरंग साधना

योग और तंत्र में कोई अन्तर नहीं है। उसकी जितनी भी अन्तरंग साधनाएं हैं। वे सब मन की तुरीय और तुरीयातीत अवस्थाओं की साधनाये हैं।

तंत्र निर्देशित और योग निर्दिष्ट विभिन्न रहस्यमयी गोपनीय क्रियाओं और पद्धतियों द्वारा मन के सभी रूपों, स्थितियों और अवस्थाओं में प्रवेश कर उसकी शक्तियों को अर्जित करना, उनके द्वारा वैश्वानर लोक दैवी शक्तियों से तादात्म्य स्थापित करना तथा उनकी सहायता से लौकिक-

पारलौकिक कार्यों का सम्पादन करना, उच्च कोटि के योगी और साधक का लक्ष्य होता है।

मानवेतर अथवा दैवी शक्तियों को भौतिक धरातल पर केन्द्रीभूत करने के लिए तीन मुख्य आधार है। जिन्हे पीठासन कहते हैं। जिसका अर्थ है शक्ति केन्द्र। जिसका सम्बन्ध नाभि, हृदय और मस्तिष्क से है। इन तीनों को शक्ति का केन्द्र बतलाया गया है। इन तीनों पीठासनों द्वारा दैवी शक्तियां मन की आदि शक्तियों से अभिन्न होकर लौकिक-पारलौक़िक कार्य हेतु चेतन में और सक्रिय हो उठती है। प्रथम पीठासन से प्राण शक्ति, दूसरे से प्राण एवं मनः शक्ति और तीसरे में विचार शक्ति कार्य करती है।

जो लोग पीठ विज्ञान के रहस्यों से परिचित हैं वे जानते हैं कि दैवीय प्रतिमा का निर्माण व प्राण प्रतिष्ठा मन की अदृश्य शक्तियों और दैवीय शक्तियों को ध्यान में रख कर की जाती है और दैवीय प्रतिमा के सम्बन्धित ध्यान, श्लोकों, उपासना, साधना पद्धतियों की रचना की जाती है। इसी तथ्य के आधार पर यंत्रों में वर्णाक्षरों, बीजाक्षरों का संयोजन-नियोजन, शब्दावलियों की रचना तथा यंत्रों में अंकाक्षरों क़ी स्थापना की जाती है। इनके प्रणेताओं को हमारे शास्त्रकारों ने मंत्रद्रष्टा अथवा ऋषिमुनि नाम दिया। उन्होने जो भी ज्ञान प्राप्त किया वह समाधि की उच्चतर अवस्था के द्वारा प्राप्त किया।

अनाहद चक्र और साधना

अनाहद चक्र हृदय स्थान में स्थित हैं यह वायु तत्व प्रधान अरूण रंग यानि सिन्दूरी आभा लिये है। शिव संहिता में गहरे लाल रंग का वर्णन मिलता है। वैसे यह सिन्दूरी रंग द्वादश पद्मदल सदृश है।

इस चक्र के दल क, ख, ग, घ, ड., च, छ, ज, झ, ञ, ट तथा ठ इन बारह अक्षरों वाले हैं। इस चक्र का तत्व बीज 'य' है और तत्व बीज का वाहन मृग है। महिलोक इसका लोक है और अधिपति ईशान रूद्र है। इनकी शक्ति काकिनी है। अनाहद चक्र का रूप षट्कोण है। धूम्र रंग है। गुण स्पर्श है।

तन्मात्रा से उत्पन्न स्पर्श की शक्ति, त्वचा का केन्द्र व कर्मेन्द्रिय है। प्राण और जीवात्मा का स्थान है इसके चक्र के मध्य (ऊर्ध्वमुख, अधोमुख)

त्रिकोण है। उसके मध्य में ईश्वर लाकिनी शक्ति के साथ विद्यमान है। यह वह चक्र है जहां से अनाहद नाद की ध्वनि योगी सुनता है। यह नाद बिना दो पदार्थो के संयोग से अनवरत चलता रहता है। उन बीज मंत्र से रहस्यमयी ध्वनियां निकलती रहती हैं। इस चक्र पर बारह सूक्ष्म शक्तियां क्रियाशील हैं। यहीं पर बारह योग नाड़ियां मिलती हैं। यह प्राण वायु का मुख्य स्थान है और अन्तःकरण का भी स्थान है। आशा, चिन्ता, पश्चाताप, सन्देह आदि स्वार्थवादी मनोभाव का स्थान है। चक्र जागृत होने पर इसके विपरीत परिणाम होता है। साधक को हृदय में संयम कर वाण लिंग नामक परम तेज पर ध्यान करना चाहिए।

शिव संहिता के अनुसार इस चक्र पर ध्यान करने से तत्व चिन्तन और बीज मंत्र जप करने से साधक पिनाकी सिद्धी तथा काकिनी शक्ति की कृपा प्राप्त होती है। जिसके कारण उसे सिद्धों और योगिनियों के दर्शन लाभ होते हैं। उसे अपूर्व ज्ञान प्राप्त होता है। इच्छा मात्र से वह कहीं भी गमन कर सकता है।

शिवसार तंत्र के अनुसार जो साधक नित्य बाण लिंग पर ध्यान लगाता है। वह त्रिकालदर्शी और जितेन्द्रिय होता है। इस चक्र के अनाहद नाद को ही सदाशिव कहते हैं। यही त्रिगुणामय ऊंकार का व्यक्त रूप है और जीवात्मा का यही स्थान है।

अनाहद चक्र के यंत्र को इस प्रकार स्थापित करें कि वह यंत्र साधक के हृदय के सामने हो। कम से कम एक हाथ की दूरी हो साधक और यंत्र के बीच। सिन्दूरी रंग का आसन लें। पहले तत्व बीज मंत्र का जप करें। फिर बीज मंत्र का जप करना चाहिए तीन माह तक।

◆◆◆

प्रसंग सोलह
आनन्दमय शरीर और विशुद्ध चक्र

आनन्दमय कोश यानि शरीर का यह पांचवां शरीर है। योग में इसे आत्मा का अन्तिम आवरण माना है। इसकी यह विशेषता है यह पूर्णरूपेण शुद्ध है। इसमें किसी भी प्रकार का विकार नहीं है। वैसे देखा जाये तो विज्ञानमय शरीर की उपलब्धि योग तंत्र में सबसे बड़ी उपलब्धि मानी जाती है। चक्रों का बोध प्राणमय शरीर में होता है, जागरण मनोमय शरीर और चक्रों का उत्थान विज्ञानमय शरीर में होता है। षट्चक्र का क्रमिक भेदन अथवा जागरण इसी शरीर में होता है।

कुण्डलिनी साधना की अन्तिम उपलब्धि है सहस्रार का भेदन। जब साधक को आनन्दमय शरीर की उपलब्धि अथवा साधना द्वारा ज्ञान होता है। तभी कुण्डलिनी शक्ति की स्थिति भी सहस्रार में होती है। सहस्रार चक्र में शिव-शक्ति का मिलन अथवा सामरस्य भाव का जो आनन्द है वह आनन्दमय शरीर की परम उपलब्धि है।

विज्ञानमय शरीर में कुण्डलिनी शक्ति का उत्थान होता है। उत्थान होते ही योगी भौतिक जगत यानि वस्तुपरक सत्ता का अतिक्रमण कर आत्मपरक सत्ता यानि आन्तर जगत में प्रवेश कर जाता है। आन्तर जगत में वह जो ज्ञान की उपलब्धि होती है उसी का नाम है आन्तरज्ञान।

अगर विचारपूर्वक देखा जाये तो विज्ञानमय शरीर में हमारी बोधक्षमता निर्मल और स्वच्छ हो जाती है। जिसके फलस्वरूप हमें सब कुछ वैसा ही दिखाई देता है जैसा वह है अनन्त अपरिमित। जब तक ऐसा नहीं होता सत्य और यथार्थ, नित्य और अनित्य एक जैसा प्रतीत होते हैं।

आनन्दमय शरीर हमारी आत्मा का परम शरीर है और है दिव्य और परम शरीर आत्मा का अन्तिम आवारण है। जब तक हम उसे उपलब्ध नहीं होते तब तक ज्ञान बना रहता है। जब तक ज्ञान बना है तब तक शरीर

है और है द्वैत। कुण्डलिनी साधना की अन्तिम साधना द्वैत को अद्वैत में परिणित करना है। वास्तव में यह साधना आनन्दमय शरीर की साधना है। जो ज्ञान की चरम अवस्था पर आधारित है। इसलिए अत्यन्त सूक्ष्म है इसका विश्लेषण सम्भव नहीं है। अगर विचारपूर्वक देखा जाये तो योग मार्ग और तंत्र मार्ग की अन्तिम साधना द्वैत को अद्वैत में परिणत होने की है। इस साधना में साधक अपने आनन्दमय शरीर का उपयोग करते हैं। वास्तव में यह साधना आनन्दमय शरीर की साधना है।

जो ज्ञान की चरम अवस्था पर आधारित है। आनन्दमय शरीर में ज्ञान द्वारा जैसे ही आत्म जागरण होता है उसी क्षण योगी आनन्द से मुक्त हो जाता है यानि आत्मा अपने निज स्वरूप में स्थित हो जाती है। जैसे विज्ञानमय शरीर में जागरण होते ही मन विचार जाल से मुक्त हो जाता है वैसे ही आनन्दमय शरीर में जागरण होने पर आनन्द से भी मुक्त हो जाता है।

इसे हम इस प्रकार समझ सकते हैं। यह आत्मा का अन्तिम कोश है यानि अन्तिम आवरण है। इस कोश की सबसे बड़ी विशेषता है कि यह पूर्णरूप से शुद्ध है। इसमें किसी प्रकार का विकार नहीं होता है। यही कारण है कि इसे विशुद्धात्मा कहते हैं।

आनन्दमय शरीर को अत्यन्त शुद्ध माना गया है। इसी के फलस्वरूप आनन्द सदैव और प्रत्येक अवस्था में मानव को उपलब्ध होता रहता है। लेकिन मानव तृष्णा आनन्द को अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझती है। यही कारण है कि मानव सदैव आनन्द की खोज में भटकता रहता है। लेकिन आश्चर्य की बात तो यह है कि वह स्वयं ही नहीं जानता कि उसे आनन्द की आवश्यकता क्यों है? क्यों भटक रहा आनन्द की खोज में?

अगर विचारपूर्वक देखा जाये तो सभी प्रकार की खोज में प्रश्न है। लेकिन आनन्द की खोज के लिए प्रश्न नहीं है। क्योंकि यह प्रश्न स्वयं में ही व्यर्थ सा प्रतीत होता है। सभी प्रकार की खोज के प्रश्न का कोई न कोई उत्तर है। लेकिन आनन्द की खोज क्यों उत्तर नहीं है।

हम यह जानने का प्रयत्न ही नहीं करते कि आनन्द को किसलिए खोजें? क्या है उद्देश्य आनन्द को उपलब्ध होने के लिए? सच पूछा जाये

तो आनन्द स्वयं अपने आप में स्वीकृत है। परमात्मा की खोज ही आनन्द की खोज है। सत्य की खोज ही आनन्द की खोज है। स्वयं की खोज ही आनन्द की खोज है। जिस खोज से सम्बन्धित प्रश्न का कोई समुचित उत्तर नहीं है वही एकमात्र आनन्द है।

आनन्द को उपलब्ध होने के लिए हम इसलिए प्रयास करते हैं कि आनन्द हमारी आत्मा का परम शरीर है। यही परम शरीर आत्मा का अन्तिम आवरण है।

इस सम्बन्ध में योग की खोज इतनी सूक्ष्म है किं उसका वर्णन शब्दों में करना सम्भव नहीं है।

वैसे योग मार्ग की अन्तिम साधना द्वैत को अद्वैत में परिणित करना है। इस साधना में साधक अपने आनन्दमय शरीर का उपयोग करता है। वास्तव में यह साधना आनन्दमय शरीर की साधना है। जो ज्ञान की चरम पराकाष्ठा पर आधारित है। इसलिए यह अत्यन्त सूक्ष्म है। इसलिए इसका विश्लेषण और विवेचन नहीं किया जा सकता है।

आनन्दमय शरीर में ज्ञान द्वारा जैसे ही आत्म जागरण होता है। उसी क्षण हम आनन्द से मुक्त हो जाते हैं यानि अन्तिम आनन्दमय शरीर से भी हमारी आत्मा अलग होकर अपने स्व स्वरूप में स्थित हो जाती है। जिस प्रकार विज्ञानमय शरीर में जागरण होते ही मन, विचार जाल, भय से मुक्त हो जाता है उसी प्रकार आनन्दमय शरीर में जागरण होने पर हम आनन्द से मुक्त हो जाते हैं।

आनन्द से मुक्त होना आवश्यक है क्योंकि उससे मुक्त होने पर हम उसे प्राप्त कर लेते हैं जो हम हैं। फिर हम शरीर नहीं रह जाते आत्मा हो जाते हैं विशुद्ध आत्मा। इसी अवस्था को योगीगण जीवभाव से मुक्ति कहते हैं यानि हम जीवभाव से मुक्त हो जाते हैं।

आपको यह ज्ञात होना चाहिए पांच कोश यानि पांच शरीर आत्मा के आवरण होते हैं वैसे सात कोश हैं। लेकिन आत्म साधना के लिए इन पांचों कोशों का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। इन आवरणों से मुक्त होने पर आत्मा अपनी विशुद्ध अवस्था को उपलब्ध होती है। जिसे योग कहता है जीवभाव से मुक्ति।

विशुद्ध चक्र और साधना

विशुद्ध चक्र कुण्डलिनी शक्ति का पांचवां केन्द्र कण्ठ देश में स्थित है। सुषुम्ना तथा सुषुम्ना शीर्ष (मेंडुला आम्लागंटा) के सन्धि स्थल पर इसका केन्द्र माना जाता है।

यह सुषुम्ना नाड़ी के हृदय के ऊपर कण्ठ प्रदेश में बतलाया गया है। मुख्य रूप से यह स्थान समस्त शरीर में प्रवाहित होने वाले उदान वायु तथा बिन्दु का है।

शिव संहिता में इस चक्र को स्वर्ण के समान कान्तिवान बतलाया गया है और गरूड़ पुराण में चन्द्रमा के समान बतलाया गया है। यह पूर्ण चन्द्र के सदृश है और आकाश तत्व का मुख्य स्थान है यानि यह आकाश तत्व प्रधान चक्र है। 'हं' बीज तत्व है और हाथी इसके तत्व का वाहक है उस पर प्रकाश देवता आसीन हैं। शब्द इस तत्व का गुण है और अधिपति देवता पंचमुख सदाशिव अपनी शक्ति चतुर्भुजा शाकिनी के साथ विद्यमान है और लोकजन है शब्द तन्मात्रा से उत्पन्न श्रवण शक्ति का स्थान और ज्ञानेन्द्रिय है। आकाश तत्व से उत्पन्न वाक शक्ति का भी स्थान माना गया है।

इस चक्र में अथवा केन्द्र में सोलह सूक्ष्म शक्तियां क्रियाशील हैं और सोलह योग नाड़ियों के सन्धि स्थल भी हैं। विशुद्ध चक्र होने वाले बीज मंत्र से स्पन्दन होने वाले बीज मंत्र हैं- आं, अं, इं, ईं, उं, ऊं, ऋं, ॠं, लृं, ॡं, एं, ऐं, ओं, औं, अं तथा अः। 'हं' तत्व का ध्यान कर बीज मंत्र को जपने वाला साधक तथा चक्र पर ध्यान केन्द्रित करता है। वह तत्व ज्ञानी शोकहीन तथा दीर्घजीवि होता है। चक्र पर भाषा और सप्तस्वरों का उद्‌गम स्थल है।

योग सूत्र में कहा गया है कंठ के नीचे स्थान प्राणादि स्पर्श होने से मनुष्य को भूख-प्यास लगती है। कंठ कूप पर संयम करने से प्राण साधना के द्वारा स्पर्श न होने से भूख-प्यास से साधक मुक्त हो जाता है।

कंठ कूप के ठीक नीचे कछुए के आकार वाली नाड़ी है। जिसे कूर्म नाड़ी कहते हैं। इस नाड़ी पर प्राण द्वारा संयम करने से साधक का चित्त और शरीर स्थिर हो जाता है।

चित्त को चक्र में लीन होने वाले साधक बाह्य विषयों को त्याग कर अपने अन्दर ही रमण करता है। आत्म शरीर में प्रवेश करने के लिए साधक को किसी भी प्रकार का प्रयास नहीं करना पड़ता है। चौथे शरीर तक पहुंचते-पहुंचते साधक के अन्दर इतनी आध्यात्मिक शक्ति पैदा हो जाती है वह पांचवे शरीर में सहज ही प्रवेश कर जाता है। आत्म शरीर का केन्द्र विशुद्ध चक्र है। इस चक्र का सीधा सम्बन्ध आत्म लोक से है। आत्म शरीर उपलब्ध होने पर साधक इसी केन्द्र के द्वारा आत्म लोक में प्रवेश करता है।

◆◆◆

प्रसंग सत्रह

ब्रम्ह शरीर और आज्ञा चक्र

पिछले प्रसंग में आत्म शरीर और उसकी उपलब्धि के विषय में चर्चा की गयी थी। वैसे देखा जाये तो आत्म शरीर हमारा पांचवां शरीर है। विज्ञान की सीमा यहीं आकर समाप्त हो जाती है। जहां विज्ञान की सीमा समाप्त होती है वहीं से रहस्यवाद की सीमा प्रारम्भ हो जाती है। जहां तक आत्मवाद है वहां तक विज्ञानवाद है।

अगर भविष्य में धर्म को विज्ञान अपने आपमें आत्मसात कर लेता है तब उसकी पहुंच आत्मा तक हो जायेगी। उस दिन निःस्सन्देह विज्ञान अपनी कसौटी पर आत्मा को कस कर उसकी परिभाषा उपस्थित कर देगा। परन्तु आत्मा से आगे बढ़ने पर सत्य मिलता है। इसलिए साधक आत्मतल तक नहीं रह सकता वह आगे बढ़ने का प्रयास करता है। साधक जब खोज पर निकलता उसकी खोज सत्य की होती है। वास्तव में उसकी खोज सत्य की नहीं बल्कि आनन्द की होती है। क्योंकि हमारा सारा जीवन अशान्ति के सागर में डूबा हुआ है। इसलिए हम आनन्द की खोज पर निकले हैं ऐसी स्थिति में हम पांचवें शरीर यानि आत्म शरीर पर ही रूक जायेंगे। इसलिए हमारी खोज आनन्द की नहीं बल्कि सत्य की होनी चाहिए। आनन्द और सत्य में काफी अन्तर है। आनन्द की प्राप्ति में शान्ति है मगर सत्य की उपलब्धि परम शान्ति है।

आत्म शरीर आनन्द का सागर है इसलिए जब हम इस आनन्द के सागर में प्रवेश करते हैं हम डूब जाते हैं। एक असीम आनन्द और शान्ति में खो जाते हैं। उस स्थिति में हमारा अहंकार तो मिट जाता है। लेकिन अस्मिता नहीं मिटती। वह रह जाती है। अहंकार और अस्मिता में काफी अन्तर है। 'मैं हूं' यह अहंकार हैं। केवल 'हूं' यह अस्मिता है। अस्मिता यानि होने का बोध। स्थूल शरीर से पांचवें यानि आत्म शरीर तक की जो

यात्रा है वह दुख से, कष्ट से, व्यथा से, पीड़ा, हिंसा, घृणा, राग-द्वेष और तमाम वासनाओं से छूटने की यात्रा है और जब इन सबसे छूट कर और अलग होकर पांचवें शरीर में पहुंचते हैं तो अपने आप से छूटने की और अपने आपसे अलग होने की यात्रा शुरू हो जाती है। कहने का तात्पर्य यह है कि पांचवें शरीर के बाद जो खोज है, यात्रा है, वह है अपने आपसे छूटने की, मुक्त होने की...। यह बात ध्यान से समझना आवश्यक है यह किसी और से मुक्ति नहीं है बल्कि स्वयं से मुक्ति है। पहली मुक्ति है भवमुक्ति। दूसरी है सायुज्य मुक्ति। भवमुक्ति हमें पांचवें शरीर में मिल जाती है मगर दूसरी यानि सायुज्य मुक्ति के लिए आगे की यात्रा करनी पड़ती है।

हमारा छठा शरीर ब्रम्ह शरीर है इस शरीर का केन्द्र है आज्ञा चक्र। इस शरीर में किसी भी प्रकार का द्वैत भाव नहीं है। साधक यहां पूर्णरूप से अद्वैत स्थिति का और अद्वैत भाव का अनुभव करता है। पांचवें शरीर में आनन्द का अनुभव प्रगाढ़ होता है और छठे शरीर में अस्तित्व का अनुभव होता है।

अस्तित्व यानि अपने आपसे। जैसे-जैसे अस्तित्व की अनुभूति प्रगाढ़ होगी वैसे ही वैसे अस्मिता का बोध समाप्त होता चला जायेगा यानि 'हूं' का भी। केवल सत का एकमात्र बोध होगा और उसी के साथ चित्त का भी बोध होगा। लेकिन इस अवस्था में साधक चित्त मुक्त हो जाता है। वह मेरी चेतना है। मात्र चेतना है ऐसा बोध होता है। मेरा अस्तित्व है ऐसा नहीं मात्र अस्तित्व है ऐसा बोध होता है।

देखा जाये तो पांचवें शरीर तक सारी व्याख्याएं वैज्ञानिक ढंग से चलती है। सारे भाव स्पष्ट रूप से व्यक्त होते चले जाते हैं। मगर छठे शरीर में आने पर सारी व्याख्याएं, भावनाएं और बातें धीरे-धीरे अपनी सीमा खोती चली जाती है। मगर संकेत होता है लेकिन बाद में। वह संकेत भी अपना अस्तित्व गवां बैठता है और हम स्वयं अपना अस्तित्व खो बैठते हैं। इसलिए परम अस्तित्व को छठे शरीर पर और छठे केन्द्र से जाना जा सकता है। वह है आज्ञा चक्र यानि कुण्डलिनी शक्ति का छठा केन्द्र। वास्तव में आज्ञा चक्र सम्पूर्ण विश्व ब्रम्हाण्ड और उसकी अनन्तता का एकमात्र द्वार है इसलिए इस केन्द्र को तीसरा नेत्र भी कहा जाता है।

आज्ञा चक्र और साधना

तीसरा नेत्र का केन्द्र आज्ञा चक्र है। आज्ञा चक्र का भेदन होने पर तीसरा नेत्र अनावृत्त होता है। वैसे भेदन के दो मार्ग हैं आन्तर मार्ग और बाह्य मार्ग। बौद्ध और तिब्बती साधक दोनों मार्ग अपनाते हैं। लेकिन भारतीय योग आन्तर मार्ग को ज्यादा महत्त्व देता है। आन्तर मार्ग की जो उपलब्धि है वह काफी महत्वपूर्ण है। क्योंकि भारतीय योग मार्ग के साधक को क्रम से एक-एक चक्र का भेदन करने के पश्चात अन्त में आज्ञा चक्र का भेदन करना पड़ता है। भेदन से साधक भूत, भविष्य, वर्तमान और अपने पूर्व जन्म को दृश्यवत् देख लेता है। लेकिन यह भौतिक उपलब्धि मानी जाती है। वैसे आज्ञा चक्र तक की साधना एक जन्म की साधना नहीं है। यह तभी सम्भव है जब सद्गुरु हो। आन्तर जगत में प्रवेश कर आत्मा से सम्बन्धित ज्ञान जिसे आध्यात्मिक ज्ञान कहते हैं। यही सच्चे अर्थों में तीसरे नेत्र की मुख्य साधना है। लेकिन यह तभी होता है जब आन्तर मार्ग में तीसरा नेत्र अनावृत होगा।

योगी शरीर के भीतर जिस स्थान पर चित्त को स्थिर करता है वह है भ्रूमध्य। यह समाधि के अवस्था में ही एकाग्र होता है। वैसे समाधि कई प्रकार की होती है किन्तु जिस समाधि द्वारा सहज अवस्था में एकाग्रचित्त किया जा सकता है वह है सविकल्प समाधि। इसी समाधि की अवस्था में भ्रूमध्य में स्थित तीसरे नेत्र के द्वारा हम स्थूल जगत की तरह सूक्ष्म जगत को भी देखते हैं यानि पारलौकिक जगत जिसे परामानसिक जगत भी कहते हैं। जिसका सम्पूर्ण विस्तार हमारे भ्रूमध्य के सामने सहज भाव से प्रगट हो जाता है और भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों काल हमारे सामने एक साथ उद्घाटित हो जाता है। इस साधना में असीम ऊर्जा की आवश्यकता पड़ती है। इसलिए साधक को मन, कर्म और वचन को सन्तुलित करना होता है।

जिस प्रकार हमारे दोनों नेत्रों में बिन्दु रूप कर्णिका है उसी प्रकार आज्ञा चक्र के मध्य में कर्णिका रूपी बिन्दु है। इसका सम्बन्ध आन्तर जगत से है यह कर्णिका संकल्प बिन्दु है। इसी को योग में तीसरा नेत्र कहते हैं। आज्ञा चक्र इसलिए कहा जाता है। हमारे जीवन में जितना भी अनुशासन

है वह सब इसी चक्र के द्वारा उत्पन्न होता है। हमारे जीवन की सारी व्यवस्था, सारी आज्ञा और सारी संगति इसी चक्र से उत्पन्न होती है।

कहने की आवश्यकता नहीं कि आज्ञा चक्र का स्थान हमारे नेत्रों के ऊपर दोनों भौहों के बीच में भ्रूमध्य में स्थित है। इस चक्र का सम्बन्ध शीर्ष ग्रन्थि (पिनियल ग्लैण्ड) तथा पीयुषिका पिण्ड से समझना चाहिए। इस चक्र के दोनों दल पर 'हं' और 'क्ष' अक्षर हैं। इसका तत्व लिंग के आकार समान मह तत्व है। तत्व बीज 'ऊँ' और तत्व गति बीज नाद है और लोक 'तपलोक' है। तत्व बीज का वाहक नाद है और चक्र का यंत्र लिंगाकार है। इसे पाताल लिंग कहते हैं। यह चक्र का लिंग है। वही मध्य में विराजमान है। पद्म में श्वेत योनि त्रिकोण है। इस त्रिकोण में अग्नि, सूर्य तथा चन्द्र मिलते हैं। आज्ञा चक्र के अधिपति देवता परम शिव चतुर्भुजा हाकिनी शक्ति के साथ श्वेत पद्म पर आरुढ़ है।

शिव संहिता में महाकाल को सिद्ध कहते हैं तथा हाकिनी शक्ति को अधिष्ठात्री कहते हैं। विशुद्ध चक्र और पांचवें शरीर के बाद आन्तर जगत की साधना प्रारम्भ होती है और आन्तर का प्रवेश द्वार छठा चक्र यानि आज्ञा चक्र और छठा शरीर यानि ब्रम्ह शरीर (कास्मिक बॉडी) है। सातवां है निर्वाण शरीर (बॉडी लेश) है। आत्मा पूर्ण विकास हो जाने पर ब्रम्ह शरीर में प्रवेश करती है। यह कोई शरीर नहीं है। यह देश, काल, पात्र के पार गहन शून्यता की अवस्था है। वह परम अवस्था है। वहां सब समाप्त हो जाता है यानि सब कुछ मिट जाता है। परमात्मा के आगोश में समा जाता है। जहां न काल रहता है, न ही बन्धन..। बन्धन मुक्त अवस्था परम शान्ति की अवस्था है। यही है आत्मा की परम अवस्था...।

आज्ञा चक्र के पास दो सूक्ष्म शक्तियां क्रियाशील रहती हैं और यहीं सन्धि क्षेत्र पर दो विशेष योग नाड़ियों का संगम है और हर क्षण सूक्ष्म ध्वनियों का स्पन्दन होता रहता है। यह स्पन्दन दो बीज मंत्रों का है अथवा तत्वों का है। 'हं' और 'क्षं' है। यह चक्र मेरुदण्ड के ऊपर सुषुम्ना शीर्ष (मेंडुला आब्लोगटा) में इड़ा, पिगला और सुषुम्ना का मिलन यानि संगम है। वैसे मूलाधार से ईड़ा, पिगला और सुषुम्ना अलग-अलग ऊपर पहुंचती है। मध्य में सुषुम्ना और दोनों तरफ इड़ा, पिगला रहती है। जो सुषुम्ना के

शीर्ष पर मिल जाती है। वह जहां मिलती है यानि सन्धि क्षेत्र है वहीं पर आज्ञा चक्र का स्थान है। योग में इसे मुक्त त्रिवेणी कहते हैं। जब योगी परम ज्ञान को उपलब्ध होकर इस मुक्त त्रिवेणी में स्नान करता है तो वह परम अवस्था को उपलब्ध होता है। यह ज्ञान शक्ति का केन्द्र है। यहीं पर बुद्धि, चित्त, अहंकार, संकल्प-विकल्प, मन और सूक्ष्म इन्द्रियों का स्थान है। यही वह स्थान है महत तत्व और प्रकृति तत्व और अव्यक्त प्रणव रूपा आत्मा का निवास है। यह वह स्थान है जिसके कारण हमारे शरीर का सन्तुलन बना रहता है। इस प्रसंग को लिखते समय मेरे जीवन की एक ऐसी घटना का स्मरण हो आया जो अविश्वसनीय है। क्योंकि इस घटना ने मेरे बाह्य जीवन को बदल डाला और आन्तर के मार्ग को प्रशस्त किया। जिसके कारण जीवन के सत्य को सच्चे अर्थों में जान पाया।

हमारे भौतिक जगत और अभौतिक जगत के बीच एक सीमा है। एक अदृश्य रेखा है। उस अदृश्य और अनन्त सीमा रेखा के पार क्या है? मेरा चित्त हमेशा से व्याकुल रहा। सच तो यह है कि इसी व्याकुलता ने मेरे मन में कई जिज्ञासाओं को जन्म दे दिया और इन्ही के कारण मुझे समाज और संसार से अलग कर दिया और ऐसे स्थान पर खड़ा कर दिया जहां अनन्त गहन शून्य है। प्रश्न यह है कि क्या उस गहन शून्य में व्याप्त परम शान्ति का अनुभव किया जा सकता है? तब व्याकुलता बढ़ी, मन अशान्त हुआ और व्याकुलता के सागर उमड़ पड़े। उस अवस्था में ऐसे महापुरुष की खोज में निकल पड़ा जो मेरी आत्मा को परम शान्ति का अनुभव करा सके।

न जाने किस प्रेरणा से वशीभूत होकर हिमालय की गहन शान्ति में अपने अशान्ति का मार्ग खोजने निकल पड़ा। यात्रा करते-करते मेरा तिब्बती बौद्धों से परिचय हो गया। धीरे-धीरे घनिष्ठता भी हो गई। एक दिन एक लामा जिसका सम्बन्ध अनेक गुप्त योगाश्रमों से था। वह लामा दुर्गम मार्ग से एक बौद्ध गुफा में ले गया और वहां निवास करने वाले उच्चकोटि के सिद्ध लामा से परिचय करवाया। उस वृद्ध लामा की आयु काफी रही होगी। नेत्रों में विशेष चमक थी। सिर सफाचट यानि सिर पर बाल नहीं थे। लेकिन हल्की सफेद दाढ़ी थी। गले में लाल मनके की माला, गैरिक ऊनी वस्त्र से उनका शरीर ढका हुआ था।

मुझे देखकर और मेरी जिज्ञासा को सुन कर उन्हे मुझ पर शायद दया

आ गई। उन्होने जो कुछ भी समझाया और अनुभव कराया सच में वह अपने आपमें अद्‌भुत था। उनका कहना था पांचवें शरीर के बाद योगी जो भी अनुभव करता है वह आन्तर जगत का है यानि अभौतिक जगत और ब्रम्हाण्ड का सन्धि क्षेत्र है। मानव तन विश्व ब्रम्हाण्ड का लघु संस्करण है जो कुछ बाहर है वह सब शरीर में है। मनुष्य का सिर मुख्य रूप से दो भागों में विभक्त है। आज्ञा चक्र का दो दल इसका प्रतीक है। दोनों तरफ 'हं' और 'क्षं' शब्द मंत्र का कम्पन होता रहता है। योगी इन पर ध्यान केन्द्रित करते हैं और कम्पन का आभास अपने मानसपटल पर करने लगते हैं। कुछ योगी जपते-जपते ध्यान केन्द्रित करते हैं। खैर,

आगे सुनो- अपना वस्त्र ठीक करते हुए वह लामा बोले। मनुष्य का सिर दो भागों में विभक्त है। पहला भाग है कपाल प्रदेश और दूसरा भाग है ब्रम्हाण्ड प्रदेश। इसी ब्रम्हाण्ड का एक क्षेत्र है अभाव। कहने का अर्थ यह है कि 'अ' का तात्पर्य चित्त जहां कोई भाव न हो यानि उदय ही न हो।

इसी अभाव का दूसरा नाम है शून्य। ब्रम्हाण्ड प्रदेश के इस क्षेत्र में जो शून्य व्याप्त है। उसे योग साधना में महाशून्य कहते हैं। उसी प्रकार हृदय में एक शून्य क्षेत्र है। जिसे केवल शून्य कहा जाता है। शून्य और महाशून्य में विशेष सम्बन्ध है। जिस प्रकार योग साधना के बल पर शून्य से महाशून्य में प्रवेश किया जाता है। वैसे ही महाशून्य से परम शून्य अर्थात विश्व ब्रम्हाण्डीय शून्य में प्रवेश किया जा सकता है। उसका एकमात्र स्थान है आज्ञा चक्र।

शून्य स्थान को इच्छाओं और वासनाओं की संज्ञा दी गयी है। सामान्य प्राणी इससे कभी मुक्त नहीं हो पाता। मृत्यु के समय अपने जीवन की अधूरी इच्छायें, वासनाएं चित्त में एकत्र होने लगती है। मृत्यु के बाद उन्ही के अनुरूप वासना शरीर अथवा प्रेत शरीर का निर्माण तुरन्त हो जाता है और जीवात्मा उसे वाहक के रूप में ग्रहण कर शून्य में प्रवेश कर जाती है। इसके बाद है महाशून्य की अवस्था। यहां मन और विचारों का केन्द्र है। यही मनोमय लोक है। जीवात्मा इसमें मनः शरीर को वाहक बना कर प्रवेश करती है। इसके बाद है परम शून्य की अवस्था जहां अपूर्व शांति है। जिसे दिव्य लोक कहा गया है।

मैं ध्यानपूर्वक सुनता रहा तभी लामा ने अपनी बीच की उंगली से

मेरे भ्रूमध्य में स्पर्श किया। विद्युत सा कम्पन हुआ और मैं गहन शून्य में चला गया। मैं जब वापस आया तो तीनों अवस्थाओं में जो कुछ भी अनुभव किया और जो कुछ भी देखा उसने मेरे जीवन और जगत के तमाम रहस्य खोल दिये। आज जो कुछ भी लिख रहा हूं उसी का परिणाम है।

आज्ञा चक्र पर ध्यान करने से अन्य चक्रों पर ध्यान करने के समान फल मिलता है। अतः ध्यान करने से इस चक्र का महत्व अन्य चक्रों से अधिक माना गया है। अगर इस केन्द्र पर मन एकाग्र हो जाये तब मन और प्राण स्थिर होने लगते हैं। उसी क्षण साधक सम्प्रज्ञात समाधि को उपलब्ध होता है। आज्ञा चक्र को शिव का तीसरा नेत्र भी कहा गया है। यहीं से साधक को दिव्य दृष्टि भी प्राप्ति होती है।

द्विदल रूपी आज्ञा चक्र शिव का परम स्थान है। जहां से बिन्दु नाद और शक्ति का स्फुरण होता है। जो योगी सदैव इस स्थान पर ध्यान करता है। उसे बाह्य पूजा आदि की आवश्यकता नहीं पड़ती। उसे पूर्व जन्म का ज्ञान प्राप्त हो जाता है और पूर्व जन्मकृत दोष भी नष्ट हो जाते हैं। मन को स्थिर कर तालूमूल को कण्ठ प्रदेश में लगा कर आज्ञा चक्र पर ध्यान करने से साधक दिव्य अवस्था में चला जाता है और अमृत का पान करता है।

आज्ञा चक्र ही कारण शरीर रूपी सात कोशों का स्थान है। जिसके द्वारा ही सूक्ष्म और भौतिक शरीर का निर्माण होता है। योग-तंत्र में इन कोशों के लाक्षणिक नाम हैं- इन्दु, बाधिनी, नाद, अर्धचन्द्रिका, महानाद, कला, उन्मनी इन सप्त कोशों के नाम है। उन्मनी कोश में पहुंच कर जीव परम शून्य अवस्था को प्राप्त करता है। फिर उसे जन्म नहीं लेना पड़ता। यह शिव शक्ति का परम स्थान है। वह ईश्वरी प्रेरणा से जगत में जन्म तो ग्रहण कर सकता है किन्तु उसे शरीर धारण करने की अवस्था में भी उसे आत्म स्वरूप की विस्मृति नहीं होती। वह अपने आत्म स्वरूप में ही रहता है। पुनः जीवात्मा का भ्रम नहीं होता। ऐसे बहुत सारे साधक-योगी हैं और समाज के उत्थान के लिये ईश्वरी इच्छा से जन्म लिया करते हैं। संसार और धर्म के लिए कार्य कर पुनः अपने स्वरूप को उपलब्ध हो गये आदि शंकराचार्य अन्य योगीगण।

◆◆◆

प्रसंग अट्ठारह

सहस्त्रार चक्र और साधना

विश्व ब्रम्हाण्ड में मूल परम तत्व है। जिसे निराकार परम ब्रम्ह की संज्ञा दी गई है और परम ब्रम्ह परमेश्वर के नाम से सम्बोधित किया गया है। भारतीय मनीषियों और तत्व वेत्ताओं के अनुसार सृष्टि के प्राक्काल में वह मूल परम तत्व अपनी इच्छा के द्वारा अपने को दो भागों में विभक्त किया। जिसे भारतीय संस्कृति ने उन दोनों भागों को शिव और शक्ति की संज्ञा दी। आगे चलकर सृष्टि के विकास क्रम में शिव और शक्ति, पुरुष तत्व और शक्ति तत्व की संज्ञा में परिवर्तित हो गये।

यही ब्रम्ह माया प्रकृति-पुरुष और परमेश्वर-परमेश्वरी रूप में परिकल्पित हुए। सृष्टि के प्राक्काल में जब शिव पुरुष तत्व और शक्ति स्त्री तत्व एक दूसरे की ओर आकर्षित होकर एक-दूसरे की सत्ता में विलीन हो गये। उसके परिणाम स्वरूप विश्व ब्रम्हाण्ड में विराट और सर्वव्यापक चेतना का जन्म हुआ। जिसे आगे चलकर परम शक्ति और आदि शक्ति के नाम से जाना गया।

शिव आकर्षणात्मक और मिथुनात्मक भाव लिंग हैं और उसकी पीठिका शक्ति है। वैदिक काल में इन दोनों को दो अरणियों में परिकल्पित किया। शाक्त तंत्र के अनुसार शिव प्रकाश है और शक्ति है स्पन्दन यानि ऊर्जा। यही दोनों तत्व विश्व जगत के मूल आधार तत्व हैं।

सृष्टि के मूल समय यानि प्रारम्भिक काल में जब शिव आकर्षित होकर शक्ति में प्रवेश किये यानि शक्ति में समाहित हो गये तो उसमें से बिन्दु की उत्पत्ति हुई।

इसी प्रकार जब शक्ति ने आकर्षित होकर शिव के अनन्त रूप में अपने को समाहित किया तो उसके परिणाम स्वरूप दोनों के संयुक्त सत्ता से 'नाद' का जन्म हुआ। बिन्दु और नाद से काम का आविर्भाव हुआ।

काम, पुरुष और स्त्री दोनों तत्वों का तादात्म्य है। तंत्र में बिन्दु को श्वेत बिन्दु और नाद को रक्त बिन्दु माना गया है। इन दोनों बिन्दुओं से कला का निर्माण होता है। इसी को कामकला की संज्ञा दी गयी है। काम पुरुष वाचक और कला स्त्री वाचक है। कामकला दोनों तत्वों का मिश्रित परम तत्व है। उसमें पुरुष तत्व और स्त्री तत्व दोनों हैं। इसी परम तत्व का दूसरा नाम है परमा शक्ति यानि परम चेतना शक्ति जो ब्रम्हाण्ड में व्याप्त है और कुण्डलिनी शक्ति के रूप में मानव तन में भी अवस्थित है। मातृकाओं का पहला अक्षर 'अ' और अन्तिम अक्षर 'ह' है। 'अ' को शिव तत्व और 'ह' को शक्ति तत्व का प्रतीक माना गया है।

ये दोनों अक्षर की मिश्रित संज्ञा कामकला है। सभी वर्णाक्षरों में 'म' अक्षर का बोध होता है। 'अ' और 'ह' के साथ 'म' जोड़ देने से 'अहम' शब्द का निर्माण होता है। यही अहम कुण्डलिनी शक्ति के रूप में आत्म शक्ति है यानि कुण्डलिनी ही आत्म शक्ति है और हमारे अन्दर उसका अहम के रूप में बोध होता है। यही जीवात्मा का सूचक भी है। जिसे हम 'मैं' शब्द से सम्बोन्धित करते हैं। संसार में सभी कुछ बदलता है। मगर 'मैं' का जो बोध है वह कभी भी नहीं बदलता। यही हमारे अन्दर 'मैं' के रूप में चेतना में अवस्थित है।

जगत और सृष्टि की प्रक्रिया में शिव जड़ तत्व और शक्ति चेतन तत्व है। जड़ ही चेतन का आधार है और उसके माध्यम से प्रगट होने वाली चेतना का अनुभव तो होता है। परन्तु उसे देख नहीं सकते। तंत्र कहता है कोई शक्ति बिना माध्यम से प्रगट नहीं हो सकती और जिसके माध्यम से प्रगट होती है उसे गतिमान कर देती है। यही चेतन का, शक्ति का परम गुण है। यदि जड़ आधार है तो शक्ति आधेय है। हमारा शरीर जड़ है और आसन है चेतना। जब तक शरीर चैतन्य और क्रियाशील रहता है जिसे हम जीवन कहते हैं। जब शरीर से चेतना का सम्बन्ध टूट जाता है तो वह शरीर, जड़ यानि शिव से शव हो जाता है।

चक्रों का अन्तिम चक्र सहस्त्रार है। जहां चैतन्यता है। शिव-शक्ति का सामरस्य मिलन है और है सामरस्य भाव।

मानव का चरम विकास शिवत्व यानि श्वेत बिन्दु अथवा प्रकाश है।

यह सहस्रार में अवस्थित है और शक्ति तत्व यानि रजो बिन्दु जिसे ऊर्जा स्पन्दन कहते हैं वह मूलाधार में अवस्थित है। लेकिन मूलाधार चक्र कुण्डलिनी शक्ति के रूप में शिव-शक्ति दोनों में समान और मिश्रित रूप में काम-कला के रूप में अवस्थित है।

सहस्रार चक्र ब्रम्ह रन्ध्र के ठीक ऊपर अवस्थित है और समस्त शक्तियों का केन्द्र है। सहस्रार चक्र को दशम द्वार, ब्रम्ह स्थान, निर्वाण शरीर और निर्वाण चक्र आदि की संज्ञा दी गई है। इस दल में 'अ' से लेकर 'क्ष' तक के सभी शक्ति अक्षर विद्यमान हैं। सहस्र दल इसे इसलिए कहा जाता है क्योंकि इस चक्र में पचास अक्षर बीस बार आते हैं। मूलाधार से आज्ञा चक्र तक कुल दल और मात्राएं पचास-पचास हैं। यही ऐसा केन्द्र है जहां से सूक्ष्म नाड़ियों का सम्बन्ध है। यहां सभी सूक्ष्म योग नाड़ियां विद्यमान हैं। यह सम्पूर्ण चेतना का केन्द्र माना जाता है इस दल के मध्य में त्रिकोण योनि पीठ को घेरे हुए पूर्ण चन्द्र है।

कुण्डलिनी शक्ति छः चक्रों का भेदन करते हुए अन्त में सहस्रार में लीन हो जाती है। सहस्रार चक्र का लोक सत्यलोक है और तत्व बीज 'तत्वातीत'। गति बिन्दु है और यंत्र, शुभ्र वर्ण, पूर्ण चन्द्र है। चक्र के मध्य में त्रिकोण योनि चक्र में (ऊर्ध्व योनि चक्र) परब्रम्ह अपनी परमा महाशक्ति के साथ अवस्थित है। सभी चक्रों की ध्वनियां यहां तरंगित होती रहती है यह सम्पूर्ण शरीर के चेतना का केन्द्र है।

यह निर्वाण देने वाला है। मूलाधार चक्र पर साधक की जो चेतना शक्ति जाग्रत होकर सहस्रार तक पहुंचती है वहां पहुंच कर परम शक्ति के रूप में परिवर्तित होती है। ऐसी अवस्था में ज्ञात, ज्ञेय और ज्ञान की त्रिपुटी नहीं रह जाती। सब आत्म रूप ही हो जाता है। शिव संहिता के अनुसार शिव का स्थान कैलाश है।

नाम चक्र, शून्य स्थान, मस्तिष्क दल, सहस्र दल, दलों के अक्षर 'अं' से 'क्षं' तक, लोक सत्य, नाम तत्व, तत्वातीन, तत्व बीज, विसर्ग, बीज का वाहक- बिन्दु देव, परब्रम्ह देव, शक्ति, महाशक्ति यंत्र, पूर्ण चन्द्र, ऊर्ध्व योनि, ध्यान, फल, मोक्ष यही सहस्रार का आध्यात्मिक रूप है।

साधना के मूल में मन, प्राण और वाक के दो-दो रूप हैं। पहला रूप

व्यष्टि है और दूसरा रूप है समष्टि। समष्टि रूप व्यापक, अनन्त और असीम है और व्यष्टि रूप मानव तन में सीमाबद्ध और मर्यादित है। कुण्डलिनी जागरण होने पर एक ओर मन, प्राण और वाक (विचार) की सीमा व मर्यादा को छोड़ कर सर्वव्यापक समष्टि रूप में परिवर्तित हो जाती है और दूसरी ओर आत्म शक्ति भी परम ज्ञान के रूप में परिवर्तित होकर साधक के लिए परम निर्वाण का मार्ग प्रशस्त कर देती है। तीनों शक्तियों का व्यष्टि रूप में, समष्टि रूप में परिवर्तित होने का मतलब सम्पूर्ण विश्व ब्रम्हाण्ड के साथ तादात्म्य स्थापन और उसका ज्ञान और अतिक्रमण यानि निर्वाण। योग-तंत्र की यावत साधना का यही परम लक्ष्य और उद्देश्य है निर्वाण को प्राप्त करना।

हमारा सातवां शरीर निर्वाण शरीर है। देखा जाये तो निर्वाण शरीर कोई शरीर शरीर नहीं है। यह देह शून्यता की एक विशेष अवस्था है। यहां केवल शून्य है। शून्य के अलावा कुछ भी नहीं है। निर्वाण का तात्पर्य है सब कुछ समाप्त हो जाना। एक विशेष अवस्था को उपलब्ध हो जाना।

वैसे देखा जाये तो आत्म शरीर आत्मा का निज स्वयं का शरीर है। वह पिछले चारो शरीरों के बन्धन से अपने आप को मुक्त कर अपने निज शरीर को उपलब्ध होती है। इस शरीर का सम्बन्ध आत्म लोक से है। यही आत्मा की परम मुक्ति की अवस्था है। परम मुक्ति का तात्पर्य है आत्मा अपने निज शरीर से भी मुक्ति। जिस प्रकार वह अन्य शरीर के बन्धन से मुक्त कर लेती है। उसी प्रकार अपने निज शरीर से भी अपने को मुक्त कर लेती है। वह मुक्त होकर अपने निज लोक यानि आत्म लोक को उपलब्ध हो जाती है। शरीरों से मुक्ति, उन शरीर से सम्बन्धित संसारों से मुक्ति। इसी को मोक्ष कहते हैं। इस अवस्था में साधक के पास न शरीर रहता है न ही उससे सम्बन्धित संसार रहता है। न तो रहती है आत्मा। यही उसकी विशुद्ध अवस्था है। इस अवस्था के बाद छठे शरीर यानि ब्रम्ह शरीर को प्राप्त करता है। जैसे पांचवें शरीर में मोक्ष की सम्भावना है उसी प्रकार छठें शरीर में ब्रम्ह की सम्भावना है। वहां न मुक्ति है न ही अमुक्ति। यदि वहां कुछ है तो सर्वव्यापक परम तत्व है। जिसे परम ब्रम्ह, परमात्मा के रूप में परिकल्पित किया गया है। उसी के साथ एकाकार हो जाना। उसी में लीन हो जाना।

यही छठे शरीर की परम उपलब्धि है। लेकिन यहीं पर सब कुछ समाप्त नहीं हो जाता। इसके बाद भी एक और अवस्था है परम निर्वाण की। यह सातवें शरीर की सम्भावना है और इस अवस्था में न अहम है और न तो है ब्रम्ह। मैं और तुम दोनों नहीं है वहां। कुछ है ही नहीं। वहां केवल परम शून्य है और यही है परम निर्वाण।

◆◆◆

और अब अन्त में

कुण्डलिनी साधना प्रसंग आपने अध्ययन किया। कुछ पल सोचने को विवश जरूर हुए होंगे। फिर इस पुस्तक को भी किसी अन्य पुस्तक के बीच में लगा देंगे। लेकिन आपको ज्ञात होना चाहिए कि इस पुस्तक को पूर्ण करने में मुझे चार वर्ष लगे। मैं चाहता हूं कि आप पुस्तक को फिर से पढ़े और उसमें दिये गये सूत्र पर अवश्य एक बार चिन्तन-मनन करें। क्योंकि जीवन का प्रवाह बहुत ही तीव्रता से बहता जा रहा है। मेरे जीवन का साठ वर्ष कब निकल गया पता ही नहीं चला। देखा जाये तो मेरा जीवन अध्यात्म की खोज में ही बीत गया। अध्ययन किया, भ्रमण किया और योग-तंत्र की विकट साधना भी की। फिर भी ऐसा लगता है कि आज भी सब कुछ रहस्यों के परत में दबा है। जिसे मैं हटा नहीं पाया। कहीं न कहीं अधूरेपन का एहसास होता रहता है।

मैंने अपने भ्रमण काल में भारत के शहर, पहाड़, जंगल भी देखे। सांसारिक लोगों से भी मिला। सिद्ध साधकों के दर्शन लाभ के साथ-साथ ज्ञान को भी उपलब्ध हुआ। लेकिन उस समय की प्रकृति जितनी निर्मल और ऊर्जावान दिखी आज ऐसा नहीं है। विगत बीस वर्षों में जैसे सब कुछ बदल सा गया है। न वह अपनापन, न ही प्रेम, न ही श्रद्धा और समर्पण रहा। जैसे आज का मनुष्य भावविहीन सा हो गया है। वह एक प्रकार से यंत्रमानव (रोबोट) होता जा रहा। बस यंत्र की तरह काम करते जाना और सब कुछ यानि संसार का सारा ऐश्वर्य पाना चाहता है। दिन-रात उसी में लगा है। धैर्य, संयम, प्रेम, अपनत्व की जगह अधैर्य, हिंसा, क्रोध, घृणा, अस्थिरता को अपनाता जा रहा है। दुख की बात यह है कि आज का मानव धैर्य को खोता जा रहा है। यही अधैर्यता उसके अन्दर मानसिक, शारीरिक विकृति पैदा करती जा रही है। जिसके कारण वह अपनों के बीच में भी नितान्त अकेला होता जा रहा है।

मनुष्य अपनी आबादी और महत्वाकांक्षा से सभी जगह फैलता जा रहा है। जंगल, पहाड़, नदी आदि सब खत्म होते जा रहे हैं। जल का आवश्यकता से अधिक दोहन कर रहा है। जल का महत्व आज नहीं तो कल समझ में अवश्य आयेगा। यहां तक की पशु-पक्षियों की बहुत सारी प्रजातियां भी लुप्त होती जा रही हैं। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि एक तिनके से लेकर पहाड़ तक प्रकृति के सन्तुलन के लिए ही बनी हैं। प्रकृति की जो भी लीला है उसके उत्पत्ति में कोई भी वस्तु जीव-जन्तु यहां तक की हम मनुष्य भी व्यर्थ नहीं हैं। सबका कहीं न कहीं सम्बन्ध बना है सन्तुलन के लिए। हमारे नजरों में बहुत सी वस्तुएं आदि व्यर्थ होंगे। लेकिन प्रकृति अपने सन्तुलन के लिए उनका भी उपयोग परोक्ष या अपरोक्ष रूप से करती रहती है।

योग के चौरासी आसन सभी पशु-पक्षी, वृक्षों का अध्ययन करके बनाए गए। जैसे वृक्षासन पीपल के वृक्ष को देखकर बनाया गया। उसी प्रकार सर्पासन, मयूरासन, पद्मासन, सुखासन आदि। आप जरा सोचें हमारे ऋषियों ने कितना गहन शोध कर इन आसनों का निर्माण किया होगा। यह एक ऋषि का काम नहीं था यह पीढ़ी दर पीढ़ी शोध का परिणाम है। उसी प्रकार स्वास्थ्य और शरीर के लिए प्राण ऊर्जा अति आवश्यक है। अगर मस्तिष्क को मात्र तीन मिनट तक प्राण ऊर्जा न मिले तो उसके सेल क्षतिग्रस्त होने लग जायेंगे। फिर उन्हे दोबारा ठीक करना सम्भव नहीं है।

प्राचीन काल में योगियों ने प्राण ऊर्जा के महत्व को समझा और स्वयं के शरीर के आन्तरिक भाग का अध्ययन तक किया। लेकिन आश्चर्य की बात यह है कि आज के आधुनिक विज्ञान जैसी सुविधा उस काल में नहीं थी। लेकिन शरीर के अवयवों का रहस्य कैसे जान पाये? उस समय योगियों को भलीभांति ज्ञान हो चुका था कि शरीर हाड़-मांस का बना एक प्राकृतिक यंत्र मात्र है। उन्होने लोगों की तरह शरीर को ही सब कुछ नहीं माना। वे शरीर से अलग उस अव्यक्त जगत को जानना चाहते थे। ऐसी कौन सी ऊर्जा है जो शरीर में रहती है तो शरीर चैतन्य रहता है? उसके निकल जाने के बाद शरीर का महत्व ही खत्म हो जाता है। उसी चैतन्य को उन्होने आत्मा शब्द से निरूपित किया। अगर आत्मा है तो उसे बनाने वाला भी तो कोई होगा जो अव्यक्त है। उसे उन्होने परमात्मा नाम से

निरूपित किया। आत्मा और परमात्मा के बीच के रहस्य को जानने का नाम ही योग है। जो आत्मा और परमात्मा के बीच की दूरी को खत्म कर दे और परम ज्ञान के दीपक को प्रज्जवलित कर दे उसी का नाम योग है।

जहां तक कुण्डलिनी शक्ति की बात है कुण्डलिनी की साधना सात चरणों की है। जिसको मैंने विस्तार से लिख दिया है। लेकिन पुनः यही बात कहूंगा कुण्डलिनी भारतीय योगियों की चरम खोज है। यह जीवन में एक क्रान्ति पैदा करती है। जीवन को सही उद्देश्य देता है। प्राकृतिक प्रकोपों से सुरक्षित भी रखता है। जैसे पशुवत जीवन है ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, लालच आदि उसी प्रकार दैवीय जीवन है करूणा, प्रेम अहिंसा आदि। जब आपका जीवन दैवीय जीवन होगा तो आप हर मुश्किल में तटस्थ होंगे। संघर्षमय जीवन में भी आप अपनी राह बना लेंगे। जहां तक लोगों का भ्रम है कि कुण्डलिनी जागरण से आप आकाश विचरण करने लगेंगे, उत्थान सिद्धि हो जायेगी, शरीर अदृश्य हो जायेगा। यह सब है लेकिन साधना की परम अवस्था प्राप्त होने पर। मैं ऐसे साधकों से मिला और उनके चमत्कार को भी देखा। लेकिन उनके इन सब सिद्धियों के बीच सूक्ष्म शरीर का भी योगदान है। उनके लिए भौतिक शरीर और सूक्ष्म शरीर में कोई अन्तर नहीं होता था। क्योंकि भौतिक शरीर की एक सीमा है। यह गुरुत्वाकर्षण से बंधा है। जो भी चमत्कार होते हैं वह सूक्ष्म शरीर द्वारा ही सम्भव है। जैसे भक्त को दर्शन देना। साधक तो वहीं रहता है। लेकिन संकल्प शक्ति के माध्यम से सूक्ष्म शरीर को संघठित कर भक्त को दर्शन दे देते हैं। क्योंकि योग-तंत्र साधना के मूल में सूक्ष्म शरीर का बहुत बड़ा योगदान है। मैं जिन अशरीरी आत्माओं व साधकों से मिला वह हमारे सूक्ष्म शरीर से सम्पर्क करते थे या किसी भी भौतिक शरीर को माध्यम बना कर सम्पर्क करते थे।

कुण्डलिनी के सात चक्र, ऊर्जा के सात द्वार हैं। प्राण संघात से एक-एक चक्र का भेदन होता है। जैसे-जैसे भेदन होता जायेगा साधक का सूक्ष्म शरीर प्रबल होता जायेगा। सात शरीर, सात रंग, सात आकाश, सात मण्डल, सात समुद्र, सात आयाम इसका भी अपना रहस्य है। कुण्डलिनी के एक-एक चक्र का सम्बन्ध सात आयाम से जुड़ा है यानि सेवन डायमेन्शन से। जहां काल का प्रभाव क्रमशः मन्द होता जाता है। काल का प्रभाव सबसे ज्यादा भौतिक शरीर पर ही पड़ता है। उसके बाद सूक्ष्म शरीर

और अन्य शरीर पर पड़ता है। लेकिन उसका प्रभाव निम्न होता है। इसलिए योग और तंत्र की साधना सूक्ष्म शरीर को केन्द्रित कर की जाती है। भौतिक शरीर केवल माध्यम भर रह जाता है। लेकिन भौतिक शरीर जड़ है चेतना के लिए जड़ अत्यन्त महत्वपूर्ण भी है और साधना की उच्चावस्था प्राप्त करने के लिए अति आवश्यक भी है।

आज भी हिमालय और तिब्बत में अनेक साधक हैं जो हजारों वर्षों से साधनारत हैं। उन पर काल का प्रभाव नहीं पड़ता है। इसका मुख्य कारण है चतुर्थ आयाम। क्योंकि ऐसे कुछ विशेष स्थान हैं जहां चतुर्थ आयाम के प्रवेश द्वार हैं। उन साधकों को पता है चतुर्थ आयाम में कैसे प्रवेश लिया जाता है। काल का प्रभाव सूर्य के प्रकाश के माध्यम से अति तीव्र पड़ता है। हम किसी भी वस्तु को तभी देख पाते हैं जब प्रकाश उस वस्तु से टकराकर वापस आता है यानि परावर्तन (रिफ्लेक्शन) के माध्यम से। तभी हमारे नेत्र देख पाते हैं। चतुर्थ आयाम यानि उस जगत को हम इसलिए नहीं देख पाते क्योंकि वहां पर सूर्य के प्रकाश की परावर्तन क्रिया नहीं हो पाती। यही कारण है कि चतुर्थ आयाम हमारे आस-पास है। लेकिन देखना सम्भव नहीं है। क्योंकि वहां प्रकाश का परावर्तन क्रिया नहीं होती। जो लोग गल्ती से उसमें प्रवेश कर जाते हैं वे अदृश्य हो जाते हैं। उसी आयाम में फंसे रहते हैं। क्योंकि काल वहां पर मन्द है यही कारण है कि उन्हे वहां का वर्तमान ही दिखता है। इसके विषय में मैंने तीसरा नेत्र में विस्तार से लिखा है।

काल पर विजय प्राप्त करने की लालसा मनुष्य को आदिकाल से रही। मृत्यु का भय उसे काल पर विजय प्राप्त करने की प्रेरणा देता था। प्राचीन काल से साधना के माध्यम से ऐसा सम्भव हो गया था। लेकिन यह ज्ञान सीमित लोगों के पास ही था। आज भी मृत्यु पर विजय प्राप्त करने के लिए विज्ञान जोर-शोर से लगा है।

हम काल पर विजय तभी प्राप्त कर सकते हैं जब हम वर्तमान के रहस्य को जान जायें। हमारा जीवन अतीत और भविष्य के बीच झूल रहा है। हम प्रतिदिन सूर्य को उगते और अस्त होते देखते हैं। क्या हमने कभी सोचा है कि वह सूर्य आठ मिनट पुराना है। सूर्य का प्रकाश जब पृथ्वी को स्पर्श करता है तब वह आठ मिनट पहले का था यानि अतीत का सूर्य होता है। तारों को हम देखते हैं वह तारा हजारों वर्ष पूर्व का तारा होता है।

वह कैसा है हमें पता नहीं। जिस दिन हम वर्तमान में प्रवेश कर जायेंगे। उस पल हम बिखर जायेंगे या परम रहस्य से अवगत हो जायेंगें।

कुण्डलिनी साधना में तीसरा नेत्र का अपना महत्व है। यह वही स्थान है भौतिक से अभौतिक जगत में प्रवेश करने का। यही वर्तमान है जहां सब कुछ रूक जाता है। काल थम जाता है।

शिव समाधिस्थ हो जाते हैं। समाधि ही वर्तमान है। इसलिए शिव का तीसरा नेत्र बहुत ही विकट समय में खुलता है। लेकिन जब खुलता है तब बाह्य जगत और आन्तर जगत एक ही धूरी पर आ जाते हैं तब प्रलय में सब विलीन हो जाता है और सब बिखर जाता है। सारे आयाम टूट जाते हैं। शिव का तीसरा नेत्र दोनों जगत का सन्धि स्थल है। योग-तंत्र की यावत साधना इसी स्थल तक पहुंचने की साधना है। इस स्थल को स्पर्श करते ही साधक शिवत्व को उपलब्ध हो जाता है और शिव की तरह समाधि में लीन हो जाता है। न विराग न मोह न त्याग होता है वह शिव की तरह प्रकृतिमय हो जाता है। वह काल के प्रवाह में बहता नहीं है। काल के साथ लयबद्ध हो जाता है। क्योंकि वह सारे रहस्य को जान जाता है। उसके लिए कोई रहस्य रहस्य नहीं रहता।

वह शिव ऊर्जा से उत्पन्न हुआ और उसी शिव ऊर्जा में लीन हो जाता है। वह तो स्वयं शिवमय हो गया। वह तो शिव के विराट आयाम में प्रवेश कर जाता है। उसके लिए न जन्म का मोह, न ही मृत्यु का भय। वह जब भी चाहे जगत में जन्म ले सकता है और जब चाहे मृत्यु का वरण कर सकता है। यह दोनों कर्म होश में होगा और होगा ज्ञान में। उसका जन्म न तो अज्ञान होगा। न ही मूर्च्छा में होगी मृत्यु।

योग-तंत्र की समस्त साधना अज्ञानता से मुक्ति की है। हम मूर्च्छा में जन्म लेते हैं और मूर्च्छा में ही मर जाते हैं। इसी से मुक्त होने का मार्ग है ज्ञान मार्ग यानि साधना का मार्ग।

।।ज्ञानानं मुक्ति।।
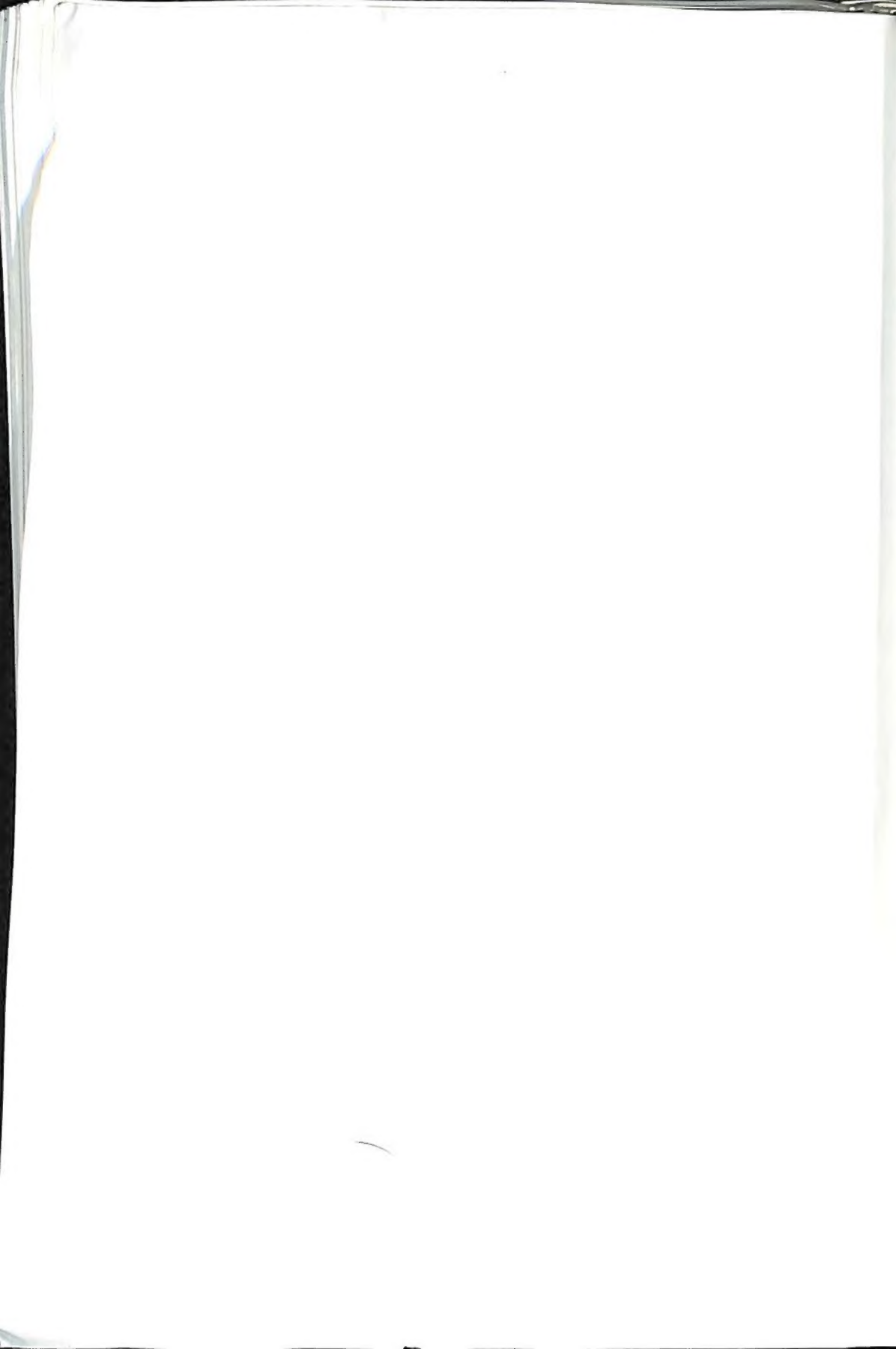
Yogi
Never born-Never died
Only visited this earth
1st Jan 1924 - 29th Jun 2011

अन्य प्रकाशित पुस्तकें

मारणपात्र
तीसरा नेत्र (प्रथम खण्ड)
तीसरा नेत्र (द्वितीय खण्ड)
मरणोत्तर जीवन का रहस्य
परलोक विज्ञान
कारणपात्र
कुण्डलिनी शक्ति
अभौतिक सत्ता में प्रवेश
वक्रेश्वर की भैरवी
वह रहस्यमय संन्यासी
रहस्य
आवाहन
आकाशचारिणी
वह रहस्यमय कापालिक मठ
तिब्बत की वह रहस्यमयी घाटी
मृतात्माओं से सम्पर्क
जन्म जन्मान्तर
तंत्रम्
परलोक के खुलते रहस्य
योगतांत्रिक साधना प्रसंग
कालपात्र
कालञ्जयी
Maaran Paatra
Still Drowning

Astha Prakashan
B-5/23, Awadhgarvi,
Harishchandra Road,
Varanasi - 221001 (U.P.)
96217 11803, 83184 11832
www.arunkumarsharma.com